Digitized by eGangotri and Sarayu Trust

श्री गुरुग्रन्थसाहिब

हिन्दी व्याख्या शब्दार्थ सहित

भाग १

मुनि अर्जुन सिंह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

1157
A2S3

Sri Gurugranth Shiab ka
Hindi Anuvad.

Arujan singh

Mohar chand, Delhi
1963

SPS
294.6 A 37 G
22740

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उत्तम टीका

उत्तम टीका

जपजी साहब

मूलमन्त्र

१ ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निर वैर।
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरप्रसादि ॥
जपु

यद्यपि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में जपजी ऐसा शीर्षक नहीं लिखा तथापि मूल मन्त्र के पश्चात् जप शब्द का उल्लेख होने के कारण इस वाणी का नाम जप है। श्रद्धालु लोग सम्मान के लिये इसे जपजी साहिब कहते हैं। लोक कल्याण के लिए श्री गुरु नानक देव जी ने जप वाणी का निर्माण तथा प्रचार स्वयं किया है। मानसिक शान्ति एवं आत्मोन्नति के लिए श्रद्धालु लोग इ से प्रतिदिन प्रातःकाल पढ़ते हैं। श्रीमान् भाई गुरुदास जी तथा मनीषी भाई नन्दलाल जी ने ऐसा ही लिखा है। "सोदर आर्ति गावीये अमृत वेले जाप उचारा" तथा—

"कर स्नान पढ़े जप जाप" यह जपजी श्री गुरु नानकदेव जी के सार गर्भित उपदेशों का सार है। तथा श्री गुरु ग्रन्थ जी की वाणी के निर्माण का आधार भूत आदि स्रोत है। श्री गुरु नानक देवजी ने इस वाणी में प्रश्नोत्तर के रूप में सुगम रीति से मानव कल्याण तथा भगवत्प्राप्ति के विविध साधनों का सुन्दर शैली से विवेचन किया है। श्रद्धाभक्ति पूर्वक स्वाध्याय करने से हृदय में शान्ति तथा आनन्द की अनुभूति होती है। जिज्ञासु पुरुषों को आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिये जप वाणी का प्रतिदिन पारायण तथा मनन करना चाहिये। ऐसा करने से अलौकिक शान्ति एवं अपूर्वशक्ति का उत्तरोत्तर विकास होता है। गुरुदेव जी ने इस वाणी को किसी राग में नहीं लिखा इसलिए गायक लोग किसी राग रागनी के विशेष स्वर ताल में गायन नहीं करते। जपजी जहां ज्ञानवर्धक परम पावन दिव्य स्तोत्र है वहां जिज्ञासु को कल्याण मार्ग में प्रवृत्त करने के लिए पथ प्रदर्शक सच्चा सुहृद है। श्रद्धावान् पुरुषों को ब्रह्मनिष्ठा के लिए विश्वास पूर्वक जप वाणी का अनुशीलन करना चाहिए। मूल मन्त्र में स्वरूप लक्षण तथा तटस्थ लक्षण के द्वारा ईश्वर के स्वरूप को बतलाया गया है। गुरु मत के मूलभूत सभी सिद्धान्त इस मन्त्र में भरे हुए हैं। इस महामन्त्र का अनुष्ठान कल्पतरु वृक्ष के समान भक्तों की सभी कामनाओं को पूर्ण करता है। ईश्वर वाद के प्रबल समर्थक होने के कारण ओंकार के आदि में एक अङ्क लगा कर गुरुजी ने मानव मात्र को इसे जपने का अधिकार दिया है। ईश्वर की परि-पूर्णता तथा एकता को गुरुदेव जी ने अनेक शब्दों के द्वारा स्पष्ट प्रतिपादन किया है।

न दादे दिहंद आदमी, न सपत जेर जिमी
असति एक दिगरि कुई एक तूहीएक तूही गु० ग्र० पृ० १४४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जीवन-यात्रा समाप्त कर रहे हैं। जो भेद-भाव के विना सम्पूर्ण संसार को अपना ग्रास बनाकर भी तृप्त नहीं होता, उस क्रूरकर्मा काल का भी भगवान् नियामक है। काल की सीमा एवं उसके प्रभाव को अतिक्रमण करने के कारण ईश्वर को अकाल-मूर्ति कहना युक्ति युक्त प्रतीत होता है। अथवा जो परमेश्वर ब्रह्मा विष्णु शिव त्रिमूर्ति के रूपमें समस्त संसार की उत्पत्ति पालना संहारादि महान् कार्यों का सञ्चालन एवं निरीक्षण करता है उसे भी अकाल-मूर्ति नाम से कहा जाता है। चौरासी लाख योनियों का निर्माता एवं शासक होने पर भी स्वयं अयोनि है, अर्थात् जन्म मरण के चक्र से सर्वथा मुक्त है, अजन्मा होने पर भी अपनी महिमा में स्थित है। उसका स्वयं प्रकाश होना स्वाभाविक है। सारा संसार उसके आलोकसे प्रकाशित हो रहा है, परन्तु ईश्वर अपने को प्रकाशित करने के लिये किसी दूसरे प्रकाश की अपेक्षा नहीं रखता।

❀ "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति"

'तिसदै चानणि सभि महि चानणु होइ"

इसी भाव को प्रकट करने के लिये मूल मन्त्र में सैभं शब्द का प्रयोग किया है। इस प्रकार का परमदयालु परमेश्वर अधिकारीपुरुष को पूर्ण गुरु की कृपा से प्राप्त होता है। यह गुरु मन्त्र गुरु नानकदेव जी को परम गुरु परमेश्वर से दीक्षा के रूप में प्राप्त हुआ है।

"अपरंपर पारब्रह्म परमेश्वर नानक गुर मिलिआ सोइ जीउ"

गुरु वाणी में इस गुरु मन्त्र के चारस्वरूप उपलब्ध होते हैं।

प्रथम "१ ओङ्कार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निर्वैरु अकालमूरति अजूनी सैभं गुरुप्रसादि"

दूसरा "१ ओङ्कार सतिनामु करता पुरखु गुरुप्रसादि"

तीसरा "१ ओङ्कार सतिनाम गुरुप्रसादि"

चौथा "१ ओङ्कार सतिगुरुप्रसादि"

गुरु वाणी के रचयिता एवं संकलन कर्ता श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज ने प्रत्येक राग तथा हर एक गुरु की वाणी के आरम्भ में एवं कवीर नामदेवादि भक्तों की वाणी के आदि में मूल मन्त्र के किसी न किसी स्वरूप का मङ्गलार्थ अवश्य उल्लेख किया है। यद्यपि श्रीगुरु अर्जुनदेव जी स्वयं मङ्गलमय थे। उन्हें विघ्न दूर करने के लिए मङ्गल की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती तथापि मर्यादा पुरुषोत्तम होने के कारण।

"प्रभ सिमरत कछु विघनु न लागै" "प्रभ कै सिमरनि ज्ञानु ध्यानु ततु बुद्धि"

"प्रभ कै सिमरनि होइ सुभला" "प्रभ कै सिमरनि सुफल फला"

इत्यादि अपने वचनों के अनुसार 'विघ्नशान्ति तथा बुद्धिविकास' एवं लोक कल्याण के लिये गुरुवाणी में गुरु मन्त्र के किसी न किसी स्वरूप का बारम्बार उल्लेख किया है। इस प्रकार के शिष्टाचार को देखकर मेरे अनुयायी सेवक भी प्रत्येक कार्य के आरम्भ में ईश्वर के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करें। ऐसा गुरुदेव जी का गूढ़ भाव है। इसलिये गुरुओं के अनुयायी कल्याणार्थ तथा व्यावहारिक

❀ ईश्वर के प्रकाश से सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

माङ्गलिक कार्यों की वृद्धि एवं सफलता के लिये मूलमन्त्र के प्रथम स्वरूपका जप,और मन्त्र के चतुर्थ संक्षिप्त स्वरूप को (श्रीगणेशायनमः) के समान पत्रादि व्यवहार में लिखते हैं, ऐसा व्यवहार करना गुरुदेव जी के आशय के अनुकूल ही प्रतीत होता है। गुरु मन्त्र का पहला स्वरूप श्री गुरुग्रन्थ साहिब में तेतीस वार, दूसरा नव वार, तीसरा संक्षिप्त स्वरूप केवल दो वार है। चौथा परमसंक्षिप्त स्वरूप पांचसौ पचीस वार आया है। पूर्वोक्त मूल मन्त्र जपजी की वाणी के अन्तर्भूत नहीं किन्तु समस्त गुरुवाणी का आधार भूत एवं विघ्नविनाशक परम माङ्गलिक जानकर पूज्य गुरुदेव ने श्री गुरुग्रन्थ साहिब के आदि में लिखा है। संसार के उपादानकारण मूल पुरुष परमात्मा से श्री गुरु नानकदेव जी को गुरुमन्त्र रूप से प्राप्त होने के कारण तथा मूल पुरुष के स्वरूप का बोधक होने से और समस्त गुरुवाणी का आधार होने के कारण एवं धर्म अर्थ काम मोक्ष चतुवर्ग की प्राप्ति का हेतु भूत होने से एवं लौकिक पारलौकिक कामनाओं का पूरक होने के कारण इस मन्त्रराज को गुरु मत में मूलमन्त्र कहते हैं।

'मूलमन्त्रहरिनाम रसाइण कहु नानक पूरा पाइआ'

गुरु वाणी में अनेक प्रकार से प्रायः इसी गुरु-मन्त्र की विस्तृत व्याख्या की है। सुलतानपुर निवास काल में गुरु नानक देव को ईश्वर ने अपने विशेष दूत द्वारा वैकुण्ठ में बुलाया, वेईं नदी में डुबकी लगाकर अपने यौगिक बल से गुरुदेव अपरब्रह्म के दर्शनार्थ गये। आवश्यक परामर्श के वाद परम गुरु परमेश्वर ने गुरु नानकदेव को यथाविधि दीक्षा देकर अशांत लोगों को शांति का सन्देश देने के लिये तथा सन्मार्ग में प्रवृत करने के लिये एवं धार्मिक सहिष्णुता का पाठ पढ़ा कर उदारता एवं मैत्री के साथ अन्य लोगों से मानव उचित व्यवहार करने के लिये पृथिवी के कोने कोने में घूमकर मूलमन्त्र की सरल एवं विशद व्याख्या करने का आदेश दिया। इस आज्ञा के पालन करने में गुरुनानकदेवजी को जो सफलता प्राप्त हुई उसका उल्लेख भाई गुरुदास ने अपनी वाणी में किया है।

"बाबे तारे चार चक नौ खण्ड पृथिवी सच्चा ढोआ"

ईश्वर ने मूल मन्त्र की जो विशद व्याख्या गुरु देव को बताई थी, उसी व्याख्या का भाव सरलरूप से जपजी में तथा अन्यत्र गुरुवाणी में गुरुनानकदेव जी ने लोक कल्याणार्थ व्यक्त किया है, अन्य गुरुओं ने भी गुरु नानक के सिद्धांतो का ही अपनी २ वाणी में प्रतिपादन किया है।

ओङ्कार इति– ओंकार शब्द को हम ओम् तथा कार इन दो भागों में बांट सकते हैं। शक्ति ग्राहक व्याकरण उपमान कोश आप्तवाक्य-आदि के द्वारा ओम्शब्द की शक्ति परब्रह्म, प्रारम्भ, अनुमति, माङ्गलिक आदि अर्थों में है। वन्दनीय श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज ने श्री गुरुग्रन्थ साहिब में ओअंसाध सतिगुरु नमस्कारं आदि मधि अन्ति निरङ्कारं तथा "ओअं गुरमुखि कियो अकारा" इत्यादि शब्दों में ओम् शब्द को परमेश्वर के अर्थ में प्रयुक्त किया है। मूलमन्त्र में भी ओम शब्द परब्रह्म का बोधक है।

"ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव"॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

※ व्याधिस्त्यान संशयप्रमादालस्याविरति भ्रान्तिदर्शनालब्ध-
भूमिकत्वाऽनवस्थितत्वानि चितविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥

इस सूत्र में प्रतिपादित सम्पूर्ण विघ्नों का अभाव होता है। योग के विघ्न केवल ये ही नहीं किन्तु इनके रहने पर—

'दुःख दौर्मनस्याङ्गमेजयत्व श्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः' यो० सू०

इत्यादि अनेक विघ्न साधक के मार्ग में उपस्थित होते हैं। जिन्हें दूर करने के लिये—

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः— इस सूत्र के द्वारा योगिराजपतञ्जलि ने ओम् के वाच्यार्थ परमेश्वर की उपासना करने के लिये ध्यान आकर्षित किया है। प्रतीक और अहंग्रह भेद से उपासना दो प्रकार की है। अन्यवस्तु का अन्यरूप से ध्यान करना प्रतीक है। जैसे शालिग्राम का विष्णु रूप से ध्यान करना। ध्येय स्वरूप का अपने से अभेद करके चिंतन करने का नाम अहंग्रह ध्यान है। निरन्तर ध्येयाकार चित्त की वृत्ति का नाम ध्यान है। ध्यान में विधि इच्छा विश्वास एवं हठ की आवश्यकता होती है। परन्तु ज्ञान में ऐसी बात नहीं, ज्ञान तो प्रमाण और प्रमेय के आधीन है। विधि और इच्छा के आधीन नहीं, जैसे—नेत्र और घटपटादि का परस्पर सम्बन्ध होने पर पुरुष की इच्छा के बिना भी घट का प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है, ऐसे ही भाद्रपद सुदि चतुर्थी के दिन चन्द्रदर्शन का निषेध है, विधि नहीं, चन्द्र दर्शन न करने की इच्छा को रखते हुये भी नेत्र और चन्द्र का यदि सम्बन्ध हो जाये तो चन्द्र दर्शन अवश्य हो ही जाता है। जिस अधिकारी को विषयासक्ति बुद्धिमान्द्य कुतर्क आदि प्रतिबन्धकों के कारण-अपरोक्ष ज्ञान नहीं हुआ उसे गुरु वाणी तथा वेद के विधि वाक्यों पर विश्वास करके अपने कल्याण के लिये श्रद्धा-भक्ति पूर्वक ओम् की अहंग्रह उपासना अवश्य करनी चाहिये। निर्गुण और सगुण भेद से ओङ्कार की उपासना दो प्रकार की है। निर्गुण रूप से प्रणव का चिंतन करने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है, और सगुण रूप से ओम् का चिंतन करने से ब्रह्म लोक की प्राप्ति। निर्गुण उपासक को यदि ब्रह्मलोक की कामना है तब कामना-रूप प्रतिबन्धकता से तत्काल ज्ञान द्वारा मोक्ष नहीं हो सकता, किंतु ब्रह्मलोक में हिरण्यगर्भ के समान अनेक प्रकार के भोगों को भोग कर हिरण्यगर्भ के उपदेश से ज्ञान द्वारा मोक्ष होता है। जिसे ब्रह्म लोक की कामना नहीं, उसे इसी लोक में ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है। इस प्रकार से सगुण उपासना का फल भी निर्गुण उपासना के अन्तर्भूत है। यद्यपि अखण्ड निरावयव सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा में विराट हिरण्यगर्भ ईश्वरादि अवयवों की कल्पना नहीं कर सकते, तथापि परिपूर्ण ब्रह्म के समग्र स्वरूप को समझाने के लिये मांडूक्योपनिषद में उसे चतुष्पाद कह कर श्रुति भगवती ने जिज्ञासु को समझाने की चेष्टा की है। ऐसे ही अभेद उपासना की सरलता के लिये ब्रह्म के वाचक ओम् में भी अकार उकारादि अवयवों की कल्पना स्नेहमयी श्रुतिमाता ने स्वयं की है। मनुस्मृति के अनुसार प्रजापति ने तीन वेदों से अकार उकार मकार को लेकर वेद-त्रयी सर्वस्व ओङ्कार को बनाया है।

'अकारं चाप्युकारंच मकारंच प्रजापतिः'।
'वेदत्रयान् निरदुहद् भूर्भुवःस्वरितिच' ॥

※ रोग, अकर्मण्यता, सन्देह, अवहेलना, चित्त और शरीर में भारीपन, वैराग्य का न होना, विपरीत देखना, योग की भूमिका को प्राप्त न होना, चित्त का स्थिर न होना।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ओम् की पहली मात्रा अकार है। इसका अर्थ विराट एवं विश्व जीव है। स्थूलशरीर और जाग्रतावस्था के स्वामी जीव का नाम विश्व है। वह विश्वजीव विराट स्वरूप है। क्योंकि जीव के शरीर का नाम पिंड है, और अखिल पिण्डों की समष्टि का नाम ब्रह्माण्ड है। जैसे विभिन्न जाति के अनेक वृक्षों के समुदाय का नाम वन है। वैसे ही चारखानी के पिण्डों और चतुर्दश भुवनों का नाम ब्रह्माण्ड है। ब्रह्माण्ड के स्वामी ईश्वर का नाम विराट है, और पिण्ड के स्वामी जीव का नाम विश्व है। जैसे पिण्ड ब्रह्माण्ड से भिन्न नहीं वैसे ही पिंड का स्वामी विश्व ब्रह्माण्ड के स्वामी विराट से भिन्न नहीं दोनों एक रूप हैं। दोनों की एकता का बोधक मूल मन्त्र में ओङ्कार के आदि में एक अङ्क है। इस प्रकार विश्व की विराट से एकता जानकर व्याप्ति और आदिमत्व हेतु से वैश्वानर और अकार का भी अभेद चिन्तन करे।

'अकारो वै सर्वावाक्'

इस श्रुति के अनुसार समस्त वाणी अकार से व्याप्त है।

"तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूधव सुतेजाः"

इस छान्दोग्य श्रुति के अनुसार सारा संसार वैश्वानर से व्याप्त है। वाच्य वाचक की एकता तो सर्वानुभव सिद्ध है। तीनों में आदिमत्व भी सर्वथा स्पष्ट है। अर्थात् ब्रह्म के पादों में प्रथमपाद विराट है, आत्मा का प्रथमपाद विश्व ओम् का प्रथमपाद अकार इसलिये आदिमत्व (प्राथमिकत्व) तीनों में समान होने के कारण तीनों एक हैं। इस बात को माण्डूक्य उपनिषद् एवं गौड़पादीय कारिका ने स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादन किया है।

'जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राऽऽप्तेरादिमत्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान् कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥ मन्त्र संख्या ९॥

विश्वस्यात्व विवक्षायांमादि सामान्यमुत्कटम्। मात्रा सम्प्रतिपत्तौ स्यादाप्तिसामान्यमेव च ॥ १९ ॥

गुरुदेव ने मूल मन्त्र में ओङ्कार के आदि में एक अङ्क लगाकर एक अद्वितीय मङ्गलमय परब्रह्म का बोधन किया है। वही सर्वशक्तिमान् अपनी अनादिशक्ति के द्वारा जीव ईशादि अनेक रूपों को धारण करता है, जैसे एक महाकाश घट-मठ आदि उपाधि के द्वारा घटाकाश एवं मठाकाश के नाम से विभूषित होता है। महाकाश के दो रूप तभी तक प्रतीत होते हैं जब तक उपाधि भिन्न २ देशों में विद्यमान् है। उपाधियों के एक देशस्थ होने पर उपधेयो में एकता का होना स्वाभाविक है। जैसे घट को मठ में रख दिया जाये तब घट और मठ को एक देश में रहने के कारण आकाश भी एक हो जाता है। वैसे ही पिण्ड और ब्रह्माण्ड का अभेद होने के कारण उनके स्वामी विश्व और विराट भी एक रूप हो जाते हैं। जो पुरुष पूर्वोक्त प्रकार से ओम् की पहली मात्रा अकार का वैश्वानर के साथ अभेद चिंतन करता है। वह सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेता है, और सत्पुरुषों में सम्मानित होता है।

अकार से आगे दूसरी मात्रा उकार है। इसका अर्थ हिरण्यगर्भ और तैजस जीव है, सूक्ष्मशरीर और स्वप्नावस्था के स्वीम जीव का नाम तैजस है, तैजस जीवों के सूक्ष्म शरीरों की समष्टि ही हिरण्य गर्भ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का शरीर है, जैसे—स्थूल उपाधि के कारण विराट और विश्व का परस्पर अभेद है, वैसे ही सूक्ष्म-उपाधि के कारण तैजस और हिरण्यगर्भ भी आपस में अभिन्न हैं, इस प्रकार तैजस को हिरण्यगर्भ से अभिन्न जानकर हिरण्यगर्भ और ओङ्कार की दूसरी मात्रा का अभेद चिन्तन करे—दोनों में अभिन्नता का कारण उत्कृष्टता एवं द्वितीयता (मध्यवर्तिता है) जैसे उकार श्रेष्ठ और मध्यवर्ती है—अर्थात् अकार और मकार के मध्य में जैसे उकार है। ऐसे ही विश्व और प्राज्ञ के मध्य में तैजस है। परब्रह्म का द्वितीय पाद हिरण्यगर्भ तथा आत्मा का दूसरा पाद तैजस है ओङ्कार का द्वितीयपाद उकार है। तीनों में द्वितीयता समान है। द्वितीयत्व और उत्कृष्टत्व ही एकता के परिचायक हैं। जो मनुष्य उकार और तेजोमय हिरण्यगर्भ स्वरूप की एकता के रहस्य को समझ लेता है। वह ज्ञान की परम्परा को उन्नत करता है, शत्रु भी उसे आदर की दृष्टि से देखते हैं और उसकी कुल में कोई भी अपठित नहीं रहता। इसे माण्डूक्य श्रुति एवं गौड़पादीय कारिका ने जिज्ञासु को समझाने की उदारता की है।

स्वप्न स्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति।

ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति नास्याब्रह्मवित् कुलेभवति य एवं वेद ॥ १०

तैजसस्योतविज्ञानमुत्कर्षोद्दश्यते स्फुटम् ।

मात्रासम्प्रतिपतौ स्यादुभयत्वं तथा विधम् ॥२०॥

उकार से आगे ओम् की तीसरी मात्रा मकार है, इसका अर्थ प्राज्ञजीव और मायापति ईश्वर है। कारण शरीर और सुषुप्ति-अवस्था के अभिमानी जीव का नाम प्राज्ञ है। प्राज्ञजीव की उपाधि अविद्या माया स्वरूप है, वही माया ईश्वर की उपाधि है। दो उपाधियों को एक देशस्थ होने के कारण उनके स्वामी प्राज्ञ और ईश्वर में एकता का सम्पादन सरलता से हो जाता है। अर्थात् अविद्या और माया उपाधि को एक स्वरूप होने के कारण अविद्या उपाधिवाला प्राज्ञजीव मायापति ईश्वर स्वरूप है, इस रीति से प्राज्ञ को ईश्वर से अभिन्न जानकर प्राज्ञ का ओङ्कार की तीसरी मात्रा मकार से अभेद चिंतन करे, दोनों की एकता का कारण मान और लय (एकीभाव) है जैसे—व्रीहि धान्यादि किसी प्रमाण के द्वारा तोले जाते हैं, वैसे ही प्रलय और उत्पत्ति के समय प्रवेश एवं निर्गमन के द्वारा प्राज्ञ से विश्व और तैजस मापे जाते हैं। क्योंकि ओम् की समाप्ति पर उसका पुनः प्रयोग करने पर अकार और उकार, मकार में प्रवेश करके उससे फिर निकलते हैं, अथवा जिस प्रकार ओम् का उच्चारण करने पर अकार तथा उकार अन्तिम अक्षर मकार में एकीभूत हो जाते हैं। उसी प्रकार सुषुप्तिकाल में विश्व और तैजस प्राज्ञ में लीन होजाते हैं। इसी समानता से दोनों परस्पर अभिन्न हैं।

ब्रह्म का तीसरा पाद ईश्वर और आत्मा का तीसरा पाद प्राज्ञ और ओङ्कार का तृतीय पाद मकार है। तीनों पादों में तृतीयत्व मानत्व और लयत्व (एकीभावत्व) समान है, जो उपासक ऐसा जानता है वह सम्पूर्ण जगत् को माप लेता है, अर्थात् संसार के यथार्थ स्वरूप को जान लेता है—तथा जगत् का कारण स्वरूप हो जाता है। इसी अर्थ को अथर्ववेदीय माण्डूक्य श्रुति एवं गौड़पादीय कारिका ने सरल शब्दों में व्यक्त किया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा ।
मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥११॥
मकारभावे प्राज्ञस्य मानसामान्यमुत्कटम् ।
मात्रासम्प्रतिपत्तौ तु लयसामान्यमेव च ॥ २१ ॥

माण्डूक्यश्रुति द्वारा ओम् का त्रिवर्णात्मक प्रदर्शन इस गुप्त रहस्य को भी प्रकट करता है, कि यह सम्पूर्ण जगत् तृत्वसंख्या से विभूषित है, कहीं भी दृष्टिपात करें सर्वत्र आपको तृत्व के दर्शन अवश्य होंगे, ओम् ने भी अपने शरीर के मध्य में तृत्व को स्थान दिया है, अर्थात् (ओमस्यादाने) इस सूत्र के द्वारा ओ३म् के मध्य में तृत्व ने आसन जमा ही लिया है। ओम् के वाचक प्रणव और उद्‌गीथ में भी तीन ही संख्या हैं। अनुष्ठानकाल में ओम् के आगे भूः, भुवः,स्वः, इन तीन व्याहृतियों को वैदिक लोग जोड़ते हैं, शान्ति पाठ में भी ओम् के आगे तीन वार शान्ति शब्द का प्रयोग किया है। त्रिविध अग्नि, त्रिविध श्रद्धा, त्रिविधतप, त्रिविध दान, त्रिविध आहार, त्रिशूल, त्रिकाल, त्रिसन्ध्या इत्यादि स्थलों में तृत्वसंख्या विद्यमान है। ध्यानपूर्वक पाठ करने से पता चलता है कि गुरुवाणी में भी तृत्व संख्या वाचक शब्दों की कमी नहीं है। यथा—

बालजुआनी अरु बिरधि फुनि तीनि अवस्था जानि ।
तीने ताप निवारणहारा दुखहन्ता सुखरासि ॥
तीनिदेव प्रतखि तोरेहि करहि किसकी सेउ॥

इत्यादि—अनेक शब्दों में तीन संख्या दिखाई देती है। स्वयं गुप्त रह कर ओम् के वाच्यार्थ ईश्वर ने तृत्व संख्या के द्वारा संसार को किस प्रकार व्याप्त कर रखा है इसे आप सूक्ष्मदृष्टि से देख सकते हैं।

कुछ विद्वानों ने ओम् की व्याख्या इस प्रकार भी की है। 'अक्षराणामकारोऽस्मि' भगवद्‌गीता के आधार पर अकार से ईश्वर, उकार से जीव और मकार से प्रकृति को ग्रहण करते हैं। अकार को ईश्वर का बोधक होने के कारण पाणिनिमुनि ने अष्टाध्यायी में 'अ इ उण' इस माहेश्वर सूत्र का सर्वप्रथम मङ्गलार्थ उल्लेख करके 'अ अ' इस सूत्र के द्वारा ग्रन्थ की समाप्ति की है। ऐसे ही उर्दू, अंग्रेजी लिपि भी अकार से आरम्भ होती है। संस्कृतवर्णमाला में 'अ इ उ ऋ लृ' ये पाञ्च मूलभूत स्वर तथा पाञ्चवर्ग हैं। अन्य सभी वर्ण इन्हीं से निर्मित होते हैं। जैसे, ओम् के आदि में अकार, मध्य में उकार और अन्त में मकार है। वैसे ही स्वरों के आदि में अकार मध्य में उकार और पञ्चमवर्ग के अन्त में मकार है। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं, ऋषियों ने जान बूझकर ऐसा अक्षर क्रम नियत किया है। उन्होंने ओम् के अनुसार ही वर्णमाला को बनाया है।

जीव को परमेश्वर की ओर ले जाने वाली यह एक सूक्ष्मनिधि है। यद्यपि ओम् शब्द प्रधानतया ब्रह्म का बोधक है। इस अर्थ के पोषक अनेक प्रमाण पीछे दिखाये गए हैं। तथापि ओम् जब अकारादि तीनवर्णों में विभक्त होता है। तब और भी अधिक व्यापकभावों का परिचायक हो जाता है। ईश्वर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जिस प्रकार सर्व का आदिकारण और सर्वका आत्मा हैं। सारा संसार उसी से सत्ता स्फुर्ति प्राप्त करता है। सभी पदार्थों में विद्यमान् होने पर भी अज्ञानियों को दिखाई नहीं देता। 'नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः❀ वैसे ही अकार सभी व्यञ्जन अक्षरों में रहने पर भी विना विचार के अज्ञलोगों को दिखाई नहीं देता, ओम् में जो अकार और उकार है, वे दोनों ही स्वरवर्ण हैं स्वरवर्ण के उच्चारण में किसी अन्यवर्ण की सहायता नहीं ली जाती। ईश्वरबोधक अकार और जीवबोधक उकार इन दोनों स्वरवर्णों से यह दिखाया गया है, कि स्वर के समान परमात्मा और जीवात्मा दोनों ही स्वतन्त्र हैं। ईश्वर की स्वतन्त्रता में किसी को अणुमात्र भी सन्देह नहीं, परन्तु कर्म करने में जीव भी स्वाधीन है।

दोनों ही स्वतन्त्र और चेतन भी हैं। प्रकृति जड़ और परतन्त्र है, ईश्वर के विना प्रकृति कुछ नहीं कर सकती। इसी वास्ते प्रकृति-वाचक मकार ओंकार में विद्यमान है। व्यञ्जन मकार स्वरवर्ण से सहायता की आशा रखता है। क्योंकि स्वर के विना व्यञ्जन का उच्चारण करना भी कठिन है। इसलिये मकार से बोधित प्रकृति ईश्वर की सहायता चाहती है। मकार को जब अनुस्वार हो जाता है, तब अनुस्वार अपने स्वभाव के अनुसार वर्ण के सिर पर चढ़ बैठता है। इस दृष्टि से मकार सभी अक्षरों से बलवान् प्रतीत होता है। माया वाचक मकार जैसे प्रबल है, वैसे ही इसलोक में माया भी बहुत प्रबल है। माया सभी जीवों के ज्ञान को आच्छादित करके सबके सिर पर सवार होजाती है गुरुवाणी तथा गीता के वचनों को विचारने से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

'माइआ ऐसी मोहनी भाई जेते जीअ तेते डहकाई'। इनिमाइआ जगदीस गुसाई तुमरेचरन विसारे ! दैवी ह्येषागुणमयी ममभाया दुरत्यया।

यहां पर यह बात भी स्मरणीय है कि ओम् के भीतर ईश्वर और जीव बोधक दोनों ही स्वर वर्ण हैं। मायावाचक मकारमें यह साहस नहीं कि वह किसी प्रकार से उन्हें अपमानित करने की चेष्टा कर सके, किंतु—

'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्'। []

इस भगवदुक्ति के अनुसार प्रकृति विश्वनिर्माण के द्वारा अपने प्रियतम की महिमा को प्रकट करती हुई जीव के कल्याण के लिये अनेक प्रकार के सुखप्रद सुन्दर भोगों का निर्माण करती है। यद्यपि

—कहु कबीर इहु राम की अंसु, तथा ममैवांशो जीवलोके जीवभूतःसनातनः।()

गुरुवाणी एवं गीता के अनुसार जीव परमेश्वर का अंश है, अंश को अपने अंशी के साथ विशेष स्नेह रखना चाहिए था तथापि अविद्या उपाधि के कारण जीव का माया और मायिक पदार्थों की ओर अधिक झुकाव हो रहा है। माया का मोह ही इसे अधिक विपत्तियों में डालता है। तथा—

❀ अपनी योगमाया से छिपा हुआ मैं सभी को दिखाई नहीं देता।

[] मुझ अधिष्ठाता के साकाश से यह प्रकृति सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करती है।

() इस देह में जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि। ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी॥ आढयोऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशोमया। यद्ये दास्यामि मोदिष्ये इत्याज्ञानविमोहितः॥

भगवदुक्त रीति से अविद्या से विमोहित होकर अपने को ही सर्वोपरि बलवान, धनवान, विद्यावान्, बुद्धिमान् समझकर दूसरों का अपमान करने में परमप्रसन्नता का अनुभव करता है यह अविद्या के प्रभाव से जीव को एक प्रकार का भ्रम है। जब तक अविद्या के परदे को दूर करने का उद्योग नहीं करता तब तक अन्धकार में अनेक प्रकार की ठोकरें खाता है। कष्टों से छुटकारा पाने के लिये जब जीव उपासना के द्वारा परमात्मा की समीपता को प्राप्त कर लेता है। तव परमकृपालु परमेश्वर इसे सर्वदा के लिये दुःखों से मुक्त कर देता है। माया अपनी जगमगाहट से जीव को भ्रममें डालकर चिन्ता और अशान्ति की ओर ले जाती है। और ईश्वर जीव को सुख शान्ति एवं कल्याण के सम्पादक शुभकर्मानुष्ठान में प्रवृत करता है। इस रहस्य को समझाने के लिये ही ओङ्कार के मध्य में जीववाचक उकार को स्थान दिया है। जिससे जीव अत्यन्त समीपवर्ती होकर परमेश्वर एवं माया के गुण दोषों को अच्छी प्रकार देख सके ज्ञाननिधि वन्दनीय श्री गुरुअर्जुनदेवजी महाराज ने—

"मिहरवानु साहिबुमिहरवानु साहिबु मेरा मिहरवानु जीअ सगल कउ देइ दानु॥
तू काहे डोलहि प्राणीआ तुध राखेगा सिरजणहारु" ॥
"मिठबोलड़ा जी हरि सजणु सुआमी मेरा ।
हउ संभलि थकी जी ओहु कदे न बोले कउरा॥
कउड़ाबोलि न जाने पूरन भगवाने अउगणु को न चितारे।"
"तुमदाते ठाकुर प्रतिपालक नाइक खसम हमारे॥"

इत्यादि शब्दों द्वारा परमेश्वर की दयालुता मधुरता उदारता पूर्णता आदि सद्गुणों का प्रतिपादन करके विश्वेश्वर की ओर अग्रसर होने का आदेश दिया है। क्योंकि ईश्वर के निरन्तर चिन्तन और मनन से ज्ञान द्वारा जीव भगवान् की समीपता को प्राप्त कर लेता है।

❀ तेषां सतत युक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।

सर्वान्तरयामी परमेश्वर के अनन्त नाम हैं। रुचि के अनुसार हम किसी भी नाम से उनकी उपासना कर सकते हैं, परन्तु ओम् नाम भगवान् को अधिक रुचिकर एवं प्रिय है। क्योंकि यह नाम ईश्वर के वास्तविक स्वरूप और उसकी महिमा को प्रकट करता है।

यही कारण है कि गुरुनानक देवजी महाराज को दीक्षा देते समय अकालपुरुष परमेश्वर ने मूलमन्त्र में ओङ्कार को सर्वप्रथम स्थान देकर उसके महत्व को प्रकट किया है।

❀ निरन्तर ध्यान में लगे हुए तथा प्रेमपूर्वक भजने वाले उपासकों को मैं तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूं जिसके द्वारा वे मेरे को प्राप्त हो जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कठोपनिषद् में यमराज ने नचिकेता को परब्रह्म पुरुषोत्तम परमप्राप्य बतलाकर उसके वाचक ओंकार को उसका स्वरूप बतलाया है। धर्मराज कहते हैं चारवेद विविधछन्दों से जिसका प्रतिपादन करते हैं, सम्पूर्ण तप और साधनों का जो परमलक्ष्य है, जिसे प्राप्त करने की कामना से साधक निष्ठापूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उस पुरुषोत्तम के परमतत्त्व एक अक्षर ओङ्कार को तुम्हें संक्षेप से बतलाता हूं।

"सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं
चरन्ति तत्तेपदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥"

अंग्रेजी के एक विद्वान् ने जपजी की टीका में ओम् की त्रिवर्णात्मकता का खंडन इस लिये किया है कि मूलमन्त्र के आदि में एक अङ्क होने के कारण ओङ्कार एक परमेश्वर का बोधक है, ऐसा लिखना केवल साहसमात्र है, एक अङ्क के बिना केवल ओङ्कार यदि परमेश्वर का बोधक न होता तब पूर्वोक्त बात किसी प्रकार मान्य हो सकती थी। दखनी ओङ्कार में श्री गुरु नानक देव जी ने—

"ओअंकारि ब्रह्मा उतपति। ओअंकारु कीआ जिनिचिति ॥
ओअंकारि सैल जुग भए। ओअंकारि वेद निरमए" ॥

इत्यादि शब्दों द्वारा समस्त सृष्टि की उत्पति ओंकार से दिखाई है। गुरुवाणी के आधार पर यदि ओङ्कार की विश्वात्मकता हम स्वीकार कर लेते हैं। तब तो त्रिवर्णात्मक त्रिकालात्मक, स्वीकार करना और भी सरल है। नाम और नामी के अभेद को स्वीकार करके माण्डूक्योपनिषद के आदि मन्त्र में ओंकार की सर्वात्मकता स्पष्ट शब्दों में व्यक्त की है।

"ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव
यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव"

ओङ्कार का सर्वात्मक होना अपने वाच्यार्थ परमेश्वर की महिमा को प्रकट करना है नादविन्दु उपनिषद् में—

(घोषणी विद्युन्माला पतङ्गी वायुवेगिनी नामधेया ऐन्द्री वैष्णवीं शाङ्करी
महती ध्रुवा मौनी ब्राह्मी)

द्वादशकलात्मक रूप से ओंकार का निरूपण किया है। त्रिवर्णात्मक स्वरूप तो द्वादश की अपेक्षा बहुत ही छोटा है। इसलिए माण्डूक्य श्रुति में प्रदर्शित रीति जिज्ञासु को सरलता से समझाने के लिये बहुत ही उपयुक्त है। प्रश्नोपनिषद में सत्यकाम के यह पूछने पर कि आजीवन ओङ्कार की उपासना करने वाले को किस फल की प्राप्ति होती है। इसके उत्तर में महर्षि पिप्लाद ने ओंकार चिन्तन से विद्वान् को सगुण वा निर्गुणब्रह्म का साक्षात्कार होना बतलाया है।

"तस्मै सहोवाच एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारः
तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आगे के तीनमन्त्रों में महर्षि पिप्लाद ने यह बताने की कृपा की है कि यदि उपासक एकमात्र द्विमात्र व त्रिमात्रायुक्त ओङ्कार का ध्यान करता है। तब उसे विभिन्न लोकों में रहकर अनेक प्रकार के विलक्षण भोगों को भोगने का अवसर प्राप्त होता है।

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते। तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति ❀

यहां पर इस शंका का होना स्वाभाविक है कि ओङ्कार की अकारादिमात्राके विश्व तैजसादि अर्थ कैसे किये गये हैं यद्यपि स्थूल दृष्टि से यह शंका उचित प्रतीत होती है। तथापि वृद्धव्यवहार एक ऐसा प्रबल प्रमाण है। जिसके आधार पर समुचित बात स्वीकार करने में किसी को कोई आपत्ति नहीं होती किसी विस्तृत अर्थ का संक्षिप्त शब्दों में संकेत कर देना वृद्धपुरुषों की शैली है। जैसे महामुनि पाणिनि ने नीचे लिखे शब्दों का तत्तदर्थों में संकेत किया है। उसी संकेत के बल पर चरट् प्रत्यय में भूतपूर्वार्थ, रूपप में प्रशंसार्थ, तमप और इष्ठन् में अतिशयार्थ, मात्रच में प्रमाणार्थ डटमें पूर्णार्थ, अणमें निवास विकारादि अर्थों का व्यवहार होता है "गुरुवाणी का अनुशीलन करने से यह ज्ञात होता है। कि श्रीगुरुअर्जुनदेवजी महाराज ने बहुत शब्दों में तत्तदर्थों का संकेत किया है।

यथा "हरिचन्दउरी पेखि काहे सुखुमानिआ"

हरचन्दौरी शब्द का गन्धर्वनगरी में संकेत है।

"चउदहि चारि कुंट प्रभ आप"

यहां पर चौदह शब्द का चतुर्दशीतिथि में संकेत है। "महला १ महला ५ इत्यादि स्थलों में एक और पाञ्च, संख्याके वाचक नहीं किन्तु श्रीगुरुनानकदेव श्रीगुरुअर्जुनदेव के बोधन के लिए संकेत हैं। ऐसे ही ओंकार की अकारादिमात्रा का संकेत के बलपर पूर्वोक्त अर्थ करने पर किसो को आपत्ति नहीं होनी चाहिये। परमार्थ और अपरमार्थभेद से आत्मा के दो रूप माने गये हैं। बीजांकुरस्थानीय त्रिपादात्मक अपरमार्थरूप रज्जुमें सर्पकेसमान अविद्याजनित है। और दूसरा रज्जुस्थानीय अबीजात्मक परमार्थ तुरीयरूप है। यह तुरीयात्मा न विश्व, न तैजस, न जाग्रत और स्वप्न के बीच की अवस्था वाला है। और न ही सुषुप्ति अवस्थावाला है। न एक साथ सब विषयों का ज्ञाता है। स्वयं प्रकाश चैतन्य और अदृश्य है, अदृष्ट होने के कारण ही अव्यवहार्य है, कर्मेन्द्रियोंसे अग्राह्य है लिङ्गसे रहित है। अर्थात् इसका अनुमान नहीं

❀ उपासक यदि एक मात्रा से युक्त ओङ्कार का ध्यान करे तो वह उस उपासना से अपने ध्येय की ओर प्रेरित हुआ शीघ्र ही पृथ्वी में उत्पन्न हो जाता है उसे ऋग्वेद की ऋचाएँ मनुष्य शरीर प्राप्त करा देती हैं वहां वह उपासक तप, ब्रह्मचर्य तथा श्रद्धा से युक्तहोकर महिमा का अनुभव करता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

किया जा सकता इसी से वह अचिन्त्य है। अतएव अकथनीय है एकआत्मप्रत्ययसार है प्रपञ्चोपशम है, अविकारी है, भेदरूप विकल्प से रहित है, इसलिये शिव है। पूर्वोक्त तीनपादों से विलक्षण है, अतएव तुरीय है-वही आत्मा है, वही जाननेयोग्य है-जिस प्रकार रज्जु अपने में प्रतीत होनेवाले सर्प दण्ड भूछिद्रादि से सर्वथा भिन्न है। वैसे ही आत्मा अपने में अध्यस्त जाग्रत-स्वप्नादि अवस्थाओं से सर्वथा भिन्न है-वही ज्ञातव्य है-इस तुरीयात्मा की परब्रह्म के साथ सर्वदा अभिन्नता है तुरीयात्मा सर्वप्रकार के दुःखों की निवृत्ति में समर्थ है। अद्वैतरूप देव व्यापक है इसी भाव को माण्डूक्योपनिषद् के आगमप्रकरण में निम्नलिखितमन्त्र और कारिका द्वारा स्पष्टशब्दों में प्रतिपादन किया है:—

नान्तः प्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्। अदृष्टम-व्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यम व्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं
शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यते स आत्मा स विज्ञेयः

"निवृते सर्वदुखानामीशानः प्रभुरव्ययः। अद्वैतः सर्व भावानां देवस्तुर्यो विभु स्मृतः॥

इस प्रकार अद्वितीय स्वरूप होने के कारण सामान्य विशेषभाव का अभाव होने से उसमें गो आदि के समान जातिमत्त्व भी नहीं है और न अविक्रियहोनेकेकारण उसमें पाचक आदि के समान क्रियावत्त्व तथा निर्गुणहोने के कारण नीलादि के सदृश गुणवत्त्व भी नहीं है। इस तुरीयात्मा की परमात्मा के चतुर्थपाद ईश्वरसाक्षी से अभिन्नता है। अहोरात्र वन्दनीय श्रीगुरुअर्जुनदेवजी ने तथा शूरवीर शिरोमणि श्रीगुरुगोविन्दसिंहजी ने इसी परमतत्त्व का वर्णन किया है।

तीनि बिआपहि जगत कउ तुरीआ पावै कोइ।

"चउदहि चारिकुंट प्रभ आप। सगल भवन पूरनप्रताप॥

चक्र चिहन अर वरन जाति अर पात नहन जह।
रूप रङ्ग अर रेख भेख कोउ कह न सकत किह॥

"अरूप है अनूप है अजू है अभू है अलेख है अनाम है अकाम है॥ इत्यादि॥

जैसे आत्मा के दो रूप बतलाये गये हैं वैसे ही परमार्थ और अपरमार्थ भेद से ओङ्कार के भी दो स्वरूप हैं। शुक्ति में रज्जत के समान त्रैमात्रिक अवास्तविक स्वरूप है और तीनमात्राओं में व्यापक अधिष्ठान् चैतन्य पारमार्थिक स्वरूप है। इसी वास्तविक रूप का श्रुति ने अमात्रनाम से प्रतिपादन किया है। मात्राओं का विभाग न होने के कारण अमात्र ओङ्कार केवल आत्मा ही है। अभिधान रूप वाणी अभिधेय रूप मन के क्षय हो जाने के कारण वह अव्यवहार्य है। प्रपञ्चोशाम एवं मङ्गलमय अद्वैत स्वरूप है। इस प्रकार उपासकद्वारा प्रयोग किया हुआ तीनमात्रावाला ओङ्कार तीनपादवाला आत्मा ही है। जो इस प्रकार उपासना करता है। वह स्वतः ही अपने परमार्थ स्वरूप में प्रविष्ट हो जाता है। परमार्थदर्शी ब्रह्मवेता बीजभाव को दग्धकरके आत्मा में प्रवेश करता है। इसलिये तत्त्वदर्शी का पुनर्जन्म नहीं होता क्योंकि तुरीयात्मा अबीजात्मक है। माण्डूक्य के निम्नलिखित मन्त्र से यही भाव व्यक्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपंचोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोंकार आत्मैव संविशत्यात्मनात्मानं य एवं वेद ॥ १२ ॥

इस प्रकार दो स्वरूपवाले ओङ्कार का दो स्वरूपवाले आत्मा के साथ अभेद चिन्तन करे । और स्थूल-उपाधिवाले विराटरूप विश्वजीव को अकाररूप, एवं सूक्ष्म-उपाधिहिरण्यगर्भरूप, तैजस को उकार स्वरूप, तथा कारण उपाधिवाले ईश्वररूप, प्राज्ञ को मकारस्वरूप जाने, एवं तीनपादों में अनुगत परमार्थ तुरीय को ओङ्कार की तीनमात्राओं में व्यापक-अमात्र परमार्थस्वरूप से अभिन्न समझे इस रीति से पाद और मात्राओं में एकता जानकर विश्वस्वरूप अकार को तैजसरूप उकार में और तैजस रूप उकार को प्राज्ञस्वरूप मकार में प्राज्ञरूप मकारको ओङ्कार के परमार्थस्वरूप अमात्र में लीन करे क्योंकि ओङ्कार के परमार्थस्वरूप का तुरीय से अभेद है । वह तुरीय ब्रह्मस्वरूप है । और शुद्धब्रह्म में ईश्वर और प्राज्ञ दोनों ही कल्पित हैं । जो पदार्थ जिसमें कल्पित है वह उसी का स्वरूप होता है । इस लिए प्राज्ञरूप मकार का अमात्र में लीन होना उचित ही है । इस प्रकार अद्वय असंसारी नित्य शुद्ध बुद्ध ब्रह्मरूप ओङ्कार के परमार्थस्वरूप का अभेदचिन्तन ज्ञान का उपपादक है । शुक्ति का ज्ञान होना जिस प्रकार उसमें आरोपितचान्दी की तृष्णा का विनाशक है उसीप्रकार तुरीय हमारा-आत्मा है । ऐसा यथार्थ ज्ञान भी अनात्मसम्बन्धिनी तृष्णा का निवर्तक है । तुरीय को अपना अत्मा जान लेने पर अविद्या एवं तृष्णादि दोषों की सम्भावना नहीं रहती, तुरीयको आत्मरूप से न जानने का कोई कारण भी नहीं है । क्योंकि—

"अयमात्मा ब्रह्म" "यत्साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म"

तथा

"सभना जीआ का इकु दाता सो मैं विसरि न जाई"

"ततु निरञ्जनु जोति सबाई सोहं भेदु न कोई जीउ"

इत्यादि समस्त उपनिषद एवं गुरुवाणी का पर्यवसान इसी अर्थ में हुआ है तुरीयात्मा का अमात्र ओङ्कार के साथ अभेद है । और वह अमात्र ओङ्कार ब्रह्मस्वरूप है । ओङ्कार में समाहित रहने वाले पुरुष को कहीं भी भय नहीं होता । ओङ्कार का उच्चारण करते हुए उपासक का यदि शरीर पात भी हो जाये तब भी वह परमगति को प्राप्त होता है । इस तत्त्व को गौड़पादीयकारिका एवं भगवद्गीता में निरूपण किया है ।❀

❀ "युञ्जीत प्रणवे चेतः प्रणवो ब्रह्म निर्भयम् ।
"प्रणवे नित्ययुक्तस्य न भयं विद्यते क्वचित् ॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ओङ्कार के आदि में एक शब्द लिखने का क्या प्रयोजन है।

इस शङ्का के उत्तर में कुछ लिखना आवश्यक प्रतीत होता है। मूलमन्त्र में एक शब्द एव और अद्वितीयपद का बोधक है।

क्योंकि 'एकमेवाद्वितीयंब्रह्म' इस श्रुति में एक तथा एव और अद्वितीय ये तीनों शब्द एक ही साथ पड़े हुए हैं। भेदवादियों के मत को खण्डन करने के लिये गुरुवाणी तथा वेद ने परमेश्वर के स्वरूप को सजातीय, विजातीय, स्वगतःभेद से रहित बताया है।

सावयव पदार्थ में स्वगत भेद होता है। परमेश्वर निरावयव और एकाकी है। इसलिए स्वगत भेद की कल्पना ईश्वर में नहीं हो सकती। इसी बात को ओङ्कार के आदि में एक शब्द सिद्ध करता है। श्री गुरुनानकदेवजी ने माझ राग की वार में—

न देव दानवा नरा। न सिध साधिका धरा॥
'असति एक दिगर कुई। एक तूई एक तूई'॥

इत्यादि शब्दों में एक तूई एक तूई सात बार कह कर स्वगतभेद का खण्डन किया है। एव शब्द सजातीयभेद का और अद्वितीय शब्द विजातीयभेद का खण्डन करता है।

कुछ विद्वानों का विचार है कि ॐ मन्त्र जपने का अधिकार तीनवर्णों के पुरुषों को है। परन्तु मूलमन्त्र सभी वर्णों के स्त्री पुरुषों को जपने का समान अधिकार है। इसे सूचित करने के लिये ओङ्कार के आदि में एक शब्द का निर्देश है। ईश्वर एक और अद्वितीय है। उसकी उपासना करने का मानवमात्र को अधिकार है। इत्यादि अनेक भाव एक शब्द के द्वारा व्यक्त होते हैं।❀

मूलमन्त्र में ओङ्कार का वाच्यार्थ परमेश्वर विशेष्य है और वह एक अद्वितीय हैं। इस बात को भी ओङ्कार के आदि में एक अङ्क स्पष्ट करता है। सतिनामु से लेकर गुरुप्रसादि पर्यन्त शेष सभी पद परमात्मा के विशेषण हैं। व्यावर्तक को विशेषण और व्यावर्त्य को विशेष्य कहते हैं। अर्थात् किसी से पृथक करनेवाली वस्तु को विशेषण और पृथक होने वाली वस्तु को विशेष्य कहा जाता है। विशेषण का दूसरा नाम लक्षण है। स्वरूप तथा तटस्थ भेद से लक्षण दो प्रकार का होता है। जिस वस्तु का ज्ञान कराना है, उसका स्वरूप होकर उसे सर्व से पृथक करके जो बतलाए, उसका नाम स्वरूप लक्षण है। जो वस्तु एक ओर स्थित होकर बताने योग्य वस्तु को सभी से अलग करके समझाये उसका नाम तटस्थ लक्षण है। मूलमन्त्र में सतिनामु पद से स्वरूप लक्षण तथा करता पुरखुपद से तटस्थ लक्षणं समझाया है।

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" "सति सुहाणु सदा मनिचाउ"

इत्यादि गुरुवाणी एवं वेद में सत्य पद चित्त एवं आनंद के साथ देखने में आता है। इसलिए मूल मन्त्र में सतिनामु पद चित्त और आनन्द का उपलक्षक है। सतिनामु पद में सत्यादीनि नामानि स्वरूप बोधकानि यस्याऽसौसतिनामु बहुव्रीहि समास करने से अर्थ इस प्रकार होगा।

❀ यद्यपि ओम् और ओङ्कार के अर्थ में कोई अन्तर नहीं दोनों ही परमेश्वर के बोधक हैं। तथापि वृद्धव्यवहार के बल पर मूलमन्त्र में ओङ्कार ही पढ़ना न्यायसङ्गत प्रतीत होता है। मूलमन्त्र के अतिरिक्त गुरुवाणी में जैसा लिखा है वैसा ही पढ़ना चाहिये। इस विषय में किसी भी विचारशील को आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सत्य चित्त और आनन्द, नाम कहिये स्वरूप के बोधक पद हैं जिस एक परमात्मा के उस ईश्वर का नाम यहां पर सतिनामु है। इसी अर्थ में सतिनामु पद परमेश्वर का विशेषण है। सत्यस्य नाम सतिनामु षष्ठी एवं सत्यं चासौ नाम सतिनामु कर्मधारय समास करने से सतिनामु पद ईश्वर का विशेषण नहीं हो सकेगा। जहां पर विशेष्य विशेषण वाचक पद एक अर्थ को कहते हैं वहां पर उनका परस्पर विशेष्य विशेषण भाव होता है। भिन्नार्थ के बोधक होने पर नहीं होता। सतिनामु पदमें यदि बहुव्रीहि किया जाये तब सतिनामु ईश्वर का विशेषण होकर उसी अर्थ का प्रतिपादक होता है। षष्ठीतत्पुरुष तथा कर्मधारय में सतिनामु पद एक परमात्मा को नहीं कहता क्योंकि ओङ्कार के आदि में लिखे एक का अर्थ एक परमात्मा है और सतिनामु का अर्थ सत्यका नाम अथवा सच्चा नाम ऐसा अर्थ होताहै। नाम वाणीरूप है और परमात्मा मन एवं वाणी से अतीत है। इसलिए भिन्नार्थ के बोधक होने से

इनका परस्पर विशेष्य विशेषणभाव नहीं बन सकता। यदि नामपद का कर्त्ता के साथ सम्बन्ध करदिया जाये तब सत्य को ईश्वर का विशेषण कह सकते हैं। सत्य को विशेषण करने से अर्थ इस प्रकार होगा। वह परमात्मा सत्य एवं चित्त तथा आनन्द स्वरूप है। नामपद कर्त्ता के साथ मिलकर रूप का भी बोधक होता है। नामपद से सम्पूर्णवाचक को और रूपपदसे निखिलवाच्यार्थ को ग्रहण करने से नामकर्त्ता का अर्थ इस प्रकार होगा, वह एक परमात्मा वाच्य वाचकरूप संसार की उत्पत्ति पालना संहार का कर्त्ता कहिये निमित्त कारण है। और मकड़ी के समान उपादान कारण है। अर्थात्—अभिन्न—निमित्तोपादानकारण है। भाव यह है, कृत्रिम और अकृत्रिम भेदसे नामदो प्रकारका होता है। मुर तथा मधु दैत्यको मारने से मुरारि और मधुसूदन कृत्रिमनाम हैं, अर्थात् किसी क्रियाके करनेसे जोनाम पड़ताहै उसे कृत्रिमनाम कहतेहैं। गुरुवाणीमें कृत्रिमनाम भी आये हैं।

यथा—'मधुसूदन दामोदर सुआमी रिखिकेस गोवरधनधारी मुरलीमनोहर हरिरङ्गा'

ए "गोबिन्दे मुकन्दे उदारे अपारे" इत्यादि।

स्वरूपलक्षण के बोधक नामको अकृत्रिमनाम कहतेहैं, अर्थात् किसी क्रियाको करने के बिना जो वास्तविक स्वरूपभूत नाम है उसे अकृत्रिमनाम कहते हैं। जैसे सत्य चित्त आनन्द—आदि नामहैं। पूज्य गुरुअर्जुनदेवजी ने "सतिनामु इस अकृत्रिम नाम को सर्व से श्रेष्ठ माना है।

"कृत्रिमनाम कथे तेरे जिह्वा, सतिनामु तेरा परापूरबला"

अकृत्रिमनाम वस्तुके परमार्थस्वरूप को कहता है और कृत्रिमनाम वस्तु के बनावटी स्वरूप को। कृत्रिमनामों से सर्वसाधारण को शीघ्र बोधहोता है। और स्वरूपबोधक अकृत्रिमनामों से सूक्ष्म बुद्धि वाले जिज्ञासुओं को शीघ्र बोधहोता है। मन्दमति लोगोंको सत्सङ्गति एवं विचार करने से धीरे २ बोध होता है। कृत्रिमसरलमार्ग है और अकृत्रिम कठिन, कुछ लोग सरल मार्ग छोड़कर कठिन मार्ग से अपने उद्देश्य की पूर्तिकरने में गौरवसमझते हैं जैसे नैयायिक किसी वस्तुको प्रत्यक्ष देखकर भी उसे अनुमानसे सिद्धकरनेकीचेष्टा करते हैं इसलिये परम दयालु परमेश्वरने लोगों की विभिन्नरुचि को देखकर स्व स्वरूप वस्तुको बतानेकेलिये स्वरूप एवं तटस्थलक्षण बोधक सतिनामु तथा करतापुरखु का प्रयोग किया है। इस प्रकार मूलमन्त्रमें स्वरूपबोधक एवं तटस्थलक्षणबोधक शब्दोंको सुनकर श्रोताको

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ऐसा ज्ञान होताहै जो सत्यरूप तथा चित्तरूप एवं आनन्दरूप परमेश्वर है। तथा अखिल संसार की उत्पति में निमित्तकारणऔर उपादानकारणहै। सत्य चित्त आनन्द यह उसका परमार्थस्वरूपहै। उत्पति पालना संहार की निमित्तता और उपादानता उसके कृत्रिम (बनावटी) स्वरूप में है। ईश्वर में कर्तृत्व अर्थात् निखिल कार्यों की उत्पति पालना और संहार की कारणता ज्ञानरूप है। जिस ज्ञानसे परमेश्वर सम्पूर्णकार्यों को बनाता है। वह ज्ञान परमेश्वर का स्वरूप भूतज्ञान नहीं किन्तु माया की वृत्तिरूप ज्ञान है।

"एकोऽहं बहुस्याम्" अर्थात् एकाकी मैं अनेकरूप होजाऊँ यह उस ज्ञान का आकार है।

यहज्ञान परमेश्वरमें तबतक बना रहता है जब तक संसार है। नैयायिकलोग इसज्ञानको नित्यमानते हैं। इसी ज्ञानसे परमेश्वर सर्वज्ञ और सम्पूर्णविद्याओं का ज्ञाता है। इस ज्ञानकी उत्पत्ति में परमेश्वर के साथ मायाका अनादि सम्बन्ध ही कारणहै। आगे चलकर यहीज्ञान सर्वकी उत्पत्तिमें कारण है। सर्वकार्यों की उत्पत्ति से पहिले ईश्वर में एक से अनेक होनेकी इच्छा उत्पन्न होतीहै। इच्छासे आगे त्रिधा अहङ्कार और पञ्चतन्मात्रादि द्वारा निखिलसंसारकी उत्पति होती है। संसार की रचनासे ही परमेश्वर जगतका कर्ता माना गया है। परमेश्वरमें कर्तृत्व मायाकी वृत्तिरूप और उपादानत्व कार्योंके साथ अपनी अभिन्नतारूप है। अथवा अपनीमायाकी शक्ति से एकाकारका अनेकाकार होना रूपहै। जैसे निद्राके बलसे एकही स्वप्नद्रष्टापुरुष हाथी, सिंह, नदी, समुद्रादि अनेककार्यों के आकारको प्राप्त हो जाता है। कार्यों के अनेकाकार को प्राप्तहोकर भी ईश्वर अपने वास्तवस्वरूप को नहीं छोड़ता। जैसे दूध अपने स्वरूप को छोड़कर दहीके आकारको धारणकरलेता है। किन्तु ईश्वर अपने परमार्थस्वरूप को छोड़े बिनाही नानाकार्योंके आकार धारण करताहै। जैसे शुक्ति और रज्जु अपने स्वरूपको त्यागे बिना ही भ्रान्तपुरुषकी दृष्टिमें रजत और सर्पके आकारको धारणकरलेतेहैं। वैसे परमेश्वरभी अपने परमार्थ स्वरूपको त्यागे बिना ही जगत्के आकार को प्राप्त होजाता है, यही उसमें उपादानत्व है। यह उपादानत्व ईश्वरमें मायाके सम्बन्ध से होताहै। दूधके समान वास्तवरूप से बदलकर कार्योंके आकारको ग्रहणकरना रूप उपादानत्व माया में है। शुक्ति रज्जुके समान अवास्तवरूपसे बदलके कार्योंके आकारको प्राप्तहोना रूपउपादानत्व चेतन में है। इस प्रकार माया और परमेश्वर दोनों कार्योंके उपादानहैं। परमेश्वरमें विवर्त उपादानता और मायामें परिणामि उपादानताहै। अतात्त्विकअन्यथा भाव को विवर्त और तात्त्विकअन्यथाभावको परिणाम कहतेहैं। ईश्वर जगत्कानिमित्त और उपादानकारणहै। माया केवल उपादानकारण है। इसभावको श्रीगुरुजीने अनेकशब्दों में व्यक्तकिया है।

"अपनी माइआ आपि पसारी आपहि देखनहारा—
नानारूपु धरे बहुरङ्गी सभते रहे निआरा"

"निरङ्कारि आकारु उपाइआ—माइआ मोहु हुकमि बणाइआ"

असम्भव को सम्भव कर दिखाने का नाम माया है। जैसे मदारी अपनी माया से नानापक्षी बनाकर दिखाताहै वैसे ही निराकारमें साकारता एक में अनेकता आदि असम्भव कार्योंको दिखानेवाली अपनी मायाशक्ति परमात्माने मदारी की मायाकेसमान "आप पसारी" एक से अनेक होने की इच्छा से लेकर स्थूलभूत भौतिक सम्पूर्ण सृष्टिकी रचनाकी है। और आपही अपनीरचनाको देखने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वाला है। तथा माया के साथ मिलकर आप ही देव दानव गण गन्धर्व आदि "नाना रूप धरे" अनेक प्रकार के रूपों को धारण करके "बहुरङ्गी" बहुत प्रकारों वाला हो रहा है। वास्तव से सभी को ग्रहण करके भी स्वरूप से न बदलने के कारण, आप परमात्मा सर्व से पृथक रहता हैं। इस प्रकार पूर्वोक्त वचनों से प्रतिपादित माया की उपादानता और माया के सम्बन्ध से ईश्वर में जगतकी निमितता और उपादानकारणता को एककाल में 'गंगायां मीनघोषौ' इस वाक्य के समान मूलमन्त्र में "करतापुरखु" पद बोधनकरता है।

अथवा "निरङ्कारि आकारु उपाइआ"

"पहिले पुरीये पुंडरक वना तांचे हंसा सगले जना"

इत्यादि वचनों से निराकर में जगत की कारणता प्रतिपादन की है। और मूलमन्त्र में पुरुषपद का अर्थ भी पूर्ण हैं। इसलिये पुरुषपद उपादान कारण का वाचक है। अब "सतिनामु-करतापुरखु" इसवाक्यका अर्थ इसप्रकारहै। जिस पूर्णपुरुष परमात्माके सत्यादि नाम स्वरूपके बोधक हैं। वही परमेश्वर जगत की उत्पति पालनाका करता अर्थात् निमितकारण और पुरुखु कहिये उपादानकारण है। उपादानकारण के साथ कार्यका अभेदहोता है। इसलिये निखिल प्रपञ्च की ईश्वरके साथ अभिन्नताहै। इसे गुरुदेवजी के वचनों से भी हम निश्चय करते हैं।

"एहु विसु संसारु तुम देखदे एहु हरिका रुपु है हरि रुपु नदरी आइआ"

"वनितनि परबतिई पारब्रह्म" इत्यादि—यदि ईश्वर उपादानकारण न होता तब जगत् को हरिरूप और वन तृण को पारब्रह्म कहना नहीं बनसकता। परन्तु श्रीगुरुदेवजी ने जगत को ईश्वररूप प्रतिपादन कियाहै, इसलिये परमात्मा जगत्का जैसे निमित्तकारणहै। वैसेउपादानकारणभीहै।

'सतिनामु' पाठ से ब्रह्म का स्वरूप लक्षण और 'करतापुरुखु' पाठ से ब्रह्मका तटस्थ लक्षण समझना चाहिये। तटस्थलक्षण के बोधकपदों का भी स्वरूपबोधक पदों से प्रतिपादित शुद्धसच्चिदानन्द ब्रह्मके बोधनमें ही तात्पर्यहै। उत्पति स्थिति प्रलयके कहनेमें तात्पर्यनहीं, क्योंकि चिन्हों का जिसको समझानेके लिए प्रयोग किया जाता है। उसीके समझानेमें उनका तात्पर्यहोता है। अपने आपको बोधनकरानेमें उन्होंका तात्पर्य नहींहोता। इसलिए उत्पतिके बोधक करतापुरुखु पदका भी एकपरमेश्वरके बोधन में ही तात्पर्यहै। "सतिनामु" समस्तपदहै, यहां पर बहुव्रीहि समास अधिक उपयोगी है। अस धातु से शतृ प्रत्यय से सत् शब्द निष्पन्न होता है।

"सतिनामु प्रभुका सुखदाई" "सति सति सतिप्रभु सुआमी"

इत्यादि वचनोंके अनुसार "सतिनामु" परमात्मा के परमार्थस्वरूपका बोधक नाम है। जो वस्तु संसार रचनासे प्रथम और उत्पतिकाल एवं विनाशकाल में सर्वदा अविकलभाव से बनी रहतीहै। अथात् जिसका कदापि विनाश नहींहोता। उस परब्रह्म परमेश्वरको सतपद बोधनकरताहै। जपजी के आदिमें श्रीगुरुदेव ने

आदि "सचु जुगादि सचु है भी सचु नानक होसी भी सचु"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस श्लोक के द्वारा पूर्वोक्तभाव ही-व्यक्तकिया है। मानवजीवन में सत्यवस्तु ही अनुष्ठेय और ज्ञेय है।

"सतिस्वरुपु रिदै जिनि मानिआ करन करावन तिनि मुलु पछानिआ"

नामी के समान नाममें भी महत्व है। यद्यपि नाम और रूप अनित्य हैं, तथापि सत्य परमात्मा के अतिरिक्त अन्यपदार्थों में यह नियम लागु होता है। अपने नामरूप अपनेमें कल्पित नहीं होते।

जैसे रजत के नाम रूप शुक्ति में कल्पित हैं अपने में नहीं। वैसे सत्यके नाम रूप को कल्पित मानने पर सत्य के नाम रूप की कल्पना का भी कोई और अधिष्ठास कहना होगा। परन्तु ब्रह्मवाद में माया के विना और पदार्थ माना नहीं। और माया स्वयं ही मिथ्या है। इसलिए नामरूप की कल्पना का अधिष्ठान नहीं बन सकती और अपने में अपनी कल्पना देखी नहीं जाती। इसलिये परमात्माका सच्चिदानन्द रूप और सत्य आदि नाम दोनों ही सच्चे हैं। नामीके समान नामको भी शक्तिशाली मान कर गुरुदेवजी आज्ञा करते हैं।

"जपि मन सतिनामु सदा सतिनामु। हलति पलति मुख ऊजल होई है नित
धिआईऐ हरि पुरखु निरंजना"

इत्यादि—"श्रद्धावान् प्रेमीको आनन्दमय एवं सुखप्रद सत्य सर्वदा उपादेय है। दुःखप्रद असत्य प्रतिदिन उपेक्षणीय है। इसीभाव से ऋषियों ने सदवस्तु की ओर अग्रसर होने के लिए प्रार्थना की है।

"असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय"

जिज्ञासु की सत्य में जब पूर्णरूप से निष्ठा होजाती है। तो उसके सभी व्यवहारों में सत्य की प्रतीति होने लगती है। प्रसन्न होकर जिसे वह धर्म लाभ का आशीर्वाद देता है। वह धर्मात्मा बन जाता है, क्रुद्ध होकर जिसे दुःखी होने का शाप देता है। वह दुःखका भागी होता है। क्योंकि उसकी जिह्वा में शक्तिशाली सत्यस्वरूप ईश्वर स्वयं निवास करता है।

"प्रभजी बसहि साध की रसना"

इस वचन के द्वारा गुरुदेवजी ने इसी भाव को प्रकट किया है। अर्थात् सत्य की साधनासे वाणीमें ऐसी बिलक्षणशक्ति उत्पन्न हो जाती है। कि साधक जिसे स्वाभाविक जो कुछ भी कहता है। वह यथार्थ हो जाता है।

"सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वं" योगसूत्र

इस सूत्र के द्वारा महामुनि पतञ्जलि ने सत्यनिष्ठ के प्रभाव को योगदर्शन में दिखाया है। सत्य की महिमा को ध्यान में रखते हुये ही गुरुदेवजीने प्रत्येक व्यवहार में सत्यता लाने का उपदेश दिया है।

"कर मन मेरे सति बिउहार"

"पारब्रह्मु जिनि सचु करि जाता—नानक सो जनु सचि समाता"

इस वचन से यह सिद्ध होता है कि सत्यकी साधना से साधकको सत्यस्वरूप परमात्मा की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अवश्य प्राप्ति होती है । इसलिये प्रश्नोपनिषद् में महामुनि पिप्पलाद् के पास भारद्वाज के पुत्र सुकेशामुनिने अपने मान अपमानको ध्यान में न रखते हुए कौशल देशीय राजकुमार हिरण्यनाभ के प्रश्न को यथार्थ कहकर सत्यकेप्रति अपूर्वनिष्ठा व्यक्त कीहै ।

"समूलो वा एषपरिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तस्मान्नार्हाम्यनृतंवक्तुम्"

सत्यनाम का उपासक और प्रचारक वन्दनीय और स्मरणीय है । इसलिये भाई गुरुदासने सत्यनाम के महान् प्रचारक सत्यवादी श्रीगुरुनानकदेवजी के चरणों में कितने सरल शब्दों के द्वारा अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पितकीहै ।

"नमस्कार गुरुदेव को सतिनाम जिनमन्त्रजपाया"

कर्ता इति परमेश्वर सच्चित् आनन्द स्वरूप है, यह बात सतिनामु शब्द के द्वारा दिखाई गईहै । अब ईश्वरको सर्वज्ञ एवम् सर्वशक्तिमान् बतानेके लिये गुरुमन्त्र में कर्ता शब्द का प्रयोग किया गयाहै । स्थूल सूक्ष्म जड़ चेतनात्मक सम्पूर्णजगत् के भेदों एवम् मानसिकभावोंको जो अच्छी प्रकारजानताहै उसे सर्वज्ञकहतेहैं । ईश्वर की सर्वज्ञताको श्रीगुरुगोविन्दसिंहजीने इसप्रकार व्यक्तकियाहै ।

"घटि घटि के अंतर की जानत । भले बुरे की पीर पछानत"

स्थावर जङ्गमात्मक स्थूल सूक्ष्मजगतकी उत्पत्ति पालना करनेवालेको सर्वशक्तिमान् कहते हैं । जैसे सृष्टिकी उत्पत्ति ईश्वरकेबिना नहींहो सकती । वैसे रक्षा और संहारभी ईश्वरके अतिरिक्त अन्यव्यक्तिसे नहींहोसकता । गुरुदेवने इसबातको सरल शब्दोंमें व्यक्तकिया है ।

"हरन भरन जाका नेत्र फोरू तिसका मन्त्र न जानै होरू"

चराचर जगत्को पहले उत्पन्नकरना फिर उत्पन्न प्राणियोंकी रक्षाकेलिये, नानाप्रकारके उपभोग्य पदार्थोंका निर्माण करना, भविष्यमें उनकी उन्नतिकेलिये अनेकप्रकारके साधनोंको उपस्थितकरना, अन्तमें इसजगतजालको अपनेमेंलीनकरना, अर्थात् जगतकी उत्पति स्थिति और लय इनतीनकार्योंको करते हुये इसे सुचारु रूपसे चलानेके लिये, जैसे सर्वशक्तिमान् होना आवश्यक है । वैसे ही प्राणियोंको शुभाशुभ कर्मोंका फलदेने केलिये सर्वज्ञहोना भी परमावश्यक है ।

ईश्वर इस दृश्यमान जगतका उत्पादक एवम् पोषक तथा संहारक है । इसबात को गुरुमन्त्र में कर्ताशब्द बतारहाहै ।

तैतिरीयउपनिषद् में वरुणने अपनेपुत्र भृगुके प्रति ऐसाही उपदेश किया है ।

जिसपरमात्मासे सम्पूर्णसृष्टि उत्पन्नहोती है और उत्पन्नहोकर जिससे जीवित होती है । और मरकर जिसमें लीनहोतीहै । उसके जाननेकी इच्छाकर, वही सर्वशक्तिमान परमेश्वर है ।

"यतो वै इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्ति अभिसंविशन्ति, तद् विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्रुतिकेभावको श्रीवेदव्यासजीने वेदान्तदर्शनमें "जन्माद्यस्य यतः" इससूत्रकेद्वाराप्रकट किया है। सूत्रके भाष्यमें श्रीशङ्कराचार्यजीने लिखा है। इसजगत्‌का जन्म स्थिति और नाश जिस सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् से होताहै, वही ईश्वर है। भगवद्‌गीता में भगवान् श्रीकृष्णजीनेभी ऐसा ही भावप्रकटकिया है।

❀"गतिर्भर्ता प्रभु साक्षी निवासः शरणं सुहृत्"

"प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्"

श्रीगुरुगोविन्दसिंहजी ने परमेश्वरके स्वरूपको इस प्रकार व्यक्त किया है।

"नमो सर्व सोखं, नमो सर्व पोखं, नमो सर्व कर्ता, नमो सर्व हर्ता"

गुरुवाणीमें अन्य गुरुओंनेभी ईश्वरको स्वतन्त्रकर्ता एवम् नियन्ताके रूपमें स्वीकार किया है।

"तूँ करता सचिआरु मैडा सांई। जो तउ भावै सोई थीसी"

तथा "तूँ करता करण मै नाही जा हउ करी न होई"

करोति इति कर्ता इस व्युत्पति के अनुसार कृधातुसे तृच प्रत्यय करनेपर कर्ता शब्द सिद्ध होताहै। प्रयोज्य एवम् प्रयोजकादि कर्ता के अनेकभेद हैं। परन्तु प्रत्येकक्रियामें स्वतन्त्र होकर अपनीइच्छाके अनुसार जो कार्य करे वही वास्तव में कर्ता कहाजाताहै।

स्वतन्त्र स्वतन्त्र एक ईश्वर हीहै। जो सर्वथा स्वाधीन होकर, अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करता है। यद्यपि चक्रवर्ती राजा में स्वाधीनतादि बहुतसी बातेंसम्भव हैं। तथापि किसीकार्य को करने की अतिशयस्वतन्त्रता एवम् आलौकिक सामर्थ्य ईश्वरके अतिरिक्त अन्य किसी प्राणी में कदापिसम्भव नहीं। वन्दनीय श्रीगुरुअर्जुनदेवजीने ईश्वर की विलक्षण शक्तिका मधुर शब्दों में प्रतिपादन किया है।

"प्रभ भावै मानुख गति पावै। प्रभ भावै ता पाथर तरावै"

वायुपुराणोक्त ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्यादि का आधार केवल पुरुषोत्तम ईश्वर ही होसकता है।

'ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः स्रष्टत्वम् आत्मसंबोधो ह्यधिष्ठातृत्वमेवच,
अव्ययानि दशैतानि नित्यं तिष्ठन्तिशङ्करे"

एवम् स्वतन्त्रता सर्वज्ञता आदि षडङ्गोंका होना ईश्वरके अतिरिक्त किसी भी मानव में सम्भव नहीं।

❀ प्राप्त होने योग्य तथा भरणपोषण करने वाला सर्वका स्वामी शुभाशुभका देखनेवाला सर्वका वासस्थान तथा शरण लेने योग्य और प्रतिउपकार की इच्छा के विना सर्वका हितैषी उत्पत्ति प्रलयरूप तथा सर्वका आधार निधान और अविनाशी कारण परमेश्वर ही है।

22740

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

❀ "सर्वज्ञता तृप्तिरनादि बोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्त शक्तिः"
"अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य"।

बन्दनीय श्रीगुरुनानकदेवजीने परमेश्वर की अध्यक्षता तथा स्वतन्त्रता का वर्णन बहुतही सुन्दर शब्दोंमें कियाहै।

"करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई"
"जो तिसु भावै सोइ करसी हुकमु न करणा जाई"

गुरुवाणीमें कर्त्ताके अर्थमें करतार शब्दका प्रयोगभी गुरुजीने किया हैं।

"तूँ करतार करे सो होइ। करतार कुदरत करण खालक"

यद्यपि कर्ताशब्दसे किसीसाधारण कार्यका करता भी ले सकते हैं। तथापि प्रकरण के बल पर यहाँ विश्वकर्ता ईश्वरका ग्रहणकरना उचितहै।

घटपटादि साधारणकार्यभी जब कुम्भकार और तन्तु वाय के विना नहीं होसकते। तब पृथिवी जल तेजादि महानकार्य शक्तिमान् ईश्वरके विना उत्पन्न और सुरक्षित कैसे होसकते हैं। यह गम्भीरतापूर्वक विचारणीय विषय है। कुछ नास्तिकलोग ऐसा विचाररखते हैं। कि यह संसार अनाश्रय एवम् सर्वथामिथ्या, ईश्वर के विना अपने आप पदार्थों के सम्मिश्रण से उत्पन्न होता है। पदार्थों का यह स्वभावहै। मनुष्यों के शुक्रशोणितसे मनुष्य, पशुओं के सम्बन्धसे पशुओं की उत्पति होती है। फिर संसारकर्त्ता ईश्वर को मानने की क्या आवश्यकता है?

सुननेमें यहबात अच्छी प्रतीतहोतीहै। परन्तु स्वभाववादी से हम यह पूछते हैं। कि वह स्वभाव एकहै वा अनेक? यदि अनेक मानों तब गौरवदोष प्राप्तहोगा। यदि एक मानोगे तब उसमेंभी शङ्का होसकतीहै। कि वह नित्यहै वा अनित्य? यदि उसे अनित्यमानोंगे, तब वह सम्पूर्णजगत्का कारण नहींबनसकता, क्योंकि कोई अनित्य पदार्थ सम्पूर्ण विश्वकाकारण देखनेमें नहींआता। अनित्य मानकरभी उसे जड़मानोंगे वा चेतन?

यदि जड़ और अनित्यमानोंगे, तब घटपटादि के समान उसकाभी कोई अन्यकारण मानना पड़ेगा। उसके कारणकोभी जड़ एवम् अनित्यमानने पर अनवस्थादोषकी प्राप्ति होगी। इसलिये चेतन को ही कर्ता मानना युक्तिसङ्गत प्रतीत होता है। यदि आप भी स्वभाव को एक एवम् चेतन मानते हैं। तब तुम्हारा स्वभाववाद ही समाप्त हो जाता है। क्योंकि एक व्यापक चेतनको ही हम ईश्वर मानतेहैं। और तुम उसी चेतन को स्वभाववाद की युक्तियों से प्रतिपादन करतेहो।

❀ (सर्वज्ञता) तीनों कालके निखिल पदार्थों को यथावत् जानना (तृप्ति) अप्राप्तवस्तुकी प्राप्ति की इच्छा का न होना (अनादि बोध) स्वभावसिद्ध नित्यज्ञान (स्वतन्त्रता) कार्य करने में स्वाधीनता (नित्यमलुप्तशक्ति) किसी काल में भी सामर्थ्य से रहित न होना (अनन्त शक्ति) अनेक सामर्थ्य ये ईश्वर के षडङ्ग हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस प्रकार स्वभाववादी लोगोंकी बातोंको ध्यानमें रखतेहुये, भगवान् श्रीकृष्णने उनके सिद्धांतकी विस्तृत आलोचना की है।

❀ "असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्पर संभूतं किमन्यत्काम हैतुकम् "॥

यदि कर्ता के विना भी कार्य होसकता है। तब घटपटादि कार्योंके लिये कुलाल और जुलाहेकी क्या आवश्यकता है। जब घटपटादि सामान्यकार्य भी विना करताके उत्पन्न नहीं होसकते, तब यह विशाल ब्रह्माण्ड, कर्ता ईश्वरके विना उत्पन्न और सुरक्षित कैसे होसकता है। ईश्वरके प्रभुत्व एवम् दातृत्व का वर्णन, श्रीगुरुअर्जुनदेवजी ने सरस तथा सरल शब्दों में किया है।

"कोटि ब्रह्मण्ड को ठाकुर सुआमी सरब जीया का दातारे ।
तथा "तुम दाते ठाकुर प्रतिपालक नाइक खसम हमारे"॥

किसी विद्वान् कविने कितने सुन्दर शब्दोंमें उदाहरण देकर ईश्वर के कर्तृत्वको समझाने की चेष्टा की है।

= जगतां यदि नो कर्त्ता कुलालेन विना घटः ।
चित्रकारं विना चित्रं स्वत एव भवेत्तदा"
"येनशुक्ली कृता हंसाः, शुकाश्च हरिती कृताः ।
मयूराश्चित्रिता येन स ते वृतिं विधास्यति" ॥

कुछ लोगोंके मनमें यह शङ्का उत्पन्न होसकती है कि जो परमात्मा अचक्षु, अश्रोत्र, गोत्र, अपाणिपाद, अविनाशी, एवम् सर्वव्यापी है। वह परमेश्वर समस्त भूतोंका कर्त्ता कैसे हो सकता है। इसबातको समझानेकेलिये अङ्गिरा ऋषिने लोकप्रसिद्ध तीनदृष्टान्तदियेहैं। प्रथम मकड़ीका उदाहरण देकर बतायाहै, कि जिसतरह मकड़ी अपने उदरमें सञ्चित जालेको निकालकर बाहर फैलाती है। पुनः उसे अपने में समेट लेतीहै। उसीप्रकार परमेश्वर सूक्ष्मरूपसे लीन, जड़चेतनात्मक,जगतको नानाप्रकारसे उत्पन्नकरके विस्तारकरताहै और प्रलयकाल में पुनः उसे अपने में लीन कर लेताहै।

❀ आसुरी प्रकृतिवाले कहतेहैं कि संसार आश्रयरहित और सर्वथा झूठा एवम् ईश्वर के विना अपने आप स्त्री पुरुष के संयोगसे उत्पन्न हुआहै। इसलिये केवल भोगों को भोगने के लियेही संसारहै, इसके अतिरिक्त यहांपर और क्या है।

= यदि जगत का कोई करता नहीं तबतो कुलाल के बिना घट और चित्रकार के बिना चित्र बनजाना चाहिये। जिस ईश्वर ने हंसको श्वेत और तोतेको हरा तथा मोर को चित्र विचित्र बनाया है वही तुम्हारी रक्षा करेगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

द्वितीय दृष्टान्त द्वारा—यह बात समझाई है कि पृथिवी में जैसे बीज पड़ते हैं, उसी प्रकार के वृक्षलता पुष्पादि वहाँ उत्पन्न होते हैं। उन्हें उत्पन्न करने में पृथिवी का कोई पक्षपात नहीं। इसी प्रकार प्राणियों के विविध कर्मरूप बीजों के अनुसार ही ईश्वर, जीवों को नाना प्रकार की योनियों में उत्पन्न करता है। इसलिये ईश्वर में निर्दयता और विषमता का दोष नहीं आता।

द्वितीय उदाहरण में—यह बताया है। कि जिसप्रकार जीवित मनुष्य के शरीर से केश, नख, लोमादि उत्पन्नहो वृद्धिको प्राप्त होते हैं। वैसे ही परमेश्वर से यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होकर विस्तार को प्राप्त होता है। इस कार्य के लिए ईश्वर को कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता।

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्वते च यथा पृथिव्यामोषधयः यथा सतः

पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ॥ मु० प्र० मं० ॥७॥

अङ्गिरा ऋषि कहतेहैं प्रियशौनक ? यह बात सत्य है। तुम इसे ध्यान पूर्वक सुनों, जिसप्रकार प्रज्वलित अग्नि से समान रूप वाली हजारों चिनगारियाँ प्रकट होती हैं, उसीप्रकार अविनाशी परमेश्वर से नानाप्रकार के भाव पदार्थ उत्पन्न होते हैं और फिर उसी में लीन होजाते हैं।

"तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकाद् विस्फुलिङ्गाःसहस्त्रशः प्रभवन्ते स्वरूपाः।

तथाक्षराद् विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति ॥१॥ द्वि० मु० मं०१ प्र० खण्ड"॥

कर्ता पुरुष परमेश्वर को जानने की इच्छा आजकी नहीं, सभ्यसमाजमें यह अनादिकाल-से चली आरही है। इसे शान्त करने के लिये पूर्वजों ने बड़ी बड़ी साधनाएँ कीहैं। प्रश्नोपनिषद् को देखने से इस वात की पुष्टि होती है। किसी समय महर्षि कबन्धी सृष्टिकर्ता को जानने के विचार से श्रद्धा भक्ति पूर्वक ज्ञान वृद्ध पिप्लाद की शरण में आया। और मुनि के आश्रम में एक वर्ष तपस्या करने के पश्चात् यह जानने की इच्छा व्यक्त की।

॥ भगवन् ? यह सम्पूर्ण चराचर जगत् जिससे उत्पन्न होता है। वह मूलकारण कर्ता पुरुष कौनहै। यह मुझे बताने की कृपा करें। कबन्धी के प्रश्न को सुनकर पिप्लाद मुनिने प्रसन्न होकर उसे उत्तर देकर सन्तुष्ट किया।

यद्यपि-एकोऽहं बहुस्याम्। एवम "कीता पसाउ एको कवाउ। तिस ते होइ लख दरिआउ"

इत्यादि वचनों से ऐसा प्रतीत होता है। कि देव दानव मानव पर्वत नदी समुद्र वृक्षादि कर्ता पुरुष के सङ्कल्पमात्र से उत्पन्न हो जाते हैं। पूर्वोक्त वचनों में क्रम के विना सृष्टि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की उत्पत्ति सुनकर कुछ लोगों के मन में आश्चर्य उत्पन्न हो सकता है। तथापि लोगों के कौतुहल को शान्त करने के लिये तैतिरीय श्रुतिने कर्ता पुरुष से सृष्टि के क्रम का निरूपण किया है।

यथा "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्नि-अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम्, अन्नात् पुरुषः। स वा एषः पुरुषोऽन्न रस मयः" ॥ प्रथम अनुवादक

सृष्टि कर्ता की यह उदारता और विशेषता ही समझनी चाहिये। कि इतनेभारी विश्व का निर्माण करने के अनन्त्य भी उसने अपने गौरवको प्रकट करने के लिये सृष्टि निर्माण की तिथि एवम् सम्वत् का बोधक शिलालेख वा धातु निर्मित स्मारक नहीं बनाया। उसके कार्य करने की शैली ऐसी विलक्षण है। जिसे समझने के लिये बुद्धिमान् लोग अनुमान् ही लगाते रहते हैं।

जैसे किसी विशाल परिवार का मुखिया अपने परिवार के लोगों से बहुतसी रहस्यमयी बातें छिपा रखता है। ठीक वैसे ही विश्व स्रष्टाने देव, दानव, मानव, योगी, ऋषि, मुनि इत्यादि—परिवार के सभी सदस्यों को सृष्टि निर्माण की तिथि ऋतु मास मुहूर्त—आदि के तथ्य से सर्वथा अपरिचित ही रखा है। वेद शास्त्र पुराण कुरानादि सद्ग्रन्थों में कहीं भी निर्देश का न होना उसकी गोपनीयता एवम् आलौकिकता का ज्वलंन्त उदाहरण है।

इस विषय पर श्रीगुरुनानकदेवजी तथा श्रीगुरुगोविन्दसिंहजी ने अपने विचार स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किये हैं।

"थितु वारु ना जोगी जाणै रुति माहु ना कोई।
जा करता सिरठी को साजे आप जाणै सोई" ॥
"आप अपनी बुधि है जेती। बरणत भिन्नभिन्न तुहि तेती ॥
तुमरा लखा न जाइ पसारा। किह विधि सजा प्रथम संसारा" ॥

पूजनीय गुरुओं ने अपनी वाणी में परमेश्वर को कर्ता और करतार शब्दसे इस लिये याद किया है। कि इनके उच्चारण करनेमात्र से सृष्टि कर्तृत्व, अनन्त शक्तिशालिता, एवम् दयालुता, स्वतन्त्रता, माधुर्यादि ईश्वरीय विशेषताएँ नेत्रों के सामने साकार होकर दिखाई देने लगे। इस अद्भुत कृति को देखकर कर्ता के दर्शन की लालसा मन को व्याकुल कर देती है। अपनी व्याकुलता को शान्त करने के लिये विश्व रचना का जब हम सूक्ष्म निरीक्षण करते हैं।

तब हिमालय की शुभ्रता और विन्ध्याचल की कृष्णता में।
मयूर की चित्रता और शुक की हरितता में।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कोकिल की मधुरता और वायस की रूक्षता में ।
मृग की सरलता और बानर की चपलता में ।
चींटी की सूक्ष्मता तथा हस्ती की स्थूलता में ।
धूर्त की धूर्तता तथा साधु की साधुता में ।
भीरु की भीरुता तथा वीर की वीरता में ।
मेघ की गर्जना तथा सिंह की तर्जना में ।
सुमेरु की विशालता तथा सागर की गम्भीरता में ।
वायु की पावनता एवम् आकाश की व्यापकता में ।
अग्नि की उष्णता एवम् जल की शीतलता में ।
वेदों की गरिमा और दर्शन की दार्शनिकता में ।
प्रवीण की पटुता और अज्ञ की अज्ञता में ।
धर्मी की धार्मिकता और हिंसक की हिंसकता में ।
इक्षु की मधुरता और नीम की कटुता में ।
ज्ञानी की निष्ठा और भक्त की प्रतिष्ठा में ।
गङ्गा की पवित्रता और स्फटिक की स्वच्छता में ।
अज्ञ की उद्दण्डिता और विज्ञ की शिष्टता में ।
विषयी की आसक्ति और यति की विरक्ति में ।
कठोर की निष्ठुरता और दयालु की दयालुता में ।

एवम् अन्यत्र जहां कहीं भी दृष्टिपात करता हूं सर्वत्र मुझे अपने हृदयनायक के दिव्य सौंदर्य ही का चमत्कार दिखाई देता है । इस आलौकिक चित्रकार के मनोहर एवम् आकर्षक भान्ति भान्ति के चित्रोंको देखकर मन्त्र मुग्ध होजाता हूं और आत्म विभोर होकर मुखसे सहसा निकल पड़ता है ।

बलिहारी कुदरति वसिआ ॥ तेरा अंतु न जाई लखिआ ॥
"रचि रचना अपनी कलधारी अनिक बार नानक बलिहारी"
तथा "सभतेरी कुदरति तूँ कादिरु करता पाकी नाइ पाकु" ॥

कर्ता ने अपनी प्रकृति की कुञ्जी में क्या २ भरदियाहै । यह शताब्दियों से अनुसन्धान करने वाले वैज्ञानिकों के लिये आज तक एक पहेली ही बनी हुई है । विशेषता तो यह है, कि "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्रविशत्" इस श्रुति के अनुसार इस विचित्र रचना को बनाकर स्वयम् इसी में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ओत प्रोत हो रहा है। परन्तु हजारों वर्षकी कठिन साधना करने पर भी इन चरम चक्षुओं से दिखाई नहीं देता क्योंकि 'पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभू स्तस्मात्पराङ्ग पश्यति नान्तरात्मन्' कठि. अ०४ मं०१ इस श्रुति के अनुसार ये भौतिक इन्द्रिय बाह्य वस्तुओं की ओर ही आकर्षित होते हैं। अन्तरात्मा की ओर आकृष्ट नहीं होते।

जिस प्रकार किसी चित्रकार की बनाई हुई प्रतिमा से कलाकार की सूझ बूझ टपकती है। जिसे देख कर कोई भी सहृदय व्यक्ति कलाकार की विलक्षण प्रतिभा पर मुग्ध हो कर श्लाघा के दो चार शब्द कहे बिना रह नहीं सकता। वैसे ही इस विश्वनिर्माता शिल्पी की अलौकिक प्रत्येक रचना में जो विचित्रता, मृदुलता, मनमोहकता, पूर्णता, सर्वप्रियता, एवम् आकर्षकता, तथा आत्मीयता, और उत्कृष्टता, भव्यता और भावुकता भरी है। जिसे देखकर प्रकृति छटा के सच्चे प्रेमी श्रीगुरुनानकदेव जी कहते हैं। मेरे प्रियतम विश्वनिर्माता ? तुम लोकोत्तर प्रतिभाशाली कलाकार हो। आपने शिल्पकला की निपुणता से जिस उत्कृष्टता का दिग्दर्शन कराया है।

उससे तो ऐसा प्रतीत होता है। कि इस नयनाभिराम संसार बन में अपनी अनुकूलता के अनुसार प्रत्येक प्राणी के हृदयमन्दिर में रहने का आपने मनमें सङ्कल्प करलिया है। आपके निवाससे मुझे तो प्रत्येक पदार्थमें तेरी ही अनुभूति हो रही है। क्योंकि यह सारा विश्व आपके निबास का सुन्दर स्थान है।

"इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु"

आपके निवास स्थान को देखकर अहोरात्र तेरी समीपता का अनुभव करते हुए जब मैं अग्नि की दाहकता और वायु की तीव्रता एवम् पृथिवी की धूलीधूसरता, और जलकी अविरामता, और आकाश की शून्यता तथा एकान्त की स्तब्धता, वीणा की झङ्कार, एवम् विविध भाषाभाषी लोगों के भावों को ध्यान में लाता हूं तब मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रहती। मनको धैर्य देने के लिये,

"विषमादु रूप विसमादु रङ्ग। विसमादु नागे फिरहि जंत॥
विसमादु पउणु विसमादु पाणी। विसमादु अगनी खेडहि विडाणी"॥

इत्यादि—कहकर आनन्द का अनुभव करता हूं। जिस प्रकार ईश्वरीय आनन्द के एक अंश से सारा संसार जीवित है। उसी प्रकार सृष्टि कर्ता के सौंदर्य से ही समस्त संसार सुन्दर प्रतीत होता है। इसलिये "जो किछु होआ सब किछु तुझते तेरी सब असनाई"

जैसे कारण के गुण कार्य में दिखाई देते हैं। वैसे कर्ता की सुन्दरता ही सम्पूर्ण कृति में प्रविष्ट हो रही है। इसलिये तत्त्वदर्शियों को प्रत्येक वस्तु के नाम और रूप में सृष्टि कर्ता की सुन्दरता ही बिखरी हुई प्रतीत होती है। तत्वदर्शी श्रीगुरुदेव ने अपनी अनुभूति को कितने सुन्दरशब्दों में व्यक्त किया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भला भला भला तेरा रूप। अति सुन्दर अपार अनूप॥

प्राचीन समय में विचारशील लोग सत्सङ्ग में कर्ता पुरुष की चर्चा इस प्रकार करते थे।

इस जगत् का मुख्य कारण कौन है ' हम लोग किस से उत्पन्न हुये हैं। किसके सहारे जीवित हैं। और किसमें हमारी स्थिति है। हम लोगों का व्यवस्थापक कौन है। किसकी बनाई हुई व्यवस्था के अनुसार हम लोग सुखदुःख भोगते हैं। इस संसार का सञ्चालक और नियामक कौन है। इस बात को आप श्वेताश्वतर के प्रथम मन्त्र में देख सकते हैं।

"किं कारणं ब्रह्म, कुतः स्म जाता, जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः।

अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु, वर्तामहेः ब्रह्मविदो, व्यवस्थाम् "॥ प्र. अ. मं. १

आज कल के दूषित वायुमण्डल ने लोगों के विचारों में अश्रद्धा, संकीर्णता एवम् स्वार्थपरायणता, ऐसी भरदी है। कि सृष्टिकर्ता की आलौकिक छटा भी देख कर भी उसके रहस्य को सोचने समझने का विचार प्राप्त नहीं होता।

मूल मन्त्र में कर्ता शब्द के प्रयोग से यह बात प्रतीतहोती है कि प्रकृतिवाद, प्रमाणुवाद, विकासवादु, कालवाद; गुरुजीको अभिप्रेत नहीं किन्तु चराचर विश्व का स्रष्टा ईश्वर स्वमेव संसार को अभिन्ननिमित्तपादान है। इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं।

"पुरखु=इति"

ईश्वर जगत् का मूल कारण एवम् पालक तथा पोषक नियामक और प्रेरक है। यह बात कर्त्ता शब्द के द्वारा बताई गई है परन्तु वह ईश्वर एक देशी है वा सर्वव्यापी है, जड़ है वा चेतन, नवयुवक है वा वृद्ध, सुखी है वा दुःखी, पुण्यी है वा पापी, सबल है वा दुर्बल, उदार है वा कृपण, स्त्री है वा नपुंसक, इत्यादि विविध शङ्काओं को निवृत करने के लिये मूलमन्त्र में पुरखु शब्द का प्रयोग किया है।

जगत् के बाहिर और भीतर आगे और पीछे दांये और बाँये नीचे और ऊपर दक्षिण और उत्तर पूर्व और पश्चिम यत्र तत्र सर्वत्र पुरुष पद वाच्य परमेश्वर पूर्ण है। इस बात को मुण्डक श्रुति ने स्पष्ट किया है।

"ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।

अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥ द्वितीय मु० मं. ११

वह पूर्ण पुरुष, अस्ति, जायते, वर्धते, विपरिणमते अपक्षीयते, विनश्यति चेतिषड्विधभाव विकारः। इन षड् विकारों से रहित है।

पुर—अग्र गमने तथा पूरि धातु से कुषन् प्रत्यय करने पर पुरुष शब्द सिद्ध होता है। यास्क मनि ने पुरुष शब्द का अर्थ धातु भेद दिखाते हुए इस प्रकार किया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुरुषः पुरिषादः पुरिशयः पूरयतेर्वा पूरयति अंतर इति अंतर पुरुषमभिप्रेत्ये ॥

महा मनि वेद व्यास ने महाभारत में पुरुष शब्द का अर्थ इस प्रकार प्रतिपादन किया है।

पूर्णात् सदनाच्चापि ततोऽसौ पुरुषो मतः।

वह परमेश्वर सर्वत्र परिपूर्ण है तथा सर्वका निवास स्थान है इसलिये वह पुरुष है।

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड रूपी पुर में शयन करता है, एवम् समस्त जगत् के बाहिर और भीतर पूर्णहै। इसलिये ईश्वर पुरुष है। भाष्यकार ने भी पूर्णतः 'शयनाद्वा पुरुष' ऐसी व्युत्पति की है। निरुक्तकार ने अपने अर्थ की पुष्टिमें श्वेताश्वर के इस मन्त्र को उद्धृत किया है।

यस्मात् परं नापरमस्ति किंचिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥ अ. ३ मं. ९

जिससे श्रेष्ठ कोई वस्तु नहीं, जिससे बढ़कर न तो कोई सूक्ष्म हैं और न महान, जो अकेला ही वृक्ष के समान निश्चल भाव से प्रकाशमय आकाश में स्थित है उस परमपुरुष पुरुषोत्तम से यह सम्पूर्ण जगत परिपूर्ण है। मुण्डकोपनिषद् में इस परम पुरुष को जानने का फल इस प्रकार बतलाया है।

जब यह जीव सर्व के शासक और ब्रह्मा के भी आदि कारण, सम्पूर्ण संसार के रचियता प्रकाश स्वरूप पुरुष को प्रत्यक्ष कर लेता है। उस समय पुण्य पाप को हटा कर निर्मल हुआ विद्वान महात्मा सर्वोत्तम समता को प्राप्त करता है।

"तदा पश्यः पश्यते रुक्म वर्णं कर्तार मीशं पुरुषं ब्रह्म योनिम्।
तदा विद्वान् पुण्य पापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति॥" खं. १ मं. ३

वास्तव में यह पुरुष त्रिगुणात्मक माया से सर्वथा अतीत है। साक्षी होने से उपद्रष्टा, उचित सम्मति देने से अनुमन्ता, सर्व का धारण पोषण करने से भर्त्ता जीव रूप से भोक्ता सर्व का स्वामी एवम सन्चालक होने से महेश्वर सच्चिदानन्द घन होने के कारण इस पुरुष को परमात्मा कहते हैं।

"उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः॥" गीता अ. १३

सम्पूर्ण जगत में कर्ता पूर्ण है ऐसा कहने का यह भाव है कि ईश्वर जगत कारण होने से अपने कार्य में इस प्रकार पूर्ण है जिस प्रकार स्वर्ण और मृतिका अपने कार्य कटक कुण्डल घट उदञ्चनादि में पूर्ण है। किसी के मन में यह शङ्का हो सकती है। जैसे आकाश तटस्थ होने पर भी व्यापक है ऐसे ही व्यापक तटस्थ ईश्वर होगा। परन्तु वेद के निम्नलिखित मन्त्र से उक्त शंका सर्वथा लुप्त हो जाती है।

"पुरुषः एव इदं सर्व, यद् भूतं यत् च भव्यम्" ऋग्वेद

Pertap ... Srinagar ... S.P. Library

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जो कुछ हुआ और जो कुछ होने वाला है। वह सब पुरुष ही है। यदि ईश्वर भी आकाश के समान तटस्थ कारण हो कर चराचर में पूर्ण होता तब यह सब कुछ पुरुष ही है ऐसा न कहा जाता। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ईश्वर प्रत्येक कार्य में पूर्ण है। गुरु वाणी में पुरुष शब्द ईश्वर एवम् जीवात्मा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

"नानक तुमरी सरनि पुरख भगवान"

तथा "जह निरमल पुरखु पुरख पति होता"

एवम् "आदि पुरख कारण करतार"

"उस पुरख का नाही कदे विनास"

मुण्डक श्रुति के समान गुरुवाणी में भी परिपूर्ण अनन्त शक्तिमान् कर्ता पुरुष की उपासना से जन्म मरण की निवृति और परमानन्द की प्राप्ति बताई गई है।

'से मुकतु से मुकतु भए जिन हरि धिआइआ जी।
तिन तूटी जम की फासी'॥

आदि पुरुष की उपासना से महान फल की प्राप्ति कैसे होती है। ऐसी जिज्ञासा को देखकर श्रीगुरु अर्जुनदेवजीने उस आदि पुरुष की दयालुता, सहृदयता, भक्तवत्सलता, इत्यादि अनेक विशेषाओं का वर्णन किया है।

प्रभ बखसंद दीन दइआल। भगति बछल सदा किरपाल॥
अनाथ नाथ गोविंद गुपाल। सरब घटा करत प्रतिपाल॥ सुखमनी साहब॥ २०।७

यहाँ पर कुछ लोगों के मन में यह शङ्का हो सकती है। कि सर्व वित आनन्त शक्ति नित्य तृप्त वैराग्य एवम् ऐश्वर्य शाली ईश्वर की संसार रचना में प्रवृति कैसे हुई। क्योंकि राग और प्रयोजन के विना प्रवृति नहीं होती।

पूर्ण काम परमेश्वर में इन दोनों की सम्भावना नहीं हो सकती। यदि कहें कि ईश्वर कृपा से संसार रचना में प्रवृत हुआ। तब सृष्टि के आदि काल में प्राणियों के अभाव से कृपा का पात्र ही कौन था। ईश्वर यदि कृपा से ही प्रवृत होता है। तो किसी को धनी, और किसी को दरिद्र, एक को सुखी और दूसरे को दुखी, किसी को दाता, और किसी को भिखारी, किसी को सदाचारी, और किसी को दुराचारी, एक को ज्ञानी, और दूसरे को अज्ञानी, एक को आस्तिक और दूसरे को नास्तिक, एक को शिष्य, और दूसरे को शिक्षक, एक को पठित, और दूसरे को अपठित, ऐसी विषम दृष्टि क्यों ? जब कि कृपालु पुरुष की प्रवृति जन कल्याण के लिये ही होती है। किसी को दुख देने के लिए नहीं। पूर्ण काम ईश्वर यद्यपि अपने किसी प्रयोजन के लिये प्रवृत्त नहीं हो सकता, तथापि महाप्रलय में लीन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्राणियों पर कृपा करने के लिये संसार रचना में उसकी प्रवृति हो सकती है और जीवों के अदृष्टों के अनुसार फल देने से ईश्वर को विषम दृष्टि वाला भी नहीं कह सकते। इस प्रकार ज्ञान, धर्मोपदेश द्वारा प्राणी समुदाय का कल्याण करना प्रयोजन होने से प्रवृति निष्फल नहीं, किन्तु सफला है।

संसार को अनादि होने के कारण पूर्व पूर्व सर्ग में किये कर्मों का फल देने के लिये, और धर्मोपदेश से प्राणियों के कल्याण के लिये पूर्ण काम ईश्वर की प्रवृति कृपा से हो सकती है।

इस प्रकार राजा अपने योग्य कर्मचारी के कर्य को देखकर उसकी योग्यता के अनुसार न्यून अधिक पुरस्कार देने से विषम दृष्टिवाला नहीं होता। वैसे परमेश्वर भी किये कर्मों के अनुरूप फल-प्रदाता होने से विषम दृष्टिवाला नहीं है। किये कर्म का फल ईश्वर अवश्य देता है। यहीं उसकी कृपा समझनी चाहिये।

जिस प्रकार धौत, घटित, लाञ्छित, और रञ्जित वस्त्र की चार अवस्थाएँ हैं। अर्थात् धुला हुआ धौत, और माण्ड दिया हुआ घटित, तथा देव मनुष्य पर्वतादि आकृतियों से भरा हुआ लांछित और यथोचित् रङ्गों से परिपूरित एवम् सज्जित रञ्जित कहलाता है। इसी प्रकार चित्त, अन्तर्यामी, सूत्रात्मा, और विराट यह चार अवस्था परमात्मा की हैं।

शुद्ध बुद्ध रूप से अवस्थित परमात्मा को चित कहते है। माया से युक्त होने पर अन्तर्यामी, सूक्ष्म शरीरों पर अभिमान करने से सूत्रात्मा, स्थूल समष्टि के अभिमानी को विराट कहते हैं। परमपिता परमात्मा में ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त सभी प्राणी और गिरि नदि आदि जड़ वर्ग, ऊच नीच भाव से इस प्रकार अवस्थित हैं। जिस प्रकार वस्त्र पर नाना प्रकार के चित्र विद्यमान रहते हैं। वह ईश्वर सर्व का आधार परन्तु आप निराधार है। सर्व के जीवन का हेतु और सर्व का कर्ता है सर्व का रक्षक तथा सर्व का भक्षक है। देह धारी साधारण कोई भी व्यक्ति इस विशाल ब्रम्हांड का कर्त्ता और आधार तथा नियामिक नहीं हो सकता।

इसलिये मूल मन्त्र में उसे कर्त्ता मानकर पूर्णतम पुरुषोत्तम माना है। वास्तव में कर्त्ता होकर भी वह अकर्त्ता है। अयस्कान्त मणि (चुम्बक पत्थर) के सन्निधि मात्र से जैसे लौह कण सचेष्ट हो जाते हैं। ऐसे ही परमात्मा की सत्ता मात्र से यह सम्पूर्ण जगत् अपने आप चेष्टा करने लगता है। इसके लिए ईश्वर को कोई यत्न नहीं करना पड़ता।

कुलालादि के समान ईश्वर केवल निमित्त कारण नहीं क्योंकि निमित्त कारण उसे कहते हैं। जो कार्य के उपादान कारण से पृथक देश में रहकर कार्य को उत्पन्न करे। जैसे कुलाहल मृतिका से अन्य देश में रह कर घट को उत्पन्न करता है।

ऐसे ईश्वर में सम्भव नहीं क्योंकि वह सर्व व्यापक है। एक देशीय नहीं, इसलिये वह अभिन्न निमितोपादान कारण है। इसमें यथोर्णनाभिः सृजते गृहणते च यह श्रुति तथा श्रीगुरुअर्जुनदेवजी ने इसी बात को इस प्रकार अङ्कित किया है।

"कोई बोलै राम राम कोई खुदाइ। कोई सेवै गुसईया कोई अलाहि"
कारण करण करीम किरपा धारि रहीम ॥

हनुमान नाटक में इसी प्रकार के भाव प्रकट किये हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो ।
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाण पटवः कर्त्तेति नैयायिकाः' ॥
अर्हन्नित्यथ जैन शासन रताः कर्मेति मीमांसकाः ।
सोऽयं नो विदधातु वांछित फलं त्रैलोक्य नाथो हरिः॥

वास्तव में अन्तर्यामी परमेश्वर तो श्रद्धामय है। जिस प्रेमी की राजसी, सात्वकी जैसी श्रद्धा होती है उसे उसी रूप में दर्शन होता है।

"श्रद्धा मयोऽयं पुरषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः"

वन्दनीय श्री गुरुदेवजी ने अन्तर्यामी के साथ लोक प्रसिद्ध मधुर सम्बन्धों को कल्पना करके उस के साथ प्रेम करने की कितनी सुन्दर भावना व्यक्त की है।

"तूँ मेरा पिता तूँ है मेरा माता। तूँ मेरा वंधपु तूँ मेरा भ्राता ॥
तूँ मेरा राखा सभनी थाई ता भउ केहा काड़ा जीउ ॥

परमात्मा के साथ स्नेह करने के लिये माता पिता भ्राता सखा इत्यादि सम्बन्धों से और अधिक किस मधुर सम्बन्ध की कल्पना हो सकती है। श्रद्धा और रुचि की विचित्रता से ईश्वर के अनन्त नामों में से किसी भी नाम को प्रेमी उच्चारण कर सकता है। परन्तु गन्तव्य स्थान सभी का वह एक परमेश्वर ही है।

"रुचिनां वैचित्र्याद्दजु कुटिल नाना पथ जुषां ।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥७॥

पूर्वोक्त विवेचन से यह सिद्ध हुआ कि ईश्वर एक है और सतिनामु उसके स्वरूप का बोधक है सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ है।

विश्व स्रष्टा और सर्वत्र परिपूर्ण है। कोई उससे बढ़कर और कोई उसके सदृश नहीं। यह स्पष्ट करने के लिये गुरु मन्त्र में—

"निरभउ और निरवैरु शब्दों का प्रयोग किया है। निर पूर्वक भिधातु से अच प्रत्यय करने पर निर्भय शब्द निष्पन्न होता है। भय शब्द का पञ्जाबी में भउ और भय दोनों प्रकार से उच्चारण होता है। यथा 'जिनां भाउ तिनां नाहिं भउ मुचु भउ निभवि आह'
तथा — भय विच धरती दबी भारि"

यह तो विद्वान् लेखक की इच्छा पर है। कि वह जिस भाषा के शब्द को चाहे अपने भावों को प्रकट करने में प्रयोग करे, किसी प्रकार का अंकुश लगाना उचित नहीं। यही कारण है कि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अत्रि ऋषि ने निम्न लिखित वेद मन्त्र में द्वार शब्द के स्थान पर लाट भाषा के वार शब्द का प्रयोग किया है ।

"नीचीन बारं वरुणः कबन्धः प्रससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ॥

विश्वस्य भुवनस्य राजा, यवं न वृष्टिः व्युनत्ति भूम" ॥ ऋग्वेद

ऋषि के वार की विवेचना करते हुए कुमारिल भट्ट ने स्पष्ट लिखा है ।

"नापि द्वार शब्दस्य स्थाने लाट भाषातोऽन्यत्र वार शब्दः सम्भवति"

अर्थात् द्वार शब्द के स्थान में बार शब्द का प्रयोग लाट भाषा के अतिरिक्त दूसरी भाषा में नहीं हो सकता ।

फिर भी कोई पण्डितमानी यदि यह कहे, कि अत्रि ऋषि यदि संस्कृतज्ञ होता, तव द्वार शब्द के स्थान पर वार शब्द का प्रयोग कदापि न करता ।

ऐसा कहने वाले को बुद्धिमान, भ्रान्त एवम् अप्रबुद्ध ही समझते हैं। ऐसे ही मूलमन्त्र में पठित भउ शब्द को देख कर यदि कोई पण्डितमानी गुरुदेव पर अपठित होने का आरोप लगाकर पाण्डित्य प्रकट करने का साहस करता है । तब तो वह अपनी ऐतिहासिक और भाषा विज्ञान की अनभिज्ञता का ही परिचय देता है, जो व्यक्ति स्वयम् गुरुबाणी वा गुरुइतिहास का अनुशीलन करता है।

वह इस प्रकार का अप्रमाणिक विचार कदापि प्रकट नहीं कर सकता। किसी सुन्दर रचना का आद्योपान्त अध्ययन किये विना आलोचना कर देना कोई दूरदर्शिता का परिचायक नहीं होता ।

यदि कोई हठात् वास्तविकता की ओर से आँखें मून्द कर सर्वत्र दोष दृष्टि से देखने लगे तव तो वह शान्ति पाठ के 'करणे भिः देवा शृणुयाम्' एवम भगवद्गीता के 'हे कृष्ण हे यादव हे सखेति' इत्यादि अनेक आर्ष प्रयोगों को अशुद्ध कह कर वेद के उपदेष्टा परम गुरु ईश्वर और वेदव्यासादि ऋषियों को भी भाषा अनभिज्ञ एवम् अपठित कह कर भले ही आत्म सन्तोष करले, परन्तु निष्पक्ष विचारक मनीषियों की दृष्टि में वह आदर का पात्र नहीं हो सकता। यदि केवल संस्कृतज्ञ को ही विद्वान् माना जाये तब क्या ? अंग्रेजी जर्मनी फ्रेंच फारसी हिन्दी बङ्गला पञ्जावी भाषा के विद्वान् को अपठित ही कहा जायेगा ।

यदि ऐसा नहीं तव जनता के अज्ञान को नाश करने के विचार से योग्य अधिकारी देख कर प्रान्तीय वा राष्ट्रिय भाषा में सरल शब्दों द्वारा उपदेश करने वाले बहुभाषाभाषी श्रीगुरु नानक देवजी पर भाषा अनभिज्ञता का आरोप लगाना कहाँ तक उचित है । इसे विज्ञ पाठक स्वयं विचारें—

किञ्च "अनन्त पारं किल शब्द शास्त्रम्"

इस सूक्ति के अनुसार शब्द शास्त्र इतना विस्तृत है। कि आजीवन अध्ययन करने पर भी लौकिक और वैदिक शब्दों में पारङ्गत होने का कोई भी विज्ञ व्यक्ति अभिमान नहीं कर सकता, बुद्धि की न्यून

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आधिकता से कोई मनुष्य वर्तमान कालिक शब्दों को और कोई योगज धर्म के प्रभाव से अतीत अनागत काल में व्यवहृत होने वाले शब्दों को जानता है। परन्तु यावत शब्द राशि के यथार्थ ज्ञान की प्रतिज्ञा कोई नहीं कर सकता। जब कि मेधावी देवराज इन्द्र, सर्व शास्त्र निष्णात परम् हितैषी गुरु बृहस्पति से दिव्य सहस्त्र वर्ष अध्ययन करने के पश्चात् भी अपनी साधना पूरी न कर सका। तब अल्पायु मनुष्य इस कार्य में सफल मनोरथ होगा ऐसा कहना केवल साहस मात्र है। महाभाष्य कार मुनि पतञ्जलि इसी विषय पर कहते हैं।

'दिव्यं वर्ष सहस्त्र मध्ययन काला इन्द्रश्चाध्येता।
बृहस्पतिश्च वक्ता नापि अन्तं जगाम्॥ महाभाष्य

देवताओं की अपेक्षा मनुष्यों का ज्ञान तो और भी अधिक सीमित है। निरतिशय ज्ञान केवल ईश्वर का है। यह निरतिशय ज्ञान ही ईश्वरीय सर्वज्ञता का वीज है। सर्वज्ञ ईश्वर वा योगी के बिना कोई साधारण व्यक्ति लौकिक और वैदिक शब्दों की शुद्धि का परीक्षक नहीं हो सकता। इसलिये पतञ्जलि मुनि ने लिखा है कि यह सप्त सागरा एवम् सप्त द्वीपा वसुमती है। एक एक द्वीप में करोड़ों की संख्या में नर नारी निवास करते हैं। अपने विचारों को व्यक्त करने के लिये वे लोग अनेक प्रकार के शब्दों का प्रयोग करते हैं—

तथा धर्म अर्थ काम के प्रतिपादक वेद और उपवेद पुराण और उपप्राण महाभारत, रामायण, योग-वशिष्ठ ज्योतिष, धर्मशास्त्र, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, काव्य, साहित्य, दर्शनशास्त्र, मीमांसा कर्मकाण्ड आदि के अपार शब्द भण्डार का अनुशीलन किये विना किसी आर्ष प्रयोग पर अशुद्धि का आरोप लगाना केवल अदूरदर्शिता का परिचय देना है। व्याकरण निर्माता पाणिनि मुनि ने वैदिक लौकिक प्रत्येक शब्द की सिद्धि करना कठिन जानकर—

'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्" "छन्दसिदृष्टानुविधिः' 'उणादयो बहुलम्'
"बहुलं छन्दसि" अन्ये भ्योपि दृश्यन्ते"

इत्यादि कुछ ऐसे व्यापक सूत्र बनाये हैं जिनके द्वारा वुद्धिमान् हज़ारों शब्दों को देखकर प्रकृति प्रत्यय की कल्पना कर सकता है।

क्योंकि साधारण मनुष्य अन्धे के समान लाठी का सहारा चाहता है। परन्तु शक्तिशाली दूसरे की सहायता विना अपने बल से ही कार्य को सिद्ध कर लेता है। महापुरुषों की प्रज्ञा ऋतम्भरा (सत्य को धारण करनेवाली) होती है। वह सूत्र निर्देश के बिना ही यथार्थ लक्ष्य को पहचानती है। यथा समय जनता को सत्य का सन्देश देने वाले भगवदंश महापुरुष किसी विधि विधान की परिधि में नहीं आते। जब जैसा उचित समझते हैं संसार कल्याण के लिए उसी भाषा में उपदेश देते हैं।

ऐसा करने से उनके सारगर्भित उपदेशों की पुण्य जनकता एवम् सुखोत्पादकता में गम्भीरता तथा सरसता में सहृदयता और आकर्षकता में कदापि न्यूनता नहीं आती। किन्तु अपनी अलौकिक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रतिभा से मानव समाज में सत्पुरुष धार्मिकता और श्रद्धा का सञ्चार कर देते हैं। जिस श्रद्धा के बल पर लाखों की संख्या में जनता हज़ारों वर्षों तक प्रेम के फूल चढ़ाकर कृतज्ञता प्रकट करती है। वन्दनीय श्रीगुरु नानकदेवजी ने अपनी वाणी में अन्तरात्मा की प्रेरणा से राष्ट्रिय वा प्रान्तीय भाषा में जो सारगर्भित उपदेश दिये वे श्रद्धालु पुरुषों के लिये सर्वदा अनुकरणीय एवम् स्मरणीय है। क्योंकि नीर क्षीर विवेकी श्रीगुरुदेवजी न अपनी वाणी से जान बूझकर परिश्रम से किसी शब्द का उच्चारण नहीं किया। किन्तु भगवत् प्रेरणा से हृदय के भावों को व्यक्त करने के लिये जैसा शब्द स्फुररित होता था उसी रूप में उसे उच्चारण करते थे।

ईश्वरीय प्रेरणा की बात भाई लालो को किये हुए उपदेश से स्पष्ट प्रतीत होती है।

"जैसी मै आवै खसम की बाणी तैसड़ा करी गिआन वे लालो" तिलंग मः १

तथा—बेसुमार अथाह अगनत अतोलै। जिउ बुलावहु तिउ नानकदास बोलै"

सुखमनी ॥८॥२१

"दास निदासु कहै जनु नानकु जेहा तूँ कराइहि तेहा हउ करी वखिआनु

गु० ग्र० पृ० ७३४

ऋग्वेद में जैसे स्तेन शब्द का छान्दस प्रयोग स्तौन है। वैसे ही भय शब्द का आर्ष प्रयोग भउ है। दोनों का अर्थ एक है। कुछ विद्वानों का विचार है। कि निरभउ शब्द का मूल निर्भव और निर्भय है।

अर्थ इस प्रकार है। दूर हो गया है स्थूल सूक्ष्म रूप कार्य संसार और उसका कारण माया जिससे, तथा अजन्मा और अविनाशी होने के कारण दूर होगया है जन्म मरणादि भय जिससे ऐसे शुद्ध परमात्मा का बोधक निरभउ शब्द है।

एकाकी होने से किसी बलवान प्रतिपक्षी के भय से रहित है। शक्तिशाली प्रतिद्वन्दी एवम समकक्ष बलवान रिपु के अभाव से परमात्मा निर्वैर है अद्वितीय स्वरूप होने से दूसरे के साथ होन वाली शत्रुता से अतीत है। यह बात अनुभव सिद्ध है। कि भय और वैर दूसरे व्यक्ति से होता है।

जब हम अपने से अधिक किसी विरोधी में ज्ञान और क्रिया बल देखते हैं। तब हमें उससे भय होता है। परन्तु ईश्वर के समान और उससे अधिक किसी भी देव दानव मानव में ज्ञान और क्रिया बल नहीं इसीलिए ईश्वर को किसी से भय और वैर करने की इच्छा नहीं होती भय और वैर से मुक्त को ही निर्भय और निर्वैर कहा जाता है। संसार में जड़ चेतन जितने भी पदार्थ हैं, वे सभी ईश्वर के नियन्त्रण में होने से उससे न्यून हैं, तुल्य वा अधिक नहीं, इसलिये किसी के प्रति ईश्वर के मनमें वैर की भावना नहीं। सर्व का अहैतुक सुहृद है।

"समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः। गीता अ० ९

तथा "सुहृदं सर्व भूतानां ज्ञात्वा शान्तिमृच्छति" ॥ गीता अ० ५

परम पिता परमात्मा ने सम्पूर्ण सृष्टि को अपने नियन्त्रण में चलाने के लिए सभी के अन्तः-करण में भय के बीज का आरोपण किया है। सभी प्राणी एक दूसरे से भयभीत हैं। ऐसा कोई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नहीं दिखाई देता जिसे भय से मुक्त कहा जाये। बड़े बड़े राजा महाराजा जिनके इशारे पर सर्व राज्य शक्ति नाच करती हैं। वे भी अपने बलवान् प्रतिपक्षी से दिन रात भयभीत रहते हैं। संहारक अस्त्र शस्त्रों का निर्माण कराने वाले आज के राष्ट्र नायक भी अपने को भय से मुक्त नहीं मानते। जो वस्तु स्वयम् विनाशशाली और भय युक्त है वह दूसरे को भयमुक्त कैसे कर सकती है। जो स्वयम् दरिद्री तथा दुःखी है। वह दूसरे को धनी एवम् सुखी कैसे बना सकता है। शासकों की बात जाने दीजिए, देवराज इन्द्र, प्रजापति, मरुद्गण, रुद्र, वसु, साध्यगण, पितृगण, सिद्धगण, गन्धर्व किन्नर इत्यादि ये सभी अपने अपने विरोधियों से रात्रि दिवस भयभीत रहते हैं।

रावण, मेघनाद, हिरण्यकश्यपु, त्रिपुरादि अनेक बलवानों ने अपने अलौकिक पराक्रम से देवताओं और मानवों को कितनी बार पददलित किया। यह केवल ऐतिहासिक स्मृति ही है। जिन शूरवीरों ने अपने बाहुबल से त्रिलोकी को डराया धमकाया झुकाया और क्षत विक्षत किया। अपनी अच्छी वा बुरी स्मृति छोड़ कर सर्वदा के लिये गहरी नींद में सो गये। जो आज तक उठने का नाम नहीं लेते।

ऐसे अनन्त शूरवीरों के भक्षक मृत्यु का भी अपने भोजन में चटनी के समान चाटने वाले तथा चराचर को चबाकर चूर्ण विचूर्ण करने वाले निरतिशय बलशाली महामहिम परमेश्वर के भय से सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, योगी, यती, तपस्वी, अतिरथी, महारथी तथा पृथिवी, जल, तेजादि एवम् यक्ष, राक्षस, पिशाचादि, आबाल, वृद्ध, सभी ईश्वरीय आज्ञा में चलना परम पावन कर्तव्य समझ कर अपने कार्य को करने में निरन्तर तत्पर दिखाई देते हैं। मर्यादा से बाहर होकर गमन करना, अपने लिये अहितकारी और घातक समझते हैं। यह ईश्वर का कैसा विलक्षण तेज है कि स्वयम् निर्भय होकर अन्य सभी भूत भौतिक सृष्टि को भय की दृढ़तम रज्जु से ऐसा जकड़ रखा है। कि कोई भी शक्तिशाली उसके इशारे के बिना अपनी इच्छा से इधर उधर जाने में साहस नहीं रखता। श्रीगुरु नानकदेवजी ने आसा की वार में ईश्वर की निर्भीकता और महिमा का वर्णन बहुत ही सुन्दर शैली से किया है।

'भै विचि सूरजु भै विचि चंदु। कोह करोड़ी चलत न अंतु।
भै विचि सिध बुध सुर नाथ। भै विचि आडाणे आकास॥
भै विचि जोध महा बल सूर। भै विचि आवहि जावहि पूर।
सगलिआ भउ लिखिआ सिरि लेखु। नानक निरभउ निरंकारु सचु एकु॥१॥

सर्व के शासक सर्व शक्तिमान् ईश्वर के अमोघ शासन का वर्णन कठोपनिषद् में भी मिलता है।

"भयादस्याग्निस्तपति भयात् तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥

"अकाल मूरति—कल सख्याने धातु से काल शब्द बनता है। नञ् समास करने पर अकाल शब्द निष्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मूर्छा धातु से मूर्ति शब्द बनता है अकाल शब्द के साथ मूर्ति शब्द का बहुव्रीहि समास है। मूर्ति शब्द स्वरूप का बोधक है।

अर्थात् सर्व के नाशक काल का भी संहार करने वाला है स्वरूप जिसका, वह परम पुरुष परमेश्वर ही अकालमूर्ति शब्द का वाच्य है।

अथवा—अविद्यमानः कालो मृत्यु र्यस्य सोऽकालः अर्थात् अखण्डरूपं एतादृशीमूर्तिः स्वरूपं यस्य, अर्थात्–अखण्ड सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा।

अथवा—अकालश्चासौ मूर्तिः अकालमूर्ति अर्थात् नित्य शाश्वत परमेश्वर, इत्यादि अनेक अर्थ अकाल मूर्ति शब्द के समास भेद से हो सकते हैं।

संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं। एक अखण्ड, दूसरा सखण्ड, सावयव पदार्थों में देशकृत कालकृत, वस्तुकृत परिच्छेद रहता है परन्तु नित्य सर्वानुस्यूत अखण्ड पदार्थ में किसी भी परिच्छेद की सम्भावना नहीं। आकाश वत् सर्वव्यापक अखण्ड परमेश्वर सर्व के संहारक काल के काल तथा सर्व के पोषक हैं। गुरु गोविन्दसिंह जी ने जाप साहिब में उस परमेश्वर की महिमा का सुन्दर वर्णन किया है।

"काल हीन कला संजुगत अकाल पुरखु अदेस।
धरम धाम सु भरम रहत अभूत अलख अभेस" ॥

तथा— "राजान राज भानान भान देवान देव। उपमा महान ॥

यह परमात्मा काल का काल सर्व का ज्ञाता प्रकृति और जीवात्मा दोनों का स्वामी सर्व-विद्याओं का ज्ञाता संसार की उत्पति स्थिति और लय को करने वाला है। पाठक इसे श्वेताश्तर के मन्त्र में देख सकते हैं।

'स विश्वकृद् विश्वविदात्म योनिर्ज्ञः काल कालो गुणी सर्वविद यः।
प्रधान क्षेत्रज्ञ पतिर्गुणेशः संसार मोक्ष स्थिति बन्ध हेतुः ॥ अ० ६मं. १६॥

कठवल्ली में नचिकेता के प्रति यमराज कहते हैं। कि सृष्टि के संहार काल में ब्राह्मण क्षत्रिय सम्पूर्ण प्राणीमात्र जिस परमेश्वर की खाद्य सामग्री है। और सर्व का संहारक मृत्यु भी जिसका उपसेचन (चटनी) है। अर्थात् भोज्य वस्तु के साथ लगाकर खाने वाली चटनी के तुल्य है। वह जैसा है उसे अधिकारी के बिना यथार्थ रूप से कौन जान सकता है।

"यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ॥ क० उप० अ० १ मं० २५

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अजूनी—इति—अजूनी का मूल अयोनि है यु धातु गण भेद से मिश्रण और निन्दा अर्थ में है। नि प्रत्यय से योनि और नञ्समास से अयोनि शब्द बनता है। "पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्" सूत्र से यकार को जकार तथा ओकार को ऊकार निपातन करने से अजूनी शब्द सिद्ध होता है। योनि शब्द कारण का वाचक है और लोक में उत्पति स्थान का भी बोधक है।

अजूनी शब्द का अर्थ उत्पति रहित अर्थात् अजन्मा, जो जन्म नहीं लेता उसका मरण कैसे हो सकता है? इसलिये गुरुवाणी तथा वेद ने उस ईश्वर को नित्य शाश्वत विभु एवम् अजन्मा बतलाया है।

"सो मुखु जलउ जितु कहहि ठाकुरु जोनी" जनमि न मरै न आवै न जाइ॥
नानक का प्रभु रहिओ समाइ॥ गु०ग्र० पृ०१३३६

तथा 'न जायते म्रियते वा विपश्चित्" ॥ क० उप० मं० १८

अथवा—अजूनि शब्द में बहुव्रीहि समास है।

'अविद्यमानः योनि कारणं यस्य सोऽयोनिः'

ईश्वर अकारणक है जिसका कोई कारण नहीं। इस अयोनि परमेश्वर के स्वरूप को सुखमनी तथा जाप साहिब में इस प्रकार निरूपण किया है।

"करण कारण प्रभु एकु है दूसर नाही कोइ।
नानक तिसु बलिहारणै जलि थलि महीअलि सोइ"॥

तथा आदि रूप अनादि मूरति अजोन पुरख अपार।
सरब मान त्रिमान देव अभेव आदि उदार॥

अथवा—कुछ विद्वानों ने 'अजूनी सैभं' की इस प्रकार व्याख्या की है। जैसे ऋग्वेद में कर्मि का रूपान्तर कूर्मि है वैसेही मूलमन्त्र में अयोनि का रूपान्तर अजूनिहै जैसे मूर्धन्य 'ष' का उच्चारण कहीं ख और कहीं श के समान होता है। वैसे य का उच्चारण भी कहीं ज और कहीं य के समान होता है।

जैसे मायावी, मायावान, मायी, और मायिक तथा गावा, गोणी, गोता, इत्यादिः शब्दों के स्वरूप में अन्तर होने पर भी अर्थ में कोई भेद नहीं। ऐसे ही अजूनी और अयोनि तथा अजोनि के स्वरूप में भेद होने पर भी अर्थ में कोई भेद नहीं। 'जूनी शब्द उपादान कारण का वाचक है। सैभं शब्द स्व प्रकाश का बोधक है।

अजूनी शब्द में नञ् समास है। माया विशिष्ट ईश्वर ही जगत् का कारण है। शुद्ध बुद्ध चेतन जगत् का कारण नहीं। जब वह किसी का कारण नहीं, तब किसी का कार्य कैसे हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कारण से उत्पन्न होने वाले को योनि सम्भव कहते हैं। जैसे घट की उत्पति मृतिका से और पट की तन्तुओं से उत्पति होती है।

इसलिए घट पटादि को योनि सम्भव कहते हैं। ऐसे ईश्वर की उत्पति घट के समान किसी कारण से नहीं होती। इसलिये अयोनि सम्भव है। इस बात को नीचे दिये हुए गुरु वचन प्रमाणित करते हैं।

"जपि मन निरभउ। सति सति सदा सति ॥ सारंगम०४ गु०ग्र०१३६७
निरबैरु अकाल मूरति। आजूनी संभाउ ॥ पृ० १२०१

"आजोनी संभविओ जगतु गुर बचनि तरयओ ॥ सबईये मं ४
आजोनी संभविओ सुजसु कल कवीअणि वखाणिओउ ॥ सबईये म० ५ गुग्र०
"सद जीवणु अरजनु अमोलु आजोनी संभउ ॥ सबईये म. ५ १४०७

यहाँ पर भाव यह है। साधारण और असाधारण भेद से कारण दो प्रकार का होता है। कार्य मात्र की उत्पति में जो हेतु होता है, उसे साधारण कारण कहते हैं। जैसे ईश्वर और उसका ज्ञान एवम् यत्न, इच्छा, देश, काल, अदृष्ट, प्रतिबन्धका भाव इत्यादि कार्य मात्र के प्रति साधारण कारण हैं।

अपने अपने कार्य के प्रति जो कारण होता है उसे असाधारण कारण कहते हैं जैसे कुम्भकार और मृतिका घट के प्रति तथा तन्तु और तन्तुबाय पटके प्रति असाधारण कारण है। असाधारर्ण कारण भी उपादान और निमित भेद से दो प्रकार का है।

अपने कारण से उत्पन्न होकर कार्ययदि उसी में रहे तो उसे उपादान कहते हैं। जैसे घट मृतिका से उत्पन्न होकर मृतिका में ही रहता है। इसलिये मृतिका घट का उपादान कारण है। कारण से उत्पन्न होकर कार्य यदि अपने कारण में नहीं रहता तब वह निमित्तकारण होता है। जैसे कुम्भकार और दण्डादि से घट उत्पन्न होकर उनमें नहीं रहता। इसलिये दण्डादि घट के प्रति निमित्तकारण है। परन्तु ईश्वर नित्य सर्वदा एक रस होने के कारण किसी का कार्य नहीं जब वह किसी का कार्य नहीं तब उसके प्रति निमित्त और उपादान कारण कौन हो सकता है। क्योंकि एक अद्वितीय सद्वस्तु में कार्य कारण की कल्पना नहीं हो सकती। इसलिए श्रीगुरुजी कहते हैं।

'अमोघ दरसन आजूनी संभउ। अकाल मूरति जिसकदे नाहीं खउ"॥ गु० ग्र०१०८२
'न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम्।
स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिताचाधिपः ॥ श्वेताश्वर उप०अ०६मं०६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लोक में उस परमात्मा का कोई शासक और स्वामी नहीं, वह सर्व का परम कारण तथा समस्त कारणों के अधिष्ठाताओं का अधिपति है। और कोई भी उसका जनक नहीं। मूलमन्त्र में पठित 'सैभं' शब्द का मूल स्वयम्भू है। अपने आप प्रकट होने वाला परमेश्वर अपने को प्रकट करने में किसी अन्य कारण की अपेक्षा नहीं रखता।

इसलिए उसे स्वयंभू वा आत्मयोनि कहते हैं। अथवा सैभं—शब्द का मूल स्वयं भा है। वर्ण विकृति "पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्" के द्वारा निपातन करने से हुई है। सैभं शब्द का अर्थ स्वयं प्रकाश है। जो अपने को प्रकाशित करने के लिये सूर्य चन्द्र विद्युत अग्नि आदि भौतिक प्रकाश की सहायता नहीं चाहता। उसे स्वयंप्रकाश कहते हैं।

वह स्वयं प्रकाश ब्रह्म प्रकाश मय भवन में विराजमान है। वह सर्वथा शुद्ध समस्त ज्योतियों का भी ज्योति है। जिसे केवल आत्मज्ञानी सत्पुरुष ही जानते हैं। इस स्वयंप्रकाश स्वयंभू के स्वरूप को अनेक वेद मन्त्र प्रति पादन करते हैं।

"हिरण्य मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलं तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्म-विदो विदुः" ॥ मु० उ० अ० २ मं० ६

एक विद्वान ने सैभं शब्द का मूल शयभ शब्द को माना है। शय पूर्वक भा दीप्तौ से क प्रत्यय करने के पश्चात् शयभः शब्द सिद्ध होता है। अर्थ इस प्रकार है।

शये बुद्ध्यादि संघाते भाति सर्व साक्षितया प्रकाशते। इति—शयभः

अर्थात् स्वयं प्रकाश सर्व का आत्मा।

यथा— "अहमात्मा गुडाकेश सर्व भूताशयस्थितः" ॥ गीता

शय का अर्थ है शयन अर्थात् स्वप्नादि तीन अवस्था।

शयेषु सर्वावस्थासु सर्वावभासकत्वेन भाति इति शयभो हरिः। अर्थात् अवस्था त्रय साक्षी

यथा— एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा कर्माध्यक्षः
सर्व भूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्चः" ॥ श्वे० अ० ६ मं० ११

फारसी में शय शब्द वस्तु मात्र का बोधक है।

सर्वेषां वस्तुनाम् भास्कत्वात् इति शयभो हरि॥

अर्थात् सम्पूर्ण वस्तुओं के प्रकाशक परमात्मा को सैभं कहते हैं।

यथा—'तिस दै चानणि सब महि चानणु होइ' ॥ गु० ग्र० पृ० १३

तथा—'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' ॥ श्वे० अ० ६ मं० १४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पूर्वोक्त सर्वावभासक सर्व के साक्षी स्वयंभू परमेश्वर के स्वरूप को जानकर जिज्ञासु सभी सभी पाशों से मुक्त हो जाता है।

'नित्योनित्यानां चेतनोचेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तत् कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशैः'॥ श्वे० अ० ६ मं० १३

जो नित्य चेतन सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमात्मा अकेले ही कर्म फल भोगों का सर्व प्राणियों के प्रति विधान करता है। ज्ञान एवम् कर्मयोग से प्राप्त करने योग्य सर्व के कारणरूप परमदेव परमात्मा को जानकर यह मनुष्य समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

'गुरुप्रसादि' इति

मूल मन्त्र में 'अजूनी सैभं के द्वारा परमात्मा को अजन्मा अयोनि सम्भव आत्म योनि एवम् स्वयंभू और स्वयंप्रकाश सर्वावभासक सर्व का साक्षी कर्माध्यक्ष सर्वाधिवासी बतलाया गया है।

ऐसे महामहिम शाली परमात्मा के स्वरूप को सुनकर श्रद्धालु श्रोता के मनमें ऐसी शङ्का का उदय होना स्वभाविक है। कि उस सर्वशक्तिमान् विश्व नियन्ता का क्या किसी को साक्षात्कार होता है वा नहीं? यदि होता है तब किसी साधन के द्वारा अथवा अनायास ही दर्शन हो जाता है।

ऐसी जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं।

गुर प्रसादि इति—गुरु शब्द गृनिगरणे से और गृ शब्दे से और प्रसादि शब्द प्रपूर्वक सद् धातु से बनता है। गुरु प्रसादि में षष्ठी तत्पुरुष समास है। ब्रह्म विद्या के उपदेश द्वारा जो शिष्य की अविद्या को नष्ट करता है उसे गुरु कहते हैं। विद्या प्रकाश स्वरूप है और अविद्या अन्धकार रूप,इन दोनों का परस्पर विरोध है। जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार नष्ट हो जाता है। वैसे ही ब्रह्मज्ञानी गुरु के उपदेश से विवेक वैराग्यादि साधन सम्पन्न अधिकारी के हृदय का अन्धकार नष्ट होजाता है।

यह कार्य ब्रह्म श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ पूर्ण गुरु ही कर सकता है। अज्ञानी, स्वार्थी, कपटी गुरु से शिष्य के हृदय का अज्ञान दूर नहीं हो सकता। इसलिये कबीर साहिब ने कठोर शब्दों में अज्ञानी गुरु की भर्तसना की है।

'कबीर माइ मूंडउ तिह गुरु की जाते भरमु न जाइ'॥

तथा—'काचे गुर ते मुकति न हूआ'॥

जब तक मुक्ति नहीं होती तब तक इस जीव को संसार से विश्रान्ति नहीं मिलती। मुक्ति का साधन एकमात्र ज्ञान है। ज्ञान की प्राप्ति पूर्ण गुरु से होती है। इसलिए वेद में ज्ञान प्राप्ति के लिये पूर्ण गुरु के समीप जाने की प्रेरणा की है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'तद् विज्ञानार्थम् स गुरु मेवाभिगच्छेत्' ।

'समित्पाणि श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्' ॥ मु०1खं० २ मं० १२

सुखमनी साहिब में श्री गुरु अर्जुनदेव जी ने पूर्ण गुरु का लक्षण तथा उसकी सङ्गति से प्राप्त होने वाले लाभ का स्पष्ट प्रतिपादन किया है।

'सति पुरखु, जिनि जानिआ सति गुरु तिसका नाउ।
तिसकै संगि सिखु उधरै नानक हरि गुन गाउ' ॥१॥

इस श्लोक की व्याख्या में गुरु और शिष्य के कर्त्तव्यों का विस्तृत विवेचन किया गया है। अधिक जानने वाले जिज्ञासु को मूल का अनुशीलन करना चाहिये '

ब्राह्मी स्थिति वाले ब्रह्मवित् गुरु के प्रसाद से शिष्य के मन में जाति कुल एवम् विद्यादि से प्राप्त हुआ अहङ्कार सर्वदा के लिये लुप्त हो जाता है। और वह शुद्ध बुद्ध होकर परमेश्वर के दरबार में आदर का पात्र होता है ।

'गुर प्रसादि जा का मिटै अभिमानु। सो जनु नानक दरगह प्रवानु' ॥

गुरु के प्रसाद से इस जीव को अपने वास्तविक स्वरूप को देखने की सूझ बूझ उत्पन्न होती है। जिसके द्वारा विषयों को असार समझ कर पदार्थों की ओर से वैतृष्ण्य हो जाता है। तथा आत्म धन को प्राप्त करके परम सन्तोष को प्राप्त कर लेता है।

'गुर प्रसादि आपन आपु सुझै। तिसकी जानहु त्रिसना बुझै' ॥

गुरु की कृपा से अधोमुख तथा अविकसित हृदय कमल ऊर्ध्व मुख तथा विकसित हो जाता है। तथा अन्तःकरण में ज्ञान के प्रकाश से अज्ञान अन्धकार का विनाश होता है।

'गुर प्रसादि ऊरध कमल बिगास। अंधकार महि भइआ प्रगास' ॥

गुरु की कृपा से जिज्ञासु श्रवण मनन निदिध्यासन के द्वारा अनुसन्धान करता हुआ अपने परमार्थ स्वरूप को समझने में सफलता प्राप्त कर लेता है।

'सोधत सोधत सोधत सीझिआ।
गुर प्रसादि ततु सबु बूझिआ' ॥

गुरु के प्रसाद में आलौकिक शक्ति है, जिस कृपा के बल पर अधिकारी यह कहने का साहस करता है। कि ब्रह्मवादी महा पुरुष जिसे अजन्मा एवम् स्वयम् प्रकाश कहते हैं। तथा जिसको

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नित्य शाश्वत बतलाते हैं। व्यापक होने के कारण सर्वत्र विद्यमान् और सर्व के आत्मा और जन्म जरा वृद्धि ह्रास आदि विकारों से सर्वथा अतीत पुरातन पुरुषोत्तम परमेश्वर को मैं गुरु के प्रसाद से जानता हूं। यह भाव श्वेताश्वतर उपनिषद् के मन्त्र में प्रतिपादन किया है।—

'वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात्'।

'जन्म निरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम्' ॥ श्वे०अ०३ मं०८

मूल मन्त्र में सति नामु से लेकर गुर प्रसादि पर्यन्त सभी परमात्मा के विशेषण हैं। ऐसा स्वीकार कर लेने पर गुर प्रसादि शब्द में द्वन्द्व समास करना आवश्यक प्रतीत होता है।

गुरु शब्द का अर्थ पूज्य शिक्षक उपदेष्टा है। और प्रसाद शब्द का अर्थ शुद्ध है।

सृष्टि के आदि काल में परमात्मा ब्रह्मादि को वेद विद्या का प्रचार करने के लिए ब्रह्म विद्या का उपदेश करता है। इसलिये ईश्वर को ब्रह्मादि का उपदेष्टा माना जाता है। ब्रह्मा को उत्पन्न करके उसे वेद का ज्ञान दिया, इस बात को श्वेताश्वतर के मन्त्र में प्रतिपादन किया है।

'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै' ॥ श्वे० अ०६ मं०१८

"त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्"॥

विराट की स्तुति करते हुये अर्जुन ने परमातमा को पूज्य एवम् गुरु कथन किया है।

इस प्रकार परम्परा से परमात्मा सर्व का परम गुरु और पूज्य है। एवम आश्रम जाति पाति रूप कार्य, मल, और अज्ञान रूप कारण मल से रहित होने के कारण परम पवित्र शुद्ध है।

अयोनि अजन्मा सर्वत्र परिपूर्ण स्वयम्भू परब्रह्म परमेश्वर की प्राप्ति गुरु की कृपा से होती है।

———

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जपु—इति। जप मानसे धातु से। अच् प्रत्यय करने पर जप शब्द सिद्ध होता है।

अन्तःकरण की शुद्धि अथवा किसी प्रयोजन की सिद्धि के लिये ईश्वर के वाचक ओङ्कारादि किसी नाम का वारम्वार उच्चारण एवम् स्मरण करने का नाम जप है।

वाचिक और मानसिक भेद से जप दो प्रकार का है।

वाचिक जप भी उच्चैः और उपांशु भेद से दो प्रकार का है। एवम् मनन और ध्यान भेद से मानसिक जप भी दो प्रकार का है। वैखरी वाणी द्वारा किये हुए ऊँचे जप से उपांशु जप सहस्र गुण अधिक फलदायक है। एवम् उपांशु जप से मानसिफ जप सहस्र गुण अधिक फल देने वाला है।

श्रद्धाभक्ति पूर्वक निरन्तर दीर्घकाल पर्यन्त अभ्यास करने पर जप की सिद्धि होती है।

प्रणव का निरन्तर जप करने से ईश्वर का साक्षात्कार होता है।

'स्वाध्याद् योगमासीत योगात् स्वाध्याय मामनेत्'।

'स्वाध्याय योग सम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते'॥

स्वाध्याय नाम प्रणव जप का है। प्रणव जप से निरन्तर योगाभ्यास करे, और योगाभ्यास के पश्चात् पुनः प्रणव जप करे। इस प्रकार जप योग की सम्पत्ति होने से परमात्मा का साक्षात्कार होता है। इसी भाव से गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने "यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि" इस वचन के द्वारा जप यज्ञ को अपना स्वरूप बतलाया है।

यह जप यज्ञ तवी फलीभूत होता है जब नाम के दश अपराधों को छोड़कर श्रद्धा भक्ति पूर्वक जप का अनुष्ठान किया जाये।

किसी विद्वान् कवि ने नाम के अपराधों की इस प्रकार 'गणना' की है।

'सन्निन्दाऽसति नाम वैभव कथा श्रीशेश्योर्भेद धी'।
अश्रद्धा श्रुति शास्त्र दैशिक गिरा नाम्न्यर्थवादभ्रमः।
नामास्तीति निषिद्ध वृति विहित त्यागौच धर्मान्तरे।
साम्यं नाम्नि शङ्करस्य च हरे नामापराधा दश॥

(१) सत्पुरुषों की निन्दा (२) दुर्जनों के सामने नाम का प्रभाव कहना। (३) विष्णु और शिव में भेद बुद्धि रखना। (३) वेद तथा शास्त्र और गुरु के वचनो में। (६) अश्रद्धा-(७) नाम के प्रभाव में अर्थवाद की कल्पना। (८) नाम के विश्वास पर निषिद्धाचरण करना। (९) विहित कर्मों का परित्याग (१०) परमेश्वर के नाम का अन्य धर्मों के साथ साम्य। ये नाम के दश अपराध हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यहां पर जप शब्द क्रिया और संज्ञा दोनों का वाचक है।

मूल मन्त्र को जपने की आज्ञा है। और आदिसचु जुगादिसचु से आरम्भ होने वाली वाणी की संज्ञा है। इस वाणी के उपदेष्टा श्रीगुरु नानकदेवजी हैं। इस बात की पुष्टि श्रीगुरु रामदास के पौत्र मिहरबान के वचनों से होती है।

इह जप करते पुरखका सच नानक कीआ बखाण।
जगत उधारण कारणे धुरहु होआ फुरमाण॥
यद्यपि जपि मनि सति नामु सदा सति नामु॥

इत्यादि शब्दों में क्रिया वाचक जपि शब्द इकारान्त है, उकारान्त नहीं तथापि जपु कल सुजसु नानक गुर सहजु जोगु जिनि माणिओ। इत्यादि वचनों से जपु शब्द भी क्रिया वाचक मानने में कोई आपत्ति नहीं। जैसे हलन्त्यम्—सूत्र आवृति से दो अर्थों का बोधक होता है तथा राम शब्द एक शेष वृत्ति से अनेक राम का बोधक होता है। वैसे जपु शब्द भी एक शेष अथवा आवृत्ति से क्रिया वाचक तथा संज्ञा का बोधक हो सकता है।

प्रश्न—सतिनामु करता पुरुखु—इत्यादि मूलमन्त्र के द्वारा जिस परमेश्वर के स्वरूप का प्रतिपादन किया है वह ईश्वर क्या अतीत अनागत वर्तमान किसी काल विशेष में रहता है? वा सर्वदा? समाधान—

आदि सचु जुगादि सचु है भी सचु नानक होसी भी सचु॥

शब्दार्थ—आदि सचु—प्रपञ्चकी उत्पत्ति से पहले परमात्मा सत्य था। जुगादि सचु—सत्ययुग त्रेत द्वापर आदि युगों के आरम्भ और सन्धि काल में भी परमेश्वर सत्य था। है भी सचु—जगत् की स्थिति काल में भी परमेश्वर सत्य है। 'नानक' श्री गुरु नानकदेवजी कहते हैं। होसी भी सचु—संसार के प्रलयकाल में भी परमेश्वर सत्य ही होगा।

भावार्थ—अयोनि स्वयम्भू परमेश्वर अपते वास्तविक स्वरूप से सर्वदा सर्वत्र विद्यमान है। भूत भौतिक सृष्टि की उत्पत्ति से पहले एवम् सप्ययुग द्वापरादि युगों के धर्म कर्म तथा विधि विधान से प्रथम भी सत्य था और वर्तमान एवम् भविष्यत् काल में भी परमेश्वर अखण्ड एकरस ही रहेगा।

विशेष व्याख्या—आदि सचु—सर्व की उत्पति से पहले वह परमेश्वर सत्य था।

जुगादि सचु—सम्पूर्ण सूक्ष्म स्थूल प्रपञ्च की उत्पति काल में भी वह परमेश्वर सत्य था।

है भी सचु—सारे संसार की स्थिति काल में वह परमेश्वर सत्य स्वरूप है।

नानक होसी भी सचु—गुरु नानकदेवजी कहते हैं, वह परमेश्वर सम्पूर्ण विश्वके प्रलय-काल में भी सत्य स्वयं भी रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस श्लोक में श्री गुरु नानकदेवजी ने वास्तविक स्वरूप का प्रति पादन किया है। सुखमनी साहब में तथा अन्यत्र गुरु बाणी में वन्दनीय श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज ने इस श्लोक की विस्तृत व्याख्या करते हुए परमेश्वर को सत्य एव परिपूर्ण एवं विघ्न विनाशक बताया है।

"बुझनहार कउ सति सभु होय" नानक सति सति प्रभु सोइ"॥ सुखमनी

"आदि पूरन मधि पूरन अन्ति पूरन परमेसरह"॥

सिमिरंति सन्त सरवत्र रमणं नानक अघ नासन जगदीसुरह पृ० ७०५

आदि जुगादी है भो होगु, ओह अपरंपर करनै जोगु॥

तीनों काल में परमात्मा सत्य एवं परिपूर्ण है। श्री गुरुदेव के इस भाव को उपनिषदों के अनेक मन्त्र व्यक्त करते हैं।

"सदेव सोम्यदेवमग्र आसीदेक मेवाद्वितीयम्"॥

"एक सद विप्रा बहुधा वदन्ति"

* ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते॥

जो पदार्थ देश काल वस्तु से परिछिन्न होता है। वह अनित्य होता है। परमेश्वर त्रिविध परिछेद से रहित होने के कारण नित्य एवं कालातीत है। सावयव पदार्थ में आदि मध्य एवं अन्त की कल्पना की जाती है। परन्तु अखण्ड परमेश्वर में—

() "नान्तं न मध्यं नपुनस्त्वादिं"

'पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप' गीता अ० ११॥ 'तू सदा सलामति निरङ्कार'

'आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगुजुगु एको वेशू'॥ गु०ग्र०जपजी।

इत्यादि गुरुवाणी तथा गीता के वचनो से आदि एवं मध्यकाल की कल्पना नहीं हो सकती, यद्यपि श्री गुरु गोविन्दसिह जी ने 'काल पाइ ब्रह्मा बपु धरा। काल पाइ सिवजीअवतरा'

काल पाई कर विसन प्रकासा। सकल काल का कीआ तमासा॥

तथा मोन दी मदार केते असुनी कुमार केते,

---

* टिप्पणी—अर्थ—वह परब्रह्म परमेश्वर सर्व प्रकार से पूर्ण है यह जगत् भी परमेश्वर से पूर्ण है क्योंकि उस पूर्ण परमेश्वर से यह पूर्ण ही उत्पन्न हुआ है, उस पूर्ण ब्रह्म में से पूर्ण को निकाल लेने पर भी पूर्णब्रह्म ही शेष रहता है।

() टिप्पणी—अर्थ—विश्वरूप परमेश्वर ? मैं आपके न अन्त को देखता हूं तथा न मध्य को और न आदि को ही देखता हूं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अंसा अवतार केते, काल वस भये हैं ।
पीर औ पिकांबर केते गने न परत एते,
भूमि ही ते होए केफेर भूम ही मिलये हैं ॥ दशम ग्रन्थ अकाल स्तुति ॥

'मान से महीप औ दिलीप जैसे छत्रधारी, बड़े अभिमान भुजदण्ड को करत हैं ।'
'दारा से दिलीसर दुरयोधन से मानधारी, भोग भोग भूमि अंत भूमिमें मिलत हैं'

इत्यादि वचनों द्वारा देव दानव यथा यक्ष राक्षण सिद्ध साधक मानव महीप आदि सभी को काल के अधीन बताकर उसी को सर्वोपरि बलवान बतलाया है तथापि—

यक्ष राक्षस सिद्ध साधक मानव महीप आदि सभी को काल के आधीन बता कर उसी को सर्वोपरि बलवान बतलाया है। तथापि-

❋ 'कालोऽस्मि लोक क्षय कृत प्रवृद्धो लोकात् समाहर्तु मिह प्रवृतः'
'दुकालं प्रणासी दयालं सरुपे ॥ सदा अङ्ग संगे अभङ्गं विभूते'

इत्यादि गुरुवाणी कठवल्ली एवं गीता के वचनों से वाहि गुरु परमेश्वर काल का काल सर्व का का भक्षक अपरिमित बलशाली जगत् का स्वामी प्रतीत होता है। इसलिये गुरुदेव ने—

"कोटि ब्रह्मंड को ठाकुरु सुआमी सरब जीआं का दाता रे' ॥ गु० ग्र० पृ० ६१२

कह कर उसके महत्त्व को प्रकट किया है। जब अकाल पुरुष वाहिगुरु समस्त जगत् का निर्माता और नियन्ता है तब काल उसके नियन्त्रण से बाहर कैसे हो सकता है । श्रीगुरु गोविन्दसिंह जी ने अकाल स्तुति में इसे सरल शब्दों में स्पष्ट किया है ।

'कोटि इन्द्र उपेन्द्र बनाये, ब्रह्मा रुद्र उपाये खपाए' ।
लोक चतुर्दस खेल रचाइओ । बहुर आप ही बीच मिलाइओ ॥
'काल रहत अनकाल सरूपा । अलख पुरुख अविगत अवधूता ॥
'सब को काल सभिन को करता । रोग सोग दोखन को हरता' ॥
'एक चित जिह एक छिन धिआइओ । काल फास ने बीच न आइओ' ॥

❋टिप्पणी—अर्थ—हे अर्जुन ? मैं सर्व लोकों का विनाशक बढ़ा हुआ महाकाल हूं । इस समय इन लोकों को नाश करने के लिये प्रवृत्त हुआ हूं ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इत्यादि--इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि केवल एक परमेश्वर ही सर्व का शासक एवं संहारक और नियामक है, वह ही सर्वदा रहने वाला है, काल उसी का बनाया हुआ आज्ञाकारी सेवक है।

इसलिये ईश्वर के सामने उसके बल का कोई महत्त्व नहीं, ईश्वर की सत्ता का सर्वत्र अनुभव करते हुए निज कल्याण के लिये आगे बढ़ने का हमें यत्न करना चाहिये। तुच्छ पदार्थों की प्राप्ति के वास्ते ईश्वर को छोड़ कर भूत प्रेतों की आराधना करनी कदापि उचित नहीं, क्योंकि उपासक जिस देवता की उपासना करता है, अन्त में उसी को प्राप्त होता है। यह बात गुरुबाणी तथा गीता से निर्णीत है।

'भैरउ भूत सीतला धावै। खर वाहनु ओहु छारु उडावै' गु०ग्र०पृ०८७४

जैसा सेवै तैसो होइ। गु.ग्र.पृ.२२४ तथा यान्ति देवव्रता देवान् पितृन् यान्ति पितृव्रताः

भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥ गीता अ० ९

जब कि ऐसी बात निश्चित है तब भोग एवं मोक्ष के दाता ईश्वर को छोड़कर हम किसी अन्य देवता की शरण क्यों ग्रहण करें। जिज्ञासु को अनन्य भाव से केवल ईश्वर की शरण में जाना चाहिये। इस बात को समझाने के लिये श्री गुरु नानक देव जी ने जपजी के आरम्भ में आदि सचु के द्वारा सर्व प्रथम परमेश्वर के परमार्थ स्वरूप का प्रतिपादन किया है और बन्धु मित्र पुत्र कलत्रादि की विशेष ममता को छोड़कर ईश्वर की शरण में जाने की प्रेरणा भी की है। इस बात को अन्यत्र श्री गुरु अर्जुनदेवजी महाराज ने भी निरूपण किया है।

'किसही धड़ा कीआ मित्र सुत नालि भाई'
'किस ही धड़ा कीआ कुड़म सके नालि जवाई'।
किस ही धड़ा कीआ सिकदार चउधरी नालि आपणै सुआई॥
हमरा धड़ा हरि रहिआ समाई हम हरि सिउ धड़ा कीआ मेरी हरि टेक॥

इत्यादि—यद्यपि श्लोक की पूर्वोक्त व्याख्या निर्दोष है। तथापि गुरुवाणी की व्यापकता एवम् गम्भीरता को स्पष्ट करने के विचार से दूसरी व्याख्या करता हूं।

'आदि सचु-इति, आदि शब्द पूर्व काल एवं हेतु का बोधक है।

'प्रथममादीयते गृह्यते' इति आदि। आङ् पूर्वक दा धातु से' कि प्रत्यय करने से आदि शब्द बनता है। अस भुवि धातु से शतृ प्रत्यय करने के बाद 'तत्र साधु' से यत् प्रत्यय करने पर सत्य शब्द सिद्ध होता है। जिस पदार्थ में कभी किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता, तीनों कालों में एक रस अपने स्वरूप से व्यवस्थित रहता है उसे ही सत्य शब्द से कहा जाता है। आदि और सच शब्द के मध्य में जो सप्तमी विभक्ति थी समास के कारण उसका लोप हुआ है। श्लोक में आदि के स्थान पर आद और सत्य के स्थान पर सच्च का उच्चारण किया जाताहै। दोनों के अर्थ में कोई अन्तर नहीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'है भी सचु'—में वर्तमान और 'नानक होसीभी सचु' में भविष्यत् क्रिया का प्रयोग होने से 'आदि सचु' और जुगादि सचु में भूत क्रिया का अध्याहार करना चाहिये। 'जुगादि' इति युज्यते इति युगः युजिर् योगे से युग शब्द बनता है।

"यानाद्यङ्गे युगः पुंसि युगं युगमे कृतादिषु"

इस कोश के आधार पर युग शब्द सत्य युग त्रेता द्वापर कलियुग के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जकार और यकार का उच्चारण स्थान एक होने से युग के स्थान पर जुग का उच्चारण होता है। जुगादि शब्द में षष्ठी तत्पुरुष और बहुव्रीहि समास है। जुगों का आदि जुगादि इस समास में आदि शब्द से निखिल स्थूल सूक्ष्म प्रपञ्च का हेतु अनेक होने की ईश्वरीय इच्छा का ग्रहण है। सृष्टि के पूर्व काल में परमात्मा को ऐसी इच्छा हुई कि मैं एक से अनेक रूप हो जाऊँ। इस इच्छा का जपजी और मारु राग में श्रीगुरुदेव ने स्वयं उल्लेख किया है।

'कीता पसाउ एको कवाउ। तिसते होइ लख दरीआउ'॥

'खंड दीप सभि लोआ। एक कवावै ते सभि होआ'॥

इन वचनों से स्पष्ट है कि ईश्वरीय इच्छा सम्पूर्ण प्रपञ्च का कारण है। कुछ लोगों ने युग शब्द से पृथिवी, जल, तेज, वायु, को लिया है, और उन्हों का आदि आकाश माना है।

'एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत आकाशाद् वायुर्वायोरग्नि

रग्नेराप-अद्भ्यः पृथिवी'॥

इस तैतरीय श्रुति के आधार पर पूर्वोक्त अर्थ भी उचित है, युग हैं आदि जिसके इस बहुव्रीहि समास में युगादि नाम प्रपञ्च का है जैसे पीताम्बर शब्द से पीत बस्त्रों वाला पुरुष लिया जाता है, वैसे ही जुगादि पद में अन्य पदार्थ प्रपञ्च का ग्रहण करना चाहिए। पूर्वोक्त विवेचन से जुगादि पद काल सहित सम्पूर्ण सूक्ष्म स्थूल जगत का बोधक है। पूर्वोक्त विचार के पश्चात् आदिसचु का अर्थ इस प्रकार है, जिस तरह मिथ्या रजतादि पदार्थों की उत्पत्ति से पूर्वकाल में शुक्ति आदि अधिष्ठान सत्य है। वैसे ही धूम पहाड़ रूप समस्त संसार की उत्पत्ति से आदि नाम पूर्वकाल में एक परमेश्वर ही सत्य था।

"सर्वकला भरपूर दिसै जतकता"॥ गु० ग्र० पृ० ६६५

'जलि थलि महीअलि पूरिआ सुआमी सिरजणहारु।

'अनिक भांति होइ पसरिआ नानक एकंकारु'॥ गु० ग्र० पृ०२९६

एक परमात्मा ही अनेक रूपों में हमें दिखाई दे रहा है, उसके अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ की अपनी कोई सत्ता नहीं, सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् अनित्य एवं अस्थिर है। इस बात को श्रीगुरु देव ने अनेक शब्दों में स्पष्ट किया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"इहु जगु धूए का पहार। तै साचा मानिआ किह विचारि" ॥गु.ग्र. पृ.११८७

'रे नर इह साची जीअ धारि। सगल जगतु है जैसे सुपना बिनसत लगत न बार'

मिरत मंडल जगु साजिआ जिउ बालू घर बार।

बिनसत बार न लागई जिउ कागद बूंदार ॥गु.ग्र. पृ. ८०८

जुगादि सचु–का भावार्थ यह है। कि मिथ्या रजत के समान रजत का उत्पत्तिकाल भी अधिष्ठान से भिन्न न होने से रजतादि मिथ्या पदार्थों के उत्पत्तिकाल को जैसे शुक्ति आदिक अधिष्ठान रूप माना जाता है, वैसे ही सूक्ष्म स्थूल निखिल प्रपञ्च के सहित 'जुगादि' नाम सम्पूर्ण संसार का उत्पति काल भी 'सचु' नाम परब्रह्म स्वरूप ही था। उपादान कारण परमेश्वर से भिन्न और कोई वस्तु संसार में नहीं है। इसे आप गुरुबाणी से भली भाँति जान सकते हैं।

'ए नेत्रहु मेरिहो हरि तुम महि जोति धरी हरि बिनु अवरु न देखहु कोई'।

हरि बिनु अवरु न देखहु कोई नदरी हरि निहालिआ॥ ए विखु संसार

तुम देखदे एहु हरि का रूपु है हरि रूपु नदरी आइआ।

गुरु प्रसादी बुझिआ जा वेखां हरि इक है हरि बिनु अवरु न कोई ॥ गु.ग्र.पृ.६२२

इत्यादि शब्दों से कार्य कारण का अभेद स्पष्ट प्रतीत होता है। उपादान कारण से कार्य यदि अभिन्न न होता तब श्री गुरुदेव जी विश्व को परब्रह्म कैसे कहते। यहाँ पर मूल कारण का ज्ञान कराना ही अभिप्रेत है। जैसे मृतिका और स्वर्ण का ज्ञान होने से घटादि एवं कटक कुण्डल नूपुर आदि कार्य वर्ग को जान लेते हैं, वैसे ही तीनों कालों में स्थिर सत्य व्यापक परमेश्वर को जान लेने पर उसमें कल्पित स्थावर जङ्गमात्मक समस्त संसार को जानने में कोई कठिनाई नहीं होती। क्योंकि कल्पित पदार्थ अधिष्ठान स्वरूप ही होता है। इस प्रकार 'जुगादि सचु' पाठ से भूतकाल और उस काल में उत्पन्न होने वाले सभी पदार्थों को ब्रह्मरूप कहकर वर्तमान काल और वर्तमान में होने वाले पदार्थोंको हरि स्वरूप सिद्ध करते हैं। है भी सचु—इति हैभी शब्द वर्तमान काल और वर्तमान में होने वाले पदार्थों का बोधक है। 'सचु' शब्द सत्य स्वरूप ईश्वर का वाचक है। भावार्थ यह है जैसे—मिथ्या रजत और उसका स्थितिकाल शुक्ति रूप है। वैसे ही वर्तमान काल के सहित वर्तमान में होने वाले सभी पदार्थ परमेश्वर स्वरूप हैं। एवं 'होसी भी सचु' में होसी शब्द भविष्यत् काल और उसमें होने वाले सर्व के प्रलय का बोधक है। भविष्यति के स्थान पर होसी शब्द का प्रयोग है। जैसे—मिथ्या रजत का विनाश शुक्ति स्वरूप माना जाता है। वैसे ही भविष्यत्, काल के सहित भविष्यत्, काल में होने वाला प्रलय भी परमेश्वर स्वरूप है।

'सूखम स्थूल सगल भगवान। नानक गुरुमुखि ब्रह्मु पछान'॥ गु.ग्र.पृ.२६६

पहली व्याख्या द्वारा तीनों कालों में परमेश्वर के अस्तित्व को सिद्ध किया है और दूसरी व्याख्या में परमेश्वर को सर्वाधिष्ठान एवं अद्वितीयत्व का प्रतिपादन किया है यही दोनों में परस्पर विलक्षणता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न—जिस व्यापक परमेश्वर के स्वरूप का आदि सचु जुगादि सचु—के द्वारा आपने निरूपण किया है उसकी प्राप्ति क्या शारीदिक पवित्रता और लौकिक निपुणता तथा वाणी के संयम से हो सकती है ?

उत्तर में पूर्वोक्त साधनों का निषेध करके ईश्वरीय आज्ञा में चलने का गुरुजी उपदेश करते हैं।

मूल— सोचै सोचि न होवई जे सोची लखवार ।
चुपै चुप न होवई जे लाइ रहा लिवतार ॥
भुखिआ भुख न उत्तरी जे वंना पुरीआ भार ।
सहस सियाणपा लख होहि त इक न चलै नालि ॥
किव सचिआरा होईऐ किव कूड़ै तुटै पालि ।
हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि ॥१॥

शब्दार्थ —'सोचै' शारीरिक पवित्रता से 'सोची न होवई' राग द्वेषसे अन्तःकरणकी शुद्धि नहीं होती। अथवा—'सोचै' शुभ कर्म किये विना केवल चिन्तन करने मात्र से 'सोचि न होवई' मानसिक पवित्रता नहीं होती। 'जे सोची लखवार' यदि लाखों वार भी चिन्तन किया जाये 'चुपै' वाणी के संयम मात्रसे 'चुपन होवई' संकल्प विकल्पों से मनको शान्ति नहीं मिलती। जे लाए रहा लिवतार' यदि तैल धारा के समान निरवच्छिन्नभाव से अथवा—वक (वगुले) के समान अविचल भाव से समाधि लगाकर भी वैठा रहे, 'भुखिया' भूखे रहने से अर्थात् कृच्छ् चान्द्रायणादि कठिन व्रतों को करनेसे 'भुखन उतरी' तृष्णा की भूख निवृत्त नहीं होती। 'जे' यदि 'पुरीआ' इन्द्रादि अनेक पुरियों के 'वंना भार' दिव्य पदार्थों का भार बाँध लिया जाये। 'सहस सिआणपा लख होहि' यदि पुरुष के पास हजारों और लाखों सांसारिक निपुणताएँ भी हों तो भी 'त इक न चलै नालि' ईश्वर की प्राप्ति में एक भी निपुणता सहायक नहीं होती। 'किव सचिआरा होईऐ' हम किस प्रकार सच्चे अर्थात् सत्य को धारण करने वाले होसकते हैं ? 'किव कूड़ै तुटै पालि' और किस प्रकार झूठ की अहन्ता और ममतारूप भित्ति अथवा पर्दा टूट सकता है ? उत्तर में गुरुजी कहते हैं। 'हुकमि रजाई चलणा' जो पुरुष 'रजाई' परमेश्वर की 'हुकम' आज्ञा में चलता है। अर्थात प्राप्त हुये दुःख सुख में विचलित नहीं होता और ईश्वरेच्छा में सर्वदा प्रसन्न रहता है उस स्थिर बुद्धि पुरुष की अहंता ममता रूप भित्ति टूट जाती है। अर्थात् ईश्वर की आज्ञा में चलने से यह जीव सच्चा होता है और प्रारब्ध के अनुसार चलने से झूठ की दीवार टूट जाती है। अहंता के नाश हो जाने से पुरुष सत्यको धारण करने वाला हो जाता है। 'नानक लिखिया नालि' श्री गुरु नानक देवजी कहते हैं। प्रारब्ध रूप हुकम जीव के साथ ही ईश्वर ने लिख दिया है उसे कोई न्यून वा अधिक नहीं कर सकता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भावार्थ—सिद्ध मण्डली के प्रश्न को सुनकर श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि शरीर की पवित्रता से मनकी शुद्धि जो ईश्वर प्राप्ति का मुख्य साधन है वह नहीं प्राप्त होती। यदि लाखों बार भी जल और मृतिका से शरीर को शुद्ध किया जाये।

यथा— मनकी मैल न उत्तरै इह विधि जे लख जतन कराए।
सोच करै दिनसु अरु राति। मनकी मैलु न तनते जाति॥

वाणी का संयम (मौन धारण करने मात्र से भी मन की एकाग्रता और शुद्धि नहीं होती। चाहे आजीवन निरन्तर वगुले के समान समाधि लगाकर अविचल भाव से बैठा रहे। एवम्—भूखा रहने से अर्थात् कृच्छ्चान्द्रायण आदि व्रतों के करने से मन की भूख नहीं दूर होती। यदि तपोबल से अमरावती से लेकर अनेक पुरियों के पदार्थों को भी एकत्रित करलिया जाए अर्थात् तपस्याके प्रभाव से तीनों लोकों का राज्य प्राप्त करके वहाँ पर सभी प्रकार के दिव्य पदार्थों का उपभोग भी किया जाये तो भी मनकी तृष्णा शान्त नहीं होती।

'भुखिया भुख न उत्तरै गली भुख न जाए'।
'नानक भुखा ता रजै जां गुण कहि गुणी समाए'॥

व्यवहारिक और शास्त्रीय हजारों तथा लाखों ही निपुणताएँ मनुष्य के पास क्यों न हों परन्तु ईश्वर प्राप्ति में कोई भी सहायक नहीं होती। तथा परलोक में जीव के साथ एक भी नही चलती।

यथा—संजम सहस सियाणपा पिआरे। इक न चली नालि॥ गु० ग्र० सोरठ महला ५

यदि लोक प्रसिद्ध साधनों में से एकभी साधन कल्याण के मार्ग में लाभकारी नहीं। तब यह जीव किस प्रकार सत्यनिष्ठ सत्यवादी सच्चा हो सकता है। और किस प्रकार कूड़की भित्ति को तोड़ सकता है ? इसके उत्तर में श्री गुरुदेवजी कहते हैं ? कि सर्व शक्तिमान् ईश्वर की आज्ञा में चलने से यह जीव सच्चा अर्थात सत्य निष्ठा वाला होता है। और प्रारब्धानुसार चलने से कूड़की भित्ति टूटती है।

प्रश्न— पूज्य गुरु देव ? 'आदि सचु जुगादि सचु' इस श्लोक के द्वारा आप ने जिस अविनाशी सर्व व्यापक परमेश्वर के स्वरूप का प्रतिपादन किया है। क्या उसकी प्राप्ति के लिये अधिकारी पुरुष को शरीर की पवित्रता तथा मौन का पालन करना एवं भूखा प्यासा रहना और लौकिक निपुणता का सम्पादन करना आवश्यक है ? इसके उत्तर में श्री गुरु नानक देवजी कहते हैं।

'सोचै सोचि न होवई'— इति

विशेष व्याख्या—शरीर की शुद्धि से मन की पवित्रता नहीं हो सकती। यदि शरीर को लाखो बार भी धो डाले तो भी अन्तःकरण के राग द्वेषादि विकार दूर नहीं होते। बाहर की शुद्धि केवल शरीर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की स्वच्छता का साधन है । अन्तःकरण की पवित्रता में उसका कोई उपयोग नहीं । शरीर की शुद्धि यदि मन को शुद्ध कर सकती तब भक्ति और शमदमादि साधनों के विधान करने की क्या आवश्यकता थी। इसलिये श्री गुरु अर्जुन देव जी ने ईश्वर भक्ति को मन की शुद्धि का हेतु बताया है ।

'हरि की भक्ति करहु मन मीत । निर्मल होइ तुम्हारो चीतु' । सुखमनी

भावार्थ यह है कि शारीरिक पवित्रता से मानसिक शुद्धि कदापि नहीं हो सकती। भले ही कोई मनुष्य मानसिक पवित्रता के लिये लाखों बार शरीर को धो डाले, इसी भाव को —

जे सोची लखवार—इस वचन से प्रकट किया है। श्री गुरु अर्जुन देव जी ने सुखमनी में इसी भाव को व्यक्त किया है।

'सोच करै दिनसु अरुराति । मनकी मैलु न तन ते जाति' ॥

एवम 'जलि धोवै बहु देहि अनीति । सुध कहा होइ काची भीति' ॥

यहाँ पर शरीर की स्वच्छता के साधन स्नान आदि का खण्डन अभिप्रेत नहीं। क्योंकि वह तो स्वास्थ्य का मुख्य साधन होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति को उपादेय है। किन्तु शारीरिक शुद्धि ही मानसिक पवित्रता का एक मात्र साधन है। इस भ्रान्त धारणा का खण्डन किया है। जीव हत्या के भय से जिनलोगों के यहाँ स्नानादि वर्जित । उन्हों के विचारों की हैं गुरुजीने आलोचना की है। जीव का रक्षक केवल एक परमेश्वर है। इसे बताते हुये जल से प्राप्त होने वाले लाभों की ओर संकेत करके पुण्यकाल तथा प्रतिदिन प्रातः स्नान करने का आदेश दिया है।

'जीआं मारि जीवाले सोई अवरुन कोई रखै' ।
'दान हुते इसनानाहु वंबे भसु पई सिरि खुथै' ।
पाणी बिचहु रतन उपंने मेरु किया माधाणी ॥
अठ सठि तीरथ देवी थापे पुरवी लगै वाणी ॥ गु०ग्र०पृ०१५०

एवं 'करि इसनानु सिमरि प्रभु अपना मन तन भये आरोगा' गु ग्रपृ ६११

महा मुनि पतञ्जलि ने शारीरिक एवं मानसिक भेद से पवित्रता दो प्रकार की स्वीकार की है शरीर की शुद्धि से मन को प्रसन्नता प्राप्त होती है। और अशुद्धि से विक्षेप एवं चञ्चलता । रोम कूपों एवम् चक्षु मुख नासिकादि से प्रतिदिन मल निकलता है। जिसके स्पर्श से एवम् मलिन वस्त्रों के धारण करने से तथा मलिन पुरुषों के सहवास से शरीर अपवित्र हो जाता है । शरीर अशुद्धि का स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अस्वस्थ होने से मनमें व्याकुलता का बढ़ना स्वाभाविक है। मानसिक अशान्ति से किसी भी कार्य को करने की इच्छा नहीं होती। मन की प्रसन्नता के लिये शारीरिक शुद्धि आवश्यक है। आयुर्वैदिक रीति से शरीर की शुद्धि से नेत्रों की ज्योति अङ्ग प्रत्यङ्ग में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नवीनता एवं स्फुरित त्वचा में कोमलता एवं चमक दमक अधिक होती है। कार्य करने के लिये चित्त में उत्साह शरीर में थकावट का अभाव भोजन में रुचि नींद का आना इत्यादि जो कि स्वास्थ्य के लिये परम उपयोगी है। वह सभी विशेष यत्न के बिना स्नानादि से प्राप्त होते हैं। इसके विपरीत जो लोग दन्तधावन स्नानादि से शरीर को शुद्ध नहीं करते किन्तु कटुभाषण मलिन वस्त्रों का धारण, नीच पुरुषों का सहवास' सूर्योदय, और अस्तकाल में शयन करते हैं। वह श्रीमान् होते हुये भी स्वास्थ्य सुख सम्पत्ति से हाथ धो बैठते हैं। यह बात किसी नीतिकार ने इस सूक्ति में प्रतिपादन की है।

कुचैलिनं दन्त मलावधारिणं बह्वाशिनं नित्य कठोर भाषिणम् ।
सूर्योदये चास्तमये च शायिनं विमुंचति श्रीरपि चक्रपाणिनम् ॥

श्री गुरु नानक देव जी ने अशुचि पुरुषों की अच्छी भतर्सना की है—

'सदा कुचील रहहि दिनु राती मथे टिके नाहीं' ॥ गु० ग्र० पृ० १४६

मनुष्य के मन में राग द्वेष ईर्ष्या असूया अपकार करने की इच्छा, अमर्ष ये छः मल प्रायः रहते हैं। जिन्होंके रहने से मन अशुद्ध हो जाता है। शरीर से सुदृढ़ एवं स्वस्थ होने पर अशुद्ध मन कोई न कोई उपद्रव करता ही रहता है। मलेरिया से पीड़ित रोगी जैसे अति शीतलता का अनुभव करता है। वैसे ही राग द्वेषादि कलेशों से जकड़ा हुआ पुरुष जड़ता का अनुभव करता है। उचित और अनुचित का विचार किये विना स्वार्थ साधन में तत्पर रहता है। दुनियाँ भर के पदार्थों को जुटा देन पर भी विकृत मन से मनुष्य को शान्ति नहीं मिल सकती। क्योंकि पदार्थ संग्रह से। मन में भोगों की अधिक लालसा उत्पन्न होती है। भोगों की विशेष इच्छा मन की अशुद्धि का ही बोधन करती है। भोगों को भोगने के लिये मनुष्यों की जैसे ही अधिक प्रवृति होती है। वैसे ही तृप्ति उनसे कोसों दूर भागती है। अतृप्ति से मन विक्षिप्त और अशान्त हो जाता है।

'अशान्तस्य कुतः सुखम्' एवं अनिक भोग बिखिआ के करै।
नहि त्रिपतावै खपि खपि मरै॥ सुखमनी

महामुनि पतञ्जलि ने पूर्वोक्त मल की निवृत्ति के लिये चार भावनाओं का उपदेश किया है। इनके सेवन से मन की अशुद्धि दूर हो जाती है।

' मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुख दुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातः चित्त प्रसादनम्' ॥ योग सूत्र ३३समाधिपाद ।

सुखी के साथ मित्रता, दुःखी के ऊपर करुणा, पुण्यी को देखकर प्रसन्नता, पापी के प्रति उदासीनता की भावना का अभ्यास करने से मन निर्मल हो जाता है। इस प्रकार मैत्री भावना के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करने से ईर्ष्या और ईर्ष्या के कारण अपने सुख के लिये विहित निषिद्ध कर्मों को करने की तीव्र इच्छा रूप राग मल निवृत हो जाता है। करुणा की भावना करने से घृणा के कारण उत्पन्न हुई दूसरे का अनिष्ट करने की इच्छा और द्वेष मल निवृत्त होता है।

* टिप्पणी— आगे लिखे शब्दों में पूर्वोक्त दोनों भावनाओं का पूजनीय श्री गुरुदेवजी ने कितना सरल एवम् सुन्दर यथाक्रम से निरूपण किया है—

आवहु सज्जणा हैं। देखा दरसनु तेरा राम।

घरि आपनड़ै खड़ी तका मै मन चाउ घनेरा राम॥ गु०ग्र० पृ० ७६४

जगतु जलंदा रखिलै आपणी किरपा धारि।

जितु दुआरै उबरै तितै लैहु उबारि॥ गु०ग्र० पृ० ८५३

मुदिता की भावना से असूया रूप और असहिष्णुता की निवृत्ति होती है। मुदिता भावना का श्री गुरुदेवजी ने उल्लेख किया हैं।

'नाम धियाइनि साजना जनम पदारथु जीति'।

नानक धर्म ऐसे चवहि कीतो भवनु पुनीत॥ गु०ग्र० पृ० १४२५

उदासीनता की भावना से अमर्ष मल की निवृत्ति होती है। कबीर जी के इस वचन से उपेक्षा की भावना व्यक्त होती है।

'कबीर हाड़ जरे जिउ लाकरी केस जरे जिउ घास'।

'इह जगु जरता देखिकै भयो कबीर उदासु'॥ गु०ग्र० पृ० १३६६

इसलिये प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि पहिले मैत्री करुणादि भावनाओं से मन के दुर्भावों को दूर करे। तथा शरीर की वारम्बार शुद्धि करने से मन शुद्ध हो जायेगा इस भ्रान्त धारणा को त्यागने का प्रयत्न करे। क्योंकि मन तो भीतर की वस्तु है, उसे जल मट्टी से कैसे पवित्र कर सकते है। मनकी शुद्धि के लिये भावों को शुद्ध करने की आवश्यकता है। दूषित भावों वाला यदि आजीवन गंगा जल और मट्टी से शरीर की शुद्धि करता रहे तो भी पवित्र नहीं हो सकती। इसी भाव को किसी अन्य विद्वान् ने भी व्यक्त किया है।

'शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यंतरमेवच—

तथा 'मृज्जलाभ्यां स्मृतं वाह्य भाव शुद्धिस्तथान्तरम्'।

'गंगा तोयेन कृतस्नेन मृदभारैर्नगोपमैः॥

'आमृत्योश्चाचरन् शौचं भाव दुष्टो न शुध्यतिः'॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भावार्थ यह है कि शारीरिक और मानसिक भेद से शुद्धि दो प्रकार की है। मट्टी और जल से शरीर की शुद्धि,और पवित्र विचारों से मनकी शुद्धि होती है एवं गङ्गा जल से मिट्टी के द्वारा सम्पूर्ण जीवन भी शरीर को शुद्ध करता रहे तो भी पवित्र नहीं हो सकता, यदि मनुष्य के पवित्र विच नहीं हैं।

किसी माननीय विद्वान् ने 'सोचै सोचि न होवई' इस वचन की ऐसी व्याख्या की है। "सोचै" निष्काम धर्म पापों का निवर्तक है ऐसा चिन्तन करने से 'सोचि न होवई' अन्तःकरण की पवित्रता नहीं होती। 'जे सोची लखवार' यदि अनेक बार भी चिन्तन किया जाये तो भी निष्काम कर्मों के किये बिना चित्त की शुद्धि होना कठिन है। जैसे भोजन के खाने और जल के पीने से भूख एवं प्यास की निवृत्ति होती है। वैसे निष्काम धर्म के अनुष्ठान से ही मन की पवित्रता होती है। निष्काम धर्मों में मुख्य हरि भक्ति है।

चित्त शुद्धि के लिये हरिभक्ति का करना परमावश्यक है।

'हरि की भक्ति करहु मन मीत। निर्मल होइ तुमारो चीतु' सुखमनी

भक्ति से जब अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है तब परमेश्वर प्रसन्न होकर जिज्ञासु के हृदय में ज्ञान का दीपक जला देता है। जिसके प्रकाश से अज्ञान अन्धकार में प्राप्त होने वाले सभी दुःख दूर होजाते हैं और प्रतिदिन भगवान् की समीपता और सुख का अनुभव होने लगता है।

'तेषां सतत युक्तानां भजतां प्रीति पूर्वकम्' ॥

'ददामि बुद्धि योगं तं येन मामुपयान्ति ते' ॥ गीता अ० १०

अर्थात् प्रीति पूर्वक प्रतिदिन भक्ति करने वाले भक्तों को मैं ज्ञान योग प्रदान करता हूं जिस से वे लोग मेरी समीपता को प्राप्त हो जाते हैं।

'सोचै सोचिन होवई'॥ इस पंक्ति की तीसरी व्याख्या—'सोचै' नित्य एवम् अनित्य वस्तु का सम्न्बध है। ऐसा चिन्तन करने से'सोचि न होवई' नित्य और अनित्य वस्तु का विवेक नहीं होता। 'जे सोची लखवार' यदि ऐसा चिन्तन लाख वार भी किया जाये। जैसे केवल मनके मोदकों से तृप्ति नहीं होती वैसे ही केवल चिन्तन करने से कोई कार्य सिद्ध नहीं होता किन्तु उसके उपयोगी सतत प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

अथवा 'सोचै' मन्द वैराग्य से 'सोचि न होवई' तीव्रतर वैराग्य नहीं होता।

'जे सोची लखवार' यदि लाख वार भी मन्द वैराग्य किया जाये।

जब साधक स्थिर बुद्धि से विषयों में दोष चिन्तन करता है, तब उसके मन में वैराग्य उत्पन्न होता है। विषयों में दोष चिन्तन का स्वरूप गुरुवाणी में गुरुदेवजी ने अनेक शब्दों में प्रति पादन किया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रे नर काहे पपोरहु देही। ऊडि जाइगो धूम बादरो इकु भाजहु रामु सनेही ॥ पृ०६०६

सुपने जिउ धन पछानु काहे परि करत मानु,
बारू की भीति जैसे वसुधा को राजु है, पृ०१३५२
जल की भीति पवन का थम्भा रक्त बूंद का गारा।
हाड़ मास नाड़ी को पिंजरु पंखी बसै विचारा ॥ गु०ग्रं०पृ० ६५६

पूर्वोक्त सभी अर्थ प्रकरण के उपयोगी हैं। क्योंकि मूलमन्त्र तथा आदि सच्चु में जिस अद्वितीय परमात्मा का प्रतिपादन किया है। उसके अधिकारी के धर्मोंका प्रतिपादन करना आवश्यक था। इस प्रकार वैराग्य और विवेक का निरूपण करके अब शम दमादि षट् सम्पत्ति का निरूपण करते हैं।

'चुपै चुप न होवई' चुपै=पद वाणी के निरोध का बोधक है। लिवपद समाधि का वाचक है। तारपद समाधि की अखंडता का बोधक है। पंक्ति का अर्थ इस प्रकार है— 'चुपै' वाक पादादि कर्मेन्द्रियों के रोकने मात्र से 'चुप न होवई' मन को रोक नहीं सकते। अर्थात् हठ से कर्मेन्द्रियों के रोकने से मन का निरोध नहीं होता। 'जे लाइ रहा लिवतार'

'जे' यदि कोई पुरुष हठ से कर्मेन्द्रियो को रोक कर तैल धारा के समान अखण्ड एक रस नेत्रों को बन्द करना, रूप समाधि को लगा कर बगुले के समान निरन्तर बैठा रहे तो भी मन का निरोध नहीं होता। मन का निरोध तो विवेक और वैराग्य आदि साधनों से होता है। वाह्य आडम्ब को भगवान् श्रीकृष्ण तथा श्री गुरु गोविन्दसिंह जी ने मिथ्याचार की संज्ञा दी है।

'कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्'।
'इन्द्रियार्थान् विमूढ़ात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥ गी०अ० ३

जो अज्ञानी कर्मेन्द्रियों को हठ से रोक कर मन से इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करता है वह मिथ्याचारी है।

'कहाँ भयो जो दोउ लोचन मूंदकै बैठ रहियो बक धिआन लगायो'।
'न्हात फिरयो लिये सात समुद्रन लोक गयो परलोक गवाइयो'॥

मन के रोकने को शम और बाह्येन्द्रियों के रोकने को दम कहते हैं। दो का उल्लेख कर देने से शेष उपरति तितिक्षा श्रद्धा आदि का भी ग्रहण कर लेना चाहिये। कार्य सम्पादन के लिये ईश्वर ने हमें दश इन्द्रिय दिये हैं। जिनसे हम कर्म करते हैं, उन्हें कर्मेन्द्रिय, और जिन्हों से हम ज्ञान प्राप्त करते हैं उन्हें ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बोलना, आदान, प्रदान, गमनागमन, मूत्र, पुरीष, उत्सर्जनादि कार्य कर्मेन्द्रियों से किये जाते हैं। एवम्, दर्शन, श्रवण, स्वादु, अस्वादु, सुगन्धि, दुर्गन्धि, मृदुल, कठोरतादि का प्रत्यक्ष ज्ञानेन्द्रियों से होता है। इन सब का शिरोमणि मन है, प्रत्येक इन्द्रिय मन के साथ मिलकर ही अपने विषय को ग्रहण करता है। जिसको मन का संयोग प्राप्त नहीं होता उस इन्द्रिय से यथार्थ ज्ञान भी नहीं होता, मेरा मन दूसरी ओर गया था, इसलिये मैंने न आपका शब्द सुना और न ही आपकी ओर देखा। इस उक्ति से स्पष्ट प्रतीत होता है कि मन के रुक जाने से सभी इन्द्रिय अपने २ कार्य करने में असफल हो जाते हैं। जब कि लौकिक ज्ञान के लिये मन का समाहित और तत् तत् इन्द्रियों के साथ सम्बन्धित होना आवश्यक है। तब परम सूक्ष्म आत्मज्ञान के लिये मन को शुद्ध एवं शान्त करने की कितनी आवश्यकता है। इसे विचारशील अच्छी प्रकार समझ सकते हैं। मन और इन्द्रिय के वशीकरण से ही ईश्वर का साक्षात्कार होता है।

'टुकु दमु करारी जउ करहु हाजिर हजूरि खुदाइ'। गु०ग्र० ७२७

'कहि रविदास हाथ पै नेरै सहजे होइ सु होइ ॥

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः॥ तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत् मत्परः वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ गीता अ० २

अर्थात् मनही बन्ध और मोक्ष का कारण है। शुद्ध मन मोक्ष का हेतु है और अशुद्ध मन संसार बन्धन का कारण है इसलिए इन्द्रिय और मन को वश में करके ईश्वर परायण होना चाहिये तभी हमारी बुद्धि स्थिर हो सकती है। स्थिर बुद्धि में ही ईश्वर का साक्षात्कार होता है।

'भुखिआ भुख न उतरी जे बंना पुरीया भार' ॥

इस वाक्य के द्वारा श्री गुरुदेव जी ने मुमुक्षुता—अर्थात् मुक्ति की इच्छा का प्रतिपादन किया है। यहां पर 'भुखिआ' पद तृष्णालु का बोधक है। और भुख पद कामना का वाचक है।

अर्थ इस प्रकार है— 'भुखिआ' इस लोक और परलोक के आने जाने वाले विषयों को भोगने तथा संग्रह करने से तृष्णालु पुरुषों की—'भुख न उतरी' इच्छा निवृत्त नहीं होती। 'जे बंना पुरीया भार' यदि अनेक लोकों के दिव्य भोगों के समूह को एकत्रित करके भी आप उनके सामने रखदें तो भी तृष्णालु पुरुषों को पदार्थों की प्राप्ति तथा भोगों के भोगने से तृप्ति नहीं होती। जैसे घी डालने पर अग्नि अधिक प्रज्वलित होता है, वैसे ही संसार के पदार्थों को भोगने से मनुष्य की कामनाएँ शान्त नहीं होतीं, अपितु उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होती हैं। मनुस्मृति में इसी भाव को दिखाया है।

'न जातु कामःकामानामुपभोगेन शाम्यति' ॥

'हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते' ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पदार्थों की इच्छा भोगने से शान्त नहीं होती अग्नि में घी डालने के सदृश और अधिक बढ़ती है। मनुष्य का मन कामनाओं का सागर है। एक कामना की पूर्ति के बाद दूसरी इच्छा उत्पन्न होती है। ऐसे ही आजीवन इच्छाओं की पूर्ति करने में लगा रहता है। आज तक संसार में असंख्य मनुष्य हुए और उन लोगों ने कामना रूपी सागर को भरने के लिये महान प्रयत्न किये परन्तु असफल होकर विवशता से उन्हें कहना पड़ा।

'समुद्र इवहि कामः, न एव हि कामस्य अन्तोऽस्ति'।

पूज्य श्री गुरुदेवजी का यही सिद्धान्त है।

विखिआ महि किनही तृप्ति न पाई'
'जिउ पावकु ईधनि नहीं ध्रापै विनु हरि कहाँ अघाई' ॥ गुरु ग्र० पृ० ६७२

महर्षि वेद व्यास जी ने—

'परिणाम ताप संस्कार दुःखैर्गुण वृति विरोधाच्च दुखमेव सर्वं विवेकीनाम्' ॥

इस सूत्र के भाष्य में लिखा है, जो व्यक्ति यह समझता है कि लौकिक पदार्थों के भोगने से मन शान्त और इन्द्रिय तृप्त हो जाते हैं वह अज्ञान के कारण अत्यन्त भूलकर रहा है। क्योंकि विषयों के ग्रहणसे इन्द्रियां अधिक चञ्चल होती हैं और मन अशान्त होता है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने इन्द्रिय जन्य विषय सुख को राजस एवं परिणाम में हानिकर बताया है।

'विषयेन्द्रिय संयोगाद् यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत् सुखं राजसं स्मृतम्' गी० अ० १८

विषय और इन्द्रिय के सम्बन्ध से जिस सुख का हमें अनुभव होता है वह यद्यपि भोग काल में अमृत के तुल्य प्रतीत होता है। परन्तु परिणाम में विष के सदृश हानि कारक है। राजा ययाति जब विषयों को भोगते २ अशक्त होगया तब उसने अपने पुत्र को इस प्रकार कहा, कि हे वत्स! जो दुर्मति तृष्णालु मनुष्यों को छोड़नी कठिन है। जो शरीर के जीर्ण होने पर भी दुर्बल नहीं होती। उस तृष्णा को छोड़ता हुआ विद्वान् सुख से पूर्ण हो जाता है।

'या दुस्त्यजा दुर्मति या न जीर्यति जीर्यताम्-
तां तृष्णां संत्यजन् प्राज्ञः सुखेनैवाभिपूर्यते' ॥

सभी शास्त्रों के भाव को पूज्य श्री गुरुदेव जी ने—
"भुखिआ भुख न उत्तरी" इस पंक्ति में भर दिया है। अर्थात् सांसारिक पदार्थों की तृष्णा रखने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वाले मनुष्यों की इच्छा, पदार्थों के संग्रह एवम् भोगने से कभी शान्त नहीं होती। यदि उन्हें भूमण्डल से लेकर ब्रह्मलोक के सभी पदार्थ भी दे दिये जायें।

इसके विपरीत तृष्णा की निवृत्ति का साधन ईश्वर निष्ठा एवं मुमुक्षुता है। जिसके द्वारा वैतृष्ण होकर हम शान्ति का अनुभव कर सकते हैं। ईश्वर निष्ठा वाले पुरुष को परम शान्ति प्राप्त होती है यह गीता के वचनों से सिद्ध होता है।

'एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकाले ऽपि ब्रह्म निर्वाणमृच्छति' ॥ गी०अ०२
किञ्च "तृष्णा बुझै हरिकै नाम।

जिन्हें शास्त्र का पूर्ण ज्ञान है और जो सांसारिक पदार्थों के स्वभाव को अच्छी प्रकार जानते हैं तथा लोक व्यवहार में बड़े निपुण हैं, पदार्थों के संग्रह एवं भोगने में जो कुशल हैं, उन्हें ईश्वर निष्ठा और मुमुक्षुता की क्या आवश्यकता है। इस विपरीत धारणा को दूर करने के लिये श्री गुरुदेव जी कहते हैं—

'सहस सिआणपा। लख होइ तां इक न चलै नालि' ॥

अर्थात् मनुष्य कितना ही लौकिक व्यवहार में निपुण हो कितने ही शास्त्रों के मरम को जानता हो विज्ञान के बल पर कितने ही पदार्थों के गुण और प्रभाव को समझता हो तो भी आत्म कल्याण एवं परलोक के लिए लौकिक कुशलताएँ उसकी सहायक सिद्ध नहीं होतीं, अपितु मोक्ष मार्ग में व्यावहारिक निपुणताएँ अनेक विघ्न बाधाओं को उपस्थित करती हैं।

अधिकारी प्रश्न करता है गुरुदेव ? जिस सत्य का आपने पहले संक्षेपसे निर्णय किया है उस सत्य को जानकर मैं 'किव' किस प्रकार निर्णय कर कहने वाला 'सचिआरा=सत्यवादी हो सकता हूं। शिष्य का प्रश्न सुनकर गुरु यदि यह उत्तर कहें कि तुम अज्ञान और उसके कार्य संसार द्वैतका नाश कर सत्यवादी बन सकते हो। ऐसा उत्तर सुन कर शिष्य उस द्वैत के नाश के लिये पूछता है।

'किव कूड़ै तुटै पालि किव'=किस प्रकार 'कूड़ै' मिथ्या रूप अज्ञान और उसके कार्य रूप द्वैत का 'पालि' तम्बू के समान मेरे स्वरूप को आच्छादन करने वाला पड़दा 'टुटै' दूर हो सकता है। जिस द्वैत के दूर होने से मैं परमार्थ सत्य को जान कर एवं उसमें स्थित होकर सत्यवादी हो सकूं, शिष्य के प्रश्न को सुन कर अद्वितीय सत्य में निष्ठा वाले सत्यवादी गुरु उत्तर देते हैं।

"हुकमि रजाई चलणा" इति—रजाई हुकम वाले परमेश्वरको—'हुकमि'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वेद विद्या में शास्त्रोक्त विचार की रीति से विचारने में, 'चलणा' प्रवृत होना, जिस प्रवृति से शक्ति एवं लक्षणावृति द्वारा सम्पूर्ण वाक्यों के विचारने से ज्ञानी होकर अज्ञान तत्कार्थ रूप द्वैत का परदा नाश करके अद्वितीय सत्य में स्थित होकर परमार्थ सत्य को कहने वाला हो जाता है। गुरुदेव ? उस आज्ञा का कहां अन्वेषण करूँ जिससे मैं सत्यवादी हो जाऊँ।

'नानक लिखिया नालि' गुरुदेवजी कहते हैं। हे वत्स ! मैंने सत्यनाम आदि रूप, आज्ञा साथ ही लिखदी है। और इससे पूर्व वेदादि आज्ञा जगत रचना के साथ ही लिखी हुई है, इसलिये उस आज्ञा के विचार से अद्वितीय सत्य में निष्ठावान होकर तुम सत्यवादी बनों। और अद्वितीय सत्य में चित्त की स्थिति द्वैत को कल्पित जान कर होती है।

॥ प्रथम मन्त्र समाप्तम् ॥

प्रश्न—जिस ईश्वरीय आज्ञा में प्रसन्न होकर चलने का आपने आदेश दिया है, वह आज्ञा कितनी बड़ी है ? जिसे सुन कर निश्चय हो जाये और अहंता ममता को त्यागकर, सत्य को धारण करने वाले बन जाएँ।

उत्तर में श्री गुरुजी कहते हैं, यह सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् ईश्वर की आज्ञा से उत्पन्न होता है। परन्तु ऐसा कोई निश्चित माप दण्ड नहीं, जिससे यह कहा जाए कि ईश्वर की आज्ञा इतनी बड़ी है।

मूल—हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई।
हुकमी होवनि जीअ हुकमि मिलै वडिआई॥
हुकमी उतमु नीचु हुकमि लिखि दुःख सुख पाईअहि।
इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि॥
हुकमै अन्दरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ।
नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्दार्थ—हुकमी—परमेश्वर की आज्ञा के अनुसार, होवन आकार—जीवों के शरीर उत्पन्न होते हैं। हुकमु न कहिआ जाई—परन्तु इदम्, इत्थम् भाव से अर्थात्, निश्चि रूप से ईश्वर की आज्ञा का कथन नहीं कर सकते। हुकमी होवन जीअ—ईश्वर की आज्ञा से सम्पूर्ण स्थूल सूक्ष्म जीव उत्पन्न होते हैं। हुकमि मिलै वडिआई—परमेश्वर की आज्ञा से जीवों को मान प्रतिष्ठा एवम् गौरवता प्राप्त होती है। 'हुकमी उत्तमु नीच' ईश्वर की आज्ञा से ही जीव उत्तम मध्यम और नीच होते हैं। अर्थात् ज्ञान एवं क्रिया शक्ति से मनुष्य उत्तम, और ज्ञान तथा क्रिया शक्ति से रहित होने के कारण पशु आदि जीव नीच माने जाते हैं। अथवा उत्तम से नीच और नीच से उत्तम भाव के जीय ईश्वर की आज्ञा के प्राप्त होते हैं। जैसे बाल्मीकि नहुषादि। 'हुकमि लिखि दुःख सुख पाईअहि' ईश्वर की आज्ञा में लिखे हुए शुभाशुभ कर्मों के अनुसार जीव सुखों को और दुःखों को प्राप्त करते हैं। अर्थात् अपने किए शुभा शुभ कर्मों के फल को भोगते हैं। 'इकना हुकमी' कुछ लोगों को ईश्वर की आज्ञा से, बखसीस आत्मपद की प्राप्ति रूप पुरस्कार प्राप्त होता है। इक हुकमी सदा भवाईअहि, कुछलोग ईश्वर की आज्ञा से जन्म मरण के चक्र में सर्वदा घुमाये जाते हैं अर्थात् पुनः पुनः जन्म मरण को प्राप्त होते हैं।

हुकमै अन्दरि सभुको बाहरि हुकम न कोइ—ब्रह्मा सेलेकर चींटी पर्यन्त सभी प्राणी ईश्वर की आज्ञा के भीतर हैं परमेश्वर की आज्ञा से बाहर कोई जीव नहीं।

प्रश्न—यदि सभी जीव ईश्वर की आज्ञा में हैं तब ये जीव कर्तृत्त्व (कर्तापन) और भोक्तृत्त्व (भोक्तापन) का अहङ्कार क्यों करते हैं।

समाधान—नानक हुकमै जे बुझै न हउमै कहै न कोइ।

श्री गुरु नानक देवजी कहते हैं कि यदि मनुष्य ईश्वर की आज्ञा को समझले तब कोई भी अहङ्कार के बचन नहीं कह सकता। मैंने अमुक धर्म एवं यज्ञ दान पुण्य किया, और अमुक सत् कार्य करूँगा इत्यादि बातें तभी तक मनुष्य करता है जब तक ईश्वर की आज्ञा को नहीं समझता। ईश्वरीय आज्ञा को समझने वाले का अहङ्कार सर्वदा के लिये टूट जाता है। और सत्य निष्ठ होकर सर्वदा काल प्रत्येक अवस्था में प्रसन्न रहता है।

भावार्थ—ईश्वरीय आज्ञा में चलने से पुरुष सत्यवादी होता है, और उसका अहङ्कार ममकार टूट जाता है। यह सुन कर सिद्धों ने पूछा माननीय श्री गुरुदेव! संसार में ईश्वर की आज्ञा से क्या कुछ होता है! और उस आज्ञा में कितनी शक्ति है?

तथा उस आज्ञा का क्या स्वरूप है? इसके उत्तर में श्री गुरु नानक देवजी कहते हैं। परमेश्वर की आज्ञा से स्थावर जङ्गम कीट पतङ्गादि सभी प्राणियों के आकार प्रकार एवं स्वरूप बनते हैं। उस ईश्वर की इस अलौकिक आज्ञा से प्राणियों के आकार प्रकार स्वरूप बनते हैं। आज्ञा का कोई निश्चित माप दण्ड तथा स्वरूप नहीं कह सकते। कि वह आज्ञा इच्छारूप है वा सङ्कल्प रूप अथवा कोई अन्य प्रयत्न विशेष रूप हैं। चींटी से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त सूक्ष्म स्थूल सभी जीव ईश्वर की आज्ञा से उत्पन्न होते हैं, और ईश्वर की आज्ञा से ही शुभकर्मानुष्ठान करने वाले पुरुषों को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मांन प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। ईश्वर की आज्ञा से ही यह जीव ज्ञान शक्ति एवं क्रिया शक्ति के द्वारा सदाचारी विद्वान्, साधु, महात्मा तथा दुराचारी, चौर परद्रोही लम्पट होता है। एवं ईश्वरीय आज्ञा के द्वारा लिखे हुये शुभाशुभ कर्मों के फल दुःख और सुख को यह जीव प्राप्त होता है। कुछ लोगों को ईश्वर की आज्ञा से स्त्री पुत्र धनादि लौकिक सुखों का तथा भक्ति ज्ञान वैराग्यादि आध्यात्मिक सुखों का पुरस्कार प्राप्त होता है। एवं कुछ लोग इन सांसारिक सुखों की प्राप्ति के लिए इधर उधर देश के दुर्गम स्थानों में घूमते फिरते हैं। कुछ लोग ईश्वर की आज्ञा से कर्मों का फल भोगने के लिये सर्वदा जन्म मरण के चक्र में इधर उधर अनेक योनियों में भ्रमण करते हैं। संसार में सभी प्राणी ईश्वरीय आज्ञा के दृढ़ सूत्र में बँधे हुये हैं। उसकी आज्ञा के बाहर कोई जीव नहीं जो सर्वथा स्वतन्त्र होकर अपनी इच्छा के अनुसार कार्य कर सके, किन्तु कठपुतली के समान सभी लोग ईश्वर की आज्ञा में ही कार्य कर रहे हैं। श्री गुरु नानकदेवजी कहते हैं यदि जीव आज्ञा के रहस्य को समझले कि संसार में जो कुछ भी अच्छा और बुरा होरहा है, वह सभी कुछ ईश्वर की आज्ञा के भीतर ही है उसके बाहर कुछ भी नहीं, तब मैं यह किया और ऐसा करूँगा मैं सर्व से अधिक श्रेष्ठ और बुद्धि जीवि तेजस्वी और मनस्वी हूं, इत्यादि अहङ्कार के वचन नहीं कह सकता। ईश्वरीय आज्ञा के रहस्य को समझलेने से अहङ्कार सर्वदा के लिये लुप्त हो जाता है, अहङ्कार के लुप्त हो जाने से यह जीव सत्यवादी होकर सर्वदा के लिये सुखी हो जाता है।

अब द्वैत को कल्पित जानने के प्रकार को कहते हैं—

हुकमी होवनि आकार,= विशेष व्याख्या **हुकमी =**

हुकम वाले ईश्वर से ही, **होवनि आकार** = स्थूल सूक्ष्म सम्पूर्ण प्रपञ्च के चराचर स्वरूप उत्पन्न होते हैं, अर्थात् माया विशिष्ट ईश्वर से ही चराचरात्मक प्राणियों के शरीर उत्पन्न होते हैं, केवल शुद्ध ईश्वरसे नहीं इसलिये ईश्वर के बनाए आकारों को माया के सहित मिथ्या होने से सत्य वस्तु ही परमार्थ है, यह जानकर सत्यवादी बनने के लिए सत्य में चित्त की स्थिति कर।

पूज्य श्री गुरुदेव ! सत्य में चित्त की स्थिति करने के लिये आप कृपा करके पहिले अद्वितीय सत्य का स्वरूप बताएँ। **हुकमु न कहिआ जाई** = **हुकमु** = वेद और सत्यनाम रूप हरि की आज्ञा से लक्षणा वृत्ति के बिना शक्ति वृत्ति के द्वारा अद्वितीय सत्य का स्वरूप, **न कहिआ जाई** = कहा नहीं जा सकता इस लिये हम उसके स्वरूप को साक्षात् कैसे कह सकते हैं। भाव यह है—

"यतो वाचो निवर्यन्ते अप्राप्य मनसा सह"

यह वेद वचन—अद्वितीय सत्य को मन वाणी का अविषय बताता है जो जो वस्तु मन वाणी के अगोचर है। उसे साक्षात् शक्ति वृत्ति से कैसे कह सकते हैं। श्री गुरु अर्जुनदेव जी ने भी इस प्रकार के विचार प्रकट किये हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'महिमा न जानहि वेद'—अर्थात् परमात्मा के स्वरूप को वेद शक्ति वृत्ति से नहीं जानते।

'एकु सुधाखरु जाकै हिरदै वसिआ तिनि वेदहि ततु पछानिआ' गु०ग्र०पृ०१२०५

इस वचन का यह अर्थ है। एक शुद्ध अविनाशी परमात्मा को विचार द्वारा जिसने हृदय में स्थित किया है। उसी ने लक्षणा वृति से वेद वोधित वास्तव स्वरूप को पहचाना है। वेद के हजारों मन्त्र जिस अद्वितीय स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं—

यदि उस वास्तव स्वरूप को लक्षणा वृत्ति से न जाना जाये तब गुरु वचनों का परस्पर विरोध होगा।

पूजनीय श्री गुरुदेव ? जिस परमात्मा के स्वरूप को लक्षणा वृत्ति के विना वेद प्रतिपादन नहीं कर सकते। उस अद्वितीय सत्य में स्थिति करके सत्यवादी बनने का आपने मुझे आदेश दिया है. इस पर मैं यह पूछता हूं। क्या सत्यवादी बनना ही सत्य में निष्ठा करने का फल है?

अथवा कुछ और भी है ? 'हुकमी होवनि जीअ' जो सत्य में स्थिति वाले जीव हैं वे परमेश्वर का रूप ही हैं इस भाव को अनेक शब्दों द्वारा श्री गुरुदेव जी ने प्रकट किया है।

'जिनि जाता सो तिस ही जेहा' नानक लीन भयो गोविन्द सिउ जिउ पानी संगि पानी'। ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति॥

इसलिये परमार्थ सत्य में चित्त की स्थिति का फल केवल सत्यवादी बनना ही नहीं किन्तु ब्रह्मस्वरूप होना भी उसका फल है। ब्रह्मस्वरूप होना ही गुरुमत में मुक्ति है। मुक्ति का द्वार गुरु के उपदेश से प्राप्त होने वाला ज्ञान ही है और कोई साधन नहीं।

'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' इस वेद वचन के द्वारा पूर्वोक्त बात की ही पुष्टि होती है।

'हुकमि मिलै वडिआई' गुरु वाणी तथा वेद रूप हुकम को अपने स्वरूप का बोधक जान कर जो उसका विचार करता है उसी को अद्वितीय सत्य का साक्षातकार होकर 'मिलै वडिआई' ब्रह्मस्वरूप होना रूप शोभा मिलती है। इस अर्थ में अनेक गुरु वचन रूप प्रमाण हैं।

'आतम रामु रामु है आतम हरि पाईऐ शब्दि वीचारा हे' गु०ग्र०पृ०१०३०

'गुरुमुखि ज्ञानु ततु वीचारा जोती जोति मिलाए' गु०ग्र०पृ०११३१

जब इस ते सभि विनसे भरमा भेदु नाहीं है पार ब्रह्मा' गु०ग्र०पृ० २३५

इस प्रकार ईश्वर की आज्ञा के अनुसार चलने वाले पुरुषों की ब्रह्मस्वरूप होना मुक्ति को कह कर ईश्वरीय आज्ञा से विपरीत चलने वाले पुरुषों को उत्तम मध्यम योनियों की प्राप्ति दिखाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'हुकमी उत्तमु नीचु'। हुकमी=हुकम वाले ईश्वर से ही 'उत्तमु'=उपासना और शुभ कर्मों को करने वाले उत्तम पुरुष होते हैं। तथा उसी ईश्वर से नीचु-निषिद्ध कर्मों के करने वाले एवं निषिद्ध भूत प्रेतादियों की उपासना को करने वाले होते हैं। इसी बात को दूसरे शब्दों में गुरुजी ने दिखाया है।

"आपे उझड़ि पाएंदा पिआरा आपि विखाले राहु" गु०ग्र०पृ०६०४

वेद में भी ऐसा प्रतिपादन किया है। परमेश्वर जिसको उत्तम लोकों में ले जाना चाहता है उससे शुभ कर्म कराता है। जिसे नीच लोकों में ले जाना चाहता है उससे अशुभ कर्म कराता है।

'एष हि एव एनं साधु कर्म कारयति यमेभ्यो लोकेभ्यः'
उन्निनीषते एष हि एव एनमसाधु कर्म कारयति
यमेभ्यो लोकेभ्योऽधोनिनीषते' ॥ कौषतीकी उपनिषद्

उत्तम अधम लोकों में जाकर जीव हुकम के अनुसार जो कुछ प्रा त करते हैं उसे दिखाते हैं।

'हुकमि लिखि दुःख सुख पाईअहि'। हुकमि=वेद एवं गुरु वाणी रूप हुकम में जो लिखा है कि पुण्य कर्मों से सुख और पाप कर्मों से दुःख जीव को प्राप्त होता है, इसलिये हुकम के अनुसार स्वर्ग नरक में जाकर पुण्य त्मा एवं पापी सुख दुःख को प्राप्त होते हैं।

पापीआं नो नदेई थिरु रहणि चुणि नरकि घोरि चालिअनु
हरि भक्ता नो देइ पिआरु करि अंगु निसतारिअनु ॥ गु०ग्र०पृ०६०

इस प्रकार उत्तम पुरुषों को सुख प्राप्ति और नीचों को दुःख प्राप्ति कह कर अब उत्तमों में और विशेषता कहते हैं।

'इकना हुकमी वखसीस'। इकना—उन उत्तमो में भी निष्कामकर्म करके ईश्वर को प्रसन्न करने वालों को 'हुकमि' परमेश्वर से अथवा ब्रह्मवेत्ता गुरु रूप ईश्वर से संसार वन्ध को नाश करने वाले उपदेश का बखसीस पुरस्कार प्राप्त होता है। निष्काम कर्म करने वालों में यही अन्य उत्तम पुरुषों से विशेषता है।

निष्काम कर्मियों की विशेषता वताकर अब श्री गुरु नानक देव सकामियों की दशा कहते हैं।

'इक हुकमी सदा भवाईअहि' उन उत्तमों में एक उत्तम पुरुष मनमें धन स्त्री पुत्र एवं स्वर्ग आदि कामनाओं के अनुसार शुभ कर्मानुष्ठान करता है। उसकी इच्छा के अनुसार फल देने के लिए ईश्वर उसे जन्म मरणादि संसार में सदा भ्रमण कराता है। अर्थात् किए कर्मों के अनुसार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ईश्वर उनको संसार चक्र में सर्वदा भ्रमाता है। इसलिये परमेश्वर की आज्ञारूप वेद और गुरुवाणी का तात्पर्य न जानकर शुभ कर्म करने पर भी जब सर्वदा दुःख का अनुभव करता है। तब मन्द कर्म करनेवाले सुख का अनुभव करेंगे यह बात कैमुत्तिक न्याय से सिद्ध है। जो व्यक्ति अपने दांतों से लोह चबा सकता है उसकी प्रशंसा में यह कह देना कि इसने दान्तों से पूड़े चबा लिये हैं इसे कैमुतिक न्याय कहते हैं।

यथा—जिह मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं, कहो तूल किह लेखे माही ॥

'किव सचिआरा होईऐ' इस वाक्य से किये प्रश्न का "हुकमि रजाई चलणा" से लेकर 'इकि हुकमी सदा भवाईअहि' पर्यन्त पाठ से उत्तर कह कर अब—

'किव कूड़ै तुटै पालि' के द्वारा किए प्रश्न का उत्तर श्री गुरुदेवजी कहते हैं।

'हुकमै अंदरि सभुको' परमेश्वर की वेदादिरूप जो आज्ञा है, उसमें सर्व की मूल आज्ञा ओङ्कार है। वह ओङ्कार रूप आज्ञा परमेश्वर से उत्पन्न होती है, इसलिए वह ईश्वर के अधीन है।

'ओअंकारि सैल जुगभए। ओअंकारि वेद निरमए' इत्यादि वचनों से—

'हुकमै अंदरि सर्व की मूल कारण ओङ्काररूप आज्ञा के भीतर, सभुको=सम्पूर्ण रचना को समझे 'बाहुरि हुकमि न कोइ' ओङ्कार रूप आज्ञा के बाहर किसी पदार्थ को स्वतन्त्र न समझे किन्तु कार्यमात्र को कारण में ही कल्पित जाने। नानक हुकमै जे बुझै,—श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं यदि वेदादि रूप हुकम को अद्वितीय सत्य के भीतर कल्पित समझे, तब उस पुरुष को— अधिष्ठान के ज्ञानसे अपनेस्वरूप के अज्ञान का नाश होता है। अज्ञान के नाश हुये देहादि अनात्मा में अनादि काल से हो रही आत्मबुद्धि का नाश होता है, शरीर में आत्मबुद्धि के दूर होने से, 'त हउमै' मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हूं, मैं गौर हूं, मैं श्याम हूं, इस प्रकार शरीर में जो अहंता करता था, वह पुरुष ज्ञान होने के बाद 'कहै न कोइ' देह को आत्मा मान कर किसी प्रकार का अभिमान नहीं करता। इस प्रकार अज्ञान और उसके कार्य, निखिलप्रपञ्च का परदा दूर हो जाता है।

द्वितीय मन्त्र समाप्तम् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न—जिस ईश्वर के हुकम का आपने अद्भुत वर्णन किया है, उसका बल कितना है ? क्योंकि संसार में बलवान् व्यक्ति का ही हुकम चलता है। उत्तर में श्रीगुरुजी ईश्वर के बल को निरूपण करने की असमर्थता को व्यक्त करते हैं।

'मूल' गावै को ताणु होवै किसै ताणु ! गावै को दाति जाणै नीसाणु।
गावै को गुण वडिआई आचार। गावै को विदिआ विखमु वीचारु॥
गावै को साजि करे तनु खेह। गावै को जीअ लै फिरि देह।
गावै को जापै दिसै दूरि। गावै को वेखै हादरा हदुरि॥
कथना कथी न आवै तोटि। कथि कथि कथी कोटी कोटि कोटि॥
देदा दे लैदे थकि पाहि। जुगा जुगंतरि खाही खाहि।
हुकमी हुकमु चलाए राहु। नानक विगसै वे परवाहु॥३॥

शब्दार्थ—उस अकाल पुरुष परमात्मा के—'ताणु'=समग्र बल को, 'गावै को'=कौन गायन कर सकता है ? 'होवै किसै ताणु=जब किसी मनुष्य में, तपोबल वा जन्मान्तरीय संस्कार से कथन करने का बल होता है, तब वह यथाशक्ति यथामति, यत्किञ्चित् गायन करता है।

'गावै को दाति जाणै नीसाणु=इदम्, इत्थम्, भाव से उसकी दी हुई वस्तुओं को कौन गायन कर सकता है ? अथवा कोई उसकी दी हुई दात को, 'नीसाणु=उसका परिचायक चिह्न जान कर गायन करता है।

गावै को गुण वडि आई आचार=कोई उस परमेश्वर के सुन्दर गुणों और श्रेष्ठ बड़ाइयों को गायन करता है। अथवा ईश्वर के दया, दाक्षिण्य माधुर्य, आदि गुणों को एवं व्यापकता, सर्वज्ञता, सर्वप्रियता, सहृदयता, उदारता, सत्य सङ्कल्पादि, बड़ाइयों को चारों वेद कथन करते हैं, परन्तु उसके अन्त को प्राप्त नहीं कर सकते। ऐसे महामहिम शाली ईश्वर के बल को कौन गायन कर सकता है।

गावै को विदिआ बिखमु वीचारु=कोई परमेश्वर को ब्रह्मविद्या के कठिन विचार द्वारा गायन करता है। अथवा ब्रह्मविद्या के कठिन विचार द्वारा उसके अपरिमित बल को कौन गायन कर सकता है।

गावै को साजि करे तनु खेह=जो सर्व शक्तिमान् ईश्वर समग्र प्राणियों के शरीर को बनाकर, पुनः विनाश कर देता है उसके सम्पूर्ण बल को कौन गायन कर सकता है। अथवा—कोई विद्वान् उस ईश्वर को शरीरों का बनाने वाला और नष्ट करने वाला कह कर गुणानुवाद करता है

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गावै को जीअ लै फिरि देह = जिस ईश्वर की सत्ता स्फूर्ति को पाकर ये जीव इस स्थूल शरीर को लेकर फिरते हैं, उस अद्भुत शक्तिशाली के वलको कौन गायन कर सकता है, अर्थात् कोई भी ऋषि मुनि पूर्णतया गायन नहीं कर सकता। अथवा कोई श्रद्धालु उस ईश्वर को मनुष्य शरीर से प्रथम जीवकला लेकर फिर वापिस कर देने वाला दाता एवं बलशाली बताकर गायन कर रहा है।

गावै को जापै दिसै दूरि = कोई सूक्ष्मदर्शी इस प्रकार गायन करता है कि वह परिपूर्ण परमात्मा श्रवण मननादि साधनों के द्वारा, जापै = समीप प्रतीत होता है, परन्तु अज्ञानियों को जड़ता के कारण दिसैदूर = अत्यन्त दूर दिखाई देता है। अथवा, जो अगम अगोचर परब्रह्म परमात्मा, जापै = जानने और दिसै = देखने से परे है, उस शक्तिशाली के वल को कौन गायन कर सकता है।

गावै को वेखै हादरा हदूरि = यदि उस ईश्वर को, हादरा हदूरि = प्रत्यक्ष देखे तब उसके वल को कोई गायन कर सकता है। अथवा कोई सत्पुरुष तत्त्वदर्शी उस परब्रह्म परमात्मा को हादरा हदूरि = साक्षात् अपरोक्ष सर्व का साक्षी परिपूर्ण देखकर गायन कर रहा है। महावल शाली परमेश्वर की कथा कितनी बड़ी है ?

समाधान = कथना कथी न आवै तोटि = कथन करने वाले विद्वानों ने— कथना = ईश्वर के वल की कथाओं को कथी = कथन किया है, न आवै तोटि = परन्तु किसी को अन्त नहीं आया। यदि वहुत मिलकर उसकी कथा को कहें तो क्या अन्त मिल जायगा ?

समाधान – कथि कथि कथी–कोटी कोटि कोटि = करोड़ों ही वक्ताओं ने पूर्व में कथन किया, और करोड़ों ही अव कथन कर रहे हैं। तथा करोड़ों ही आगे कथन करेंगे, परन्तु पूर्वकाल और वर्तमान एवं भविष्यत् काल में कथन करने वाले विद्वानों को न अन्त प्राप्त हुआ, न है, न होगा। ऐसी विलक्षण कथा वाला परमेश्वर क्या महान् दाता है ?,

समाधान —"देदा दे लै दे थकि पाहि = वह दाता परमेश्वर प्रत्येक मनुष्य को दे रहा है और लेने वाले याचक लेकर थक जाते हैं।

"जुगा जुगंतर खाही खाहि = प्रत्येक युग के भीतर ईश्वर के दिए हुए, 'खाही = पदार्थों को, 'खाहि = प्रति दिन मनुष्य खाते हैं। 'हुकमी = परमेश्वर की, 'हुकमु = आज्ञा ही 'चलाए राहु = देने की मर्यादा का सञ्चालन कर रही है। 'नानक = श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं। 'वे परवाहु = वह पूर्ण काम परमेश्वर, 'विगसै = देख कर प्रसन्न होता है। अर्थात् द्वन्द्वातीत पूर्णकाम परमेश्वर सभी प्राणियों को सर्वतोवलवती अपनी आज्ञा में नियमित रूप से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चला रहा है, परन्तु अज्ञानी जीव ऐसा कहते हैं, कि मैंने तीर्थ यात्रा पुण्य दानादि शुभ कर्मानुष्ठान किया और भविष्य में ऐसा करूँगा, इत्यादि मनुष्यों की भ्रममूलक बातों को सुनकर ईश्वर प्रसन्न होता है, कदापि रुष्ट नहीं होता।

भावार्थ–जिस शक्तिशाली परमेश्वर की आज्ञा का आपने अद्‌भुत वर्णन किया है, उसका बल कितना बड़ा है ? क्योंकि बलवान् पुरुष को आज्ञा का ही संसार में लोग आदर से पालन करते हैं। सिद्धों के प्रश्न को सुनकर उत्तर में श्री गुरुदेवजी ईश्वर के समग्र बल को किसी द्वारा प्रतिपादन करने की कठिनता को कहते हैं। कोई सिद्ध पुरुष महात्मा तपस्या एव जन्मान्तरीय संस्कार के बलसे यथा मति ईश्वर के बल को निरूपण करता है, परन्तु इतनी शक्ति किसी के समीप नहीं, कि वह ईश्वर के समग्र बल का यथार्थ निरूपण कर सके। कुछ लोग चन्द्र, सूर्य,वायु, अग्नि, पृथ्वी,जलादि अनेक पदार्थों को ईश्वर का परिचायक जानकर उसका गुणानुवाद करते हैं। कुछ श्रद्धालु, पुरुष ईश्वर के दया दाक्षिण्य माधुर्य, व्यापकता, सर्वज्ञता, सत्य संकल्पादि सुन्दर गुणों को तथा सहृदयता, दयालुता उदारता, प्रतिपालकता, आदि बड़ाइयों को चिन्तन करके अहोरात्र उसके यश का गायन करते हैं। कुछ लोग व्याकरण, न्याय, मीमांसा, की कठिन रीति से तथा ब्रह्मविद्या के सूक्ष्म विचार द्वारा परमात्मा की महिमा का गायन करते हैं। अन्य लोग सर्व शक्तिमान् परमेश्वर को लाखों शरीरों में से जीवकला निकाल कर पुनः वापिस कर देने वाला कह कर, उसके महत्त्व को प्रकट करते हैं। कुछ प्रेमी परमात्मा को अत्यन्त समीप जानकर भी अगम अगोचर मन वाणी का अविषय कह कर उसके यश को प्रकट करते हैं। अन्य लोग सर्व का साक्षी, सर्वाधिवासी, कर्माध्यक्ष, सर्व का नियामक, परमेश्वर को साक्षात अपरोक्ष जान कर उसके यश को गायन करते हैं।

परमात्मा के यश और बल का निरूपण करने से उसका अन्त नहीं आसकता करोड़ों लोगों ने असंख्य कथाओं के द्वारा ईश्वर के गुणों का कथन किया है। वह परम कृपालु परमेश्वर प्राणियों को प्रतिदिन इतने पदार्थ देता है, कि लेने वाले जीव लेते हुए थक जाते हैं, और युगयुगान्तरों में उपभोग्य पदार्थों को भोगते हुए समाप्त हो रहे हैं। परमेश्वर का हुकम ही ईश्वर की बनाई हुई सांसारिक मर्यादा का संचालन करता है। श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं कि निःस्पृह पूर्णकाम अलौकिक बलधाम परमेश्वर लोगों की समस्त चेष्टाओं को देखता हुआ भी हर्ष शोक से अतीत होकर सर्वदा प्रसन्न होता है।

विशेष व्याख्या–पूज्य श्री गुरुदेव ? आपने पूर्व यह कहा कि जो पुरुष परमेश्वर की आज्ञा रूप वेद और सत्यनामादि मन्त्र का अद्वितीय सत्य में तात्पर्य जानता है, वह अज्ञान और उसके कार्य झूठ के पर्दों से छूट कर अहन्ता ममता के बन्धनों से मुक्त हो जाता है परन्तु, 'गावै को ताणु = वेदादि आज्ञा का अद्वितीय सत्य के कहने में बल है, इस बात को कौन कहता है ? भाव यह है क्या इस बात को वेद कहता है ? अथवा वेदार्थ के ज्ञाता व्यासादि ऋषि कहते हैं ? वा आप कहते हैं ? उत्तर में गुरु जी कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"होवै किसै ताणु"—जिस किसी पुरुष को तपोबल से अद्वितीय सत्य के कहने का सामर्थ्य है वही कहता है, वह सामर्थ्य तात्पर्य का ज्ञान उत्पन्न करना गुरुवाणी और वेद में है।

क्योंकि एक ही अद्वितीय सत्त्य वस्तु है, इस प्रकार वेद अपने तात्पर्य को उपक्रमादि षड्लिङ्गों से बोधन करता है। जैसे मृत्तिका में घटादि नाम कहने मात्र को हैं वास्तव में मृत्तिका ही सत्य है वैसे सत्य में सर्व वस्तुओं के नाम और आकार कहनेमात्र को ही हैं, वास्तव में सभी सत्य रूप ही हैं।

प्रश्न— वेद एवं गुरुवाणी का परमार्थ सत्य में तात्पर्य है, इसे व्यासादि ऋषि और आप जानते हैं, परन्तु, 'गावै को दाति'—देने योग्य परमार्थ सत्य वस्तु को शिष्य के प्रति कौन कथन करता है?

समाधान— 'जाणैनीसाणु'—नीसाणु शब्द ध्वजा का वाचक है। ध्वजा दूसरे से अलग करने का चिह्न है, चिह्न और लिङ्ग दोनों एक अर्थ के बोधक हैं। इसलिए यहाँ पर नीसाणु पदलिङ्ग का वाचक है। तात्पर्य के निर्णायक वेद और गुरुवाणी में उपक्रमोपसंहारादि षड्लिङ्ग हैं। षड्लिङ्गों द्वारा जिस अर्थ का निरूपण किया जाता है, गुरुवाणी और वेदका उसी में तात्पर्य होता है अन्य में नहीं। इसीलिये वेद और गुरुवाणी का श्रवण करने के बाद षड्लिङ्गों द्वारा मनन किया जाता है। जिज्ञासु को देने योग्य अद्वितीय सत्य वस्तु का वही कथन करता है, जो षड्लिङ्गों से श्रवणादि की परम्परा को जानता है।

प्रश्न—गुरुवाणी तथा वेद के तात्पर्य को जानने वाले अद्वितीय सत्य वस्तु को कथन करते हैं।

परन्तु—'गावै को गुण—उस अद्वितीय सत्य के आनन्दादि गुणों को कौन गायन करता है?

समाधान— 'वडिआई आचार—जिस ब्रह्मनिष्ठ, पुरुष की ब्रह्म ज्ञान के सम्प्रदाय की प्रवृत्ति रूप आचार में तथा शम दमादि दैवी सम्पत्ति रूप आचार में प्रसिद्धि होती है, वही गुरुवाणी और वेद में कहे आनन्दादि गुणों को कहता है, और दूसरा नहीं कह सकता। इसी भाव से गुरुजी ने कहा है—

'जगमहि उत्तम काढीअहि विरले केई केए' गु०ग्र०पृ० ५१७
'हैनि विरले नाहीं घणे फैल फकड़ु संसारु' गु० ग्र० पृ०१४११

प्रश्न—पूज्य गुरुदेव! सदाचारी तत्त्वदर्शी सत्पुरुष आनन्दादि गुणों को कहता है, परन्तु—

'गावै को विदिआ—उस परमार्थ सत्य को बोधन करने वाली ब्रह्मविद्या को कौन कथन करता है?

समाधान—विखम वीचारु—विषम है विचार जिसको उसे विखमु वीचारु कहते हैं, अर्थात् आत्मा और अनात्मा के स्वरूप को द्रष्टा, दृश्य, सत्य, एवं मिथ्या, आनन्द, दुःखादि रूपों से भिन्न २ करके जानने का नाम विषम विचार है। पूर्वोक्त प्रकारसे न जानने का नाम सम विचार है। अथवा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

व्याकरण से पदकी, मीमांसा से वाक्य की, न्याय से प्रमाण की रीति को जानकर विचार करने का नाम विषम विचार है। व्याकरण मीमांसादि की रीति को जाने बिना विचार करने का नाम सम विचार है। इसलिये उस परमार्थ सत्य की बोधक विद्या को वही कह सकता है जिसको पूर्वोक्त रीति से विषम विचार होता है, सम विचार वाला नहीं कह सकता।

प्रश्न—'गावै को = परमार्थ सत्य के जानने की इच्छा वाले जिज्ञासु के प्रति ईश्वर के परमार्थ स्वरूप को कौन कथन करता है?

समाधान—'साजि करे तनुखेह = भाव यह है कि परमेश्वर पहले सृष्टि को रचने की इच्छा करता है, इच्छा के बाद त्रिधा अहङ्कार और उससे सूक्ष्म तत्त्व तथा सूक्ष्म तत्त्वों से इन्द्रिय एवं अन्तःकरण और स्थूल तत्त्वों को बनाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि को बनाकर फिर चतुर्दश भुवनों का पृथिवी में लय करता है, एवं पृथिवी का जल में, और जल का अग्नि में, अग्नि का वायु में, वायु का आकाश में, आकाश का सूक्ष्म तत्त्वों में, सूक्ष्मतत्त्वों का त्रिधा अहङ्कार में, और त्रिधा अहङ्कार का इच्छा में, और इच्छा का माया में लय करता है।

इस प्रकार शरीरों को बनाकर उक्त रीति से लय करता है। जो इस बात को जानता है, वही एक से अनेक होजाने का और अनेक से एक हो जाने का प्रकार बताकर जिज्ञासु के प्रति अद्वितीय सत्यमात्र के शेष बताता है।

प्रश्न—'गावै को = ज्ञान से अज्ञान के दूर हो जाने पर ज्ञानी के शरीर का विनाश होजाने से उसकी स्थिति कौन कथन कर सकता है?

समाधान जिअ लै फिरि देह = जिस प्रकार तपे हुए लौह पर जल गिराने से अग्नि के दूर हो जाने पर भी क्षणमात्र उष्णता बनी रहती है वैसे ज्ञान से अज्ञान के दूर हो जाने पर भी अविद्या के लेश से ज्ञानवान का शरीर कुछ समय के लिए बना रहता है। इसलिये ज्ञानी पुरुष "फिरि = ज्ञान के पीछे भी देह = स्थूल शरीर में "जीअ लै = अविद्या के लेश से जीवन लेता है। इस बात को वेदवेत्ता कहते हैं।

अथवा—ज्ञानसे पीछे भी 'जीअ = नाम जीता है। 'लै' = सेवक जो कुछ देते हैं उसे ज्ञानवान् लेता है। 'फिरि = स्वेच्छा अपनी इच्छा से स्वतन्त्र होकर फिरता है। "देह = अधिकारियों को ज्ञान उपदेश देता है। इस प्रकार वेद अर्थ के जानने वाले लोग कहते हैं।

प्रश्न—आपने ज्ञानी के शरीर की स्थिति का पूर्व कथन किया है, परन्तु गावै को =

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सर्व से पृथक् करके यह ब्रह्मज्ञानी है इस प्रकार उसे कौन कहता है ?

'जापै दिसै दूरि=मलिन चित्त वाले पुरुष ज्ञानी को अन्य लोगों से भिन्न करके नहीं जानते परन्तु निष्काम धर्म से शुद्ध चित्त वाले पुरुष परमेश्वर की दी हुई शक्ति से जान लेते हैं।

इसलिये शु चित्त वाले जिज्ञासु को वह ज्ञान वान् जापै=परमेश्वर की कृपा से समीप प्रतीत होता है और मलिन चित्त वाले जीवों को दिखाई देने पर भी ज्ञानवान् के प्रभाव को न जानने से दिसै दूरि=हजारों कोसों के समान अति दूर प्रतीत होता है। इसलिये गुरु देवजीने कहा है—

'ब्रह्मज्ञानी की गति ब्रह्मज्ञानी जानैं'

प्रश्न—शास्त्रों में ब्रह्मवित् ब्रह्मविद्वर्य ब्रह्मविद्वरिष्ठ ब्रह्मविद्वर्यान् भेद से ज्ञानी चार प्रकार के कथन किये हैं। इनमें से जिज्ञासु को ब्रह्म का उपदेश कौन करता है ?

गावै को=अर्थात् चार प्रकार के ज्ञानियों में जिज्ञासुओं के प्रति कौन ज्ञानी ब्रह्म का उपदेश करता है ?

समाधान—वेखै हादरा हादूरि=चार प्रकार के ज्ञानियों में तीन तरह के ज्ञानी समाधि वाले होते हैं। वह किसी को उपदेश नहीं करते केवल ब्रह्मवित् ज्ञानी ही उपदेश करता है। जो ब्रह्मवित् अद्वितीय ब्रह्म को वेखै=हस्तामलक वत् जानता है। हादरा—प्रत्यक्ष करके हदूरि=समक्ष देखता है। भाव यह है जो ब्रह्मवेता अपने आत्मस्वरूप ब्रह्म को सर्वदा प्रत्यक्ष करके समक्ष देखता है। वही जिज्ञासु के प्रति अद्वितीय ब्रह्म का उपदेश करता है। समाधि वाले निःस्पृह तीनों ज्ञानी ब्रह्मवित् के समान जिज्ञासु को उपदेश नहीं करते। पूर्व पंक्ति में आये हुए हदूरि=शब्द का मूल हजूर है और हजूर बड़े को कहते हैं सबसे बड़ा परमात्मा है। इसलिए जो ब्रह्मवेता हदूरि=सब से बड़े परमात्मा को "हादर=अपरोक्ष देखता है। वही ज्ञानी जिज्ञासु को ब्रह्म का उपदेश करता है। गावै को=यहां पर 'को' शब्द के दो अर्थ हैं प्रश्न और निषेध, पहले प्रश्न पक्ष को मानकर अर्थ किया है। कुछ विद्वान् निषेध अर्थ को लेकर भी व्याख्या करते हैं।

यथा—गावै को ताणु=ताण वल का वाचक है अर्थ इस प्रकार है। परमात्मा के बल को कोई नहीं कह सकता क्योंकि उसके वल को निरूपण करने की शक्ति किसी में नहीं इस प्रकार निषेध पक्ष को लेकर पूर्व आए सभी वचनों का अर्थ हो सकता है। परन्तु यहाँ पर प्रश्न पक्ष युक्ति युक्त प्रतीत होता है। क्योंकि गुरुदेवजी यदि सर्व के कहने का निषेध करते तब स्वयं भी उस परमात्मा के बलको

"भै विचि सूरज भै विचु चन्दु" गु० ग्र० पृ० ४६४

इत्यादि वचनों से कैसे कथन करते—

प्रश्न—गुरुदेव ! शिष्यों के वोध के लिये ब्रह्मवेता गुरु के कितने वचन हैं ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समाधान— 'कथना कथी न आवै तोटि'

कथना = शिष्यों के कहे उपदेश वचनों की 'कथी' = उपदेश देने वाले ब्रह्म वेता गुरुओं की न आवै तोटि=कोई अवधि नहीं अर्थात् निश्चय पूर्वक यह नहीं कह सकते कि इतने उपदेश देने योग्य वचन है; और इतने उपदेष्टा ब्रह्मनिष्ठ गुरु हैं। अवधि न होने का हेतु बताते हैं।

'कथि कथि कथी कोटी कोटि कोटि' प्रथम 'कथि' पद कथनीय वस्तु पर है। दूसरा कथि शब्द कथन वाचक है। तीसरा 'कथी' पद कथन करने वाले का बोधक है। तीनों कोटि पदों का क्रम से तीनों के साथ सम्बन्ध कर लेना 'कोटि' पद अगणित का बोधक है। कथनीय अद्वितीय सत्य वस्तु में अगणितपन किसी शब्द की शक्ति वृत्ति का विषय न होना रूप है।

और कथन में अगणितपन किसी ने किसी प्रकार से और दूसरे ने अन्य रीति से दृष्टान्त प्रमाण देकर निरूपण किया है। भूत भविष्यत वर्तमान काल में उपदेशकों का अनन्त होना ही उनमें अगणितपन है। इसलिये 'कथि' कथनीय वस्तु को 'कोटी' अगणित होने से, कथि=ब्रह्मवेताओं के वचनों को प्रकार भेद से कोटि = अगणित होने से कथि =तीनों कालों में ब्रह्मवेताओं को कोटि= अगणित होने से उपदेश देने वालों की और कहने की अवधि नहीं हो सकती। अर्थात् उपदेशक और उपदेश के अनन्त होने के कारण इतनी संख्या है ऐसी गणना नहीं की जा सकती।

प्रश्न—अनेक अधिकारियों के मध्य में कैसे अधिकारियों को ब्रह्मवेत्ता सत्य वस्तु का उपदेश देता है?

समाधान— 'देदा दे लैदे थकि पाहि। जुगा जुगंतरि खाही खाहि'

देदा = उपदेश देने वाला ब्रह्मवेत्ता गुरु भी उन अधिकारियों को दे =ब्रह्म का उपदेश देता है 'लैदे = उपदेश लेने वाले अधिकारी जब 'थकि पाहि=चौरासी के चक्र में भ्रमण करते हुए थक जाते हैं अर्थात् जो अधिकारी पुरुष ब्रह्मनिष्ठ गुरु के समीप जाकर ऐसे कहता है। पूज्य गुरुदेव! मैं चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता हुआ थक गया हूं कृपा करके मुझे पवित्र उपदेश देकर कृतार्थ करें। जिज्ञासु की ऐसी प्रार्थना सुनकर परम दयालु ब्रह्मनिष्ठ उसे उपदेश देकर कृतार्थ करता है। पुनः जो अधिकारी पुरुष 'जुगा = चार वर्णों में और जुगंतरि = चार आश्रमों में होकर 'खाही=जीवों को अत्यन्त क्लेश देने वाले शब्द स्पर्श आदि विषयों को खाहि= शम दमादि साधनों से दूर करता है। उसे ही गुरु उपदेश देता है। अश्रद्धालु अनधिकारी पुरुष को ब्रह्मनिष्ठ उपदेश नहीं देता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुरुदेव ! शिष्य परम्परा की जो परिपाटी अनादि काल से चली आरही है इसका आदि प्रवर्तक कौन है ?

समाधान— "हुकमी हुकमु चलाए राहु"

हुकमी = वेदादि आज्ञा वाला ईश्वर ही **हुकमु** = अपनी आज्ञा द्वारा "**चलाए राहु** = तत्त्वज्ञान के मार्ग को प्रवृत्त करता है। अर्थात् परमेश्वर ने सर्व प्रथम ब्रह्मा को उपदेश दिया और ब्रह्मा ने नारदादि को नारदादि ने व्यासादि ऋषियों को पढ़ाकर ब्रह्म विद्या की परम्परा स्थापित की।

नानक विगसै वेपरवाहु = श्रीगुरु नानक देवजी कहते हैं ब्रह्मविद्या के उपदेश से अधिकारियों के चित्त में **वेपरवाहु** = पूर्ण काम परमेश्वर आप ही '**विगसै** = अद्वितीय सत्यरूप से स्थित होता है।

❀ तृतीय मंत्र समाप्तम् ❀

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उस निःस्पृह ईश्वर का स्वामित्त्व और नाम कैसा है ?
इस प्रश्न के उत्तर में श्री गुरुदेव जी कहते हैं,

मूल–साचा साहिबु साचु नाइ। भाखिआ भाउ अपारु।
आखहि मंगहि देहि देहि दाति करे दातारु।
फेरि कि अगै रखीऐ जितु दिसै दरबारु।
मुहौ कि बोलणु बोलीऐ जितु सुणि धरे पिआरु।
अमृत वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु।
करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआरु।
नानक एवै जाणीऐ सभु आपे सचिआरु ॥४॥

शब्दार्थ— साचा साहिबु = पूर्णकाम स्वामी परमेश्वर सत्य स्वरूप है। साचुनाइ = ईश्वर के परमार्थ स्वरूप का बोधक सत्यनामादि नाम भी साचा है। भाखिआ = जिन लोगों ने उस ईश्वर के नाम को कहा है। उन्हें, अपारु = पर ब्रह्म परमेश्वर का, भाउ = ज्ञान प्राप्त हुआ है। अथवा अपार प्रेम वाले प्रेमीभक्त उसके नाम को अपनी २ भाषा में कहते हैं।

आखहि = उस दाता परमेश्वर से याचक लोग अपनी अपनी प्रार्थना करते हैं।

'मंगहि देहि देहि = धन पुत्रादि पदार्थों को हमें दो हमें दो इस प्रकार कह कर सभी उससे माँगते हैं। उनकी प्रार्थनाओं को सुनकर,'दाति करे दातारु = वह दाता परमेश्वर सभी को कर्मानुसार यथोचित् पदार्थ देता है। जब सभी कुछ देने वाला परमेश्वर है तब—

'फेरि कि अगै रखिऐ = उस दाता अकाल पुरुष के आगे कौनसी, फेरि = भेट। पूजा रखी जाए जिसके द्वारा, 'दिसै दरबारु = उसका दर्शनीय सत्य स्वरूप दिखाई देवे ?

'मुहौ कि बोलणु बोलीऐ = और मुख से क्या बचन बोला जाए ?

'जितु सुणि धरे पिआरु = जिसे सुन कर परमात्मा प्यार करे।

उत्तर—'अमृत वेला सचु नाउ = प्रातःकाल में उस सत्य स्वरूप परमेश्वर के सच्चे नाम का स्मरण करना उस ईश्वर के आगे भेट चढ़ाना है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'वडिआई वीचारु = सगुण स्वरूप होकर ईश्वर भक्तों की रक्षा और योगक्षेम एवम धर्म-मर्यादा स्थापित करता है, इत्यादि ईश्वरीय बड़ाइयों का विचार करके गुणानुवाद करना, जिसे सुनकर परमेश्वर भक्त के साथ प्यार करता है।

'करमी आवै कपड़ा' = शुभ कर्मानुष्ठान करने वाले कर्मी = जीव को ईश्वर की कृपा से भक्तिरूप कपड़ा प्राप्त होता है और भक्ति से मोक्ष का द्वार ज्ञान प्राप्त होता है।

अथवा, कर्मी = उत्तम कर्मों से, आवै कपड़ा = शरीर रूप वस्त्र प्राप्त होता है।

नदरी मोखुदुआरु = नदरी = ईश्वर की कृपादृष्टि से मोक्ष का द्वार ज्ञान प्राप्त होता है।

नानक एवै जाणीऐ = श्री गुरु नानकदेवजी कहते हैं कि इस प्रकार जाननाचाहिये कि—

सभुआपे सचिआरु = सर्वाधिष्ठान सत्यस्वरूप परमेश्वर सर्वत्र स्वयमेव विद्यमान है।

यथा— बनितिनि परबति है पारब्रह्म,

एवं— पउण पाणी बैसंतर माहि। चारि कुंट दहदिसे समाहि॥ सुखमनी

भावार्थ— जो परमात्मा इतना अधिक वलवान् और हुकम वाला है, क्या वह स्वयं तथा उसका नाम और उसका प्रभुत्व विनश्वर है?

सिद्ध मण्डली के प्रश्न को सुन कर श्री गुरुदेव जी कहते हैं, कि वह परमेश्वर स्वयं सत्य स्वरूप है, और उसका नाम भी सत्य है। अतीत, अनागत, वर्तमान काल में जिस वस्तु का नाश नहीं होता उसे सत्य कहते हैं इसीलिये इतिहास पुराणादि सद्ग्रन्थों में ऋषियों ने परमात्मा को सत्य अविनाशी कथन किया है। सांसारिक सभी पदार्थों के नाम रूपादि मिथ्या हैं, परन्तु नित्य शाश्वत परमेश्वर का नाम ही सच्चा है। ईश्वर के सच्चे नाम को अनन्त श्रद्धालु, अपने कल्याण के लिये युग युगान्तरों में अपार प्रेम से अहोरात्र जपते हैं। सभी जीव ईश्वर के आगे प्रार्थना करते हैं और अपनी अपनी कामना के अनुसार स्त्री पुत्र धनादि, तथा भक्ति सत्य संतोषादि विविध पदार्थों को हमें दो, हमें दो ऐसा कहकर निरन्तर मांगते हैं, वह परम कृपालु परमेश्वर भक्तों की प्रार्थना को सुनकर उनकी श्रद्धाभक्ति एव कर्मों के अनुसार अनेक प्रकार की सुन्दर वस्तुओं को प्रदान करता है। शक्तिशाली परमेश्वर की महिमा को सुनकर सिद्धों ने पूछा, श्रीगुरुदेव? ऐसे महामहिमशाली परमेश्वर के आगे कौनसी वस्तु की भेटा रखी जाए जिससे उसका स्वरूप दिखाई दे सके? और मुख से किस प्रकार मधुर वचनों का उच्चारण किया जाये, जिन्हें सुनकर परमात्मा हमारे साथ प्रेम करे? उत्तर में श्री गुरुजी कहते हैं, कि प्रातःकाल उठकर ईश्वर के सच्चे नाम का सप्रेम उच्चारण करना ही उसे भेट चढ़ाना है, और सत्य सङ्कल्पादि श्रेष्ठ गुणों का तथा दयालुता, उदारतादि सुन्दर बड़ाइयों का गायन करना, मुख से मीठा बोलना है जिसे सुनकर परमात्मा भक्तों के साथ प्यार करता है जैसे किसी महाराजा की प्रसन्नता के लिये पूजा भेट आवश्यक होती है, वैसे ही राजाधिराज सर्व के शासक ईश्वर की प्रसन्नता के लिये पूजन सेवन तथा प्रार्थना भी आवश्यक है। अपने प्रश्न के उत्तर को सुन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कर सिद्ध अति प्रसन्न हुए, और गुरुदेव से पूछने लगे कि जीव को मोक्ष क्या शुभ कर्मों से प्राप्त होती है, वा किसी अन्य साधन से ? उत्तर में श्रीगुरु देवजी कहते हैं, जीव को शुभकर्मानुष्ठान से शरीर रूपी वस्त्र प्राप्त होता है । और ईश्वर की कृपा से मोक्ष का द्वार ज्ञान प्राप्त होता है । श्रीगुरु नानक देव जी कहते हैं कि आप लोगों को इस प्रकार अनुभव करना चाहिये कि सभी कुछ परमेश्वर स्वमेव आपही है, उसके अतिरिक्त संसार में और कुछ भी नहीं है ।

अब आगे ईश्वर का परमार्थ स्वरूप और ईश्वर के वास्तव स्वरूप के बोधक नाम का स्मरण कराते हैं ।

'साचा साहिबु साचु नाइ भाखिआ भाउ अपारु'

विशेष व्याख्या—साचा= कहये तीनों काल में नाश न होने वाला साहिब=सब से बड़ा अर्थात अविनाशी महतो महीयान्=इसके द्वारा जिस महान् स्वरूप का प्रतिपादन किया है । इस स्वरूप का बोधक साच नाइ= सत्य यह नाम है, पुनः वह स्वरूप कैसा है ? भाखिया=जिस स्वरूप को वेद के तात्पर्य जानने वाले ईश्वर ने एवं ब्रह्मनिष्ठ गुरुओं ने कहा है, भाउ= वह परमात्मास्वरूप देश काल वस्तु के अन्त से रहित एवं अपारु= सजातीय विजातीय स्वगत भेद रूप पार से रहित ईश्वर का वास्तव स्वरूप है । प्रश्न—पूज्य श्री गुरुदेव ? उक्त स्वरूप के बोधक ब्रह्मनिष्ठ गुरु एवं ईश्वर के वचनों का तात्पर्य जिज्ञासु कैसे जान सकता है ?

समाधान-'आखहि मंगहि देहि देहि दाति करे दातारु'

आखहि=उपदेश काल में जिज्ञासु के प्रति ब्रह्मवेत्ता अपने वचनों के तात्पर्य को कहता है। जिसे सुन कर श्रद्धालु उनके भावार्थ को समझलेता है। जिज्ञासु की प्रार्थना के विना ब्रह्मनिष्ठ उपदेश नहीं करता आगे इस बात को स्पष्ट करते हैं ।

'मंगहि देहि देहि=जब अधिकारी ऐसी प्रार्थना करता है कि गुरुदेव ? मुझे तात्पर्य का ज्ञान दीजिए इस प्रकार जब प्रार्थना पूर्वक मांगता है । तब पूर्ण काम एवं निःस्पृह होने के नाते सेवक से कुछ माँगते नहीं; किन्तु देते ही हैं । इसी भाव को आगे कहते हैं ।

दाति करे=गुरुवाणी एवं शास्त्र में प्रतिपादन की हुई रीति से ब्रह्मनिष्ठ सेवकों के प्रति उपदेश का ही दान करता है इसलिये वह दातारु=दाता है ।

प्रश्न—गुरुदेव ! ब्रह्मनिष्ठ के उपदेश का सेवक ने अद्वितीय सत्त्य में जो निश्चय किया वही जानने की अवधि है वा इससे और अधिक जानना शेष रहता है ? फेरि कि=अर्थात् गुरु के वचन से एक में तात्पर्य जानने के पीछे क्या कुछ शेष रह जाता है ?

समाधान-'अगै रखीऐ जितु दिसै दरबार=भाव यह है श्रवण दो प्रकार का होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रथम, कान से गुरु के उपदेश वचनों को सुनना। दूसरा सुने हुए वचन के तात्पर्य को निर्णय कर के जानना, तात्पर्य को जानने के पीछे कहे हुये अर्थ का युक्तियों से चिन्तन करना मनन है। मनन से पीछे ध्येय में चित्त की एकाग्रता का नाम निदिध्यासन है। निदिध्यासन के पश्चात् पूर्ण ज्ञान होता है। इसलिये तात्पर्य को जानने से अगै=अनन्तर अधिकारी को वेद एवम् गुरुवाणी ने मनन एवं निदिध्यासन साधनों का रखिऐ= विधान किया है। जितु दिसै दरबारु=जिन साधनों से सर्व के राजा परमेश्वर का मुख्य स्थान दिखाई देता है अर्थात् ज्ञान से प्रत्यक्ष होता है।

प्रश्न— मुहौ कि बोलणु बोलीऐ=

शिष्य को गुरु के समीप जाकर मुहौं=मुख से "कि बोलणु बोलीऐ= कैसा वचन बोलना चाहिये? भाव यह है कि गुरु के समीप जाकर सेवक को कैसा प्रश्न करना चाहिये, क्या कर्म के स्वरूप का अथवा उपासना एवं ज्ञान के स्वरूप का तीनों विकल्पों को सुनकर श्री गुरुदेवजी उत्तर देते हैं—

"जितु सुणि धरे पिआरु"

जिस वाक्य को श्रवण करके गुरु के मनमें शिष्य के प्रति प्यार उत्पन्न हो सके वह वचन गुरु की शरण में जाकर शिष्य को बोलना चाहिये! भाव यह है सेवक अपने मनमें यह विचार करता है। कि कर्मादि को स्वर्गादि का साधक होने से और मुक्ति का असाधक होने से कर्म सम्बन्धी प्रश्न करना मुझे उचित नहीं, एवम् उपासना को मुक्ति का असाधन होने से केवल उपासना के सम्बन्ध में प्रश्न करना भी उचित नहीं, किन्तु उपासना जन्य ज्ञान मुक्ति का साधन है। इसलिये मेरे को प्रथम यह पूछना चाहिए कि ईश्वर का स्वरूप कैसा है? जिसकी भक्ति से ज्ञान होता है और जीव का स्वरूप कैसा है? जिसको भक्ति करके ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार गुरु की शरण में जाकर शिष्य को सर्व प्रथम ऐसा वचन बोलना चाहिये। ऐसे वचनों को सुन कर शिष्य को ज्ञान का अधिकारी जानकर गुरु उसके प्रति प्रेम को धारण करते हैं। अथवा—पूज्य गुरुदेव? तीनों ताप सूर्य के समान मुझे दग्ध कर रहे हैं। इनसे मेरा छुटकारा कैसे हो सकता है? गुरु की शरण में जाकर सर्व प्रथम शिष्य इतना पूछना पर्याप्त समझता है, गुरु शिष्य की विनम्र प्रार्थना को सुन कर उपदेश करने के लिये उसके प्रति स्नेह करते हैं। अथवा मुहौ के बोलणु=इत्यादि वचनों का यह अर्थ है—फेरि के= पाठ से शिष्य द्वारा किये प्रश्न को सुनकर "मुहौ=मुख से गुरु क्या वचन बोलते हैं, भाव यह है क्या गुरु शिष्य के प्रति सगुण ब्रह्म के बोधक वचनों को बोलता है? वा निर्गुण ब्रह्म के बोधक वचनों को कहता है?

समाधान— जितु सुणि= यह अधिकारी सगुण ब्रह्म के उपदेश के योग्य है, और यह निर्गुण ब्रह्म के उपदेश के योग्य है, ऐसा चित्त में विचार कर, जो जिस उपदेस का अधिकारी होता है गुरु उसे वैसा ही उपदेश करते हैं। जिसे सुन कर उसके अर्थ को विचारने में—धरे पिआरु=वह श्रेष्ठ अधिकारी प्रेम धारण करता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न- शिष्य की योग्यता और जिज्ञासा को देखकर गुरु किस प्रकार उपदेश करते हैं, इसे आप कृपा करके बताएँ ?

समाधान— हे वत्स ! तुमने प्रथम यह पूछा था कि उपासनीय ईश्वर का स्वरूप कैसा है ? तथा उपासक जीवका स्वरूप कैसा है ? एवं संसार के त्रिविध तापों से मैं कैसे छुटकारा पा सकता हूँ ? इत्यादि-प्रश्नों का यह उत्तर है कि यह मनुष्य जन्म जो तुझे प्राप्त हुआ है,इसमें सोचने विचारने और कुछ पूछने की सूझ हैं। यही तेर अमृतु वेला = मुक्त होने का समय है। इससे बढ़कर और कोई उत्तम शरीर नहीं। इसी भाव को गुरुजी ने स्पष्ट किया है।

"मानस देहि बहुरि नहीं पावहि कछु उपाउ मुक्ति का करुरे" गु० ग्र० पृ०२२०

संसार से तरने का समय मनुष्य शरीर है, ऐसा बताकर अब तरने का उपाय कहते हैं-

सचु नाउ वडिआई वीचारु =त्रिविध तापों से तरने के लिये सचु नाउ =अर्थात त्य यह नाम स्वरूप बोधक है जिस ईश्वर का उसका और अपने स्वरूप का निरन्तर विचार कर—

अर्थात ईश्वर का क्या स्वरूप हैं और मेरा क्या स्वरूप है ? पुनः वडिआई वीचारु= ईश्वर एवं उसके महत्त्व का भी विचार कर ईश्वर में जो महत्त्व है वह मेरे में कैसे हो सकता है ? भाव यह है सत्यनाम एवं आदि सचु =इत्यादि—पूर्व वचनों में अविनाशी सर्व का प्रकाशक सभी को आनन्द देने वाला सर्व का हितैषी एवं निर्भय ईश्वर के स्वरूप को विचार करके उसके बाद

'मन तूं जोति स्वरूप है अपना मूलु पछाणु' गु० ग्र० पृ० ४४१

इत्यादि-वचनों के अनुसार मैं ही सम्पूर्ण देह इन्द्रियों का प्रकाशक एवम् करके चैतन्य स्वरूप हूं। मेरा जो निरुपाधिक रूप है वह सत्य और आनन्द रूप है। इसलिये मैं सच्चिदानन्द हूं।

आत्म रामु रामु है आत्म' इत्यादि गुरु वचनों से दोनों की एकता का ही प्रतिपादन हुआ है। इसलिये अपने ब्रह्मस्वरूप का विचार करने के बाद ईश्वर में स्वतन्त्रता नित्य शुद्ध मुक्तादि जो विशेषताएँ हैं। वह मेरे में भी हैं क्योंकि मैं उससे अभिन्न हूं।

'जो तुधु सेवहिसे तुधुही जेहे' गु० ग्र० पृ०१०२१

इत्यादि गुरु वचनों में जीव को ईश्वर से अभिन्न बताया है। अपनी विशेषताओं और महत्व का विचार करने से पीछे केवल यथार्थ ज्ञान की दृढ़ता से सूर्य के समान तपाने वाले त्रिविध ताप से तुझे छुटकारा मिल सकेगा। ज्ञान के बिना केवल सकाम कर्मों से नहीं ऐसा मन में दृढ़ निश्चय कर पूज्य श्री गुरुदेव ?

"कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इत्यादि गीता वचनों में जनकादि को कर्मों से ही मुक्ति लिखी है। आपने केवल ज्ञान से मुक्ति का कैसे प्रतिपादन किया है ?

समाधान— "करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआरु"

हे वत्स ! कर्मों से करमी = कर्म करने वाले पुरुष को पूर्व शरीर छोड़ "आवै कपड़ा = वस्त्र तुल्य पहरने को दूसरा शरीर रूप वस्त्र ही मिलता है। मुक्ति नहीं मिलती।

भाव यह है सकामी पुरुषों को फल भोगने के लिये कोई न कोई शरीर प्राप्त होता है। शरीर मिलने पर सूर्य के समान तपाने वाला त्रिविध ताप रूप संसार से सम्बन्ध होता है। इसलिये सकामी पुरुष दुःख सुख का अनुभव करते हैं। तथा जन्म मरण के चक्र में घूमते रहते हैं। परन्तु ज्ञानी पुरुषों को— 'नदरी मोखु दुआरु' मुक्ति के द्वार आत्मज्ञान से तापत्रयीरूपसंसार दुःख का नाश और परमानन्द की प्राप्ति रूप मुक्ति होती है। इसलिए गीता में कर्मों से जनकादि को जो संसिद्धि लिखी है, वह मुक्ति नहीं किन्तु निष्काम कर्मों द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि लिखी है उस शुद्धि का नाम ही संसिद्धि है। इस प्रकार ज्ञान को मुक्ति का हेतु बता कर उस ज्ञान में शिष्यों की प्रवृत्ति के लिये सर्वदा अद्वैत दृष्टि से देखने की शिक्षा देते हैं ?

"नानक एवै जाणीऐ सभु आपे सचिआरु"

नानक = श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं ज्ञान को ही मुक्ति का हेतु जानकर 'एवै जाणीऐ = इस प्रकार जानना चाहिये। 'सभ आपे सचिआरु' = संसार में जो कुछ दिखाई देता है वह सब कुछ परमेश्वर स्वयं ही मूर्तिमान होकर दिखाई दे रहा है। जैसे मृत्तिका ही घटादि अनेक रूपों को धारण करती है। वैसे परमेश्वर ही विविध रूपों को धारण करके दिखाई देरहा है। उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं श्री गुरु अमरदेवजी ने इसी भाव की पुष्टि की है।

"इह जगत हरि का रूप है हरि रूप नदरी आइआ"

॥ चतुर्थ मन्त्र समाप्तम् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न—सर्वत्र दिखाई देने वाला परमेश्वर क्या किसी द्वारा स्थापित किया हुआ है, अथवा किसी व्यक्ति से उत्पन्न होता है ? समाधान—

मूल— थापिआ न जाइ कीता न होइ। आपे आपि निरंजनु सोइ।
जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु। नानक गावीऐ गुणी निधानु।
गावीऐ सुणीऐ मनि रखीऐ भाउ। दुःख परहरि सुखु घरि लै जाइ।
गुरमुखि नादं गुरमुखि वेदं गुरमुखि रहिआ समाई ॥
गुर ईसरु गुरु गोरखु बरमा गुरु पारवती माई ॥
जे हउ जाणा आखा नाही कहणा कथनु नजाई।
गुरा इक देहि बुझाई। सभना जीआका इकु दाता—
सो मै विसरि न जाई ॥ ५ ॥

शब्दार्थ— थापिआ न जाइ कीतानहोइ।

वह परमेश्वर मूर्ति के समान किसी द्वारा स्थापित नहीं किया जाता, और घटपटादि के समान किसी से बनाया भी नहीं जाता।

आपे आपि निरंजनु सोई=किन्तु माया मल से रहित वह स्वयंभू परमेश्वर अपने आप स्वयमेव है।

जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु= जिन जिज्ञासुओं ने परब्रह्म परमेश्वर का पूजन सेवन किया है उन्होंने लोक परलोक में सम्मान प्राप्त किया है।

नानक गावीऐ गुणीनिधानु =श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं, गुणनिधि परमेश्वर के गुणों का सर्वदा गायन करना चाहिये।

प्रश्न—गुणों के भण्डार परमात्मा का गायन किसी श्रोता के सामने ही हो सकता है अथवा स्वयमेव ही ?

उत्तर— गावीऐ सुणीऐ मनिरखीऐभाउ=योग्य अधिकारी के समीप, गावीऐ= कथन करना चाहिए और कुशल वक्ता से सुणीऐ=श्रवण करना चाहिये दोनों के अभाव में, मनि= मनमें भाउ रखीऐ=प्रेम= रखना चाहिये। अथवा ब्रह्मनिष्ठ गुरु से श्रवण करना चाहिए, और श्रवण किये अर्थ को मनन करना चाहिये।

पुनः मनन किये अर्थ का रखीऐ=निदिध्यासन करना चाहिए तबभाउ=प्रत्यक्षज्ञान होता है। प्रश्न-प्रत्यक्ष ज्ञान से क्या लाभ होता है ? समाधान दुःख परहरि=आध्यात्मिकादि दुःखों को अच्छी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रकार निवृत्त करके, सुखुघरिलैजाई=सर्व सुखों के धाम परब्रह्म परमात्मा में लीन हो जाता है। अथवा—सर्व सुखों के घर आत्म सुख में जिज्ञासु तल्लीन हो जाता है।

प्रश्न—जीव और ईश्वर इन दोनों की अभिन्नता में कोई उदाहरण दो?

समाधान गुरमुखि नादं=मुख्य गुरु के, नादं=आत्मोपदेश शब्द को,

गुरमुखि वेदं=जिस जिज्ञासु ने श्रवण करके जाना है।

गुरमुखि रहिआ समाई=वह जिज्ञासु परमात्मा में अभिन्न रूप होकर रहता है। ☀

अब आगे ब्रह्मदर्शी ब्रह्मनिष्ठ गुरु को सर्व देव स्वरूप प्रतिपादन करते हैं।

गुरु ईसरु=आसुरी सम्पत्ति के विनाशक होने के कारण गुरु शिव के तुल्य हैं।

गुरु गोरखु बरमा=दैवी गुणों के रक्षक होने के कारण गुरु विष्णु स्वरूप हैं, तथा शुभ गुणों के जनक होने के कारण गुरु ब्रह्मास्वरूप है।

गुरु पारबती माई=वरदायक एवं शक्ति दायक होने के कारण गुरु पार्वती स्वरूप हैं। धर्मार्थ मोक्षादि पदार्थों के दाता होने के कारण गुरु, मा=लक्ष्मी स्वरूप है, तथा ब्रह्मविद्या के उपदेष्टा होने के कारण गुरुदेव, ई=सरस्वती स्वरूप हैं। क्या इससे भी अधिक गुरुओं की महिमा आप कह सकते हैं?

उत्तर—जे हउ जाणा आखा नाही=ब्रह्मदर्शी गुरु की महिमा को यदि निश्चितरूप से जानता तो मैं आपसे कथन न करता।

कहणा कथनु न जाई=यदि मैं कहना भी चाहूं तो भी गुरु की महिमा अकथनीय होने के कारण कथन नहीं कर सकता।

प्रश्न—ब्रह्मदर्शी गुरु की कोई अलौकिक बात सुनाइये?

उत्तर—गुरा इक देहि बुझाई=ब्रह्मज्ञानी गुरुओं ने मुझे एक अलौकिक सूझ बूझ दी है।

सभना जीआ का इकु दाता=सभी प्राणियों को देने वाला एक अकाल पुरुष परमात्मा है!

सो मै विसरि न जाई=वह परब्रह्म परमात्मा सर्व का आत्मा सर्व का अध्यक्ष, सर्व का संरक्षक, होने के कारण मुझे कदापि विस्मृत नहीं होता।

टिप्पणी ☀ गुरमुखि=ब्रह्मज्ञानी गुरु के मुख से निकले हुए आत्मोपदेश रूप, नादं=शब्द को गुरमुखि=जिस जिज्ञासु ने मनन निदिध्यासन के द्वारा, वेदं=निश्चय किया है, उस जिज्ञासु को गुरमुखि=पूज्य एवं सर्व से मुख्य परब्रह्म परमेश्वर, रहिआ समाई=व्यापक परिपूर्ण सर्वत्र समाया हुआ प्रतीत होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भावार्थ—जिस परमात्मा के स्वरूप का आपने प्रतिपादन किया है क्या वह मूर्ति के समान मन्दिर में स्थापित किया जाता है ? वह किसी का पुत्र है वा शिष्य ? स्वतन्त्र है वा परतन्त्र ? माया विशिष्ट है वा माया मल से रहित ? इत्यादि, सिद्धों के प्रश्नों को सुनकर श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं—कि वह परमेश्वर किसी निपुण शिल्पी द्वारा बनाकर मूर्ति के समान मन्दिर में स्थापित नहीं किया जाता। और न ही किसी माता पिता से पुत्र के समान उत्पन्न होता है। सर्व का आदि उपदेष्टा होने के कारण वह किसी का शिष्य भी नहीं। एवम् न ही कुम्भकारादि के किसी प्रयत्न विशेष से घट-पटादि के समान उसका निर्माण होता है। वह माया मल से रहित निरञ्जन सर्वथा स्वतन्त्र सर्व का नियामक स्वयंभु स्वयं प्रकाश है। जिन श्रद्धालु पुरुषों ने ईश्वर का सेवन पूजन किया है उन्हें ध्रुव प्रह्लादादि के समान लोक परलोक में सम्मान प्राप्त हुआ है।

श्री गुरुजी कहते हैं जिस परमात्मा से जीव के सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं उस गुणनिधि जगत्पति ईश्वर का हमें सर्वदा स्मरण करना चाहिये। वाणी से ईश्वर के नाम का उच्चारण करना कानों से उसको यश का श्रवण करना, और सुने हुए अर्थ का मन में प्रेम से मनन करना आवश्यक है। श्रवण मनन निदिध्यासन के पश्चात् ही जीव को ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञान के अनन्तर दुःखों का मूल कारण अज्ञान निवृत हो जाता है। और सुख स्वरूप परमानन्द की प्राप्ति होती है। इस प्रकार गुरुदेव के सुखप्रद उत्तर को सुन कर सिद्ध कहने लगे गुरुदेव ! हम लोग नाद शब्द के द्वारा ईश्वर के यश का गायन करते हैं। तथा वेदमन्त्रों के द्वारा उसके यश को पढ़ते और सुनते हैं। परन्तु आपने कहा है कि ईश्वर के यश का गायन और श्रवण करना चाहिए। और श्रवण किये अर्थ का मनन और निदिध्यासिन करना आवश्यक है। परन्तु आप इसे किस प्रकार करते हैं ? उत्तर में श्री गुरुजी कहते हैं, कि गुरु के मुख द्वारा किया हुआ उपदेश ही हमारा नाद शब्द है, और गुरु का उपदेश ही हमारा वेद है, तथा गुरु का उपदेश ही हमारे हृदय में समा रहा है। हम उसी का मनन और निदिध्यासन करते हैं, ऐसा सुन कर सिद्धों ने कहा—गुरुदेव ! हम लोग अपना गुरु शिवजी को मानते हैं, आप किसे मानते हैं ? उत्तर में गुरु नानक देवजी कहते हैं गुरुदेव ही मेरा कल्याणकारी शिव है। गुरु ही मेरा संरक्षक विष्णु एवम् ज्ञान उत्पादक ब्रह्मा है। गुरुदेव ही मेरे भोग प्रदात्री लक्ष्मी, और विद्या-प्रदायिनी सरस्वती, तथा शक्ति दायिनी पार्वती स्वरूप हैं। यह सुन कर सिद्ध मण्डली ने कहा कि आप अपने पूज्य गुरुदेव की अलौकिक महिमा का कुछ वर्णन करें ? उत्तर में श्रीगुरु नानक देवजी कहते हैं कि मेरे पूज्य गुरुदेव की महिमा इतनी गहन और गम्भीर है कि उसे जानता हुआ भी मैं साङ्गोपाङ्ग वर्णन नहीं कर सकता। क्योंकि गुरु की महिमा मन वाणी से अकथनीय है। पूज्य गुरुदेव जीने मुझे एक आलौकिक प्रतिभा देकर समझाया हैं, कि सभी जीवों का दाता एक परमेश्वर, है वह सर्व का प्रतिपालक ईश्वर मुझे कदापि विस्मृत नहीं होता।

प्रश्न—श्री गुरुदेव ! आपने सर्वत्र ईश्वर को देखने की आज्ञा की है, क्या हम अद्वितीय परमात्मा को नेत्रों से देखने के लिये किसी देश काल में उसे स्थापित कर सकते हैं ?

समाधान— थापिआ न जाइ=

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विशेष व्याख्या— जैसे घटादि पदार्थों को पृथक् करके किसी देश और काल में स्थापित करते हैं, वैसे वह अद्वितीय परमात्मा सर्व वस्तुओं से पृथक् करके किसी देश और काल में स्थापित नहीं किया जा सकता क्योंकि वह सर्वत्र परिपूर्ण है, कीता न होइ=वह ईश्वर किसी व्यक्ति विशेष की क्रिया से मूर्ति के समान बनाया नहीं जाता। जो वस्तु बनाई जाती है वही किसी देश एवं काल में स्थापित हो सकती है। इसी से वह किसी देश और काल में अन्य पदार्थों से अलग करके स्थापित नहीं किया जाता, क्योंकि उसमें देश कृत एवं कालकृत भेद नहीं है, जैसे घटपटादि पदार्थों को बनाकर किसी देश में स्थापित करते हैं, वैसे ईश्वर को नित्य शुद्ध बुद्ध होने से स्थापित नहीं कर सकते।

प्रश्न—जीव को ईश्वर से भिन्न होने के कारण परस्पर भेद स्पष्ट प्रतीत होता है, इसलिये परमात्मा को अद्वितीय कहना उचित नहीं?

समाधान—आपे आपि निरंजनु सोइ=आपे=परमात्मा ही, आपि=जीवरूप है उससे भिन्न नहीं, निरंजनु सोइ=वह जीव परस्पर भेद करने वाले अज्ञान से रहित निरञ्जन रूप है, इसलिये जीवरूप वस्तु का भेद न होने से वह परमात्मा अद्वितीय स्वरूप है।

यथा— जिउ जल तरंग जलु जलहि समावहि —
नानक आपे आपि रमईआ' गु० ग्र० पृ० ८३५

"जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु=जिन पुरुषों ने परब्रह्म परमात्मा का श्रद्धाभक्ति से पूजन सेवन किया है उन्हों ने परमेश्वर के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान प्राप्त किया है।

नानक गावीऐ गुणी निधानु=श्री गुरु नानक देवजी कहते हैं कि यह अधिकारी पुरुष ईश्वर कृपा से गुणी=सत्यादि स्वरूप तथा निधानु=सर्व जगत् का उपादान और निमित कारण परमेश्वर के अखण्ड स्वरूप का गावीऐ=कथन करता है अथवा गुणी=सत्ता स्फुरणादि गुणों वाले जिस ईश्वर को निधानु=सर्व का कारण गावीऐ=गुरुवाणी और श्रुति स्मृति ने गायन किया है उस ईश्वर का जिन अधिकारियों ने सेवन किया है उन्होंने उस परम कृपालु ईश्वर की कृपा से मान को प्राप्त किया है अथवा गुणी=और निधानु=ये दोनों शब्द मान के विशेषण हैं वह मान गुणी=निर्दोष है, निधानु=यथार्थ ज्ञान की निधि है इस बात को श्रुति स्मृति और विद्वान् लोग गावीऐ गायन करते हैं।

"गावीऐ सुणीऐ मन रखीऐ भाउ"

ब्रह्मज्ञानी गुरु के उपदेश से महा वाक्य जिज्ञासु के प्रति जब परमेश्वर का वास्तविक स्वरूप 'गावीऐ=गायन करता है। तब अधिकारी सुणीऐ=तात्पर्य का निर्णय करने के लिये श्रवण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करता है जिस वस्तु में तात्पर्य का निर्णय किया जाता है, उसी वस्तु का युक्तियों से चिन्तन करने को मनन कहते हैं। मनन के अनन्तर मन रखिऐ भाउ=मन में मनन किये स्वरूप का ध्यान करना चाहिये, ध्यान करते हुए अन्य वस्तुओं का चिन्तन छोड़ कर तैलधारा के समान चित्तवृति से केवल ध्येय स्वरूप का ही निदिध्यासन करना आवश्यक है। जिस वस्तु का श्रवण, मनन, निदिध्यासन किया जाता है उस अद्वितीय सत्य वस्तु का संशय विपर्यय रहित तत्त्वज्ञान होता है, पूर्व में संशय विपर्यय रहित ज्ञान की प्राप्ति कह कर, अब ज्ञान से होने वाली मुक्ति को श्री गुरुदेवजी प्रतिपादन करते हैं।

"दुख पर हरि सुखु घरि लै जाए"

श्रवण मननादि से उत्पन्न हुआ ज्ञान सर्व दुःखों के कारण अज्ञानरूप महा दुःख को और उसके कार्य सूक्ष्म स्थूल शरीर रूप दुःख को तथा इन शरीरों में दुःख नाम से प्रसिद्ध आध्यात्मिक आधि भौतिक आदि दुःखों को, पर हरि=नाश करके सुख घरि=परमानन्द के स्थान ज्योति परमात्मा में लै जाए=ज्ञानवान् को ले जाता है इस बात को गुरुदेव ने अन्यत्र गुरुवाणी में भी प्रति पादन किया है।

यथा "गुरुमुखि ज्ञानु ततु वीचारा जोती जोति मिलाए" गु०ग्र०पृ० ११३१

एवम् 'सूरज किरण मिले जल का जलु हुआ राम जोती जोति रली संपूरनु थीआराम। ग० ग्र०पृ० ८४६

प्रश्न—गुरु भक्ति द्वारा प्राप्त हुये वेद प्रमाण ने श्रवण मननादि द्वारा ज्ञान को उत्पन्न करके सर्व दुःखों का नाश एवम् परमानन्द की प्राप्ति रूप मुक्ति फल का प्रतिपादन किया है, वह प्रमाण कहां निवास करता हैं?

समाधान— गुरुमुखि नादं=मुक्तिरूप फल को देने वाला जो प्रमाण स्वरूप नादं= उपदेश वाक्य है वह गुरुमुखि=ब्रह्मज्ञानी गुरु के मुख में ही निवास करता है।

प्रश्न—वेद सर्व वाक्यों का आधार है, इसलिए ज्ञान के उत्पादक प्रमाण का त्रिकाण्ड रूप वेद में निवास कहना उचित है गुरु के मुख से निवास कहना युक्ति युक्त नहीं?

समाधान— गुरु मुखि वेदं=अधिकारी को देखकर गुरु अपने मुख से वेदों के तीनों काण्डों का उपदेश करते हैं, इसलिये त्रिकाण्ड रूप वेदं=जो वेद है वह भी गुरुमुखि=ब्रह्मज्ञानी गुरु के मुख में निवास करता है।

प्रश्न—अनेक शाखा वाले त्रिकांड रूप वेद का शक्तिशाली ईश्वर के मुख में निवास करना सम्भव है, परन्तु अल्प शक्ति वाले गुरु के मुख में विस्तृत वेद का निवास कहना उचित नहीं?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समाधान— **गुरुमुखि रहिआ समाई** = गुरु के मुख में भी ईश्वर के समान वेद निवास करता है। इसमें हेतु कहते हैं 'समाई' = स-वह ब्रह्मज्ञानी गुरु माई = ईश्वर स्वरूप है।

यथा **'ब्रह्म ज्ञानी आपि परमेसुर'** तथा **गुरु परमेसुरु एको जाणु।**

पारब्रह्म गुर नाही भेदु— गु० ग्र० पृ० ११४२

पूर्वोक्त अर्थ को दृढ़ करने के लिये अब गुरु को परमेश्वर स्वरूप वतलाते हैं।

गुरु ईसरु = सेवकों पर कृपा करने के कारण गुरु शिव स्वरूप हैं। अथवा जैसे शिव सर्व का लय करता है, वैसे गुरु भी प्रपञ्च के निषेधक वचनों से सर्व का बाधात्मक लय करते हैं। इसलिये गुरु शिब स्वरूप हैं।

गुरु गोरखु = गो नाम वेद का है उनकी रक्षा करने वाले विष्णु का नाम गोरखु है। जिस प्रकार विष्णु भगवान वेद मार्ग के विरोधी दुष्टों का नाश करके वेद मर्यादा की रक्षा करते हैं। वैसे गुरु भी वेद विरोधी एवम् वेद वचनों की विपरीत व्याख्या करने वाले पण्डितमानियों की तर्कों का खण्डन करके वेद की रक्षा करते हैं इसलिये गुरु विष्णुस्वरूप हैं।

बरमा गुरु = वेद मर्यादा को प्रवृत करने से जैसे ब्रह्मा सर्व लोकों से सम्बद्ध है वैसे गुरु भी अधिकारियों में वेद मार्गको प्रवृत्त करने के लिये सभी से सम्बद्ध है इसलिये गुरु ब्रह्मा स्वरूप है इस प्रकार गुरु को ईश्वर की त्रिमूर्ति बताकर अब गुरु को त्रिशक्ति स्वरूप कहते हैं।

पारवती माई = जैसे हिमालय की पुत्री पार्वती ऋषियों के भ्रमाने पर भी अपने निश्चय से चलायमान नहीं हुई। वैसे ब्रह्मज्ञानी गुरु देह इन्द्रिय आदि नाना द्वैत को धारण करते हुये भी अद्वितीय सत्य निष्ठा से चलायमान नहीं होते। निष्ठा की समानता से गुरु पार्वती स्वरूप हैं।

तथा **मा** = गुरूदेव लक्ष्मी स्वरूप हैं। जैसे लक्ष्मी अपनी समीपता से पुरुष को धनवान् बनाकर उसकी दरिद्रता को दूर करती है वैसे गुरु भी अपनी समीपता से शिष्य को ज्ञानी बना कर उसके अज्ञान तत् कार्यरूप दुःख को नाश करते हैं।

तथा- **'ई** = गुरुदेव सरस्वती स्वरूप हैं। जैसे वीणावादिनी सरस्वती अपने उपासकों की बुद्धि शुद्ध करती है। वैसे गुरु भी जिज्ञासुओं पर कृपा करके ज्ञान द्वारा मुक्ति की सिद्धि करा देते हैं। इसलिये गुरु सरस्वती स्वरूप हैं।

प्रश्न—आपने पूर्व गुरु को शिवादि स्वरूप प्रतिपादन किया है, परन्तु आप अपने को कैसा मानते हैं? यह बताने की कृपा करें।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समाधान—जे हउ जाणा=शिवादि स्वरूप गुरु की कृपा से जे हउ=जैसा अपने आपको जाणा=जानता हूं। वैसा मैं आखा नाही,=वाणी से कहता नहीं हूं कहणा कथनु न जाई कथन नहीं किया जाता इसलिये मैं उस स्वरूप का प्रतिपादन नहीं करता,

क्योंकि——'महिमा न जानहि वेद। ब्रह्मे नही जानहि भेद' पृ० ८६४

किन्तु जैसा मैं सच्चिदानन्द स्वरूप हूं उसे मन से जानता हूं।

प्रश्न— 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'

अगम अगोचरा तेरा अन्तुन पाइआ अंतोन पाइआ—
किने तेरा अपणा आप तू जाणहे ॥ गु० ग्र०पृ० ६१८

इत्यादि गुरुवाणी तथा श्रुति ने परमेश्वर को मन वाणी का अविषय बताया है परन्तु आप उसे अगम अगोचर मानकर भी मन से जानना बता रहे हैं, इसका क्या रहस्य है? हे वत्स! जिस बात को पूर्वोक्त वचन प्रतिपादन करते हैं हमारा भी उसी अर्थ में तात्पर्य है। गुरुवाणी और वेद सर्वथा ईश्वर को मन वाणी का अविषय नहीं प्रतिपादन करते। क्योंकि—

"औपनिषदं पुरुषं पृच्छामि"

तथा मनसैव द्रष्टव्यम्, एवम् मुख सालाही साचे साहा—

नैणी पेखा अगम अपारा ॥ गु० ग्र० पृ० १०७७

इत्यादि वचनों का विरोध होगा इसलिये गुरुवाणी एवम् वेद का यह भाव है। शक्तिवृत्ति से वाणी उसे नहीं कहती और अशुद्ध मन से वह दिखाई नहीं देता। परन्तु लक्षणावृत्ति से वाणी उसे कहती है और शुद्ध मन से वह दिखाई देता है।

यथा कबीर मनु निरमलु भइआ जैसा गङ्गा नोर।

पाछै लागो हरि फिरै कहित कबीर कबीर ॥ पृ०१३६७

ब्रह्मज्ञानी गुरु ने हमें एक अद्वितीय सत्य वस्तु बताई है। इस बात को आगे निरूपण करते हैं—
'गुरा इक देहि बुझाई—गुरुदेव ने मुझे सत्यनाम आदि महामन्त्र के उपदेश से लक्षणावृत्ति द्वारा 'इक देहि=एक अद्वितीय सत्य वस्तु का 'बुझाई=बोध कराया है।

प्रश्न—आपको गुरुजी ने जो सत्य वस्तु बताई है उसे आप अपने से भिन्न वा अभिन्न समझते हैं?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समाधान— "सभना जीआ का इकु दाता सो मै"

चींटी से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त सभी प्राणियों को कर्म, उपासना, आदि का फल देने वाला एक परमेश्वर है वह मेरा स्वरूप है मेरे से भिन्न नहीं, इस भाव को गुरुवाणी के अनेक शब्द प्रतिपादन करते हैं।

यथा– "आतम रामु रामु है आतम हरि पाईऐ सबदि वीचारा है" गु० ग्र० पृ० १०३०

एवम्— "कहु नानक हम तुम गुरि खोई है अंभै अंभ मिलोगनी ॥पृ०८८३

प्रश्न— उस अद्वितीय सत्य का आप स्मरण कब करते हैं ?

समाधान—'विसरि न जाई,=वह अद्वितीय परमेश्वर मेरा स्वरूप होने के कारण मुझे कदापि नहीं भूलता चलते, फिरते, उठते, बैठते, सर्वदा ही उसका चिन्तन होता रहता है।

यथा—'सो किउ विसरै मेरी माइ। साचा साहिबु साचै नाइ। गु० ग्र० पृ २४६

पंचम मंत्र समाप्तम्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पूर्वोक्त युक्ति युक्त सार गर्भित गुरु जी के उत्तर को सुनकर सिद्धों ने विचारा, यदि गुरु नानक हमारा अनुगामी बन जाये तब हमारी अच्छी ख्याति हो जाएगी। इस विचार से तीर्थ यात्रा करने के लिये गुरुजी को साथ चलने का आग्रह किया, और रत्न जवाहरादि दिखलाने का प्रलोभन दिया। उनके हृदय की भावना को देखकर आगे गुरुजी उत्तर देते हैं।

मूल—तीरथिनावा जे तिसु भावा विणु भाणे कि नाइ करी।
जेती सिरठि उपाई वेखा विणु करमा कि मिलै लई॥
मतिविचि रतन जवाहर माणिक जे इक गुर की सिख सुणी।
गुरा इक देहि बुझाई। सभना जीआ का इकुदाता सो मै विसरि न जाई॥६॥

शब्दार्थ— तीरथि नावा जे तिसु भावा=

जब अकाल पुरुष परमात्मा को स्वीकार हो तब मैं तीर्थ स्नान करूं। अर्थात् जब परमेश्वर को स्वीकार होता है तभी मनुष्य तीर्थों में स्नान करता है, और उसकी तीर्थयात्रा भी तभी सफल होती है।

विणुभाणे कि नाइकरी=ईश्वर की प्रसन्नता के बिना स्नान करके क्या करूंगा? अर्थात ईश्वर की प्रसन्नता के बिना यदि मैंने स्नान कर भी लिया तो उससे मेरा कोई प्रयोजन सिद्ध न होगा।

जेती सिरठि उपाई वेखा=जितनी सृष्टि उत्पन्न की हुई मैं देखता हूं।

विणु करमा कि मिलै लई=विना कर्मों से किसी प्राणी को क्या मिलता है, और अपने बल से यह जीव क्या ले सकता है। अर्थात् यदि ईश्वर की हमारे पर प्रसन्नता होगी और हमारे भाग्य में तीर्थ स्नान होगा, तब हम—स्वयमेव यथा समय कर लेंगे। तुम्हारे साथ चलने की हमें आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

'मति विचि रतन जवाहर माणिक जे इक गुरकी सिख सुणी'=

जब तत्त्वदर्शी गुरुओं से जिज्ञासु एक परब्रह्म परमेश्वर की शिक्षा (उपदेश) सुनता है। तब अपनी बुद्धि में ही वैराग्य विवेकादि रत्न और परमेश्वर का साक्षात्कार रूप जवाहरादि प्राप्त हो जाते हैं। 'गुरा इक देहि बुझाई=इत्यादि पाठ का अर्थ पूर्व की तरह समझना चाहिये।

भावार्थ— श्री गुरु नानकदेव जी के युक्तियुक्त उत्तर को सुनकर उन्हें अपने मत में लाने के विचार से सिद्ध कहने लगे, आप हमारे साथ तीर्थयात्रा के लिए चलें। यात्रा करने से पापों की निवृत्ति और अन्तःकरण की शुद्धि होती है। इसी व्याज से आपको अनेक सुन्दर रत्न जवाहर माणिक्य आदि को देखने का शुभ अवसर प्राप्त होगा। उनके हृदय की भावना को देखकर श्री गुरुदेवजी कहते हैं— मैं तीर्थों का स्नान तभी कर सकता हूं यदि परमपिता परमात्मा को स्वीकार हो। उसे स्वीकार हुए बिना स्नान करने से भी मुझे क्या लाभ होगा? तीर्थयात्रा दान पुण्यादि कार्य तभी फलीभूत होते हैं, जब ईश्वर की प्रसन्नता हो। ईश्वरीय प्रसन्नता के बिना किये हुए शुभकार्य लाभप्रद नहीं होते, जैसे बुद्धिमती कार्यपटु सुकेशी नायिका के किये हुए अनेक शृङ्गार पति की प्रसन्नता के बिना निष्फल हैं, वैसे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ही भगवत् प्रसन्नता के विना सभी कार्य व्यर्थ एवं भार स्वरूप हैं। इसलिये मुझे वही कार्य श्रेष्ठ प्रतीत होता है जो ईश्वर को अच्छा लगे। ईश्वर ने जितनी सृष्टि उत्पन्न की है, मैं देखता हूं कि उसमें किसी भी प्राणी को कर्मों के बिना कुछ भी नहीं मिलता। जब यह जीव गुरुओं की शिक्षा को ग्रहण करता है, तब रत्न जवाहर माणिक्यादि के समान अमूल्य विवेक वैराग्यादि पदार्थ बुद्धि में ही इसे प्राप्त हो जाते हैं। उन्हें बाहर देखने भालने की आवश्यकता नहीं रहती।

यथा—'अंतरि रतन जवेहर माणकु' गुर किरपा ते लीजै॥ गु० ग्र० पृ० १३२४

इसलिये अपने पूज्य गुरुदेव से प्रार्थना है कि आप कृपा करके मुझे एक बात निश्चत करादें कि जो सभी जीवों को देने वाला प्रतिपालक परमेश्वर है वह सर्वदा मुझे याद रहे। मेरे चित्त से उसकी विस्मृति कदापि न हो।

प्रश्न—पूज्य गुरुदेव! ज्ञान तीर्थ में स्नान करने का सौभाग्य मुझे कब प्राप्त होगा?

समाधान— तीरथि नावा जे तिसु भावा=

विशेष व्याख्या— आत्मज्ञान तीर्थ है अद्वितीय सत्य का हृदय में साक्षात्कार होना उसमें स्नान है। अज्ञान तत्कार्य मलिनता है। हे वत्स! अज्ञान तत्कार्य मलिनता को दूर करने वाले ज्ञानरूप तीर्थ में नावा=तुम तब स्नानकर सकोगे। अर्थात् अद्वितीय सत्य के साक्षात्कार रूप स्नान को तुम तब करोगे। जे=जब श्रवण मनन के बाद तिसु भावा=उसका निदिध्यासन कर लोगे।

"विणु भाणे कि नाइ करी"--विणु भाणे=निदिध्यासन किये बिना "कि नाइ करी= ज्ञानरूप तीर्थ में अज्ञान तत्कार्य मलिनता का दूर करनारूपी स्नान कैसे करेगा, अर्थात् कुछ भी नहीं हो सकेगा। इसलिए श्रवण मनन से पीछे जब तुम निदिध्यासन करोगे तभी आत्मज्ञानप्राप्त होगा।

अथवा-तीरथि नावा=इत्यादि वाक्य का यह अर्थ है तीर्थ=आत्मज्ञान तीर्थ में नावा= अविद्या मलकी निवृति पूर्वक ब्रह्मानन्द का आविर्भाव रूप स्नान तब होगा जे=जब तिस भावा= ब्रह्मवेता गुरु को ऐसा निश्चय हो जायेगा कि यह अधिकारी उपदेश का पात्र है। विणु भाणे= गुरु को योग्य प्रतीत हुए बिना 'कि नाइ करी=कैसे स्नान करेगा किन्तु नहीं करेगा।

प्रश्न-गुरु को अधिकारी प्रिय लगे इसमें क्या हेतु है?

समाधान—'जेती सिरठि उपाई वेखा विणु करमा कि मिलै लई=

जेती सिरठि=देव मानब पशु पक्षी रूप जितनी सृष्टि ईश्वर की बनाई हुई वेखा=हमदेखते हैं, उसमें विणु करमा=सकाम कर्म किये बिना लोक वा परलोक में सुख प्राप्ति कि मिलै लई= कहां पर किसको मिलती है। अर्थात् शुभ कर्मानुष्ठान के बिना किसी प्राणी को कहीं पर सुख की प्राप्ति नहीं होती।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यथा—जो मै कीआ सो मै पाइआ दोसु न दीजै अवर जना। गु०ग्र०पृ०४३३

सुखस्य दुःखस्य न कोपि दाता परो ददातीति कुबुद्धि रेषा।
स्वकर्म सूत्रेण ग्रथितो हि लोकोऽहं करोमीति वृथाभिमानः। अ०रामायण

ऐसे ही ईश्वर की प्रसन्नता के हेतु निष्काम कर्म किए बिना अन्तःकरण की शुद्धिरूप फल किसी को नहीं मिलता, इसलिए चित्तशुद्धि के वास्ते निष्काम कर्म करना आवश्यक है। वैराग्य विवेक आदि साधन संपत्ति के लिये चित्त शुद्धि अपेक्षित है तथा ज्ञानार्थ गुरु के समीप जाने के लिये साधन सम्पत्ति आवश्यक है साधन सम्पन्न अधिकारी ही ब्रह्मनिष्ठ गुरुको उपदेश के योग्य प्रतीत होता है। इसलिये निष्काम कर्म को परम्परा से हेतु जान कर अधिकारी बनने के लिए निष्काम कर्मों को कर। शिष्य का गुरु को प्रिय प्रतीत होने में निष्काम कर्मों को परम्परा से हेतु कह कर अब गुरु को शिष्य का प्रिय प्रतीत होना ज्ञान की उत्पत्ति में साक्षात् वा परम्परा हेतु है? ऐसी आशङ्का के होने पर परम्परा से हेतु है; आगे के वचनों से कहते हैं।

"मति विचि रतन जवाहर माणिकजे इक गुर की सिख सुणी" जे इक=

गुरु से योग्य शिष्य जब एक वस्तु के 'सिख सुणी' उपदेश को श्रवण करता है। तब एक वस्तु को श्रवण करने से उत्पन्न हुई 'मति विचि' एकता वाली बुद्धि में 'रतन' अद्वितीय सत्य प्रकट होता है। जैसे—शुद्ध दर्पण में किसी वस्तु का स्वरूप प्रतिविम्बित होता है वैसे स्वच्छ बुद्धि में अद्वितीय सत्यवस्तु प्रतिबिम्बित होती है। हीरा मोती प्रवाल आदि का नाम रत्न है। फारसी में रत्न को ही जवाहर कहते हैं लाल रङ्ग वाले एक जाति के रत्न का नाम माणिक्य है। भाव यह है जैसे जवाहर अपना जौहर दिखाकर ग्राहक को अपनी ओर आकृष्ट करता है। वैसे चैतन्य, बुद्धि को प्रकाशित करना रूप जौहर दिखा कर अधिकारी की मति को अपनी ओर आँकृष्ट करता है, एवम् जैसे माणिक्य घट पटादिपदार्थों को प्रकाशित करके अन्धकार को दूर करता है। वैसे चैतन्य भी अज्ञान तत्कार्य] रूपी अन्धेरे को नष्ट करता है इसलिये शिष्य का योग्यहोना ज्ञान में हेतु है। योग्य शिष्य को ही गुरु अद्वितीय सत्य का श्रवण कराते हैं। श्रवण किये अर्थ वा मनन और निदिध्यासन किया जाता है। इसके बाद अधिकारी को गुरु के वाक्य से अद्वितीय सत्य की मति उत्पन्न होती है।

इसलिये श्रवण मनन निदिध्यासन द्वारा शिष्य का गुरु को प्रिय प्रतीत होना आत्मसाक्षात्कार में परम्परा से हेतु है।

षष्ठं मन्त्रं समाप्तम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुनः सिद्धों ने गुरु जी से कहा कि यदि आप हमारे मत में दीक्षित हो जायें, तब योगबल से दीर्घजीवी और यशस्वी हो जायेंगे। ऐसी बातों को सुन कर गुरु जी उत्तर देते हैं।

मूल—जे जुग चारे आरजा होर दसूणी होइ। नवा खंडा विचि जाणीऐ नालि चलै सभुकोइ। चंगा नाउ रखाइकै जसु कीरति जगि लेइ। जेतिसु नदरि न आवई त वात न पुछै कै। कीटा अंदरि कीटु करि दोसी दोसु धरे। नानक निरगुणि गुणु करे गुणवंतिआ गुणुदे। तेहा कोइ सुझई जि तिसु गुणु कोइ करे ॥७॥

शब्दार्थ—जे जुग चारे आरजा होर दसूणी होइ=

यदि चार युगों के समान मनुष्य की दीर्घायु हो जाए इससे भी अधिक दस गुणा और अधिक अवस्था हो जाए।

नवा खंडा विचि जाणीऐ नालिचलै सभु कोइ=तथा पृथिवी के नवखंडों में ख्याति भी प्राप्त करले और सभी लोग अनुयायी अनुकूल होकर साथ भी चलें अर्थात् सभी लोग शासक मान कर अनुशासन में चलने लगें। चंगा नाउ रखाइकै जसु कीरति जगि लेइ=विश्वनाथ कमलाक्ष इत्यादि श्रेष्ठ नाम रखा कर देश विदेशों में सर्वत्र यश एवं कीर्ति भी प्राप्त करले, अथवा अपने श्रेष्ठ नाम एवं गुण गौरव के अनुसार किए हुए लोकोत्तर महान् शुभ कार्यों का सर्व साधारण जनता के मुख से यश का वर्णन भी सुन ले,

जेतिसु नदरि न आवई त वात न पूछै के, जे=यदि वह दीर्घायु वाला यशस्वी, तेजस्वी पुरुष, तिसु नदरि न आवई=उस शक्तिशाली परमेश्वर की कृपा दृष्टि में नहीं आता। त वात न पूछै के=तब उसकी लोक परलोक में कोई बात नहीं पूछता। अर्थात् उसे सम्मानित दृष्टि से कोई नहीं देखता, किन्तु अभिमानी समझ कर उसे तुच्छ जानते हैं। कीटा अंदरि कीटु करि दोसी दोसु धरे=दीर्घायु और यशस्वी पुरुष भी ईश्वर की कृपादृष्टि के बिना, कीटा अंदरि= सर्पादि कीटों के शरीर के भीतर, कीटु करि=तुच्छ कीट कर दिया जाता है। दोसी=दोषों वाले पापी पुरुष भी,दोसु धरें=उस पर दोषारोपण करते हैं। अथवा दोषी होने के कारण परलोक में दण्ड देने के लिये उस पर अनेक दोषारोपण किये जाते हैं। नानक निरगुणि गुणु करे गुणवंतिआ गुणु दे श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं कि वह शक्तिशाली परमेश्वर, निरगुणि=बल विद्या विहीन निर्गुण मनुष्यों को गुणु करे=बल बुद्धि पराक्रम आदि उत्कृष्ट गुण प्रदान करता है।

गुणवंति आ=दया दाक्षिण्य पराक्रमादि श्रेष्ठ गुण वाले पुरुषों को, गुणु=विवेक वैराग्य आदि श्रेष्ठतम गुणों को प्रदान करता है।

तेहा कोइ न सुझई जि तिसु गुणु कोइकरे, तेहा=उस अलौकिक बलशाली परमेश्वर जैसा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कोइ न सुझई = मुझे कोई ऐश्वर्यवान् तेजस्वी पुरुष नहीं प्रतीत होता। जितिसु गुणु कोइ करे = जो उस परमेश्वर के दिए हुए गुणों का बदला चुका सके। अर्थात् मुझे कोई ऐसा मनुष्य नहीं दिखाई देता, जो सर्व के सुहृदभूत हितैषी परमेश्वर के किये उपकारों का प्रत्युपकार कर सके।

भावार्थ = गुरू नानक की अलौलिक प्रतिभाको देखकर सिद्ध कहने लगे कि यदि आप हमारे शिष्य बन जायें, तब योग बल से आप दीर्घजीवी हो जायेंगे। सिद्धों के साम्प्रदायिक पक्षपातपूर्ण बिचारों को सुन कर श्री गुरू नानकदेव जी कहते हैं, यदि किसी मनुष्य की आयु यौगिक बल से चार युगों की हो जाय उससे भी दश गुणा अधिक और अवस्था बढ़ जाए, दीर्घजीवी होने के पश्चात् नव खण्डों में उसकी प्रसिद्धि भी हो जाये। उसके सम्मान के लिये सभी लोग यदि साथ भी चलने लगें धर्मात्मा, पुण्यात्मा, विश्वनाथ, जगन्नाथ इत्यादि सर्वोत्तम श्रेष्ठ नाम रखा कर अपने भुज बल, एवं दान पुण्यादि की कीर्ति भी प्राप्त करले परन्तु यदि वह तेजस्वी, चिरंजीवी, मनुष्य परमात्मा की दृष्टि में नहीं आया। तब सत्पुरुषों की सभा में और परलोक में उसकी कोई बात नहीं पूछता और न हीं कोई उसे आदर की दृष्टि से देखता है। ईश्वर उसे कीटों में भी साधारण तुच्छ कीट बना कर रखता है। अपराधी लोग उस पर दोषारोपण करते हैं। श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं, परमेश्वर गुणहीनों को गुणवान बनाता है तथा गुणवानों को सत्य संतोष विवेकादि और अधिक श्रेष्ठ गुण प्रदान करता है। संसार में ऐसा कोई भी मनुष्य मुझे दिखाई नहीं देता जो ईश्वर के किए उपकारों का किसी प्रकार बदला चुका सके।

प्रश्न— ज्ञानी पुरुष को ज्ञान से किस फल की प्राप्ति होती है?

उत्तर में श्री गुरु नानकदेव जी अविद्या की अत्यन्त निवृत्ति रूप फल बतलाते हैं।

जे जुग चारे आरजा होर दसूणी होई, विशेष व्याख्या = जुग शब्द का मूल युग और युक है। जुग शब्द का अर्थ यहाँ पर संयुक्त है। चारे शब्द से यहां पर चार साधनों का ग्रहण है। आरजा श्रेष्ठ का वाचक है। 'होर' पद भेद का वाचक है। भेदको देनेवाली अविद्या का नाम होरद है। सूणी = निवृत्त होने को कहते हैं। अर्थ इस प्रकार है। 'जे = जो पुरुष 'चारे = विवेकादि चार साधनों से युक्त होकर गुरु को समीपता से श्रवण मननादि द्वारा 'आरजा = श्रेष्ठ हो गया है। वही पुरूष ज्ञान को प्राप्त होकर होरद = ईश्वर का भेद दिखाने वाली अविद्या से सूणी = रहित होता है। अर्थात् ज्ञान के प्रभाव से अज्ञान की अत्यन्त निवृत्ति वाला होता है।

प्रश्न—अज्ञान की अत्यन्त निवृत्ति वाले विचारवान श्रेष्ठ पुरुष कहां पर सुशोभित होते हैं? ऐसी शङ्का के निराकरण के लिये आगे गुरुदेव जी कहते हैं कि शत्रुओं को मार कर उनके मध्य में शूरवीर के समान ज्ञानवान संसार को निवृत्त करके सुशोभित होता है। "नवाखंडा विचि जाणीऐ नालि चलै सभु कोइ।" खंडा = खण्डन अर्थात् निवृति का वाचक है।

"नवा खंडा विचिजाणीऐ"-

नौ प्रकार के संसार से निवृत्त अर्थात् त्रिगुणातीत होकर सम्पूर्ण भूमण्डल में सुशोभित होते हैं।

प्रश्न—नव विध संसार की निवृत्ति से सब विकारों का विनाश होता है अथवा कुछ शेष रह जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समाधान—"नालि चलै सभु कोइ"

नवविध संसार की निवृत्ति से सभी विकार साथ ही निवृत्त हो जाते हैं। अर्थात् काम, क्रोध, राग, द्वेष इत्यादि सभी विकार संसार वृक्ष की शाखाएँ हैं। वृक्ष के छिन्न भिन्न होने से शाखाएँ अपने आप सूख जाती हैं। नव विध संसार निम्न लिखित है। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, भोक्ता, भोग, भोग्य, कर्ता, क्रिया, करण, अथवा पाँच महाभूत, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण, चतुष्टय अन्तः करण, स्थूल शरीर, तीन कर्म, तीन अवस्था, इन सभी का मूलकारण अज्ञान है।

प्रश्न—अज्ञान की अत्यन्त निवृत्ति से ज्ञानवान् को और क्या लाभ होता है ?

'चंगा नाउ रखाइ कै जसु कीरति जगि लेइ"

ज्ञान से अज्ञान की अत्यन्त निवृत्ति से ज्ञानवान् अपने परमानन्द स्वरूप को प्राप्त होकर—चंगा नाउ रखाइ कै = सर्वोत्तम ब्रह्मवित् इस नाम को प्राप्त होता है।

'जसु कीरति जगि लेइ' यथा 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'

नानक ब्रह्मज्ञानी आपि परमेसुर = गुरुवाणी तथा वेद में निरूपण की हुई ब्रह्म ज्ञानी की कीर्ति को प्राप्त करता है। भाव यह है—

'अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः'

इस गीता वचन में परमात्मा को पुरुषोत्तम नाम से प्रतिपादन किया है ब्रह्मज्ञानी परमात्मा से अभिन्न होने के नाते पुरुषोत्तम नाम से वेद में की हुई महिमा को श्रवण करता है।

प्रश्न—ब्रह्मभाव को केवल ब्रह्मवेत्ता ही प्राप्त करता है, अन्य लोग क्यों नहीं प्राप्त करते ?

उत्तरमें गुरुदेव जी अनधिकारी को ब्रह्मभाव की अप्राप्ति कहते हैं।

"जे तिसु नदरि न आवई त वात न पुछै के"

यहाँ पर तिसु = पद तृष्णा का वाचक है। अर्थ इस प्रकार है, जो पुरुष विषयों की तृष्णावाले हैं। उन्हें मुक्ति की इच्छा हुए बिना अधिकार के अभाव से, 'नदरि न आवई = वह ज्ञान दृष्टि प्राप्त नहीं हो सकती ज्ञान दृष्टि के बिना उत्तम पुरुषों में उनकी कोई वार्ता नहीं पूछता, इस लिये मनुष्य शरीर का फल प्राप्त न होने से उन्हें श्रेष्ठ मनुष्य नहीं समझना चाहिये, किन्तु तुच्छ कीट ही समझना उचित है, इसी बात को श्री गुरुदेव जी आगे लिखते हैं।

"कीटा अंदरि कीटु करि दोसी दोसु धरे—कीटा" =

तामस सर्पादि कीट योनि में उसे भी एक कीड़ा समझना चाहिये। जिससे वह 'दोसी' = दोष वाला पुरुष, दोस धरे = तृष्णा रूप महान् दोष हृदय में धारण करता है। इसलिये तृष्णा दोष के प्रभाव से अनधिकारी पुरुष को आत्मदृष्टि उत्पन्न नहीं होती। 'साधन सम्पन्न अधिकारी को आत्म दृष्टि उत्पन्न होती है इसे गुरुदेवजी आगे निरूपण करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"नानक निरगुणि गुण करे गुणवंतिआ गुणु दे"

श्री गुरु नानकदेवजी कहते हैं। जो सत् पुरुष 'निरगुणि गुण करे = निर्गुण परमात्मा का विचार करता है। उसके पास जाकर अधिकारी को प्रार्थना करनी चाहिए।

'गुण वंतिआ' = ज्ञानवान् गुरुदेव ! गुणु दे = कृपा करके उपदेश द्वारा मेरे को ज्ञान प्रदान करो। जिज्ञासु की प्रार्थना को सुनकर ब्रह्मनिष्ठ गुरु उसको अपने समान विचार प्रदान करते हैं। और तृष्णालु विषयी अनधिकारी है उसे ज्ञान का उपदेश नहीं देते इस बात को आगे कहते हैं।

"तेहा कोइ न सुझई जि तिसु गुणु कोइ करे"

'तेहा कोइ न सुझई = ऐसा शक्तिशाली कोई प्रतीत नहीं होता। जि = जो तिसु = उस तृष्णालु को भी गुणु = निर्गुण परमात्मा का ज्ञान हृदय में उत्पन्न कर देवे। इसी भाव को कबीर जी ने स्पष्ट किया है।

'कबीर साधु कउ मिलने जाईऐ साथि न लीजै कोइ" गु० ग्र० पृ० १३७०

अर्थात् ज्ञान की इच्छा से जब सत्पुरुषों के समीप जाये तब कोई भी संसारिक वासना साथ लेकर नहीं जाना चाहिये। अन्यथा सत्पुरुषों के वारम्बार उपदेश करने पर भी हमारे हृदय में ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता।

दूसरी व्याख्या— गुरमुखि नादं = से लेकर 'गुर की सिख सुणी = पर्यन्त पाठ से ईश्वर का वास्तविक रूप जानने वाले गुरु को ईश्वर तुल्य बताकर अब ईश्वर के परमार्थ रूप को न जानने वाले मनुष्यों की निन्दा करते हैं। 'जे जुग चारे आरजा जे = यदि किसी पुरुष की आरजा = आयु = जुग चारे = चार युगों की हो। 'होर दसूणी होइ' = और अधिक दस गुणी अर्थात् चालीस युग की हो जाये भाव सारी अवस्था मिला कर ४४ युग की आयु प्राप्त हो जाये।

"नवा खंडा विचि जाणीऐ"

अर्थात् इतनी दीर्घ अवस्था प्राप्त करने के बाद पृथिवी के नव खण्डों में लोक उसे श्रेष्ठ समझते हों। तथा—'नालि चलै सभु कोइ = चक्रवर्ती राजा के समान एक खण्ड से दूसरे खण्ड जाने के समय उसकी प्रसन्नता के लिये ऋषि मुनि मानव सभी लोग साथ चलते हों।

'चंगा नाउ रखाइ कै' = यह दीर्घ आयु वाला और नव खण्डों में प्रसिद्धि वाला महान् एवं अति उत्तम है। इस प्रकार सभी लोगों में सर्व से उत्कृष्ट अपना नाम रखा कर जसु कीरति जगि लेइ = दूसरे लोगों के मुख से अपने गुण गौरव की ख्याति एवं कीर्ति को प्राप्त करता है। पूर्व कथन का सारांश कहते हैं।

'जे तिसु नदरि ना आवई त बात न पुछै के'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'जे=यदि तिसु=उस शक्तिशाली पुरुष को 'नदरि=ब्रह्म दृष्टि 'न आवई=प्राप्त नहीं हुई, 'त=तब जिज्ञासु पुरुषों में के=कोई उसकी वात ना पुछै=तुम कौन हो किस के पुत्र हो क्या काम करते हो ऐसी वार्ता कोई भी नहीं पूछता ? उस अज्ञानी की मरणे के पीछेकी दशा कहते हैं।

"कीटा अंदरि कीटु करि दोसी दोसु धरे"

"कर्मों की गति विचित्र होने से किसी तामस पाप कर्म के उदय हुए कीटा अंदरि= कीटों में 'कीटु करि=एक कीट वह अज्ञानी पुरुष भी होता है। तथा राजस कर्म के उदय हुए दोसु= राग द्वेषादि दोषों को धारण करने वाला 'दोसी=दोषी होता है।

प्रश्न—पूज्य गुरुदेव ! तीन प्रकार के कर्मों का फल तीन प्रकार का होता है। यह ठीक है, परन्तु निष्काम कर्मों का क्या फल है ? ऐसी जिज्ञासा के उत्पन्न हुए कहते हैं।

"नानक निरगुणि गुणु करे गुण वंतिआ गुणु दे"

निष्काम कर्मों से प्रसन्न हुआ परमेश्वर निरगुणि=गुणहीन पुरुषों में गुणुकरे= विवेक वैराग्यादि सद्गुणों को उत्पन्न करता है। इसलिये निष्काम कर्मों से प्रसन्न हुए परमेश्वर की कृपा से निर्गुणों में अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा सद्गुणों की उत्पत्ति निष्काम कर्मों का फल है, और ईश्वर अनुग्रह से प्राप्त हुए विवेकादि गुणों वाला जो पुरुष है, उसे—

गुण वंतिआ=गुणवानों में ईश्वर ब्रह्मनिष्ठ गुरुद्वारा "गुणुदे=मोक्ष का साधन ज्ञान गुण देता है। इसलिये विवेकी पुरुषों में ईश्वर कृपा से निष्काम कर्मों का फल ज्ञान होता है।

प्रश्न- जैसे निष्कामी पुरुषों में कृपा करके ईश्वर विवेक वैराग्यादि वा ज्ञान उपन्न करता है। वैसे ईश्वर में भी कोई उपकार का बदला चुकाने के लिये किसी गुण को भेंट के रूप में दे सकता है ?

समाधान— "तेहा कोइ न सुझई जि तिसु गुणु कोइ करे"

ऐसा ऋषि मुनि देवता कोई प्रतीत नहीं होता जो उस सत्य सङ्कल्पादि गुणों वाले सर्व के संरक्षक ईश्वर में विवेक वैराग्यादि किसी गुण को उत्पन्न कर सके, अर्थात् जीव ईश्वर के उपकार का बदला चुकाने में असमर्थ होने से प्रत्युपकार नहीं कर सकता।

भ व यह है—कि ईश्वर से भिन्न ब्रह्मा आदि देवता सभी जीव कोटि में हैं। इसलिये वह कर्मों का फल देने में समर्थ नहीं और निष्काम कर्म भी जड़ होने से चित्त शुद्धि द्वारा विवेकादि फल देने में समर्थ नहीं। ईश्वर ही निष्काम कर्म के अनुसार जिज्ञासु को विवेकादि फल देता है ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई देवता विवेकादि फल को देने वाला नहीं।

प्रश्न—जब ईश्वर ही समर्थ होने के कारण निष्काम कर्मों से प्रसन्न होकर विवेकादि एवं ज्ञान को जिज्ञासु के हृदय में उत्पन्न करता है, तब परम कृपालु होने से निष्काम कर्म के बिनाही विवेकादि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एवम् ज्ञान को अधिकारी के हृदय में क्यों उत्पन्न नहीं करता ? निष्काम कर्म की उसे क्यों अपेक्षा है ? यह सत्य है यदि ईश्वर चाहे तो उसके बिना भी अधिकारी के हृदय में विवेक आदि गुणों को उत्पन्न कर सकता है ! परन्तु ईश्वर ऐसा नहीं चाहता। किञ्चन् मात्र भी वस्तु कर्म से बिना नहीं देता।

इसे गुरुदेवजी कहते हैं—

"विणु करमा किछु पाइऐ नाही जे बहुतेरा धावै ॥ गु०ग्र०पृ० ७२२

'जिन कउ मसतकि लिखिआ तिनि पाईया हरि नाउ' ॥ गु०ग्र०पृ० ४५

'जिन कउ पूरवि लिखिआ तिन का सखा गोविंद' ॥ गु० ग्र० पृ० ४७

इस विषय में वैष्णवों के दो मत हैं सहेतुक कृपा वादी और निर्हेतुक कृपावादी। निर्हेतुक कृपावादी यह कहते हैं। जैसे गौ अपने बछड़े का चुम्बन चाटन कारण के बिना करती है। वैसे ईश्वर भी प्राणियों पर अकारण ही अनुकम्पा करता है। सहेतुक कृपावादी ऐसा कहते हैं कि बछड़े के प्रति गौ का मातृस्नेह ही कृपा का कारण है।

इसलिए विना कारण से बछड़े का चुम्बन चाटना नहीं करती, वैसे ईश्वर भी जीवों पर निष्काम कर्म आदि के द्वारा कृपा करता है विना कारण के अनुग्रह नहीं करता। इसी भाव से गुरु जी ने लिखा है।

"जिन को पूर्व लिखिआ तिन का सखा गोबिन्द" इत्यादि

"जहाँ कहीं ध्रुव बालक के दृष्टान्त से—

तथा—नाहिन गुनु नाहिन कछु विदिआ धर्म कोने गज कीना।

नानक विरदु राम का देखहु अभै दानु तिह दीना ॥ पृ० ६०२

इत्यादि- गुरु वचनों में विना कारण से ईश्वरीय कृपा दिखाई है। वहाँ ईश्वर के सामर्थ्य का प्रकाशन किया है, ऐसा समझना चाहिए। यदि ईश्वर चाहे तो बिना कारण से भी जीव का कल्याण कर सकता है। उसकी इच्छा में विघ्न डालने की किसी में सामर्थ्य नहीं वह सर्वथा स्वतन्त्र है। किसी से परामर्श करने की आवश्यकता नहीं रखता।

॥ सप्तं मन्त्र समाप्तम् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अब आगे गुरु जी परमेश्वर के नाम को श्रवण करने का माहात्म्य निरूपण करते हैं।

मूल—सुणिऐ सिध पीर सुरि नाथि। सुणिऐ धरति धवल अकास। सुणिऐ दीप लोअ पाताल। सुणिऐ पोहि न सकै कालु। नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु॥

शब्दार्थ— सुणिऐ सिधपीर सुरिनाथि = ईश्वर का नाम श्रवण करने से गोरक्षनाथादि सिद्ध और मुसलमान मत के पीर (गुरु) एवम सुरनाथ इन्द्रादि की पदवी प्राप्त होती है, अथवा सिद्ध पीर इन्द्रादि देवताओं का ज्ञान प्राप्त होता है।

सुणिऐ धरति धवल अकास = श्रवण करने से पृथिवी और धवल (बैल) तथा आकाश के अभिमानी देवता महान् गौरवता को प्राप्त हुये हैं।

अथवा श्रवण करने से धरती के समान धैर्यवान तथा धवल के समान निश्चल और आकाश के समान निर्लिप्त हो जाता है।

सुणिऐ दीप लोअ पाताल = श्रवण करने से सप्तद्वीपों एवं स्वर्गादि ऊपर के सात लोकों तथा अतल वितलादि नीचे के सप्त पातालों का ज्ञान प्राप्त होता है। अथवा द्वीप और स्वर्गादि एवं पाताल के वासी श्रवण करने के प्रताप से गौरवता को प्राप्त हुए हैं।

सुणिऐ पोहि न सकै कालु = श्रवण करने से काल स्पर्श नहीं कर सकता, अर्थात् श्रवण करने वाला काल से भयभीत नहीं होता।

नानक भगता सदा बिगासु सुणिऐ दूख पाप का नासु = श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि जिन भक्तों ने प्रेम से ईश्वर के नाम का श्रवण किया है। उन्हें श्रवण के प्रताप से सर्वदा आनन्द प्राप्त होता है, तथा आध्यात्मिकादि दुःखों और पापों का नाश हो जाता है।

भावार्थ —संसार में ऐसा कोई भी शक्तिशाली मनुष्य मुझे प्रतीत नहीं होता जो सर्व के हितैषी ईश्वर के किये उपकारों का बदला चुका सके। यह बात सुन कर सिद्ध लोग कहने लगे गुरुदेव! उस शक्तिशाली ईश्वर के नाम को श्रवण करने का कुछ माहात्म्य भी है?

उत्तर में श्री गुरुदेव जी श्रवण करने का लाभ बतलाते हैं।

नाम को श्रवण करने के प्रभाव से सिद्ध लोक तथा पीर पैगम्बर और देवताओं का राजा इन्द्रादि उच्च पदवी को प्राप्त हुए हैं।

नाम को श्रवण करने से पृथिवी अभिमानी देवता शुद्धधर्म रूप बैल और अवकाश देने वाला आकाश निश्चल भाव से स्थित है।

नाम को श्रवण कर जम्बुकुश और क्रौंच आदि सप्त द्वीप और भूर् भुवर् स्वर् आदि ऊपर के सात लोक अतल, वितल, सुतल, रसातल आदि नीचे के सप्त लोकों का ज्ञान प्राप्त होता है।

नाम को श्रवण करने के प्रभाव से मृत्यु का भय हृदय में स्पर्श नहीं करता।

एवम् हरि हरि नामु जपंतिआ कछु नकहै जम कालु = श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ईश्वर भक्तों के मन में सर्वदा आनन्द रहता है। नाम के श्रवण करने से सर्व दुःखों का और दुःखों के कारण पापों का नाश होता है।

"सुणिऐ सिध पीर सुरि नाथि"

विशेष व्याख्या—सुणिये=श्रवण करने से "सिधपीर = सिद्धों का गुरु बन जाता है। 'सुरिनाथि = श्रवण करमे से देवताओं का स्वामी इन्द्र बन जाता है। "सुणिऐ धरति धवल अकास" श्रवण श्रवण करने से पृथिबी और आकाश के गुणों वाला, अर्थात् पृथिवी के समान क्षमा वाला, "धवल" (बैल) के समान अपने सद् उपदेशों से जिज्ञासुओं के जीवन को ऊपर उठाने वाला तथा आकाश वत असङ्ग हो जाता है। "सुणिऐ दीप लोअ पाताल" ईश्वर का नाम श्रवण करने से अधिकारी पुरुष 'द्वीप, लोअ, आकाश और पाताल के गुणों वाला हो जाता है। अर्थात् द्वीप जैसे निर्मल जल से चारों ओर घिरा रहता है। वैसे अधिकारी पुरुष श्रवण करने से निर्मल चित्त ज्ञान की इच्छा वाले पुरुषों से सुशोभित होता है। अन्तरिक्ष लोक जैसे सूर्य नक्षत्रादिकों के प्रकाश से व्याप्त है वैसे अधिकारी भी श्रवण करने से सात्त्विक वृत्तियों से व्यापित रहता है। जैसे पाताल नम्रतादि गुणोसे युक्त है, वैसे श्रवण करने से अधिकारी भी नम्र हो जाता है। "सुणिऐ पोहि न सकै कालु = परमेश्वर के नाम का श्रवण करने से अधिकारी पुरुष को मृत्यु का भय स्पर्श नहीं कर सकता। अर्थात् सर्वदा निर्भीक हो कर जीवन व्यतीत करता है। श्री कवीर जी इसी भाव को व्यक्त करते हैं। कबीर जिस मरने ते जगु डरै मेरे मनि आनन्दु। मरने ही ते पाईऐ पूरनु परमानन्दु" गु० ग्र० पृ० १३६५। काम क्रोध अहङ्कारादि आसुरी सम्पत्ति को त्यागने में संसारी लोग मृत्यु का अनुभव करते हैं। उसे त्यागने में मुझे आनन्द की अनुभूति हो रही है! क्योंकि दुर्गुणों के त्यागे बिना आनन्द का अनुभव नहीं हो सकता। स्वतन्त्रता एवं निर्भीकता पूर्वक भ्रमण करता हुआ। जीवन्मुक्त देह पात के अनन्तर कैवल्य को प्राप्त होता है।

नानक भगता सदा बिगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु॥

श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि भक्तों के मन में सर्वदा हर्ष बना रहता है। दुःखों और उनके हेतु पापों का अत्यन्त नाश हो जाता है। इस बात को श्री गुरु अर्जुनदेव जी ने स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादन किया है। सरब रोग का औखदु नामु। कल्याण रूप मंगल गुण गास। सर्व दुःखों की औषधि हरि नाम है। परमेश्वर का नाम मंगलमय तथा गुणों का धाम है। श्रद्धा भक्ति पूर्वक जो उसे श्रवण करता है वह भी मंगलमय तथा गुणों की निधि हो जाता है।

❀ अष्टमं मन्त्रसमाप्तम् ❀

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मूल— सुणिऐ ईसरु बरमा इंदु । सुणिऐ मुखि साला हण मंदु । सुणिऐ जोग जुगति तनि भेद । सुणिऐ सासत सिम्रिति वेद । नानक भगता सदा विगासु । सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥ ९ ॥

शब्दार्थ— सुणिऐ ईसरु बरमा इंदु=श्रवण करने से महादेव ब्रह्मा एवं चन्द्र इन्द्रादि देवताओं का ज्ञान प्राप्त होता है । अथवा ईश्वर का नाम श्रवण करने के प्रताप से मनुष्य शिव के समान मंगल रूप तथा ब्रह्मा के समान महान् कार्यों का निर्माता और इन्द्र के समान ऐश्वर्यवान् तथा चन्द्र के के समान प्रकाशवान होता है; सुणिऐ मुखि सालाहणमंदु=श्रवण करने के प्रताप से, मन्दु=अशुभ कर्मी पुरुष भी, मुखि=मुख्य तथा, सालाहण=श्लाघनीय हो जाता है । सुणिऐ जोग जुगति तनि भेद=श्रवण करने से योग के स्वरूप को तथा योग की युक्तियों से, तनि भेद=शरीर के षट्चक्र अष्ट दल कमल के भेद प्रभेदों कों जान लेता है । अथवा श्रवण करने से योगयुक्त होकर शरीर की अहंता ममता का भेदन करता है ।

सुणिऐ सासत सिम्रिति वेद=श्रवण करने से षट् शास्त्रों और सताईस स्मृतियों तथा चार वेदों में प्रतिपादित रहस्य को समझ लेता है । नानक भगता सदा विगासु=श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि निष्काम कर्मयोगी भक्तों को, सदा विगासु=सर्वदा हर्ष प्राप्त होता है । सुणिऐ दूख पाप का नासु=श्रवण करने वाले भक्तों के त्रिविध दुःखों और दुःखों के जनक पापों का नाश हो जाता है ।

भावार्थ— नाम को श्रवण करने के प्रभाव से शिव जी और ब्रह्म एवम् चन्द्रमा महत्त्व को प्राप्त हुए हैं । नाम को श्रवण करने के प्रताप से वाल्मीकि के समान अशुभकर्मी मन्दमति पुरुष भी लोगों द्वारा प्रशंसा करने के योग्य हो जाते हैं; एवम् साधारण पुरुष भी नाम के प्रभाव को श्रवण करके परमात्मा की स्तुति करने वाले हो जाते हैं । श्रवण करने के प्रभाव से स्थूल सूक्ष्म शरीरों के भेदों को एवम् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, अध्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि इत्यादि योग के विविध भेदों को जान लेते हैं श्रवण के प्रताप से मीमाँसा, वैशेषिक, न्याय, सांख्य, वेदान्त आदि षट् शास्त्रों एवं याज्ञवल्क्य व्यासादि स्मृतियों के सिद्धान्त को जान लेता है । श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं भक्तों के मन सर्वदा विकसित रहते हैं । ईश्वर के नाम को श्रवण करने से दुःखों और दुःखों के हेतु पापों का सर्वथा विनाश होता है ।

विशेष व्याख्या— सुणिऐ ईसरु बरमा इन्दु

ईसरु शब्द शिव तथा विष्णु का वाचक है । अर्थात् श्रवण करने से अधिकारी पुरुष शिव तथा विष्णु के समान मङ्गल मय हो जाता है । शिव और विष्णु जैसे सर्व जीवों को अपने आधीन करके कार्यों में प्रवृत्त करते हैं । वैसे जिज्ञासु भी इन्द्रिय और उनके विषयों को अपने आधीन करके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यथा योग्य कार्यों में लगाता है। श्रवण करने वाला ब्रह्मा के समान हो जाता है। जैसे ब्रह्मा संसार में धर्म मर्यादा की स्थापना करता है। वैसे श्रवण करने वाला पुरुष भी अपने उपदेश से ज्ञान मार्ग की स्थापना करता है। श्रवण करने वाला इन्दु चन्द्रमा के समान है। चन्द्रमा जैसे अपनी किरणों से जीवों के ताप को शान्त करता है। वैसे ही अधिकारी पुरुष स्वशरण प्राप्त पुरुषों के अनेक प्रकार के संशय रूप ताप को उपदेश रूपी किरणों से शान्त करता है।

"सुणिऐ मुखि सालाहण मन्दु"

श्रवण करने वाले पुरुष की प्रधान तथा अप्रधान दोनों श्रेणी के लोग मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हैं। यह बात लोक प्रसिद्ध है, कि परमेश्वर के नाम को श्रवण करने वाले पुरुष को उत्तम मध्यम सभी प्रकार के लोग स्तुति करते हैं।

"सुणिऐ जोग जुगति तनि भेद। सुणिऐ सासत सिमृति वेद"

चित्त वृत्ति निरोध का नाम योग है। तनि=शब्द तीनों शरीरों का वाचक है। श्रवण करने से अधिकारी पुरुष चित्त वृति निरोध रूप योग से युक्त हो जाता है। श्रवण करने वाला तीनों शरीरों से आत्मा भिन्न है, ऐसे ज्ञान वाला होजाता है। श्रवण युक्त पुरुष शास्त्र स्मृति वेद स्वरूप होजाता है। अर्थात् जैसे वेद, स्मृति एवं शास्त्र, हित का उपदेश करते हैं वैसे श्रवण करने वाला पुरुष भी सर्व को हित का उपदेश करता है। यहाँ पर गुणवाद रूप अर्थ वाद है। क्योंकि अधिकारी पुरुष को शास्त्र एवं वेद रुपता प्रत्यक्ष प्रमाण से विरुद्ध है। केवल हितोपदेशकत्व गुण के बताने में वक्ता का तात्पर्य है।

"नानक भगता सदा विगासु" इत्यादि पाठ का अर्थ पूर्ववत् है।

॥ नवम मन्त्रं समाप्तम्॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुणिऐ सतु संतोखु गिआनु। सुणिऐ अठ सठि का इसनानु।

सुणिऐ पढ़ि पढ़ि पावहि मानु। सुणिऐ लागै सहज धिआनु।

नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥१०॥

सुणिऐ सतु संतोखु गिआनु=श्रवण करने से सत्य संतोष तथा कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान प्राप्त होता है। अर्थात श्रवण करने वाला सत्यवादी संतोषी एवं ज्ञानी हो जाता है,

सुणिऐ अठसठि का इसनानु=श्रवण करने के प्रताप से जिज्ञासु को गङ्गा कुरुक्षेत्र यमुनादि अठसठ तीर्थों के स्नान का माहात्म्य प्राप्त होता है।

सुणिऐ पढ़ि पढ़ि पावहि मानु=भगवन्नाम श्रवण करने वाले को पढ़ि=पुराणों के पढ़ने से तथा, पढ़ि=वेदों के पढ़ने से राज सभाओं में प्राप्त मान के तुल्य सम्मान प्राप्त होता है। अर्थात् वेदों के पठन पाठन करने कराने वाले विद्वानों के तुल्य भगवन्नाम श्रवण करने वाले को मान प्राप्त होता है।

सुणिऐ दे लागै सहजि धिआनु=श्रवण करने वाले भक्त का सहजि=परब्रह्म में ध्यान लग जाता है। भगवन्नाम श्रवण करने से, सहजि=अपने आप स्वभाविक ध्यान लगता है, आर्थात् चित्त एकाग्र होजाता है। नानक भगता सदा विगासु=इत्यादि पाठ का अर्थ पूर्ववत् समझना।

भावार्थ—दैवी गुणों की प्राप्ति तथा तीर्थ स्नान का फल एवम् ज्ञानोतपादक सद्ग्रन्थों के पठन पाठन से जो कुछ प्राप्त होता है वह सभी कुछ ईश्वर नाम को श्रवण करने से प्राप्त होता है। यह बात इस मन्त्र में गुरुजी प्रतिपादन करते हैं।

श्रवण करने से सत्य, सन्तोष, विवेक वैराग्य, अहिंसा, क्षमा, अमानिता, अदम्भिता, निष्कपटता,, उदारता, इत्यादि दैवी गुण, तथा कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान प्राप्त होता है। जिज्ञासु को श्रवण करने के प्रताप से गङ्गा, यमुना, गोदावरी, अमृतसर आदि पवित्र तीर्थों के स्नान का पुण्य एवम् उनके महत्त्व का ज्ञान प्राप्त होता है। श्रवण करने वाले प्रेमी को वेदों एवम् पुराणों के पढ़ने पढ़ाने वाले सदाचारी विद्वानों के सदृश लोगों में मान प्राप्त होता है।

श्रवण करने के प्रभाव से चित्त की एकाग्रता एवम् समाधि का लाभ होता है गुरु नानक देव जी कहते हैं, भक्तों का मन सर्वदा विकसित रहता है, ईश्वर का नाम श्रवण करने से सभी प्रकार के दुःख अरिष्ट अनिष्ट विघ्न विपत्तियों का एवम् उनके हेतु पापों का समूल नाश होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"सुणिऐ सतु सन्तोखु गिआनु"

विशेष व्याख्या—वस्तु के यथार्थ ज्ञान का नाम सत्य है। प्रारब्ध से प्राप्त हुई वस्तु में संतुष्टि का नाम सन्तोष है। सत्य तथा सन्तोष मुझे धारण करना चाहिये ऐसे विचार को यहां पर ज्ञान कहते हैं।

अर्थ इस प्रकार है—श्रवण करने से सत्य सम्भाषण, तथा सन्तोष मुझे धारण करना चाहिये। इस प्रकार का ज्ञान एवम् धर्म ज्ञान अधिकारी पुरुष को प्राप्त हो जाता है।

"सुणिऐ अठसठि का इसनानु"

श्रवण के प्रताप से श्रोता का मुख्य तीर्थों में किया हुआ स्नान सफल होता है। अर्थात् सत्य कर्मों के करने में जितने विघ्न हैं वह श्रवण करने वाले को नहीं होते। क्योंकि श्रवण करने वाला पुरुष परमेश्वर के नाम का उच्चारण करता है। परमेश्वर का नाम सर्व विघ्नों का विनाशक है इसलिये गीता में यज्ञदान पुण्यादि की पूर्णता के लिये सर्व प्रथम परमेश्वर का नाम उच्चारण करना चाहिये ऐसा निर्देश किया है।

"तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञ दान तपः क्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्॥ गी० अ० १७ पृ०२४

'सुणिऐ पढ़ि पढ़ि पावहि मानु। सुणिऐ लागै सहजि धिआनु॥

गुरु मुख से अध्ययन करने के पश्चात् वेद शास्त्रों के पठन पाठन से विद्वान् को जो सम्मान प्राप्त होता है। वह श्रवण करने वाले को अनायास ही प्राप्त हो जाता है। तथा श्रवण के प्रभाव से स्वाभाविक समाधि लग जाती है। सविकल्प निर्विकल्प भेद से समाधि दो प्रकार की है। यहाँ पर ब्रह्म साक्षात्कार रूप समाथि का ग्रहण है।

'नानक भगता सदा विगासु' इत्यादि पाठ का अर्थ पूर्ववत समझना चाहिए।

दशमंमन्त्रंसमाप्तम्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मूल— सुणिऐ सरा गुणा के गाह । सुणिऐ सेख पीर पातिसाह । सुणिऐ अंधे पावहि राहु । सुणिऐ हाथ होवै असगाहु । नानक भगता सदा बिगासु । सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥ ११ ॥

शब्दार्थ— सुणिऐ सरा गुणा के गाह=श्रवण करने वाला, गुणा=गुणों के, सरा=समुद्र वेद शास्त्रों का, गाह=अवगाहन करने वाला हो जाता है, अर्थात् गुणों के सागर वेद शास्त्रों के विचारने में समर्थ हो जाता है। अथवा ईश्वर के नाम का श्रवण करने से भक्त, गुणा के=श्रेष्ठ गुणों के, सरा=सरोवर से, गाह=समुद्र हो जाता है। सुणिऐ सेख पीर पाति साह=भगवन्नाम श्रवण करने के प्रताप से शेख पीर बादशाह बन जाता है। अथवा शेख एवं पीर तथा बादशाहों के समान आदरणीय और प्रसिद्ध हो जाता है। सुणिऐ अंधे पावहि राहु=श्रवण करने से, अंधे=अज्ञानी पुरुष, राहु=श्रेष्ठ मार्ग को पावहि=प्राप्त कर लेते हैं। अर्थात् श्रवण करने से दुराचारी सन्मार्ग में प्रवृत्त हो जाते हैं। सुणिऐ हाथ होवै असगाहु=ईश्वर का नाम श्रवण करने से असगाहु=अपरिमित परमेश्वर 'हाथ=हस्तामलकवत् 'होवै=जिज्ञासु को प्रत्यक्ष हो जाता है अर्थात् अगम अगोचर परमात्मा श्रवण करने वाले जिज्ञासु को हाथ पर धरे हुए आमले के समान प्रतिक्षण दृष्टिगोचर होता है। अथवा भगवन्नाम श्रवणकरने वाले प्रेमी को, 'असगाहु=अगाध संसार समुद्र, 'हाथ होवे=हाथ भर हो जाता है अर्थात् संसार सागर पार करना उसे अत्यन्त सरल हो जाता है नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु=श्री गुरु नानकदेवजी कहते हैं श्रवण करने से 'भगता=उपासकों के 'दूख पाप का=आध्यात्मिक, आधिभौतिक आदि दुःखों का तथा दुःखों के जनक पापों का 'नासु=विनाश हो जाता है तथा 'सदा विगासु=भक्तों का हृदय कमल सर्वदा विकसित हो जाता है।

भावार्थ— निश्चय पूर्वक श्रवण करने वाला श्रद्धालु पुरुष कठिन से कठिन कार्यों को भी सफलता पूर्वक सम्पादन करता है। इसी बात को श्री गुरुदेव जी आगे निरूपण करते हैं। श्रवण करने से गुणों के समुद्र परमात्मा का विचार प्राप्त होता है। एवं ईश्वर का नाम श्रवण करने वाला प्रेमी अमानिता अदम्भिता, ऋजुता आदि श्रेष्ठ गुणों के सरोवर से समुद्र हो जाता है।

भगवन्नाम श्रवण करने के प्रताप से शेख, पीर, एवं बादशाहों के समान उच्च पदवी प्राप्त करता है।

श्रवण करने से वाल्मीकि के समान चोरी डकैती करने वाले दुराचारी मनुष्य भी सन्मार्ग में प्रवृत्त हो जाते हैं।

श्रवण करने वाले जिज्ञासु को वाङ्मनसा अगोचर परमात्मा हाथ पर धरे आँवले के समान निरन्तर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दृष्टि गोचर होता है । एवम् श्रवण करने वाले श्रद्धालु पुरुष को यह अगाध संसार समुद्र पार करना अत्यन्त सरल हो जाता है । श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि प्रभु प्रेमियों के आध्यात्मिक आधिभौतिक, आधिदैविक दुःखों का तथा दुःखों के उत्पादक पापों का विनाश होता है तथा भक्तों का हृदय कमलआनन्द से अहोरात्र विकसित रहता है ।

सुणिऐ सरा गुणा के गाह—

विशेष व्याख्या – 'सरा=नाम ज्ञान का है गुणा=मत्री मुदिता आदि गुणों का बोधक है 'गाह= शब्द स्थान का वाचक है । भाव यह है कि श्रवण करने वाला पुरुष मनन निदिध्यासन आदि ज्ञान के साधनों का तथा मैत्री करुणा मुदिता आदि गुणों का स्थान हो जाता है । सुणिऐ सेख पीर पातिसाह=श्रवण करने वाला 'शेख=प्रधान पुरुषों के 'पीर=गुरुओं का भी पातिसाह='शिरोमणि हो जाता है । भाव यह है अध्यात्म विद्या सर्व विद्याओं की शिरोमणि है इसलिये ब्रह्म विद्या का श्रवण करने वाला भी सर्व का शिरोमणि है ।

सुणिऐ हाथ होवै असगाहु=अद्वितीय सत्य का श्रवण करने वाला अधिकारी पुरुष 'असगाहु=अत्यन्त गम्भीर सभी इन्द्रियों के अविषय परमात्म स्वरूप को 'हाथ=हस्तगत वस्तु के समान अपरोक्ष कर लेता है ।

नानक भगता सदा विगासु=इत्यादि पाठ का अर्थ पूर्व के सदृश है ।

एकादशं मंत्र समाप्तम्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्रवण का माहात्म्य कह कर अब मनन का माहात्म्य श्री गुरु जी निरूपण करते हैं।

मूल— मंने की गति कही न जाइ। जे को कहै पिछै पछुताइ। कागदि कलम न लिखणहारु। मंने का बहि करनि वीचारु। ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥

शब्दार्थ— मंने की गति कही न जाइ=

मनन करने वाले जिज्ञासु की, गति= अवस्था, कही न जाइ=कथन नहीं की जा सकती, अथवा मनन करने वाले के आनन्द की, गति=प्राप्ति कहां तक है? उसे कह नहीं सकते, क्योंकि वह अकथनीय है। अर्थात् नामी ईश्वर के मनन करने से जिस गति=फल की प्राप्ति होती है उसे कहा नहीं जा सकता, जे को कहै पिछै पछुताइ=यदि कोई कहने का यत्न भी करे कि मैं समग्र वर्णन करूंगा, तो उसे पीछे पश्चात्ताप करना पड़ता है क्योंकि कागदि कलम न लिखणहारु= उसे लिखने के लिये न तो इतना विस्तृत कागज और न सुदृढ़ लेखनी है और न आशु गति से लिखने वाला लेखक है।

मंने का वहि करनि वीचारु=जो मनन के माहात्म्य का बैठ कर विचार करें अर्थात् सामग्री के अभाव से लिखना अत्यन्त कठिन है। ऐसा नामु निरंजनु होइ, निरंजनु=माया मलसे रहित अकाल पुरुष परमेश्वर के नामु=नाम के मनन करने का माहात्म्य पूर्व था अब है और आगे भी ऐसा होगा।, जो को मनि जाणै मनि कोइ=जो को=जो कोई, मनि=मनन करता है, कोइ=विरला कोई मनुष्य मंनि जाणै=मन में माहात्म्य को जानता है।

भावार्थ— सिद्ध मण्डली को श्रवण का महत्त्व सुना कर, अब आगे गुरुदेव जी मनन का महत्त्व प्रतिपादन करते हैं। मनन करने वाले जिज्ञासु के आनन्द की अवस्था का प्रतिपादन नहीं कर सकते। क्योंकि नामी ईश्वर के मनन करने से जिस आनन्द की प्राप्ति होती है, उसे वाणी द्वारा प्रकट करना अत्यन्त कठिन है। यदि कोई विद्या के बल से उसे कहने का साहस भी करे कि मैं मनन के समग्र माहात्म्य का वर्णन कर सकता हूं। तब उसे मननशीलों के सम्मुख प्रतिपादन करने में अपने आपको असमर्थ पाकर पश्चात्ताप ही करना पड़ता है। मनन के महत्त्व को लिखने के लिये न तो इतना विस्तृत कागद है, और न ही किसी के पास सुदृढ़ लेखनी है, एवं न ही संसार में कोई आशु लेखक है, जो अपनी शक्ति से मनन के समग्र महत्त्व को यथार्थ रूप से लिख सके। संसार में बुद्धि जीवी मनुष्य अपनी बुद्धि के विश्वास पर एकान्त बैठ कर मनन के माहात्म्य का सूक्ष्म रीति से विचार करते हैं। परन्तु सामग्री के अभाव से उन्हें भी लिखना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वा कहना अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। शुद्ध बुद्ध माया मल से रहित अकाल पुरुष परमेश्वर के नाम को मनन करने का माहात्म्य पूर्व काल में था अभी वर्तमान में है, और भविष्य में भी होगा। जो कोई श्रद्धालु सप्रेम मनन करता है वही अपने मन में मनन के माहात्म्य को जानता है।

विशेष व्याख्या— मंने की गति कही न जाइ। जे को कहै पिछै पछुताइ।

यहां पर गति नाम स्तुति का है।

भाव यह है—मनन की स्तुति हम नहीं कह सकते, क्योंकि वह इयता (माप)से रहित है। यदि कोई इत्थम भाव से वर्णन करे तब सत्संग में उसे अकथनीय जान कर पश्चाताप ही होगा।

प्रश्न— मनन की प्रशंसा यदि कोई मुख से नहीं कर सकता तो क्या कागद पर लिख सकता है? इसके उत्तर में गुरुदेव जी कहते हैं।

"कागदि कलम न लिखणा हारु"

किसी वस्तु का लेखक मनुष्य तभी हो सकता है जब उसे कहने की शक्ति हो। पहले जब मनुष्य किसी वस्तु को जान लेता है कि यह इतनी और इस प्रकार की है तब उसे लोगों के समझाने के लिये लिखता है। परन्तु मनन की स्तुति इतनी ही है। ऐसा जान कर कहने वाला संसार में कोई नहीं। इसलिये उस स्तुति को लिखने के लिये इतना बड़ा कागद तथा शक्तिशालिनी लेखनी और विद्वान् लेखक कोई नहीं दिखाई देता जो मनन की समग्र स्तुति लिख सके।

प्रश्न— यदि मनन की स्तुति अवर्णनीय है, तब उसकी महिमा को श्रवण किये बिना मनन में प्रवृत्ति कैसे हो सकेगी? उत्तर में श्री गुरुदेव जी कहते हैं।

"मंने का बहि करनि बिचारु"

यद्यपि मनन की स्तुति इतनी ही है, ऐसा नहीं कह सकते तथापि विवेकी पुरुष आसन पर बैठ कर अपनी बुद्धि के अनुसार यथाशक्ति जिज्ञासुओं को कहते हैं। इस विचार काल में की हुई स्तुति से जिज्ञासु की मनन में प्रवृत्ति हो जायेगी।

प्रश्न— अद्वितीय परमात्मा के बोधक जिन वचनों से मनन किया जाता है उनकी स्तुति कैसी है?

उत्तर में श्री गुरुदेव जी कहते हैं—

"ऐसा नाम निरंजन होइ"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शुद्ध परमात्मा के बोधन करने वाले वेद वचन तथा सत्य नाम आदि स्वरूप बोधक नाम भी अद्वितीय सत्य के प्रतिपादक होने से मनन के समान अकथनीय महिमा वाले हैं।

प्रश्न--- उत्तम अधिकारियों के सम्मुख मध्यम अधिकारियों का मनन कैसा है? उत्तर में श्री गुरुदेव जी कहते है।

"जे को मंनि जाणै मनि कोइ"

जो कोई साधन सम्पन्न उत्तम अधिकारी इस अद्वितीय सत्य का युक्तियों से मनन करता है। उसके सामने अनधिकारी का किया हुआ द्वैत का चिन्तन क्या महत्त्व रखता है अर्थात् उसका कोई मूल्य नहीं अत्यन्त तुच्छ है।

द्वादशं मन्त्रं समाप्तम्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मूल—मंनै सुरति होवै मनि बुधि । मंनै सगल भवण की सुधि ।
मंनै मुहि चोटा ना खाइ । मंनै जम कै साथि न जाइ ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ । जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥१३॥

शब्दार्थ— मंनै सुरति होवै मनि बुधि=मनन करने से श्रेष्ठ प्रीति मन और बुद्धि में उत्पन्न होती है, अथवा मनन करने से सुन्दर प्रीति उत्पन्न होती है। तथा मन और बुद्धि निर्मल हो जाते हैं।

मंनै सगल भवण की सुधि=मनन करने से चतुर्दश भुवनों की यथार्थ सूझ बूझ होजाती है। अर्थात् मनन करने वाले को सकल भुवनों का यथार्थ ज्ञान हो जाता है।

मंनै मुहि चोटा न खाइ=मनन शील, मुहि=मुख पर यमदूतों की चोटों को नहीं खाता। अथवा—मनन करने वाला जन्म मरण रूपी चोटों को नहीं खाता।

मंनै जमकै साथि न जाइ=मनन करने वाला यम के साथ नहीं जाता। अर्थात् यम के मार्ग में नहीं जाता। यथा—

जिह लालचि जागाती घाट। दूर रही ओह जनते वाट ॥ गु०ग्र० पृ०३६२

ऐसा नामु निरंजनु होइ। इत्यादि पाठ का अर्थ पूर्व की तरह जानना।

भावार्थ—ईश्वर का नाम मनन करने से जिज्ञासु के मनमें भगवान् के चरणों में घनिष्ठ प्रीति उत्पन्न होती है। जिसके द्वारा उसका मन और बुद्धि निर्मल हो जाते हैं। मनन शील पुरुष को चतुर्दश भुवनों की यथावत सूझ बूझ हो जाती है।

मनन करने वाला प्रेमी अपने मुख पर यमदूतों की चोटों को नहीं खाता। क्योंकि वह जन्म मरण के चक्र को अपने मनन के प्रभाव से सर्वदा के लिये समाप्त कर देता है। इसलिये मननशील यम के साथ कदापि नहीं जाता। माया मलसे रहित अकाल पुरुष परमात्मा के नाम को मनन करने का माहात्म्य अतीत में था वर्तमान में है, आगे भविष्य में भी होगा।

विशेष व्याख्या-- मंनैसुरति होवै मनि बुधि=यहां पर मनन के बाद सुरति=शब्द का पाठ होने के कारण सुरति शब्द निदिध्यासन रूप ध्यान का वाचक है। बुधि=शब्द परोक्ष ज्ञान का बोधक है। अर्थ इस प्रकार है—मनन करने के बाद अधिकारी पुरुष को निदिध्यासन रूप ध्यान प्राप्त हो जाता है। ध्यान के पश्चात् प्रथम मनमें परोक्ष ज्ञान और पश्चात् अपरोक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है।

"मंनै सगल भवण की सुधि=मनन के प्रभाव से एक अद्वितीय सत्य को जानने के कारण चतुर्दश भुवनों की सूझ हो जाती है। तात्पर्य यह है जैसे एक मृत्तिका के ज्ञान से घट आदि का मृत्तिका रूपेण ज्ञान होता है। वैसे ही चतुर्दश भुवनों को हरि रूप जानने की श्रेष्ठ बुद्धि उत्पन्न हो जाती है।

'मंनै मुहि चोटा ना खाइ'=मनन के प्रताप से अधिकारी पुरुष परमात्मा से जीव भिन्न

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है ? वा अभिन्न? भिन्न होने पर भी जनमता मरता है? वा अजर अमर है ? इत्यादि अनेक प्रकारकी जो मुख्य ज्ञान में संशय रूपी चोटें हैं उन्हें नहीं खाता। अथवा मनन करने वाला अद्वितीय सत्य के साक्षात होने के पहले शरीर पात के पश्चात् यमदूतों से कर्मफल भोगने के लिये अनेक प्रकार की चोटें नहीं खाता, किन्तु श्रेष्ठ लोकों में अनेक प्रकार के सुखों को भोग कर पुनः धार्मिक श्रीमानों के घर में उत्पन्न होकर पूर्वाभ्यास के प्रभाव से ज्ञानवान् होजाता है।

'मंनै जम कै साथि न जाइ'

अद्वितीय परमेश्वर के स्वरूप का मनन करने वाला यमदूतों के साथ नहीं जाता।

यथा—भगता नो जम जोहि न सकई, काल न नेरे जाई॥ गु० ग्र० पृ० ६३७

ऐसा नामु निरंजनु होइ—इत्यादि पाठ का अर्थ पूर्व के सदृश है।

त्रयोदश मंत्रं समाप्तम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मूल— मंनै मारगि ठाक न पाइ। मंनै पति सिउ परगटु जाइ। मंनै मगुन चलै पंथु। मंनै धरम सेती सनबंधु। ऐसा नामु निरजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ॥ १४॥

शब्दार्थ— मंनै मारगि ठाक न पाइ=मनन करने वाला भगवत प्राप्ति के मार्ग में विघ्न बाधाओं को प्राप्त नहीं होता। अर्थात् मनन करने से भक्ति वा ज्ञान मार्ग में संशय विपर्यादि जिज्ञासु को विचलित नहीं कर सकते, मंनै पति सिउ परगटु जाइ=मनन करने वाले, पति सिउ=प्रतिष्ठा के साथ लोक में प्रकट हो जाते हैं अर्थात् मैत्री मुदितादि श्रेष्ठ गुणों से संसार में प्रसिद्ध हो जाते हैं। मंनै मगु न चलै पंथु=मनन करने वाला विचारशील, पंथु=साम्प्रदायिक मतों के मगु=मार्ग में, न चलै=नहीं चलता, अर्थात् किसी सम्प्रदाय विशेष का अभिमान नहीं करता। अथवा मननशील, पंथु=परमार्थ के मार्ग में, मगुन चलै=मग्न होकर चलता है, मंनै धर्म सेती सनबन्धु=मनन करने वाला धर्म के साथ दृढ़ सम्बन्ध स्थापित करता है। अर्थात् आजीवन धर्मादि कार्यों को ईश्वर अर्पण बुद्धि से निरन्तर करता है, कदापि आलस्य प्रमादवश त्याग नहीं करता। अथवा मननशील अन्य आश्रयों को छोड़ कर धरम सेती=धर्म रूप परमेश्वर के साथ शाश्वत सम्बन्ध स्थापित करता है।

ऐसा नामु निरंजनु होइ, इत्यादि का अर्थ पूर्ववत जानना।

भावार्थ— इस मन्त्र में श्री गुरु नानकदेव जी सिद्ध मण्डली को बतलाते हैं कि मनन करने से भगवत प्राप्ति के मार्ग में विघ्न बाधाएं उपस्थित नहीं होतीं। एवम् मनन करने से भक्ति और ज्ञान के मार्ग में संशय विपर्यय आदि जिज्ञासु को विचलित नहीं कर सकते।

मनन करने वाला प्रतिष्ठित हो कर सभी लोगों में ख्याति को प्राप्त कर लेता है। एवम् मैत्री मुदितादि श्रेष्ठ गुणों से संसार में प्रसिद्ध हो जाता है। मनन करने वाला साम्प्रदायिक मतों के मार्ग में नहीं चलता। और न ही किसी सम्प्रदाय विशेष का अभिमान करता है। मनन करने वाला धर्म के साथ अपना दृढ़ सम्बन्ध स्थापित करता है। ईश्वर अर्पण बुद्धि से धर्मादि श्रेष्ठ कार्यों का आजीवन निरन्तर करता है आलस्य एवं प्रमाद वश श्रेष्ठ कार्यों को त्यागने का कदापि संकल्प नहीं करता। शाश्वत धर्म स्वरूप परमेश्वर के साथ निरन्तर सम्बन्ध स्थापित करता है। शुद्ध बुद्ध परम कृपालु परम पिता परमात्मा के नाम को मनन करने का माहात्म्य आज से लाखों वर्ष पूर्व काल में था, आज भी है, और करोड़ों वर्ष बाद भी रहेगा।

विशेष व्याख्या— मंनै मारगि ठाक न पाइ। मनन करने के प्रभाव से जिज्ञासु पुरुष के ज्ञान के मार्ग श्रवणादि में और मुक्ति के मार्ग ज्ञान में कोई भी रुकावट नहीं डाल सकता। उपनिषदों में लिखा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। विवेकी पुरुष की मुक्ति में देवता भी प्रतिबन्धक नहीं हो सकते। अन्य साधारण लोगों की तो शक्ति ही क्या है मंनै पतिसिउ परगटु जाइ। मननशील पुरुष सम्मान पूर्वक ख्याति को प्राप्त होता है। मंनै मगु न चलै पंथु। यहां पर मगु पद श्रवणादि परक है। पंथु—शब्द ज्ञान परक है।

मननशील पुरुष ज्ञान के मार्ग श्रवणादि और मुक्ति के मार्ग ज्ञान को "न चलै=असाधन नहीं समझता है किन्तु साधन समझता है। भाव यह है, विवेकादि साधन सम्पन्न अधिकारी को श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः। इत्यादि वचनों से श्रवण का उपदेश है। प्रमाणगत संशय को दूर करना श्रवण का फल है।

वेद वाक्य अद्वितीय सत्य के प्रतिपादक हैं या द्वैत के? यह प्रमाणगत संशय है तात्पर्य का निर्णय करने के लिये जब अधिकारी श्रवण करता है। तब सभी वचनों का तात्पर्य अद्वितीय सत्य में जान कर प्रमाणगत संशय दूर कर लेता है इसलिये प्रमाणगत संशय दूर करना श्रवणका फल है। और श्रवण मनन का साधन है। युक्तियों से स्वरूप का चिन्तनकरना मनन हैं। प्रमेयगत संशय दूर करना मननका फल है। जीव ईश्वर की एकता है या अनेकता? यह प्रमेयगतसंशय है। जब अधिकारी अभेद साधक युक्तियों से मनन करता है तब उसका प्रमेयगत संशय दूर हो जाता है। इसलिये प्रमेय गत संशय दूर करना मनन का फल है। मनन, निदिध्यासन का साधन है। चित्त को अन्य ओर से हटा कर एकाकार चित्तवृत्ति करने का नाम निदिध्यासन है। देहादि अनात्म पदार्थों को आत्मा मानना विपर्यय है। अनात्म पदार्थों से आत्म वृत्ति हटा कर आत्माकार चित्तवृत्ति करने से विपर्यय दूर होता है। विपर्यय का नाश करना निदिध्यासन का फल है। संशय विपर्यय वाले को श्रवण, मनन, निदिध्यासन अपेक्षित है। जीव ईश्वर को अभिन्न समझना ज्ञान का स्वरूप है। अज्ञान निवृत्ति पूर्वक परमानन्द की प्राप्ति रूप मुक्ति ज्ञान का फल है। जीवन मुक्ति और विदेह मुक्ति भेद से यह दो प्रकार की हैं। शरीर के स्थिति काल की मुक्ति का नाम जीवन मुक्ति है। देहपात के अनन्तर की मुक्ति का नाम विदेह मुक्ति है जैसे अभी श्रवणादि साधनों से संशय विपर्यय की निवृत्ति रूप फल बताये हैं इनको वैसा ही जानना मगु (मार्ग) से न चलना है। विपरीत जानना मार्ग से चलायमान होना है मननशील व्यक्ति विपरीत नहीं चलता इसलिये श्री गुरुदेव जी कहते हैं मगु न चलैं पंथु।

प्रश्न— जिज्ञासु पुरुष किस हेतु से विपरीत नहीं जानता? ऐसा पूछने पर गुरुदेव हेतु को कहते हैं।

"मंनै धर्म सेती सनवन्धु"

मननशील पुरुष का निष्काम धर्मों के साथ जीवन मुक्ति पर्यन्त सम्बन्ध रहता है। इसलिये ज्ञान के मार्ग श्रवणादि वा मुक्ति के मार्ग ज्ञान के साधनों को विपरीत नहीं जानता इसलिये मार्ग से चलायमान नहीं होता।

॥ चतुर्दश मन्त्रं समाप्तम् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मूल— मंनै पावहि मोखु दुआरु। मंनै परवारै साधारु।
मंनै तरै तारे गुरु सिख। मंनै नानक भवहि न भिख।
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।१५।

शब्दार्थ— मंनै पावहि मोखु दुआरु=मनन करने वाले मोक्ष के द्वार ज्ञान को प्राप्त करते हैं।

मंनै परवारै साधारु=मनन करने वाले, परवारै=सर्वपरिवार को, साधारु=आधार के सहित अर्थात् ईश्वर परायण कर देते हैं। अथवा मनन करने वाला पुरुष शिष्य पुत्रादि अपने सर्वपरिवार को श्रेष्ठ शिक्षा के द्वारा, साधारु=शुद्ध जीवन वाला बना देता है।

मंनै तरै तारे गुरु सिख=मनन करने वाला संसार सागर से स्वयं तर जाता है, तथा ब्रह्मश्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ, गुरुबन कर शरणागत शिष्यों को तार देता है।

मंनै नानक भवहि न भिख=श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं, मनन करने वाला पुरुष भिख=भिक्षा के लिये, भवहि न=घर घर नहीं घूमता। अर्थात् मननशील मानव जीवन निर्वाह के लिए सतृष्ण होकर भिखारियों के समान याचना करने को लोगों के घर २ नहीं फिरता।

अथवा मनन करने वाला जिज्ञासु, भिख=भविष्यत काल में भवहि न=ईश्वर परायण होने के कारण जन्म मरण के चक्र में भ्रमण नहीं करता।

ऐसा नामु निरंजनु होइ। निरंजनु=माया मल से रहित अकाल पुरुष परमेश्वर के, नामु=नाम का माहात्म्य पूर्व था अब है, और आगे भी ऐसा होगा।

जे को मंनि जाणै मनि कोइ। जेको=जो कोई, मंनि=मनन करता है, कोइ= विरला कोई मनुष्य, मंनि जाणै= मन में माहात्म्य को जानता है।

भावार्थ—मनन के माहात्म्य को समाप्त करते हुये श्री गुरु नानक देवजी इस मन्त्र में सिद्धमण्डली को बतलाते हैं कि मनन करने वाले जिज्ञासु मोक्ष के द्वार ज्ञान को प्राप्त करते हैं। एवम् अपने शिष्य पुत्रादि सर्व परिवार को श्रेष्ठ शिक्षा के द्वारा शुद्ध जीवन वाला बना देते हैं।

मनन शील पुरुष इस अपार संसार सागर से स्वयं तर जाता है। तथा ज्ञान वान् होकर शरण में आए लाखों सेवकों को पवित्र उपदेश द्वारा सन्मार्ग में प्रवृत्त करके कल्याण का अधिकारी बना देता है।

श्री गुरु नानकदेवजी कहते हैं, कि मनन करने वाला जिज्ञासु अपने जीवन निर्वाह के लिये सतृष्ण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होकर भिखारियों के समान मांगने के लिये घर घर में नहीं घूमता। एवम् ईश्वर परायण होने के कारण भविष्य में जन्म मरण के चक्र में भ्रमण नहीं करता ।

निरञ्जन अकाल पुरुष परमेश्वर के नाम के मनन का प्रभाव अतीत काल में जैसे था, अब वर्तमान काल में भी वैसे ही है, और आगे भविष्य में भी ऐसे ही रहेगा । परन्तु इस बात को कोई विरला मनन शील मनुष्य अपने हृदय में जानता है ।

प्रश्न— मनन करने वाले पुरुष को जिस समय अपरोक्ष ज्ञान हो जाता है तब वह क्या करता है ? इसके उत्तर में श्रीगुरुदेवजी कहते हैं —

विशेष व्याख्या— "मंनै पावहि मोखु दुआरु ।'मंनै परवारै साधारु'

मोख दुआरु =(मुक्ति मार्ग) परवारै= ज्ञान परम्परा अर्थ यह है । मननशील पुरुष जब मुक्ति के मार्ग ज्ञान को प्राप्त कर लेता है । तब ज्ञान की परम्परा को सुरक्षित रखने के लिये स्वयं भी जिज्ञासु पुरुषों को उपदेश देता है ।

यथा – जनु नानकु धूड़ि मंगै तिसु गुरु सिख की जो आपि जपै अवरहि नाम जपावै ॥ इसी बात को पुनः स्पष्ट करते हुये मनन की प्रशंसा को श्रीगुरुदेवजी समाप्त करते हैं ।

"मंनै तरै तारे गुरु सिख"

मनन से अधिकारी ज्ञानवान् होकर अज्ञान एवं उसके कार्य संसार सागर रूप महादुःख से छूट कर परमानन्द को प्राप्त हो जाता है । इस प्रकार की मुक्ति का प्रतिपादन अनेक शब्दों में किया है ।

"जिउं जल महि जलु आइ खटाना । तिउ जोती संग जोति समाना॥ सुखमनी

ज्ञान के प्रभाव से स्वयं उपदेष्टा होकर समीप आए सेवकों को मोक्ष के साधन भक्ति सहित ज्ञान का उपदेश देकर वह संसार सागर से पार कर देता है ।

प्रश्न—परमानन्द की प्राप्ति से क्या होता है ? इसके उत्तर में गुरुजी कहते हैं-

"मंनै नानक भवहि न भिख"

श्रीगुरु नानकदेव जी कहते हैं कि परमानन्द को प्राप्त करके ज्ञानवान् इस संसार नगर में अनात्म पदार्थों की इच्छा से पुनः भ्रमण नहीं करता तात्पर्य यह है कि ज्ञानी पुरुष सांसारिक पदार्थों को असत्य जड़ दुःख रूप समझ कर उनकी प्राप्ति के लिए व्याकुल नहीं होता । किन्तु वैतृष्ण होकर सर्वदा आत्म चिन्तन में लीन रहता है॥ अज्ञान के नाश होजाने से पुनः पुनः जन्म मरण रूप विनाश को प्राप्त नहीं होता । आत्मा में रमणशील होने से सदा तृप्त एवं शान्त रहता है । अज्ञानी पुरुष ही पदार्थों की वासना से पुनः २ संसार में भ्रमण करता है। आत्म तृप्त पुरुष को अनात्म पदार्थों की इच्छा एवं हर्ष शोकादि द्वन्द्व अपनी स्थिति से चलायमान नहीं कर सकते। इसलिये वह नित्य मुक्त है। इसी आशय से गुरुजी ने कहा है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'जिह ते उपजिओ नानका सोइ फिर होया"

गुरुदेवजी ने यहाँ जैसे श्रवण और मनन की प्रशंसा की है। वैसे निदिध्यासन की भी प्रशंसा लिखी थी क्योंकि —

'गावीऐ सुणीऐ मनि रखीऐ भाउ'

इस पूर्वोक्त वचन में श्रवणादि तीनों का निरूपण किया है। और अन्य प्राचीन ग्रन्थों में भी तीनों का विवेचन मिलता है। यह तीनों ज्ञान के अन्तरङ्ग साधन भी हैं।

जिज्ञासु को प्रवृत्त करने के लिए तीनों की प्रशंसा आवश्यक प्रतीत होती है। इसके समाधान के लिये वृद्ध लोग ऐसी एक कथा सुनाते हैं। "जिस समय श्री जपजी के पठन पाठन का लोगों में प्रचार हुआ" उस समय किसी श्रद्धालु गुरु शिष्य ने किसी मृत व्यक्ति के सम्बन्धियों की प्रार्थना पर श्री जप जी का श्रद्धा भक्ति पूर्वक पाठ करके मृत व्यक्ति पर जल के छींटे देकर उसे जीवित कर दिया' जपजी के अलौकिक प्रभाव की सर्वत्र चर्चा हुई। श्री गुरु नानक देव जी ने यह सुनकर कहा कि मृत व्यक्ति को जीवित करना परमेश्वर के कार्य में हस्तक्षेप एवं आध्यात्मिक शक्ति का दुरुपयोग करना है। प्रतिष्ठा के लोभ में आकर भविष्य में लोग ऐसा न कर सकें इसी लिये निदिध्यासन के श्लोकों को लुप्त कर दिया। जैसे विरोध के कारण वशिष्ठ ऋषि के पुत्रों को मार कर ब्रह्म हत्या से बचने के लिये विश्वामित्र ऋषि ने गायत्री मन्त्र का अनुष्ठान किया था। मन्त्र के प्रभाव को वसिष्ठ मुनि ने शाप देकर न्यून कर दिया जिससे भविष्य में लोग मन्त्र का दुरुपयोग न कर सकें। ऐसी कथा—

'पांडे तुमरी गाइत्री लोधे का खेतु खाती थी' गु० ग्र० पृ० ८७५

इत्यादि—शब्द की व्याख्या करते हुए ज्ञानी लोग सुनाते हैं। ठीक ऐसी ही बात निदिध्यासन के श्लोकों में प्रतीत होती है।

॥ पञ्चदशं मन्त्र समाप्तम् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मनन का माहात्म्य कहकर अब मनन एवम् निदिध्यासन शील सत्पुरुषों की शोभा और निष्ठा तथा ईश्वर की महिमा का निरूपण गुरुजी करते हैं।

मूल— पंच परवाण पंच परधान। पंचे पावहि दरगहि मानु।
पंचे सोहहि दरिराजानु। पंचा का गुरु एकु धिआनु।
जे को कहै करै वीचारु। करते कै करणै नाही सुमारु।
धौलु धरमु दइआ का पूतु। संतोखु थापि रखिआ जिनि सूति।
जे को बुझै होवै सचिआरु। धवलै उपरि केता भारु।
धरती होरु परै होरु होरु। तिसते भारु तलै कवणु जोरु।
जीअ जाति रंगा के नाव। सभना लिखिआ वुड़ी कलाम।
एहु लेखा लिखि जाणै कोइ। लेखा लिखिआ केता होइ।
केता ताणु सुआलिहु रूपु। केती दाति जाणै कौणु कूत।
कीता पसाउ एको कवाउ। तिसते होए लख दरीआउ।
कुदरति कवण कहा वीचारु। वारिआ न जावा एक वार।
जो तुधु भावै साई भली कार। तू सदा सलामति निरंकार ॥१६॥

शब्दार्थ— पंच परवाण=सत्य, सन्तोष, धैर्य, दया, धर्म इन पांच गुणों वाले महात्मा परवाण= माननीय हैं। पंच परधान=शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इन पांच विषयों को त्यागने वाले महात्मा। परधान=प्रमुख हैं। पंचे पावहि दरगहि मानु=अहिंसा, निष्कपटता, उदारता, धृति, क्षमा, इन पांच गुणों वाले सत्पुरुष महात्मा, दरगहि=लोक तथा परलोक में, पावहि मानु=सम्मान प्राप्त करते हैं।

यथा— भगवंत भगत कउ भउ किछु नाही आदर देवत जाम।

पंचे सोहहि दरि राजानु=काम, क्रोध, लोभ, मोह अहङ्कार को अपने नियंत्रण में रखने वाले श्रेष्ठ पुरुष साधु महात्मा, राजानु=राजाओं के राजा (राजाधिराज) परमेश्वर के दरि= दबारर में, सोहहि=शोभा को प्राप्त करते हैं। पंचा का गुरु एकु धिआनु पंचा का— दया, धर्म, सत्य, सन्तोष, धैर्य-इन पांच गुणों को धारण करने वाले सत्पुरुष महात्माओं का गुरुएकु=

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक अद्वितीय परमेश्वर में धिआनु=ध्यान लगा रहता है। जेको कहै करै वीचारु=जो कोई योगी वा उपासक अभिमान वश यह कहे कि हम सृष्टिकर्ता का विचार करेंगे तब उसका यह प्रयत्न निष्फल होगा, क्योंकि—करते कै करणै नाही सुमारु, करते कै =सृष्टिकर्ता के करणै = उत्पन्न किये प्रपञ्च का नाही सुमारु=अन्त नहीं आसकता, अर्थात् जब परमेश्वर के बनाये हुये भूत भौतिक प्रपञ्च की कोई सीमा वा गणना नहीं, तब अलौकिक बलशाली सृष्टिकर्ता ईश्वर का कौन अन्त पा सकता है। अथवा, जेको कहै=यदि कोई व्यक्ति बलपूर्वक कह करके करैवीचारु= सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा विचार करे तब उसे निश्चय हो जायेगा, कि करते कै=विश्वस्रष्टा ईश्वर की करणै=उत्पन्न की हुई सृष्टि का नाही सुमारु=कोई अन्त नहीं। अर्थात् यह सृष्टि कब उत्पन्न हुई किस प्रकार बनाई गई, इसमें कितने प्रकार के जीव हैं, यह किसके आश्रित है, और कितने विस्तार वाली है, इत्यादि अनेक बातों का जब अन्त नहीं आता तब सृष्टि के अन्य सूक्ष्म भेद प्रभेदों का कोई व्यक्ति कैसे अन्त पा सकता है। श्री गुरुजी की इस बात को सुनकर सिद्ध मण्डली ने कहा, कि पचास करोड़ योजन पृथिवी का विस्तार है और इसे एक बैल ने अपने शिर पर उठा रखा है। यदि सूक्ष्म बुद्धि से विचार किया जाये तो प्रत्येक वस्तु का अन्त पा सकते हैं। तब गुरुजी ने सिद्धों से पूछा कि आप लोग विचार करके बताएं धवलै ऊपर केताभार=पृथिवी के बोझ को उठाने वाले बैल के शिर पर कितना भार है। क्योंकि अनन्त ब्रह्माण्ड हैं, और एक एक ब्रह्माण्ड में अनन्तानन्त सृष्टि है, सभी ब्रह्माण्डों के भार को, क्या एक ही बैल ने अपने शिर पर उठा रखा है? दूसरी एक और बात है, जिस बैल के आश्रित आप पृथिवी को मानते हैं, वह बैल भी किसी के आश्रित है वा निराश्रित? सावयव होने के कारण निराश्रित तो मान नहीं सकते, किसी न किसी के आश्रित ही कहना होगा। जिस पृथिवी के आश्रित यह बैल है, उस पृथिवी को उठाने वाला कोई दूसरा बैल होगा, दूसरी पृथिवी के लिये तीसरे बैल की कल्पना करनी होगी। इस प्रकार आगे से आगे कल्पना करने पर कहीं भी विश्रान्ति न होने के कारण अनवस्था होगी। इसी भाव से गुरुजी कहते हैं—धरती होरु परै होरु होरु=प्रथम धरती को उठाने वाले बैल का आधार दूसरी धरती, दूसरी धरती को उठाने वाले बैल के लिए तीसरी धरती, और तीसरी धरती को उठाने वाले बैल का आधार चौथी धरती माननी होगी। इस प्रकार अनन्त पृथिवियां और उन्हें उठाने वाले अनन्त बैलों की कल्पना आपको करनी पड़ेगी। यदि अनवस्था दोष से पिण्ड छुड़ाने के लिये आप लोग एक पृथिवी और एक बैल स्वीकार करें, तब इस पृथिवी के समग्र भार को उठाने वाले बैल को किस के आश्रित मानोगे। इसी आशय से श्री गुरुदेव जी कहते हैं।

तिस ते भारु तलै कवणु जोरु=पृथिवी के भार को उठाने वाले बैल के नीचे किसकी शक्ति है? अर्थात् उस बैल का आधार कौन है? भाव यह है जैसे बैल ने पृथिवी को उठा रखा है, वैसे उस बैल को किसने उठाया है? क्योंकि वह बैल किसी न किसी के आश्रित ही रह सकता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। श्री गुरु जी की युक्ति युक्त बात को सुन कर सिद्ध कहने लगे, तब आपके मत में यह पृथिवी किस के आश्रित है? और पथिवी को उठाने वाला बैल कौन है? उत्तर में गुरुदेवजी कहते हैं—

धौलु धरमु दइआ का पूतु = धर्म ही श्वेत बैल है। वह धर्म दया का पुत्र है, अर्थात् दया से धर्म की उत्पत्ति होती है। इसी धर्म ने सम्पूर्ण पृथिवी को अपने बल पर ठहरा रखा है इसलिये धर्म के अतिरिक्त और कोई बैल नहीं। ऋषियों ने धर्म को ही शुभ्र बैल के रूपक से वर्णन किया है, वह नित्य शाश्वत धर्म भगवत्स्वरूप है।

संतोखु थापि रखिआ जिनि सूति, । जिनि = जिस धर्म ने, संतोखु = संतोष को धारण करके, सम्पूर्ण जगत की, सूति = मर्यादा को स्थापित कर रखा है, अर्थात् संसार की सम्पूर्ण स्थिति धर्म के आश्रित और उससे नियन्त्रित है।

जेको बुझै होवै सचिआरु, जेको = जो कोई विचारशील मनुष्य संसार की स्थिति को धर्म के आश्रित, बुझै = समझे, होवै सचिआरु = तब वह सत्य वक्ता हो सकता है। अर्थात् जब कोई विचारशील व्यक्ति इस सम्पूर्ण संसार की मर्यादा को धर्म के आश्रित समझता है, और उस धर्म को भगवत् स्वरूप मान कर अपने जीवन को धर्मानुकूल बना लेता है, तब वह सत्य वक्ता हो जाता है।

जीअ जाति रंगा के नाव = इस पृथिवी पर अनेक जातियां और अनेक रङ्गों के जीव हैं, और उनके अनेक ही नाम हैं।

सभना लिखिआ बुड़ी कलाम,। सभना = सभी जीवों के माथे पर, बुड़ी कलाम निरन्तर तीव्र गति से चल रही लेखनी से, लिखिआ = ईश्वर की आज्ञा से भाग्य लिखा गया है अथवा ईश्वर ने स्मृति, इतिहास, पुराणादि वाणियों से, बुड़ी = वड़ी, कलाम = वेदरूप वाणी में, लिखिआ = सर्व जीवों को कर्मानुसार फल होना लिखा है। भाव यह है कि सृष्टि में अनन्त जीव हैं, और प्रारब्ध, सञ्चित, क्रियमाण भेद से प्राणियों के अनेक कर्म हैं। उन कर्मों के अनुसार सभी जीवों के माथे पर ईश्वर ने अपनी शक्ति शालिनी लेखनी से भाग्य के लेख लिखे हैं, लिखने की शैली ऐसी विचित्र है कि एक जीव का दूसरे जीव के साथ कर्म मिश्रित नहीं होता। सभी जीवों को अपने अपने कर्मों की दृढ़ रज्जु में बान्ध कर वशीभूत कर रखा है।

एहु लेखा लिखि जाणै कोइ, एहु लेखा = जीवों के भाग्य का लेखा, लिखि जाणै कोइ = यदि कोई लिखना जाने तो हम उससे पूछते हैं? लेखा लिखिआ केता होइ = वह जीवों के भाग्य का लिखा हुआ लेखा कितना बड़ा है? अर्थात् लिखने वाले की बात ही जाने दें। उसके लेखे का ही अनुमान लगाना कठिन है। केता ताणु सुआलिहु रूपु = उस परमेश्वर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का कितना बल है ? और उसका रूप कितना सुन्दर है ? केती दाति जाणै कौणु कूतु = ईश्वर की कितनी दात है ? इसे जानने की किसमें शक्ति है ? अथवा परमेश्वर के दिए हुए पदार्थ कितने है उन्हें तराजू से अथवा अन्य किसी माप दण्ड से कौणु कूतु = कौन तोल माप सकता है, अथवा परमेश्वर के दाति = दिए हुए भोग्य पदार्थ, केती = कितने हैं ? उन्हें खाने से जाणै कौणु = कौन जान सकता है तथा उनके दिए हुए पदार्थों का कूतु = बाणी से कौन कथन कर सकता है कि इतने हैं। कीता पसाउ एकोकवाउ कवाउ = परमेश्वर ने मैं एक से अनेक हो जाऊं इस एक, कवरउ = वाक्य से, कीता पसाउ = सृष्टि का विस्तार किया। यथा - एक कवावै ते सवि होत्रा, तथा एकोऽहं बहुस्याम" तिसते होए लख दरिआउ = उस ईश्वर के संकल्प मात्र से लख दरिआउ = अनन्त प्रवाह रूप यह संसार उत्पन्न हुआ, कुदरति कवण कहा वीचारु = मेरे में क्या शक्ति है जो परमेश्वर की, कवण = किस किस, कुदरति = सृजन पालन, संहारादि शक्तियों का, वीचारु = विचार करके, कहा = वर्णन करूँ अर्थात् अनन्त शक्तिशाली ईश्वर की पालन निर्माणादि शक्तियों का किसी प्रकार निरूपण नहीं कर सकता। वारिआ नजावा एक वार, एकवार = परमेश्वर के एक २ रोम का, वारिआ न जावा = वर्णन नहीं कर सकता। क्योंकि ईश्वर के एक एक रोम में कोटि कोटि ब्रह्माण्ड समाये हुये हैं, अथवा परमेश्वर के ऊपर, एक वार = एक बार, वारिआ न जाबा = न्योछावर नहीं होता किन्तु अद्भुत रचना को देख कर अनेक बार न्योछावर होता हूं।

जो तुधु भावै साई भली कार। तू सदा सलामति निरंकार।

निरंकार = हे त्रिगुणातीत निराकार परमेश्वर ! तू सदा सलामति = आप सर्वदा अविनाशी और स्वयम्भू हैं, जो तुधु भावै = जो आपको अच्छा लगता है, साई भलीकार = वही कार्य श्रेष्ठ है।

भावार्थ—श्रवण और मनन के महत्त्व को कह कर अब निदिध्यासन करने वाले सत्पुरुषों की शोभा और निष्ठा, तथा सर्व के उपासनीय परमेश्वर की महिमा का निरूपण श्री गुरुदेव जी करते हैं। सत्य संतोषादि दैवी गुणों को धारण करने वाले सत्पुरुष महात्मा संसार में सर्व के मान्य हैं। तथा शब्द स्पर्शादि विषयों का त्याग करने वाले साधु महात्मा, धनी मानी सदाचारी लोगों की अपेक्षा माननीय हैं। सरलता, उदारता, धृति क्षमादि सुन्दर गुणों को धारण करने वाले श्रेष्ठ पुरुष लोक तथा परलोक में सम्मान प्राप्त करते है। काम क्रोधादि विकारों को अपने नियन्त्रण में रखने वाले

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महात्मा राजाधिराज परमेश्वर के दरबार में शोभा को प्राप्त होते हैं। सत्य सन्तोष धर्मादि पवित्र गुणों को धारण करने वाले महात्मा एक अद्वितीय परमेश्वर के ध्यान में निरन्तर मग्न रहते हैं। यदि कोई व्यक्ति अभिमान पूर्वक सृष्टि और सृष्टिकर्ता के विचार करने की प्रतिज्ञा करता है, तो उसका ऐसा कहना केवल साहस मात्र है। क्योंकि जब सृष्टि का कोई अन्त नहीं पा सकता तब सृष्टि के कर्ता का अन्त पाना अति दूर की बात है। श्री गुरुदेवजी की युक्ति संगत बातों को सुन कर सिद्ध कहने लगे, हमने सुना है इस पृथिवी का विस्तार पचास करोड़ योजन हैं, और पृथिवी को एक बैल ने अपने सिर पर उठा रखा है। इसी प्रकार अन्य बातों का भी अध्ययन करने से अन्त प्राप्त हो सकता है, फिर आप कैसे कहते हैं कि सृष्टि का कोई अन्त नहीं जानता ?

इस विषय में गुरु जी पूछते हैं, आप लोग अच्छी प्रकार सोच विचार कर बताएं जैसे बैल ने इस पृथिवी को अपने सिर पर उठाया है वह बैल किसके आश्रित है ? बैल का आधार यदि दूसरी पृथिवी को मानोगे तो दूसरी पृथिवी को उठाने वाला बैल किसके आश्रित है ? उसके लिये आपको तीसरी पृथिवी माननी पड़ेगी। इस प्रकार आगे से आगे कल्पना करने पर अनवस्था दोष होगा। अनवस्था दोष से पिण्ड छुड़ाने के लिये यदि आप लोग एक पृथिवी और एक बैल स्वीकार करें तब वह बैल किसके आश्रित होकर पृथिवी के समग्र भार को उठा कर खड़ा है ?

श्री गुरुदेव जी की मार्मिक बातों को सुन कर सिद्धों ने पूछा कि आपके मत में पृथिवी को उठाने वाला कौन है ? उत्तर में श्री गुरुदेव जी कहते हैं। दया से उत्पन्न होने वाला धर्म ही पृथिवी को उठाने वाला है। ऋषि मुनियों ने धर्म का ही शुभ्र बैल के रूपक से मनोहर निरूपण किया है। धर्म ने ही संसार की मर्यादा को स्थापित कर रखा है। संपूर्ण जगत धर्म से ही नियन्त्रित एवं संचालित है। जो व्यक्ति इस रहस्य को जानता है वह नित्य शाश्वत धर्म को अपना आधारभूत समझ कर सत्यवादी हो जाता है। ईश्वर की सृष्टि में अनेक जातियाँ हैं, और अनेक रङ्गों के जीव हैं, तथा उनके अनेक ही नाम हैं। सभी जीवों के माथे पर तीव्र गति से चलने वाली लेखनी से ईश्वर की आज्ञा से भाग्य लिखा गया है। जीवों के भाग्य का लेखा यदि कोई लिखना जाने तो हम उससे पूछते हैं कि भाग्य का लिखा हुआ लेखा कितना बड़ा है ? ईश्वर का कितना बल है ? और उसका रूप कितना सुन्दर है ? ईश्वर की कितनी दात है ? इसे जानने की किसमें शक्ति है ? जीव के समीप ईश्वर के दिए हुये कितने पदार्थ हैं ? उन्हें तराजू से तथा किसी अन्य मापदण्ड से कौन तोल माप सकता है। 'मैं एक से अनेक रूप हो जाऊँ, इस एक वाक्य से ईश्वर ने सृष्टि बनाई। इच्छा मात्र से ही अनेक प्रवाह रूप यह संसार उत्पन्न हुआ। मेरे में क्या शक्ति है जो ईश्वर की सृजन पालन पोषणादि शक्तियों का वर्णन कर सकूँ। ईश्वर के एक रोम का भी वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि उसके एक एक रोम में कोटि कोटि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ब्रह्माण्ड समाए हुए हैं। हे त्रिगुणातीत जगदाधार जगन्नाथ परमेश्वर! आप अविनाशी स्वयम्भू स्वयं प्रकाश हैं, जो आपको अच्छा लगता है वही कार्य ठीक है।

जिज्ञासु को श्रवण मनन में प्रवृत्त करने के लिये दोनों की प्रशंसा दिखा कर, "तेहा कोइ न सुझई जि तिसु गुणु कोइ करे, इत्यादि गुरु वचनों से निर्गुणों को गुणवान् बनाने वाला एवं सर्व का संरक्षक तथा पोषक परमेश्वर निदिध्यासन का विषय है। निदिध्यासन का स्वरूप, निमित्त, एवं अधिकारी और फल इत्यादि आगे दिखाते हैं।

पंच परवाण पंच परधान =

विशेष व्याख्या— कोश तथा व्याकरण से पंच शब्द पांच संख्या तथा विस्तार का वाचक है पर = पर शब्द की शक्ति श्रेष्ठ, दूर, शत्रु, केवलादि अनेक अर्थों में है। वाण = वाण शब्द की शक्ति गो स्तन तीर, इत्यादि अर्थों में है। अर्थ इस प्रकार है, पंच = निखिल जगत का विस्तार करने वाला परमात्मा सम्पूर्ण अनात्म वस्तुओं से, परवाण = श्रेष्ठ तथा अद्वितीय है, अथवा जगत का विस्तार करने वाला ईश्वर अज्ञानियों को अनेक जन्मों में भी अज्ञात होने के कारण अत्यन्त दूर है। ज्ञान से निज स्वरूप को परमानन्द जानने के कारण ज्ञानवानों को परमेश्वर गो स्तन के समान परमानन्द रूप दूध को देने वाला है। अथवा सर्व का विस्तार करने वाला परमेश्वर अनेक प्रकार के दुःख देने वाले अज्ञान शत्रु को सत्पुरुषों के उपदेश जन्य ज्ञान में बैठ कर नाश करने वाला तीर है। अथवा संसार का विस्तार करने वाला जगदीश्वर केवल है, अर्थात् एक और पूर्ण है। यथा—

जलि थलि महीअलि पूरिआ सुआमी सिरजन हारु।
अनिक भांति होइ पसरिआ नानक एकं कारु॥

गु० ग्र० पृ० २९६।

पंच परधान = यहां पर बहुव्रीहि समास है। आकाशादि पांच महाभूत, परधान = मुख्य कार्य है जिसके ऐसा निखिल भूत भौतिक सृष्टि का निर्माता परमेश्वर है। पुनः वह ईश्वर कैसा है? ऐसी जिज्ञासा पर कहते हैं। पंचेपावहि दरगहि मानु,

शब्दार्थ— पंचे—परमात्मा, पावहि—प्राप्त होते हैं। दर—द्वार, गहि—ग्रहण, मानु गुरु उपदेश, अर्थ इस प्रकार है। गुरु के उपदेश रूप द्वार को ग्रहण करके अधिकारी पुरुष परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। अर्थात् गुरु के उपदेश जन्य ज्ञान से अज्ञान को दूर करके परमानन्द स्वरूप जानकर अधिकारी ईश्वर को प्राप्त कर लेता है।

प्रश्न— जिस ज्ञान से अधिकारी पुरुष परमात्मा को प्राप्त करता है वह ज्ञान किसी अन्य विषय को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को भी सुशोभित करता है ? उत्तरमें श्री गुरुदेवजी कहते हैं। पंचे सोहहि दरि राजानु।

शव्दार्थ— सोहहि =सुशोभित, दरि =मुक्ति का द्वार ज्ञान, राजानु =सभी ज्ञानों का राजा। अर्थ यह है कि मुक्ति का द्वार आत्म ज्ञान परमात्म स्वरूप विषय को सिद्ध करने में सुशोभित होता है, और विषयों को नहीं। अन्य सभी विषय अज्ञान से कल्पित हैं, इसलिये ज्ञान अज्ञान का नाश करता हुआ अज्ञान से कल्पित विषयों का भी नाश कर देता है। इस लिये विषयों को शोभायमान नहीं करता। पुनः वह ज्ञान कैसा है ? राजानु—सभी ज्ञानों का राजा है।

गीता में इस आत्म ज्ञान को सर्व विद्याओं का राजा तथा सर्व गोपनीयों का भी राजा और अति पवित्र उत्तम प्रत्यक्ष फल वाला और धर्मयुक्त साधन करने को अति सुगम एवं अविनाशी बतलाया है।

राज विद्या राज गुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् । प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥ गीता अध्याय ९ ॥

पुनः वह परमात्मा कैसा है ? पंचा का गुरु एकु धिआनु,

पंचा =वायु, अग्नि, चन्द्र, सूर्य वरुण, इन पांचों को परमात्मा गुरू =शिक्षा देने वाला है। परमात्मा सूर्यादि का शिक्षक है, इसे गीता के चतुर्थ अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा है कि मैंने इस अविनाशी योग को कल्प के आदि में सूर्य के प्रति कहा था। सूर्य ने अपने पुत्र मनु के प्रति और मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु के प्रति कहा।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् । विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥

अथवा "पंचा का गुरु विष्णु, महेश, सूर्य, दुर्गा, गणेश इन पांचों का गुरु परमात्मा है। पुनः वह परमात्मा कैसा है ? एकु =एकाकी अद्वितीय है। उपासकों पर अनुग्रह करने के लिए नृसिंह, वामन श्रीराम, श्रीकृष्णादि अनेक रूप होने पर भी वास्तव में व्यक्ति भेद से रहित केवल एक अद्वितीय है। यहां तक निदिध्यासन के विषय को कह कर अब निदिध्यासन के स्वरूप को कहते हैं धिआनु = ध्यान शव्द निदिध्यासन का वाचक है, अर्थात् पूर्व प्रतिपादित परमात्मा के स्वरूप में चित्तवृत्ति की एकाग्रता रूप निदिध्यासन करना उचित है। निदिध्यासन के स्वरूप को कह कर अब निदिध्यासन के कारण मनन को कहते हैं।

जे को कहै करै वीचारु"

जे =यदि कोई ज्ञानी जीव और परमात्मा के बोधक शव्दों के अर्थों का संशोधन करके अधिकारी को कहै =कथन करे तब श्रवण करके जिज्ञासु पुरुष करै वीचारु =अभेद साधक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

युक्तियों से मनन करे। भाव यह है कि यहां पर विचार शब्द का अर्थ मनन है, वह निदिध्यासन का साक्षात् हेतु है। और साक्षात्कार का निदिध्यासन के द्वारा हेतु है। इसलिए मुक्ति की इच्छा वाला मुमुक्षु साधन सम्पन्न होकर अवश्य विचार करे।

पूर्वोक्त वचन से निदिध्यासन के हेतु मनन का श्री गुरुदेव जी ने निर्णय किया है। अब अधिकारी को जानने के लिये उसके ज्ञान के लिये उसके ज्ञान के साधन कितने हैं ऐसा पूछने पर उत्तर देते हैं।

करते कै करणै नाही सुमारु,

करते=विचार करने वाले अधिकारी के **करणै**=ज्ञान के साधन **नाही सु मारु**=अगणित हैं, अर्थात् विचार करने वाले अधिकारी के ज्ञान, सहयोगी दान, स्वाध्याय, नम्रतादि साधनों की गणना नहीं की जा सकती, क्योंकि अमानिता, अदम्भिता, अहिंसा, क्षमा, सरलता, गुरुभक्ति, शारीरिक एवं मानसिक पवित्रता आदि असंख्य दैवी गुण हैं जिनकी गणना नहीं की जा सकती।

प्रश्न—जब दैवी गुण असख्य हैं तब जिज्ञासु को सर्व प्रथम कौन साधन अपनाना चाहिये। उत्तर में श्री गुरुदेव जी कहते हैं।

धौलु धरमु दया का पूतु'

शब्दार्थ— **धौलु**=श्वेत, **पूतु**=पुत्र, भाव यह है कि रजो तमो से रहित केवल सत्व गुण रूप निष्काम धर्म ही अधिकारी को सर्व प्रथम सेवन करना चाहिये। वह निष्काम धर्म दया का पुत्र है। दूसरे के दुःख को दूर करने की इच्छा का नाम दया है, उससे धर्म की उत्पत्ति होती है। दया के पुत्र धर्म ने संतोष को अन्तःकरण में स्थापित किया हुआ है। दम, दान, दया, इन तीन साधनों से शुद्ध धर्म उत्पन्न होता है, और उसी धर्म से अन्तःकरण में संतोष की प्राप्ति होती है। भाव यह है कि काम क्रोध लोभ को नष्ट करने के लिये दैवी सम्पत्ति में दम; दान, दया, आदि को शूरवीर बताया गया है। जब हम कामादि शूरवीरों को परास्त कर देते हैं तब अन्तःकरण में दैवी सम्पत्ति का निष्कण्टक राज्य स्थापित हो जाता है शुद्ध धर्म की उत्पत्ति से सुख का हेतु संतोष भी अन्तःकरण में दृढ़ होकर बैठ जाता है। जिस संतोष से सम्पूर्ण विषयों की तृष्णा को दूर करके मुमुक्षु श्रवण मननादि साधनों का अधिकारी हो जाता हैं। पूर्व में अधिकारी का निर्णय करके अब फल का निरूपण करते हैं।

जे को बुझै होवै सचिआरु,

शब्दार्थ— **जे को**=जो कोई, **बुझै**=जानता है, **सचिआरु**=सत्यवादी। भाव यह है कि यदि कोई साधन सम्पन्न अधिकारी सत्य अद्वितीय परमेश्वर को अपने से अभिन्न करके जानता है वह सत्यवादी ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। इसबात को दूसरे शब्दो में भी गुरु जी ने स्पष्ट किया है।

जिन जाता सो तिस ही जेहा'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस प्रकार निदिध्यासन जन्य ज्ञान से सत्य अद्वितीय रूप होना फल बता कर काकु उक्ति से चिद्जड़ ग्रन्थि, संशय ग्रन्थि, कर्म ग्रन्थि की निवृत्ति रूप अन्य फल भी बतलाते हैं।

"धवलै उपरि केता भारु"

जिस वाक्य से अर्थ और प्रकार का प्रतीत हो उसे काकु उक्ति कहते हैं। जैसे इस व्यक्ति का अमृतपान से रोग नहीं जायेगा ? किन्तु अवश्य जायेगा। यह अर्थ काकु उक्ति से सिद्ध होता है। यहां पर शुक्लता बोधक धवल पद शुद्ध ब्रह्म का वाचक है। उपरि पद त्रिगुणातीत तुरीय स्वरूप का बोधक है।

अर्थ इस प्रकार है। त्रिगुणातीत ज्ञानी के शुद्ध स्वरूप ब्रह्म में चिज्जड़ ग्रन्थि, संशय ग्रन्थि, कर्म ग्रन्थि, का कितना भार है ? अर्थात् कुछ भी बोझ नहीं क्योंकि जिस काल में ज्ञानी को चतुर्थी भूमिका में शुद्ध स्वरूप का प्रत्यक्ष होता है। उसी काल में जड़ चेतन की ग्रन्थि परमात्मा से मैं भिन्न हूं वा अभिन्न ? भिन्न होकर भी मैं जन्मता मरता हूँ अजर अमर हूं ? इत्यादि संशय ग्रन्थि तथा पुण्य पाप कर्म ग्रन्थि, शरीर छूटने के बाद कैसी दशा होगी ? इत्यादि नाना प्रकार के विकल्प जालों का भार निवृत्त हो जाता है। इस बात को गुरु जी के वचन भी प्रमाणित करते हैं।

"सूरज किरणि मिले जल का जलु हूआ राम।

जोती जोति रली संपूरनु थीआ राम॥ गु० ग्र० पृ०८४६

जनम जनम के किलविख दुख उतरे गुरि नामु दीओ रिनु लाथा। गु०ग्र०पृ०६६६

अधिकारी को ज्ञान और उसके फल की प्राप्ति दिखाकर अब अनधिकारी पुरुष को ज्ञान की प्राप्ति दुर्लभ है यह दिखाते हैं।

"धरती होरु परै होरु होरु, भूमि मात्र का बोधक धरती शब्द, यहां पर ज्ञान की चतुर्थी भूमिका का वाचक है। होरु=पद वहिर्मुख, सांख्य, पातञ्जल, इन तीनों का बोधक है 'परै' शब्द दूर का वाचक है। अर्थ इस प्रकार है। ज्ञान की चतुर्थी भूमिका वहिर्मुख अनधिकारी पुरुष को दूर है। स्थूल बुद्धि होने के कारण उसका वह अधिकारी ही नहीं। जैसे स्थूलदर्शी पुरुषों को ज्ञान की चौथी अवस्था प्राप्त नहीं होती वैसे प्रकृति पुरुष का विचार करने वाले सांख्य एवं तर्क, निपुण, नैयायिक और वैशेषिक इत्यादि भेद वादियों को भी ज्ञान की भूमिका दुर्लभ है। इस बात को बोधन करने के लिये मूल में दो वार होरु शब्द का उच्चारण किया है। दोनों होरु शब्दों के साथ पूरे शब्दों का सम्बन्ध जोड़ लेना चाहिये अर्थात् स्थूल बुद्धि वाले लोगों से अन्य जो प्रकृतिवादी सांख्य है वह भी उस ज्ञान की अपूर्व अवस्था से अति दूर हैं। पहले तो सांख्य लोग ईश्वर ही नहीं मानते, यदि कुछ मानते भी हैं तब वह ईश्वर से जीव का सदा भेद ही मानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इसलिये उन्हें जीव ईश्वर की अभेद भूमिका प्राप्त नहीं होती। एवं पातञ्जल, नैयायिक, वैशेषिक, इत्यादि भेदवादी दार्शनिकों की भी ऐसी ही दशा है।

"जिन कै भीतरि है अंतरा। जैसे पशु तैसे ओहु नरा" ११६३

इस गुरु वचन के अनुसार भेदवादी लोगों को वह अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती। भेद वादी दार्शनिक अन्य साधारण लोगों से भी अति दूर हैं। उक्त रीति से ज्ञान की भूमिका की दुर्लभता बता कर अब उसके सम्पादन की कठिनता बताते हैं।

"तिसते भारु तलै कवणु जोरु। नीचे का बोधक तलै शब्द यहां पर रहित अर्थ का वाचक है। भारु=शब्द विवेकादि साधनों के बोझ का सूचक है। अर्थ इस प्रकार है। जो पुरुष विवेकादि साधन रूप बोझ वाली ज्ञान भूमि के भार से रहित है। अर्थात् विवेकादि साधनों से हीन है उसे ज्ञान भूमि के धारण करने का क्या बल है ? भाव साधनहीन पुरुषों में ज्ञानभूमि को प्राप्त करने की शक्ति नहीं होती। रजोगुण तथा तमोगुण से दबी रहने के कारण अनधिकारी पुरुष में ज्ञानभूमि की सम्भावना नहीं हो सकती, इस बात को आगे स्पष्ट करते हैं।

"जीअ जाति रंगा के नाव"

जीअ जाति=शब्द यहां पर प्राणी मात्र का बोधक है। रंगा=शब्द शुक्ल पीत कृष्ण, रङ्ग वाले तीन गुणों का वाचक है। अर्थ इस प्रकार है—जीव मात्र के नाम रजो तमो सत्त्व गुणों के अनुसार होते हैं। अर्थात् रजो गुण से राजस तमोगुण से तामस और सतोगुण से सात्त्विक नाम पड़ता है। इसलिये राजस, तामस पुरुषों में आसुरी सम्पत्ति के प्रभाव से ज्ञानभूमि की भावना दबी रहती है, प्रकट नहीं होने पाती।

प्रश्न— सभी जीवों के नाम गुणों के अनुसार होते हैं इसमें क्या प्रमाण है ? इस शङ्का को दूर करने के लिये श्री गुरुजी कहते हैं।

"सभना लिखिआ वुड़ी कलाम"

वुड़ी=नाम बड़ी का है और कलाम= फारसी में वाणी को कहते हैं। अर्थात् सम्पूर्ण जीवों के राजस, तामस, सात्त्विक नाम वेद रूप महावाणी में लिखे हैं दशम दरबार में भी ऐसे ही लिखा है।

"साधु कर्म जे पुरुष कमावे। नाम देवता जगत कहावे।
कुकृत कर्म जे जग में करही। नाम असुर ता को सभ धरही"

सात्त्विक पुरुष को देवता और तमो रजोगुण प्रधान पुरुष को असुर कहते हैं।

प्रश्न— सभी जीवों के नाम गुणों के अनुसार होते हैं। इस बात को निर्णय करने का यहाँ पर क्या प्रयोजन है ? इसके उत्तर में कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'एहु लेखा लिखि जाणै कोइ'

राजस तामस पुरुषों में कोई सात्त्विक पुरुष ही जन्म मरण के चक्र को तथा देव, पितृ ऋषि ऋणों को दूर करने वाली ज्ञान भूमि रूप लेखे को शुद्ध हृदय रूपी कागज पर लिख कर परमात्मा को अद्वितीय सत्य स्वरूप जानता है।

भाव यह है कि संसार में हजारों मनुष्यों में से कोई विरला सात्त्विक पुरुष दैवी गुणों को सम्पादन करके भगवत्प्राप्ति के लिए यत्न करता है। उन यत्न करने वालों में भी कोई विरला मनुष्य परमार्थ दृष्टि से ईश्वर को जानता है। यह बात गीता तथा गुरुवाणी में प्रतिपादन की है।

मनुष्याणांसहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः॥ गी० अ० ७
जन नानक कोटन महि कोऊ भजन राम को पावै॥

ज्ञान के लेखे को चित्त में लिखना मुक्ति का कारण है। इस बात को आगे गुरुजी कहते हैं।

लेखा लिखिआ केता होइ=केता शब्द घर और ध्वजा का वाचक है। अर्थ इस प्रकार है—ज्ञानरूपी लेखा चित्त में लिख कर जिज्ञासु ज्ञानवान् हो जाने से मुक्ति रूप ब्रह्मधाम को प्राप्त हो जाता है; तथा जिज्ञासुओं के लिये ज्ञानी पुरुष ध्वजा रूप हो जाता है, अर्थात् सर्व का पथ प्रदर्शक बन जाता है।

प्रश्न— जिस ज्ञानभूमि के प्रभाव से ज्ञानी ब्रह्म स्वरूप होता है, उस स्वरूप का आप कृपा करके प्रतिपादन करें? उत्तर में श्री गुरुदेव जी कहते हैं—

शब्दार्थ— **'केता ताणु सुआलिहु रूपु'** केता=कितना ताणु=बल सुआलिहु=स्मरण कराना। अर्थ इस प्रकार है, मन वाणी का अविषय होने के कारण मेरी वाणी में इतना बल नहीं कि मैं त्रिगुणातीत के स्वरूप को निरूपण करके तुम्हें स्मरण करा सकूं। अर्थात् लक्षणावृत्ति से प्रतिपादन करने पर भी शक्ति वृत्ति से उसे वाणी द्वारा प्रतिपादन नहीं कर सकते। ब्रह्म के स्वरूप तथा उसकी दी हुई सामग्री को यहां बताना अत्यन्त कठिन है, वहां परमेश्वर स्वरूप ज्ञानी के किए हुए उपकारों को कहना भी कठिन है। आगे इसी बात को स्पष्ट करते हैं।

केती दाति जाणै कौणु कूतु। बङ्गला भाषा में कूतु शब्द परीक्षण का वाचक है। फारसी भाषा में माप तथा स्वास्थ्य का वाचक है। अन्य भाषाओं में कूतु शब्द भाव तथा शब्द का बोधक है। अर्थ इस प्रकार है—ब्रह्म ज्ञानी पुरुष ने कर्म करने वाले कर्मी को कर्मों के विषय में तथा उपासक को उपासना के विषय में, जिज्ञासु को आत्म ज्ञान के विषय में सूक्ष्म से सूक्ष्म भेद बताकर जो अलौकिक दात निधि दी है उसे कौन पुरुष शब्द से तथा माप से तथा परीक्षा से जान सकता है। यह भाव है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ज्ञानवान् से अतिरिक्त जिज्ञासु, पामर, विषयी, ये तीनों ही ब्रह्मज्ञानी की दात इतनी है, ऐसा अपनी बुद्धि के बल पर। वा किसी माप दण्ड से तथा किसी अन्य परीक्षा से नहीं जान सकते। ब्रह्मज्ञानी के किए हुए उपकारों को जबकि कोई नहीं जान सकता तब उसके ब्रह्म स्वरूप को जानना तो और भी कठिन है। इसी भाव से श्री गुरुदेवजी ने कहा है—

'ब्रह्म गिआनीकी गति ब्रह्म गिआनी जानै। ब्रह्मवेत्ता के स्वरूप को ब्रह्मज्ञानी ही जान सकता है, इतर अज्ञानी जन उसकी महिमा को नहीं जान सकते।

ईश्वर के समान ज्ञानी के स्वरूप का अज्ञ जनों द्वारा जानना कठिन बता कर अब उसकी स्तुति के लिये सर्व कार्यों का अधिष्ठान होने से ईश्वर रूपता का प्रतिपादन करते हैं।

"कीता पसाउ एको कवाउ" कवाउ=पद की स्थूल सूक्ष्म कार्य उपाधि में लक्षणा है, और कार्य उपाधि से कारणरूप माया का ग्रहण है अर्थ इस प्रकार है। ईश्वर रूप से ज्ञानी ने, एको कवाउ=माया रूप एक उपाधि द्वारा, कीता पसाउ=स्थूल सूक्ष्म नाना प्रकार का विस्तार किया उसी विस्तार को स्पष्ट करते हैं।

"तिस ते होए लख दरीआउ। यहां पर लख=शब्द अपरमित का वाचक है। माया उपाधिवाले ईश्वर रूप ज्ञानी से अगणित सृष्टि उत्पन्न हुई जैसे नदी से तरङ्ग बीचि बुद बुदे अनेक उत्पन्न होते हैं। वैसे ही ईश्वर रूप ज्ञानी से नाना प्रकार की सृष्टि उत्पन्न होती है। इसलिए गुरुदेव जी ने सुखमनी में लिखा है।

'ब्रह्म ज्ञानी सभ सृष्टि का करता' ब्रह्मज्ञानी सदजीवै नहीं मरता' सुखमनी २७२

प्रश्न— यदि पामर और विषयी लोग तत्त्व वेत्ता कों नहीं जान सकते तब आप ही उसके स्वरूप को बताने की कृपा करें? उत्तर में श्री गुरुजी कहते हैं।

'कुदरति कवण कहा बीचारु'

कुदरति=शब्द शक्ति का वाचक है। अर्थ यह है कि मेरे में क्या सामर्थ्य है, जो तत्त्ववेत्ता के स्वरूप का प्रतिपादन कर सकूं। भाव यह है कि तत्त्ववेत्ता में दैवी सम्पत्ति है इसलिये उन्हें अन्यलोग जान सकते हैं, यह उसका पर संवेद्य रूप है। परन्तु तत्त्व वेत्ता का वास्तव स्वरूप स्वसंवेद्य है, जिसे उसके बिना दूसरा कोई नहीं जान सकता। पर संवेद्य दैवी गुणों से ज्ञानी को ज न लेने पर भी मन वाणी से अगोचर स्व संवेद्य रूप से ब्रह्मनिष्ठ को कोई दूसरा नहीं जान सकता।

प्रश्न—गुरुदेव! यदि आप भी स्वसंवेद्य रूप से नहीं जानते तो आप में अन्य पुरुषों की अपेक्षा क्या विशेषता है?

समाधान—प्रिय शिष्य! अज्ञानी लोग अहङ्कार से कहते हैं कि हमने स्व संवेद्य स्वरूप को सर्वथा जान लिया, परन्तु हम अज्ञानियों के समान नहीं कहते। किन्तु स्वरूप की वास्तविकता गम्भीरता एवं अतल स्पर्शिता का अनुभव अवश्य करते हैं, यही हमारे में विशेषता है। यथा—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सोई अजाणु कहै मैं जाना जानण हारु न छाना रे ॥ गु० ग्रं० पृ० ३८२

प्रश्न—अहङ्कार में आकर जो कहते हैं कि हमने सर्वथा जान लिया उन विपरीत दर्शी लोगों को कृपालु होने के कारण आप समझाने की कृपा करें। मूर्खों को समझाना निष्फल है, इस भाव से गुरु जी आगे कहते हैं।

वारिआ न जावा एक वार'

शब्दार्थ—वारिआ=निवारण के लिये, न जावा =नहीं जाता हूं, एक वार =एक दफा, अर्थ यह है कि उन हठ धर्मी अज्ञानी लोगों को समझाने के लिए हम एक वार भी नहीं जाते, क्योंकि उनके विपरीत संस्कार अति दृढ़ हो चुके हैं। दुराग्रह से वे लोग ब्रह्मा की भी बात सुनने को तैयार नहीं।

हरि जसु सुनहि न हरिगुण गावहि। वातन ही असमान गिरावहि।

गु० ग्रं० पृ० ३३२

इस शब्द में हठधर्मी लोगों को समझाना बुझाना कबीर जी ने निष्फल बताया है।

प्रश्न— गुरुदेव यदि आप विषयी एवं पामर लोगों को समझाना उचित नहीं समझते तब मेरे जैसे अधिकारी को क्या करना चाहिये ? ऐसा पूछने पर कहते हैं जो उचित प्रतीत होता है सो करो।

जो तुधु भावै साई भली कार,

तुधु—तेरे को जो भावै—रुचिकर प्रतीत होता है, साई भलीकार—वही श्रेष्ठ है। अर्थ यह है कम तथा उपासना और ज्ञान के साधन श्रवणादि में से जो तुम्हें करने योग्य कल्याणकारी प्रतीत होता है वही श्रेष्ठ है। यथा शक्ति उसी का पालन कर। इसमें तुम्हें पूर्ण स्वतन्त्रता है।

प्रश्न— तरति शोकमात्मवित्, इस श्रुति के द्वारा आत्म ज्ञान से सर्व शोक की निवृत्ति श्रवण की गई है। इसलिये शरणागत मुझको तत्वज्ञान का उपदेश करने की कृपा करें ? जिज्ञासु की जिज्ञासा देख कर परम कृपालु गुरुदेव जी कहते हैं।

तू सदा सलामति निरंकार,

शब्दार्थ— तू—तुम, सदा—काल भेद से रहित, सलामति—नित्य शाश्वत विद्यमान, निरंकार—निर्विकार, निराकार नेत्रों का अविषय, भाव यह है कि देश और काल परिच्छेद से रहित सर्वदा विद्यमान मन, वाणी और नेत्रों का अविषय, सर्वव्यापक परब्रह्म परमेश्वर मेरे से अभिन्न है, ऐसा जान कर कृतकृत्य हुआ स्वतन्त्रता पूर्वक जीवन मुक्ति का अनुभव कर।

नानक सतगुरू भेटिऐ पूरी होवै जुगति।
हसंदिआ खेलंदिआ पैनंदिआ खावंदिआ विचै होवै मुक्ति ॥

इस वचन के द्वारा गुरु जी ने इस भाव को प्रकट किता है कि जीवनमुक्त पुरुष ज्ञान के प्रभाव से ऊठता, बैठता, जागता, खाता, पीता, खेलता, कूदता हुआ भी आत्मानन्द का अनुभव करता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है । किसी भी अवस्था में स्वरूप स्थिति से चलायमान नहीं होता । क्योंकि ज्ञानी पुरुष देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूंघता हुआ, गमन करता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ, बोलता हुआ, त्यागता हुआ, ग्रहण करता हुआ, आँखों को मीचता और खोलता हुआ भी अपने आपको असंग निर्विकार और शुद्ध बुद्ध समझता है ।

इन्द्रियां अपनेअपने विषयों को ग्रहण कर रही हैं । इन से मेरा कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं, ऐसा ज्ञानी का दृढ़ निश्चय होने के कारण अपने स्वरूप से चलायमान नहीं होता ।

यथा—नैव किंचित्करोमीति युक्तोमन्येत् तत्ववित् । पश्यन्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपन्श्वसन् प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ॥ गीता अ० ५

❀ षोडशं मन्त्रं समाप्तम ❀

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तिस ते होए लखदरिआउ, इत्यादि वचनों से ईश्वर द्वारा सामान्य भूत भौतिक सृष्टि को रचना कह कर विशेष रूप से अब राजस तथा सात्विक सृष्टि का गुरु जी निरूपण करते हैं।

मूल— असंख जप असंख भाउ। असंख पूजा असंख तप ताउ।
असंख गरंथ मुखि वेद पाठ। असंख जोग मनि रहहि उदास।
असंख भगत गुण गियान वीचार। असंख सती असंख दातार।
असंख सूर मुह भख सार। असंख मोनि लिव लाइ तार।
कुदरति कवण कहा वीचारु। वारिआ न जावा एक वार।
जो तुधु भावै भाई भली कार। तू सदा सलामति निरंकार ॥१७॥

'असंख जप असंख भाउ, असंख=अगणित, जप=जपने योग्य मन्त्र हैं। अथवा असंख्य पुरुष मन्त्रों को जपने वाले हैं। असंख पूजा असंख तप ताउ=असंख्य ही पूजा करने वाले और असंख्य ही तपों को तपने वाले तपस्वी हैं।

असंख गरंथ मुखि वेद पाठ=असंख्य पुरुष अनेक ग्रन्थों का एवं वेदों का कण्ठस्थ पाठ करने वाले हैं। असंख जोग मनि रहहि उदास=मन से उपराम रहने वाले अनेक ही योगी हैं। अथवा अनेक ही, जोग=योग के प्रकार हैं और उस योग को करने वाले योगी संसार की ओर से मन से उदासीन रहते हैं।

असंख भगत गुण गिआन वीचार=अनेक भक्त परमेश्वर के सत्य संकल्पादि गुणों का एवम् ज्ञान का विचार करने वाले हैं। असंख सती असंख दातार=असंख्य ही पुरुष, सती=सत्य बोलने वाले हैं और अनेक ही पुरुष दातार=दान करने वाले हैं।

असंख सूर मुह भख सार=असंख्य शूरवीर युद्ध भूमि में शत्रुओं के, सार=शस्त्रों को मुह=मुख पर भख=खाते हैं, अर्थात् क्षात्र धर्म के अनुसार सम्मुख होकर लड़ते हैं, पीठ नहीं फेरते असंख मोनि लिव लाइ तार=असंख्य ही मोनि=मौन रहने वाले परमात्मा में, तार=अखण्ड एक रस, लिव=वृत्ति को, लाइ लगाते हैं कुदरति कवण कहा वीचारु=इत्यादि पाठ का अर्थ पूर्व हो गया है।

भावार्थ— सिद्ध मण्डली ने पूछा, पूज्य गुरुदेव! जिस सृष्टि को ईश्वर ने अपने संकल्प मात्र से उत्पन्न किया है, वह कितने प्रकार की है?

उत्तर में श्री गुरु नानकदेव जी सृष्टि के सात्त्विक, राजस, तामस, भेद कह कर अब सात्त्विक, राजस सृष्टि का निरूपण करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस सृष्टि में अनन्त ही जपने योग्य मन्त्र हैं, और अनेक ही उन मन्त्रों को जपने वाले जपी हैं। असंख्य ही प्रेमी प्रेम करने वाले हैं। संसार में अगणित पूजा करने वाले और अनेक ही तपस्वी तपों को तपने वाले हैं। असंख्य मनुष्य वेदों का और अन्य धार्मिक ग्रन्थों का प्रति दिन कण्ठस्थ पाठ करने वाले हैं। अगणित पुरुष मन से उपराम होकर योग की साधना करने वाले हैं। अनन्त भक्त ईश्वर के सत्य संकल्पादि गुणों का एवं दया दाक्षिण्यादि दैवी गुणों का विचार करने वाले हैं। अनन्त पुरुष सत्य बोलने वाले तथा असंख्य ही दानी दान देने वाले हैं। असंख्य शूरवीर क्षात्र धर्म के अनुसार रणभूमि में सम्मुख होकर शत्रुओं के शस्त्रों के आघात प्रत्याघात अपने मुख पर सहन करते हैं। असंख्य ही मौनी पुरुष परमात्मा में एक रस चित्त वृत्ति लगाने वाले हैं। मेरे में क्या शक्ति है जो ईश्वर की सृजन, पालन, संहारादि अनन्त शक्तियों का वर्णन कर सकूं। मैं तो ईश्वर के एक रोम का भी वर्णन नहीं कर सकता क्योंकि उसके एक रोम में कोटि कोटि ब्रह्माण्ड समाये हुए हैं। हे त्रिगुणातीत परमेश्वर ! आप नित्य शाश्वत स्वयंभू अविनाशी हैं। जो आपको प्रिय एवं रुचिकर प्रतीत होता है वही कार्य ठीक है।

तिस ते होए लख दरिआउ,

इस वाक्य के द्वारा ईश्वर से अनन्त सृष्टि की उत्पत्ति कह कर अब माया के सम्बन्ध से ईश्वर द्वारा अपने अपने शुभ अशुभ कर्मों के अनुसार उत्पन्न हुए देव और असुरों के शुभाशुभ आचरणों का निरूपण करते हैं।

असंख जप असंख भाउ,

विशेष व्याख्या—परमेश्वर की विचित्र सृष्टि है सत्य नाम, श्री वाहिगुरु, श्री राम, गोविन्द इत्यादि अनेक मन्त्रों को जपने वाले जपी हैं। अधिकारियों की रुचि भेद से जपने योग्य मन्त्र भी असंख्य हैं और उन मन्त्रों के फल भी अनन्त हैं। श्रीमद् भगवद्‌गीता में द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याय ज्ञान यज्ञ इत्यादि अनेक यज्ञों का विधान किया है। किन्तु सभी यज्ञों से जप यज्ञ को भगवान् ने सर्वोत्तम माना है। कामनाओं की पूर्ति के लिये जो अनेक यज्ञ किये जाते हैं, उनमें हिंसादि अनेक दोष भी बतलाए गये हैं। उन दोषों की निवृत्ति के लिये यजमान को प्रायश्चित्त करना पड़ता है।

परन्तु जप यज्ञ में हिंसादि कोई भी दोष नहीं केवल श्रद्धा और प्रेम की आवश्यकता है। इसलिये भगवान श्रीकृष्ण ने **यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि** गीता अ० १०

इस वचन के द्वारा जप यज्ञ को अपना स्वरूप बताया है। सात्विक पुरुषों को कल्याणकारी एवं पवित्र मन्त्रों का ही जप करना चाहिये। अघोर तथा भूत प्रेत पिशाचों के मन्त्रों को जपने से दुर्गति होती है। परमेश्वर के नाम जपनेसे भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है। अगणित पुरुष परमेश्वर में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चित्त वृत्ति के प्रवाह रूप प्रेम को करने वाले हैं एवं प्रेम भी अनेक प्रकार का है। विषयों का प्रेम झूठा और दुखदाई है। परन्तु ईश्वर का प्रेम सच्चा और सुखदाई है। विषयों के प्रेम को फीका समझ कर जिज्ञासु जब सच्चे प्रेम की ओर बढ़ता है तब उसे अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है। इस भाव को नीचे लिखे शब्दों में गुरु जी ने प्रकट किया है।

"इह रस छाड़े ओहु रस आवा । ओहु रसु पीआ इहु रसु नहीं भावा।

गु० ग्र० पृ० ३४२

तथा — बिखै बिनु फीका तिआगि री सखीए नामु महा रसु पीउ।

बिनु रस चाखे बुड गई सगली सुखी न होवत जीउ ॥ इत्यादि । गु० ग्र६ ८०२

"असंख पूजा असंख तप ताउ"

बिष्णु, शिव, सूर्य गणेशादि देवताओं की पत्र, पुष्प, फलादि से पूजा करने वाले अनन्त पुरुष हैं और पूजा भी अनेक प्रकार की है।

यथा — पूजा अरचा बन्दन दण्डौतु खटु करमा रतु रहिता। गु० ग्र० पृ० ६४२ तथा

"पूजा अरचा सेवा बंदन इहै टहिल मोहि करना" गु० गृ० पृ० ५३१

शूरवीरों की पूजा और प्रकार की है जैसे कृष्णावतार की कथा में श्री गुरु गोविन्दसिंह जी ने लिखा है।

"एक गदा पुन कर में धरी । सब भूपन की पूजा करी ॥" यहाँ पर पूजा शब्द का व्यंग्यार्थ ताड़ना पीटना है एवं चक्रवर्ती राजा माता एवं पिता गुरु मित्र एवं शत्रु और सेनापति इत्यादि उत्तम-मध्यम व्यक्तियों के भेद से पूजा भी अनेक प्रकार की है। अनेक तप हैं, और अनन्त ही तपों को तपने वाले तपस्वी हैं।

"कई कोटि तपीसुर होते" गु० ग्र० पृ० २७५

कायिक वाचिक मानसिक भेद से तप तीन प्रकार का है। गीता में नीचे लिखे श्लोकों द्वारा तीन प्रकार के तपों का निरूपण किया है।

देव द्विज गुरु प्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम्।

ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ गीता अ० १७

देवता, माता, पिता, ब्राह्मण, गुरु, ज्ञानी जनों का पूजन एवं पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा यह शारीरिक तप है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ गीता अ० १७

उद्वेग को न करने वाला प्रिय और हितकारक भाषण, परमेश्वर के नाम जपने का अभ्यास यह बाचिक तप है।

'मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्म विनिग्रहः ॥
भाव संशुद्धिरित्येततपो मानस मुच्यते ॥ गी० अ० १७

मन की प्रसन्नता तथा शान्तभाव एवं ईश्वर चिन्तन करने का स्वभाव मन का निग्रह और अन्तःकरण की निर्मलता यह मानसिक तप है।

पूर्वोक्त तप सात्त्विक, राजस, तामस भेद से तीन प्रकार का है। सात्त्विक तप अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा भगवद् प्राप्ति का हेतु है। मान प्रतिष्ठा के लिए और दम्भ से किए जाने वाले तथा क्षणिक फल देने वाले तप को राजस कहते हैं।

यथा— सत्कार मान पूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ गी० अ० १७

जो तप मूढ़ता पूर्वक हठसे मन बाणी और शरीर की पीड़ा के सहित और दूसरे का अनिष्ट करने के लिए किया जाता है उसे तामस तप कहते हैं।

यथा— मूढ ग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामस मुदाहृतम् ॥ गी० अ० १७

असंख गरंथ मुखि वेद पाठ=अगणित पुरुष सूत्र, वार्तिक, गीतादि ग्रन्थों का तथा सर्व ग्रन्थों में मुख्य ज्ञान प्रतिपादक वेद का प्रतिपादन करते हैं। अथवा अनन्त ग्रन्थों तथा वेदों का असंख्य पुरुष कण्ठस्थ पाठ करते हैं। वेदपाठ का महत्त्व तथा उसमें प्रतिपादित विषय को श्रीगुरुदेवजी ने अनेक शब्दों में प्रतिपादन किया है।

यथा— दीवा बलै अंधेरा जाइ। वेद पाठ मति पापा खाइ । गु० ग्र० पृ० ७९१
वेदा महि नामु उत्तमु सो सुणहि नाही फिरहि जिउ बेतालिआ ॥ पृ०९१९

असंख जोग मनि रहहि उदास=मन को विषयों की ओर से रोकने के लिये असंख्य पुरुष चित्त वृत्ति के निरोध रूप योग में मन को लगाने वाले हैं। अनन्त पुरुष लोक परलोक के विषयों से वैराग्यवान् होकर उदास रहते हैं, अर्थात् अनन्त पुरुष अष्टाङ्ग योग और सहज योगकरने वाले हैं। तथा योग की सिद्धि के लिए संसार के भोगों से सर्वदा उदासीन रहते हैं। चित्तवृत्ति के निरोध का नाम योग है। शान्त घोर मूढ़ भेद से वृत्तियां तीन प्रकार की हैं। राजस और तामस वृत्तियों को घोर एवं मूढ़ कहा जाता है। यह दोनों ही दुःख देने वाली हैं। इन वृत्तियों को रोककर शान्त वृत्ति को वढ़ाना चाहिये। सम्प्रज्ञात, असम्प्रज्ञात भेद से योग दो प्रकार का है। पूर्ण मर्मज्ञ की सहायता के बिना योग

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साधन को करना लाभ की अपेक्षा हानि कारक हैं। इसलिए गुरुदेवजी ने योग प्रक्रिया को प्रोत्साह्‌न न देकर भक्तियोग और ज्ञान योग को प्रचारित किया है।

यथा— तू गुरप्रसादि करि राजु जोगु॥ गु० ग्र० पृ० २११

तथा— अहि निसि रवे भगती जोगु॥ गु० ग्र० पृ० ११७०

असंख भगत गुण गिआन बीचार = असंख्य पुरुष परमेश्वर की भक्ति करने वाले हैं।

तथा अनन्त पुरुष शम दमादि साधन सम्पन्न होकर ज्ञान के लिये विचार करने वाले हैं। गीता में आर्त जिज्ञासु अर्थार्थी, ज्ञानी ये चार प्रकार के भक्त लिखे हैं। सुखमनी साहिब में—

कई कोटि नवतन नाम धिआवहि = इत्यादि वचनों में प्रेमियों की अनन्त संख्या बतलाई है कल्पभेद से भक्तों का अनन्त होना स्वाभाविक हैं। इसी भाव से गुरुजी कहते हैं।

असंख भगत गुण गिआन वीचार, हे परमेश्वर ? आपकी सृष्टि में तत्त्व साक्षात्कार के लिए शम दमादि साधनों से सम्पन्न विचार करने वाले तुम्हारे भक्त असंख्य हैं।

असंख सती असंख दातार = असंख्य पुरुष सत्यवादी हैं, तथा—अपने स्वत्त्व को त्यागकर विधिपूर्वक श्रद्धाभक्ति से समयानुसार दान करने वाले दानी पुरुष भी असंख्य हैं। सात्त्विक, राजस तामस, भेद से दान तीन प्रकार का है। प्राचीन समय में धार्मिक लोग ग्रहण कुम्भ आदि पवित्र पर्वों में विशेषदान दिया करते थे, उस दृश्य का वर्णन गुरुवाणी में भी मिलता हैं।

यथा—असुदान गजदान सिहजा नारी भुमिदान।

ऐसो दान नित नितहि कीजै॥ गु०ग्र०पृ० ९७३

श्री गुरु तेगबहादुर जी महाराज के दान का निरूपण श्री गुरु गोविन्दसिंहजी महाराजजी ने विचित्र नाटक में किया हैं।

यथा— जबही जातत्रिवेणी भये ' पुन दान दिन करत बितये॥

असंख सूर मुह भख सार = असंख्य शूरवीर लोग लोक परलोक के सुखो को भोगने वाले हैं अथवा अनन्त शूरवीर उत्तम गति तथा यश के लिये युद्ध भूमि में शत्रुओं से लड़ते हुए शस्त्रों की चोटों को मुख पर सहन करते हैं।

असंख मोनि लिव लाइतार = असंख्य पुरुष मोन धारण करने वाले हैं। तथा अनन्त भक्त तैल धारावत अखण्ड समाधि लगाने वाले हैं।

कुदरति कवण कहा विचारु, इत्यादि पाठ का अर्थ पूर्ववत् हैं।

❀ सप्तदशं मन्त्रं समाप्तम् ❀

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सात्त्विक राजस सृष्टि कह कर अब तामस सृष्टि का गुरुजी निरूपण करते हैं ।

मूल— असंख मूरख अंध घोर । असंख चोर हराम खोर, ॥
असंख अमर करि जाहि जोर। असंख गल वढ हतिआ कमाहि ॥
असंख पापी पापु करि जाहि । असंख कूड़िआर कूड़े फिराहि ॥
असंख मलेछ मलु भखि खाहि । असंख निन्दक सिरि करहि भारु ॥
नानक नीच कहै वीचारु ॥ वारिआ न जावा एक वार ।
जो तुधु भावै साई भलीकार । तू सदा सलामति निरंकार ॥१८॥

शब्दार्थ- असंख मूरख अंध घोर=अगणित ही, अंध=अज्ञानी, घोर=भयानक कार्यों को करने वाले मूर्ख हैं ।

असंख चोर हराम खोर=अगणित ही पुरुष चोरी करने वाले तथा अनेक ही हराम खोर= न्याय विरुद्ध धनोपार्जन करके खाने वाले हैं ।

असंख अमरि करि जाहि जोर=असंख्य पुरुष, जोर=अत्याचार का, अमर=शासन करके जाहि=संसार से चले जाते हैं, अर्थात् मर जाते हैं, संसार से उनका अस्तित्त्व ही समाप्त होजाता है ।

असंख गल बढ हतिआ कमाहि=असंख्य ही, गलवढ=घातक पुरुष लोभ मोह के वशीभूत होकर, हतिआ कमाहि=निर्दोप जीवों की हत्या करते हैं । असंख पापी पापु करि जाहि= असंख्य ही पापी अनेक प्रकार के सामान्य पापों को करते हुये मर जाते हैं ।

असंख कूड़िआर कूड़े फिराहि =असंख्य ही, कूड़िआर =असत्यवादी, कूड़े फिराहि झुठ बोलते हुए लोग इधर उधर फिरते हैं। अर्थात् अनेक झुठे लोग झूठ बोलने में रात दिन लगे रहते हैं। असंख मलेछ मलु भखि खाहि= असंख्य ही मलेच्छ पुरुष मल भक्षण करने वाले जीवों को खाते हैं । अथवा असंख्य मलेच्छ पुरुष, मलु =बकवाद, भखि =बकते हैं और गन्दी वस्तुओं का भक्षण करते हैं, अर्थात ईश्वर की सृष्टि से असंख्य तमोगुणी जीव हैं, जिनका रहन सहन चाल व्यवहार आदि गन्दगी पूर्ण और असभ्यता मूलक है ।

असंख निन्दक सिरि करहि भारु =असंख्य निन्दक पुरुष निन्दा करके, सिरि =शिर पर भारु =पापों का बोझ उठाते हैं । नानक नीचु कहै वीचारु= श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं, कि मैंने नीच कर्म करने वाले उन तामसी पुरुषों के रहन सहन का विचार इस पौड़ी मन्त्र में किया है ।

वारिजानजावा एकवार =इत्यादि पाठ का अर्थ पूर्ववत् समझना ।

भावार्थ –सात्त्विक और राजस सृष्टि को बताकर अब गुरुजी तामस सृष्टिका विवेचन करते हैं। इस अद्भुत सृष्टि में असंख्यही मूर्ख अज्ञानी भयङ्कर कार्यों को करने वाले हैं । अगणित ही मनुष्य चोरी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

डकैती करने वाले तथा अनन्त ही पुरुष न्याय विरुद्ध धनोपार्जन करके परिवार का लालन पालन करने वाले हैं। असंख्य पुरुष अत्याचार का शासन करके संसार में अपयश को प्राप्त होकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं। असंख्य ही घातक पुरुष लोभ के वशीभूत होकर निर्दोष जीवों की हत्या करते हैं। अगणित जीव अनेक प्रकार के पापों को करते हुए मृत्यु को प्राप्त होते हैं। असंख्य असत्यवादी अनेक प्रकार का झूठ बोलने में रात दिन लगे रहते हैं। असंख्य ही पुरुष मलभक्षण करने वाले जीवों को खाते हैं।

एवं अनन्त पुरुष बकवाद अनर्गल प्रलाप करते हैं, और निषिद्ध वस्तुओं को भक्षण करते हैं। असंख्य निन्दक पुरुष सत्पुरुषों की निन्दा करके अपने सिरपर पापों का बोझ उठाते हैं।

श्रीगुरुनानक देवजी कहते हैं मैंने इस मन्त्र में तामसी नीच कर्म करने वाले पुरुषों के रहन सहन का निरूपण किया है। मेरे में क्या सामर्थ्य है जो अनन्त शक्ति शाली ईश्वर की अलौकिक शक्ति का निरूपण कर सकूं। मैं पुनः पुनः प्रियतम परमात्मा पर न्योछावर होता हूं। हे त्रिगुणातीत! अलौकिक बलधाम परिपूर्ण परमेश्वर! आप नित्य शाश्वत अपाणिपाद अच्युत अविनाशी हैं। जो आपको रुचिकर एवं प्रिय प्रतीत होता है वही कार्य श्रेष्ठ है।

शुभाचरण वाले सात्त्विक मनुष्य मुक्ति के अधिकारी हैं। यह बताकर निषिद्धाचरण वाले राजस तामस पुरुष मुक्ति मार्ग के अधिकारी नहीं। अब इस बात को विस्तार से श्रीगुरुदेवजी कहते हैं।

असंख मूरख अंधघोर=

विशेष व्याख्या— मूर्ख शास्त्र संस्कार हीन का बोधक है। अन्धपद तमोगुणी का और घोर पद भयङ्कर का वाचक है। अर्थ इस प्रकार है, अनेक लोग रजोगुणी तथा तमोगुणी होने के कारण शास्त्रजन्य संस्कार से हीन हैं। अन्धपद को घोर पद के आगे लगाने से अर्थ इस प्रकार होगा; भयङ्कर तमोगुणी मूर्ख भी अनन्त हैं, अथवा मूर्ख और महामूर्ख अज्ञानी लोग असंख्य हैं मूर्खों की अनन्तता का प्रतिपादन सुखमनी साहिबों में भी किया है।

यथा— कई कोटि अंध अगिआनी।

असंख चोर हरामखोर=हरामखोर शब्द निषिद्ध वस्तु के सेवन करने वाले का नाम है।

यथा— परधन परनारी को चुरा कर भोगने वाले हरामखोर असंख्य हैं। कई कोटि पर दरब कउ हिरहि।

असंख अमर करि जाहि जोर=अमरपद हुकम का वाचक है।

अनन्त राजा लोग बल पूर्वक प्रजा पर दुःखदायक शासन करके मर कर नरक रूप फल को भोगने के लिये यम के धाम जाते हैं। सन्तान के समान प्रजा का पालन करना राजा का कर्त्तव्य है। कोई व्यक्ति किसी के साथ अन्याय न करने पाए इस बात को सतर्क होकर देखना राजा का उतरदायित्त्व है। जो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शासक पूर्व किए दान और तप के प्रभाव से राज्य को प्राप्त करके दुष्ट बुद्धि कठोर शासन से प्रजा का पीड़न करते हैं, वे नरक यातना अवश्य भोगते हैं। इस बात को गुरु जी ने स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादन किया है।

दानं परा पूरवेण भुंचंते महीपते।
विपरीत बुध्यं मारत लोकह नानक चिरंकाल दुःख भोगते। गु०ग्र०पृ०१३५६

अन्याय पूर्वक प्रजा को शोषण करने वाले राजा लोग मर कर कठोर दण्ड के भागी होते हैं। यह बात विष्णु पुराण के निम्नलिखित श्लोकों से स्पष्ट प्रतीत होती है।

भो भो नृपा दुराचाराः प्रजा विध्वंस कारिणः।
अल्पकालस्य राज्यस्य कृते किं दुष्कृतं कृतम्॥

भावार्थ— यह है—हे हे दुराचारी प्रजा को नष्ट करने वाले राजा लोगो? अत्यन्त अल्प काल के राज्य के लिये तुम लोगों ने क्यों बुरे कार्य किए।

भो भो चण्डा महा चण्डा गृहीत्वा नृपानिमान्।
विशोध्यत्वं पापेभ्यः क्रमेण नरकाग्निना॥

हे चण्ड! और महाचण्ड! राजाओं को पकड़कर नरकाग्नि के द्वारा क्रम से इनके पापों का शोधन करो।

"असंख गल बढ हतिआ कमाहि"

निर्दोष व्यक्तियों की हत्या करने वाले निर्दयी हिंसक पुरुष भी अनन्त हैं। अर्थात् परमेश्वर की सृष्टि में दूसरों का गला काटने वाले प्राणघाती असंख्य पुरुष हैं। जो प्रतिदिन निर्दोष जीवों की हत्या करते हैं और मर कर फल भोगने के लिये यमपुरी को जाते हैं।

"जीअ जु मारहि जोरु करि कहते हहि जु हलालु।
दफतरु दई जब काढ हैं होए गो कौनु हवालु" गु०ग्र०१३७५

इत्यादि वचनों के द्वारा प्राणघाती हिंसक पुरुषों को यमराज के यहां यातना भोगने का प्रतिपादन किया है।

"असंख पापी पापु करि जाहि" अनन्त ही पूर्व जन्म के पापी वर्तमान काल में पाप करके नीच योनियों में दुःखों का अनुभव करने के लिए उत्पन्न होते हैं।

पापी करम कमावदे करदे हाए हाए। नानक जिउ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मथनि माधाणीआ तिउ मथे धरम राए" गु० ग्र० पृ० १४२५

पाप उस आचरण का नाम है जिसका फल लोक तथा परलोक में दुःखदायी हो। जैसे निषिद्ध कर्म करना पाप है, वैसे कर्तव्य कर्म के न करने का नाम भी पाप है। जो कर्म गुरुवाणी तथा शास्त्र एवं लोक में निन्दनीय हैं वह अकरणीय हैं। जो कर्म लोक तथा शास्त्र में निषिद्ध नहीं वह अवश्य करणीय हैं। जिस प्रकार कुकर्म को करने वाला और शुभ कर्म को न करने वाला पापी होता है, वैसे इन दोनों से सम्बन्ध रखने वाला भी पापी माना गया है। यह बात छान्दोग्य के नीचे लिखे मन्त्र से निर्णीत है।

स्तेनो हिरण्यस्य सुरांपिवश्च, गुरोस्तल्पमावसन् ब्रह्महाचैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाचरंस्तैः"

सोने को चुराने वाला, मदिरा पीने वाला, गुरु पत्नी के साथ सहवास करने वाला, वेद पाठी को मारने वाला, ये चारों पापी हैं। और इनके साथ सम्बन्ध जोड़ने वाला भी पापी है। लोगों के हित को ध्यान में रखकर ऋषियों ने कुछ नियम बनाये हैं। जो व्यक्ति उनका भंग करता है वह दण्ड का भागी होता है। अर्थात् चोरी, परदारा गमन, गर्भपात इत्यादि निषिद्ध कर्मों का पुनः पुनः आचरण करने वाला पापी माना गया है। पाप की निवृत्ति प्रायश्चित वा भोग से मानी गई है। यदि किसी प्रकार भी पाप की निवृत्ति नहीं हुई तो पापी को अनेक प्रकार के दुःखों का अनुभव करना पड़ता है। इस बात को गुरु जी ने नीचे लिखे वचनों द्वारा प्रतिपादन किया है।

नरक घोर दुख खूहु है ओथै पकड़ि ओह ढोइआ।
कूक पुकार को न सुणे ओहु औख होइ होइ रोइआ" गु० ग्र० पृ० ३०६

श्री सनत सुजात जी ने धृतराष्ट्र के प्रति तेरह प्रकार के पापी नीचे लिखे दो श्लोकों में बताए हैं।

"विकत्थनः स्पृहयालुर्मनस्वी बिभ्रत कोपं चपलोऽरक्षणश्च। एतान् पापा परानराः पाप धर्मान् प्रकुर्वते नो त्रसन्तः सुदुर्गे ॥ १८ ॥ मा०भा० उ० पर्व

अपनी बड़ाई करने वाला, लोलुप तनिक भी अपमान को न सहन करने वाला, निरन्तर क्रोधी, चंचल और आश्रितों की रक्षा न करने वाला ये छः मनुष्य पापी हैं। महान् संकट की अवस्था में भी ये निर्भीक होकर पापाचरण करते है।

"संभोग संविद विषमोऽतिमानी, दत्तानुतापी कृपणो बलीयान्।
वर्ग प्रशंसी वनितासु द्वेष्टा एते परे सप्त नृशंस वर्गाः ॥ १९ ॥ महाभारत उद्योग पर्व

संभोग में मन लगाने वाले, विषमता रखने वाले, अतिमानी, दान देकर पश्चाताप करने वाले, अत्यन्त कृपण, अर्थ और काम की प्रशंसा करने वाले, तथा स्त्रियों के द्वेषी ये सात और पापाचरण करने वाले हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"असंख कूड़िआर कूड़े फिराहि"

झूठ बोलने वाले अगणित पुरुष सर्वदा काल इस झूठे प्रपञ्च में कूकर शूकरादि अनेक योनियों में घूमते फिरते हैं। अथवा असंख्य मिथ्यावादी सारा जीवन झूठ बोलने में ही व्यतीत कर देते हैं क्योंकि वे लोग झूठ बोलने में अपनी निपुणता समझते हैं। जैसे गुरु जी ने नीचे लिखे शब्दों में प्रतिपादन किया है।

"कूड़ु कमावै कूड़ु संग्रहै कूड़ करे आहारु" गु० ग्र० पृ० ५५२

"कूड़ी रासि कूड़ा वापारु कूड़। बोलि करहि आहारु" गु० ग्र० पृ० ४७१

कूड़ु कुसत कमावदे पर निंदा सदा करेनि।
ओइ आपि डूबे पर निंदका सगले कुल डोबेनि ॥ गु० ग्र० पृ० ६५१

असत्य एवं अनृत यह दोनों झूठ के पर्याय हैं। अपने देखे सुने के अनुसार कहने को सत्य कहते हैं और देखे सुने के विपरीत कहने का नाम असत्य है। सत्यवादी पुरुष ऐश्वर्यवान्, कीर्तिमान् एवं तेजस्वी होता है। और मिथ्यावादी नाश को प्राप्त होता है। यह बात श्रुति वाक्य से स्पष्ट हो जाती है।

तद एतत फलं वाचो यत सत्यं साह। ईश्वरो यशस्वी कल्याण कीर्ति भवति। यो वाव पुष्पंफलं वाचः सत्यं वदति अथ एतद् मूलं वाचो यदनृतं तद् यथा वृक्षः आविर्मूलः शुष्यति स उद् वर्तते एवमेव अनृतं वदन् आविर्मूलात्मनं करोति स शुष्यति स उद्वर्तते ॥

सत्य वाणी का फूल और फल है। सत्यवादी ऐश्वर्य वाला, यश वाला और प्रतिष्ठा वाला होता है। अनृत, वाणी का मूल है। जैसे नङ्गे मूल वाला वृक्ष सूख जाता है वैसे मिथ्या भाषी मनुष्य भी झूठ बोल कर अपने आपको नग्न कर लेता है। एवं झूठ बोलने से वंशहीन हो जाता है। ऋग्वेद में बताया है ज्ञानवान् मनुष्य के लिये यह जानना सरल है कि सत्य और झूठ आपस में स्पर्धा करते हैं। इन दोनों में जो सत्य है वह अधिक सरल है। उसके बोलने वाले को संसार में सर्व प्रकार से ईश्वर प्रफुल्लित करता है।

"सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सत च असत वचसी प्रस्पृधाते तयोर्यत् सत्यं ऋजीवः तद इत सोमोऽवति–हन्ति असत्"

"असं मलेछ मलु भख खाहि"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनेक चाण्डालादि मल भक्षण करने वाले कूकर, शूकरादि को खाने वाले हैं अर्थात् मल मूत्र का भक्षण करने वाले कूकर शूकरादि के भक्षक पाप योनी चाण्डालादि भी असंख्य हैं।

"असंख निंदक सिरि करहि भारु"

दूसरे की निन्दा करने और कराने से और सुनने सुनाने से असंख्य निन्दक पापों का भार स्वयं उठाते हैं तथा दूसरों से उठवाते हैं। इस लिये अत्यन्त मन्द भागी हैं। निन्दा पाप का उत्पादक होने से वर्जनीय है। इसलिये नीचे लिखे वचनों के द्वारा गुरु जी ने भी तीव्र विरोध किया है।

"निंदा भली किसै की नाहीं मन मुखि मुगध करंनि।
मुहकाले तिन निंदका नरके घोरि पचंनि ॥ गु० ग्र० पृ० ७५५

"जनम जनम की मलु धोवै पराई आपणा कीता पावै।" गु० ग्र० पृ० ३८०

इस भाव का बोधक महा भारत में भी एक श्लोक आता है।

सदसद्वा परिवादो ब्राह्मणस्य न शस्यते।
नरक प्रतिष्ठास्तेस्युर्य एवं कुर्वते जनाः"

सच्ची और झूठी निन्दा करनी श्रेष्ठ पुरुष को शोभा नहीं देती। जो लोग निन्दा करते हैं वे नरक के भागी होते हैं।

नानक नीचु कहै वीचारु

श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि यहां पर रजो गुणी तथा तमोगुणी पुरुषों का विचार किया है। आसुरी प्रकृति वाले मोक्ष मार्ग के अनधिकारी हैं। जिज्ञासु को, आसुरी प्रकृति का त्याग करके दैवी प्रकृति धारण करनी चाहिये। दुर्जनों की संगति परमार्थ में विघ्न डालती है। इसलिए बहिर्मुख लोगों का परित्याग आवश्यक है। इसी बात को समझाने के लिये यहां पर राजस और तामस पुरुषों का विवेचन किया है। आसुरी सम्पत्ति को जब तक जीव नहीं छोड़ता तबतक मोक्ष मार्ग में इसे सफलता नहीं मिलती। यह बात गुरुवाणी के अनेक शब्दों से निश्चित होती है।

यथा—कामु न विसरिओ क्रोधुन विसरिओ लोभु न छूटिओ देवा।
परनिंदा मुख ते नहीं छूटी निफल भई सब सेवा ॥ गु० ग्र० पृ० १२५३

प्रश्न— गुरुदेव ! आप कृपा करके तामस प्रकृति के लोगों को कुमार्ग से हटाने का यत्न करें ? उत्तर में श्री गुरु जी कहते हैं।

वारिआ न जावा एक वार

परमेश्वर विमुख अनधिकारी पुरुषों को समझाने के लिये हम एक बार भी जाने को तैयार नहीं,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्योंकि वे श्रद्धा भक्ति विहीन कठोर हृदय मिथ्यावादी परमेश्वर की चर्चा सुनने के इच्छुक नहीं हैं। ऐसे ही लोगों को ध्यान में रखते हुए कबीर जी ने कहा है।

हरि जसु सुनहि न हरि गुण गावहि। बातन ही असमानु गिरावहि।
ऐसे लोगन सिउ किआ कहिऐ। जो प्रभि किए भक्ति ते बाहज तिन ते सदा डराने रहिऐ ॥ गु० ग्र० पृ० ३३२

भाग्यहीन मनुष्य उत्तम वस्तु को नहीं प्राप्त कर सकता। उसे कितना ही समझाया जाये, जन्मान्तरीय संस्कारों के प्रभाव से श्रेष्ठ मार्ग में उसकी प्रवृत्ति नहीं होती। गुरुदेव जी ने ऐसे लोगों की दशा का सरल एवं सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है।

यथा—मन मुखि कोटी अगिआनु अंधेरा, तिन घरि रतनु न लाखा।
ते उझड़ि भरमि मुऐ गावारी माइआ भुअंग विखु चाखा ॥
गु० ग० पृ० ६६६

जो तुधु भावै साई भलीकार, इत्यादि पाठ का अर्थ पूर्ववत है।

॥ अष्टादशं मन्त्रं समाप्तम् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुरुदेव ! तीन प्रकार की सृष्टि के निर्माता ईश्वर के नाम तथा कारण कितने हैं इसे बताने की कृपा करें ?

मूल—असंख नाव असंख थाव । अगंम अगंम असंख लोअ ।
असंख कहहि सिरि भारु होइ । अखरी नामु अखरी सलाह ।
अखरी गिआनु गीत गुणगाह । अखरी लिखणु बोलणु बाणि ।
अखरा सिरि संजोगु बखाणि । जिनि एहि लिखे तिसु सिरि नाहि ।
जिव फुरमाए तिव तिव पाहि । जेता कीता तेता नाउ ।
विणु नावै नाही को थाउ । कुदरति कवण कहा वीचारु ।
वारिआ न जावा एक वार । जो तुधु भावै साई भलीकार ।
तू सदा सलामति निरंकार । १९ ॥

शब्दार्थ—असंख नाव असंख थाव=सर्व शक्तिमान परमेश्वर के असंख्य ही, नाव= नाम हैं । और असंख्य ही, थाव =स्थान हैं, अगंम अगंम असंख लोअ =कायिक वाचिक मानसिक शक्ति के, अगंम= अगोचर परमेश्वर के, असंख लोअ= अनन्त लोक हैं । जो मनुष्य की पहुंच से, अगंम =परे हैं अथवा अस्मदादि जीवों से, अगंम= परे ब्रह्मादि उन्हों से भी, अगंम परे अकथनीय परमेश्वर, असंख=अनन्त जीवों को सत्ता स्फूर्त्ति देकर, लोअ= प्रकाशित होरहा है असंख कहहि सिरि भारु होइ =अनेक तपस्वी, सिरि भारु होइ =शीर्षासन लगाकर अर्थात् सिर के भार होकर, कहहि =ईश्वर के नामों को कहते हैं । अथवा नास्तिक कहते हैं कि ईश्वर नहीं और आस्तिक कहते हैं कि है । परन्तु श्रद्धा की न्यूनता और विश्वास के अभाव से भक्ति दोनों नहीं करते, इसलिए कृतघ्न होने के कारण दोनों के सिरि= सिर पर, भारुहोइ= भार बोझ होता है।

प्रश्न— तपस्वी लोग शीर्षासन लगाकर जिस परमेश्वर की उपासना करते हैं, उसके नाम को सभी लोग क्यों नहीं जपते ?

समाधान— अखरो नामु अखरी सालाह । अखरी = माथे में लिखे हुए अक्षरों के अनुसार ही जीव परमेश्वर के, नामु =नाम को जपते हैं । अखरी = भाग्य में लिखे हुए अक्षरों के अनुसार ही प्राणी, सालाह = परमेश्वर की स्तुति करते हैं । अखरी गिआनु गीत गुण गाह =- अखरी= माथे पर लिखे हुए अक्षरों के अनुसार ही, गिआन =पारमार्थिक और लौकिक ज्ञान होता है । अक्षरों के लिखे अनुसार ही, गीत गुण गाह = परमेश्वर के गीतों का गायन और गुणों का विचार होता है । अखरी लिखणु बोलणु बाणि=भाग्य में लिखे हुए अक्षरों के अनुसार ही सुन्दर लिखना, और वाणी के द्वारा मधुर बोलना प्राणियों में देखा जाता है ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न— वे अक्षर कौन हैं ?

उत्तर— अखरा सिरि संजोगु वखाणि।

अखरा=जिन अक्षरों का, सिरि=शिर पर कर्मों के अनुसार, संजोग=सयोग, वखाणि= कथन किया है वही अक्षर हैं। अथवा, अखरा सिरि=माथे पर लिखे हुए अक्षरों के अनुसार ही, संजोग=पदार्थों का संयोग और वियोग, वखाणि=शास्त्रकारों ने कथन किया है।

प्रश्न— जिस विधाता ने प्राणियों के माथे पर अक्षर लिखे हैं, उसके शिर भी कर्म रेखा होगी ?

समाधान— जिन एहि लिखे तिसु सिरि नाहि।

जिनि=जिस विधाता ने, एहि लिखे=ये भाग्य रूप अक्षर लिखे हैं, तिसु सिरि=उस विधाता के शिर पर नियन्ता नाहि=स्वामी अकाल पुरुष परमेश्वर है। अथवा जिस अकाल पुरुष परमात्मा ने प्राणियों के भाग्य रूप अक्षर लिखे हैं, उसके शिर पर भाग्य रूप अक्षर नहीं, इसलिये वह स्वतन्त्र है। और चींटी से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त सभी जीव अकाल पुरुष परमात्मा के अधीन हैं।

जिव फुरमाए तिव तिव पाहि।

जिव=जिस प्रकार परमेश्वर, फुरमाए=आज्ञा करता है, तिव तिव=उस प्रकार जीवों के माथे पर पाहि=भाग्य रूप अक्षर पड़ते हैं। अथवा जैसी आज्ञा विधाता को परमेश्वर देता है वैसे वैसे भाग्य रूप अक्षर विधाता प्राणियों के माथे पर लिख देता है।

जेता कीता तेता नाउ।

जेता=सात्त्विक, राजस, तामस जितना संसार परमात्माने, कीता=उत्पन्न किया है। तेता= वह सब, नाउ=नाम रूपात्मक है। विणुनावै=नाम रूप के बिना, नाही को थाउ=कोई भी स्थान नहीं। अथवा किसी भी जीव ने, जेता=जो कुछ उत्तम पद कीता=प्राप्त किया है। तेता= वह सब कुछ ईश्वर के नाउ=नाम से प्राप्त किया है। विणुनावै=भगवद् नाम के बिना किसी भी जीव को; नाही को थाउ=कोई भी सुख का स्थान नहीं। अर्थात् ईश्वर नाम के बिना सभी जीव अनेक योनियों में घटी यन्त्र के समान भ्रमण करते हैं। किसी भी सुख के स्थान में उन्हें विश्रान्ति नहीं मिलती

कुदरति कवण कहा वीचारु।

मेरे में क्या बल है जो परमेश्वर की, कवण=कौन कौन, कुदरति=सृजन पालनादि शक्ति का वीचारु=विचार करके, कहा=कथन करूं अर्थात् अनन्त शक्तिमान् ईश्वर की अनन्त शक्तियों का निरूपण करना मेरी शक्ति से बाहर है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"वारिआ न जावा एक वार।

एक वार=परमेश्वर के एक एक रोम का, वारिआ न जावा=वर्णन नहीं हो सकता। क्योंकि उसके एक एक रोम में अनन्त ब्रह्माण्ड समाए हुए हैं। अथवा परमेश्वर के ऊपर मैं एक वार न्योछावर नहीं होता, किन्तु आश्चर्य चकित करने वाली विचित्र मनोहर रचना को देख कर अनन्त वार न्योछावर होता हूं।

जो तुधु भावै साई भली कार। तू सदा सलामति निरंकार॥

निरंकार=हे द्वन्द्वातीत निराकार परमेश्वर! तू सदा सलामति=सर्वदा स्थिर रहने वाले आप अविनाशी हैं। जो तुधु भावै=जो आपको अच्छा लगता है, साई भलीकार=वही कार्य सर्वोत्तम है।

भावार्थ— सिद्धों के पूछने पर श्री गुरुदेव जी शक्तिशाली सृष्टि निर्माता ईश्वर के नाम तथा स्थान को बतलाते हैं। सर्व शक्तिमान ईश्वर के नाम और स्थान असंख्य हैं। वाङ्मनसा अगोचर परमेश्वर के अनन्त लोक हैं, जिन्हें जानना मनुष्य की शक्ति से परे है। वह अकथनीय परमेश्वर सभी जीवों को सत्ता स्फुर्ति देकर सर्वत्र प्रकाशित हो रहा है। ईश्वर की प्रसन्नता के लिये अनेक तपस्वी लोग शीर्षासन लगा कर ईश्वर के नामों का उच्चारण करते हैं। माथे में लिखे हुये भाग्य के अनुसार ही जीव परमेश्वर के नाम को जपते हैं। भाग्य में लिखे हुये अक्षरों के अनुसार ही प्राणी परमेश्वर की स्तुति करते हैं। भाग्य के अनुसार ही जीव को लौकिक पारमार्थिक ज्ञान प्राप्त होता है। परमेश्वर के गीतों का गायन और उसके गुणों का विचार भी जीवों को भाग्य के अनुसार प्राप्त होता है। भाग्य में लिखे हुए अक्षरों के अनुसार प्राणियों को सुन्दर लिखना और मधुर बोलना प्राप्त होता है। जिस विधाता ने जीवों के माथे में भाग्य रूप अक्षर लिखे हैं, उस विधाता के शिर पर परम पिता परमात्मा नियन्ता निरीक्षक है। चींटी से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त सभी जीव उस परमात्मा के अधीन हैं। जैसी जैसी आज्ञा विधाता को परमेश्वर देता है, वैसे वैसे भाग्य रूप अक्षर प्राणियों के माथे पर विधाता लिख देता है।

सात्त्विक राजस तामस जितनी सृष्टि परमेश्वर ने उत्पन्न की है वह सभी नाम रूपात्मक है। नाम रूप के बिना कोई भी स्थान रिक्त नहीं, किसी भी जीव ने जो कुछ उत्तम पद प्राप्त किया है वह ईश्वर के नाम से ही प्राप्त हुआ है। ईश्वर नाम के बिना सभी जीव अनेक योनियों में बारम्बार भ्रमण करते हैं। उन्हें कहीं भी सुख शान्ति प्राप्त नहीं होती। मुझ में क्या शक्ति है जो परमेश्वर की पालन संहारादि विविध शक्तियों का वर्णन करूं। परमेश्वर के एक एक रोम का वर्णन करना मेरी शक्ति से बाहर की बात है। हे द्वन्द्वातीत परमेश्वर! आप अविनाशी स्वयम्भू हैं। जो आपको प्रिय और सुन्दर प्रतीत होता है वही कार्य सर्वोत्तम है।

पूर्व में देव और असुर स्वभाव वाले लोगों का निरूपण किया है। अब आगे नाम और स्थान को भी अगणित प्रतिपादन करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

असंख नाव असंख थाव

विशेष व्याख्या—नावपद नाम का तथा थावपद स्थान का वाचक है।

अर्थ इस प्रकार है—अपने अपने कर्मों के अनुसार सात्त्विक प्रकृति वाले लोगों के, जपी, पुण्यात्मा सत्पुरुष, इत्यादि नाम तथा राजस, तामस प्रकृति वाले लोगों के निन्दक, हिंसक, पापात्मा, इत्यादि असंख्य नाम हैं, तथा उनके रहने के स्थान भी अनन्त हैं।

अगंम अगंम असंख लोअ=गमन के अयोग्य वस्तु का नाम अगंम है। गम धातु के ज्ञान-गमन-प्राप्ति ये तीन अर्थ हैं, यहां पर प्राप्ति अर्थ ग्रहण करना चाहिये। प्राप्ति के अयोग्य का नाम अगंम है।

लोअ शब्द विषय तथा लोक का बोधक है। विहित और निषिद्ध भेद से विषय दो प्रकार का है, विहित विषय असुर प्रकृति वालों को अप्राप्य है। और निषिद्ध विषय दैवी प्रकृति वालों को अप्राप्य है। असंख्य विहित निषिद्ध विषयों में विहित विषय राजस और तामस पुरुषों को, और निषिद्ध विषय सात्त्विक पुरुषों को प्राप्ति के अयोग्य हैं।

भाव यह है—पुरुषों की चेष्टा जैसे गुण और कर्मों के अधीन होती है, वैसे विहित और निषिद्ध विषयों की प्राप्ति भी उनको कर्मों के अनुसार ही होती है। इसलिये असुरों को विहित और देवों को निषिद्ध विषयों की प्राप्ति अगम्य है। लोअ पद को प्रसिद्ध स्वर्गादिलोक का वाचक मानकर—

अर्थ इस प्रकार है, स्वर्गादि लोक अनन्त हैं, उनमें दुःखदाई नरक सात्त्विक प्रकृति वाले पुरुषों को प्राप्त होने के योग्य नहीं और सुखदाई स्वर्ग आसुरी प्रकृति वाले लोगों को दुर्लभ है।

प्रश्न— गुरुदेव! गुरुवाणी तथा पुराणों में चतुर्दश भुवनों का उल्लेख है। यहां पर आपने अनन्त लोकों का निरूपण किया है। अगणित कहने से पूर्वोत्तर शब्दों का परस्पर विरोध होगा। इसके उत्तर में गुरुजी कहते हैं।

"अखरी नामु अखरी सालाह"- अखरी=वेद, सलाह=स्तुति का वाचक है। अखर नाम परमात्मा का है। अविनाशी परमात्मा को बोधन करने से अखरी नाम वेद का है वह वेद नाम स्थान लोकादि को असंख्य कहता है। इसलिये शब्दों का विरोध रूप भार सिर पर नहीं है। तात्पर्य यह है कि जैसे अग्नि से अनेक चिन्गारियां और समुद्र से अनन्त वीचि तरङ्ग उत्पन्न होते हैं। वैसे अविनाशी परमात्मा से अनेक भाव पदार्थ उत्पन्न होते हैं इस बात को श्रुति भगवती ने प्रतिपादन किया है। 'यथा सुदीप्तात् पावकाद् विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः।
तथाक्षराद् विविधाः सौम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति"

गुरुवाणी तथा पुराणों में चतुर्दश भुवनों का निरूपण केवल एक ब्रह्माण्ड के तात्पर्य से है। वास्तव में गुरुवाणी योग वशिष्ठ, विष्णु पुराण आदि अनेक ब्रह्माण्डों का निरूपण करते हैं।

कोटि ब्रह्मण्ड को ठाकुरु सुआमी सरव जीआं का दाता रे। गु०ग्र०पृ०६१२

कोटि ब्रह्माण्ड जाके धरमसाल ॥ गु० ग्र० पृ० ११५६

विष्णु पुराण में ऐसा ही विचार प्रकट किया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अण्डानांतु सहस्राणां, सहस्राण्ययुतानि च।
ईदृशानां तथा तत्र कोटि कोटि शतानि च"

भाव यह है-परमेश्वर की शक्ति में हजारों ब्रह्माण्ड हैं और हजारों में दस दस हजार हैं उनमें भी कोटि कोटि प्रकार के ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं। वेद में केवल असंख्य लोकों का ही निरूपण नहीं किन्तु,

"अखरी सालाह" अर्थात् गुरुवाणी में जैसे 'सहस तव नैन नन नैन हहि तोहि कउ' इत्यादि शब्दों से परमात्मा की स्तुति की है। वैसे वेद में भी वह पुरुष सहस्रों शिरों वाला तथा सहस्र नेत्रों वाला इत्यादि पुरुष सूक्त के द्वारा ईश्वर की स्तुति की है। केवल स्तुति ही नहीं की किन्तु ज्ञान और उसके साधन को भी कहा है।

"अखरी गिआनु गीत गुण गाह"—अखिरी= वेद 'गिआन= आत्मज्ञान गीत गायन, 'गुण =साधन गाह =स्थान, वेद में जीव ईश्वर की एकता का ज्ञान 'तत्त्वमसि' इत्यादि वचनों द्वारा गायन किया है। और ज्ञान के साधन और जीवन मुक्ति के साधनों का स्थान मुमुक्षु एवं जीवन मुक्त का भी निरूपण किया है। 'अधिक और क्या कहें सभी कुछ वेद में कथन किया है। आगे इसी भाव से गुरुजी कहते हैं।

'अखरी लिखणु बोलणु बाणि'

देवता और मनुष्य जिस किसी वाणी को बोलते और लिखते हैं उसे वेद से प्रमाणित करते हैं, किसी अन्य प्रमाण से नहीं सिद्ध करते।

"अखरा सिर संजोगु वखाणि"

अखरा =सम्पूर्ण अक्षरों का, सिर= शिरोमणि, संजोग =वाच्य वाचक भाव सम्बन्ध" अक्षरों के शिरोमणि ओम् रूप--अक्षर का ईश्वर के साथ वाच्य वाचक अथवा बोध्य बोधक भाव सम्बन्ध भी बेद में प्रति पादन किया है।

प्रश्न— ओम् को अक्षरों का शिरोमणि प्रतिपादन किया है। और अक्षर नाम ब्रह्म का भी है इसलिए ओम् को ब्रह्म का भी शिरोमणि होना चाहिये ? इसके उत्तर में कहते हैं कि—

"जिनि एहि लिखे तिसु सिरि नाहि"

जिनि= जिस, एहि= इस जगत् में, तिसु उसका, सिरि नाहि=शिरोमणि नहीं, अर्थ यह है। जिस परमात्मा ने इस जगत् में हिरण्यगर्भ के द्वारा वेदों को प्रकट करने के लिये ये अक्षर लिखे हैं। उस परमेश्वर का यह ओम् रूप अक्षर शिरोमणि नहीं बन सकता। क्योंकि निखिल वेदों के समान यह भी उसी का कार्य है।

प्रश्न— निखिल जगत् के कारण परमेश्वर की प्राप्ति कैसे होती है ? इसके उत्तर में कहते हैं।

"जिव फुरमाए तिव तिव पाहि"

जिव = जिस प्रकार, फुरमाए= आज्ञा तिव तिव= उस प्रकार, पाहि= प्राप्त, भाव यह है

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कि वेद में जिस प्रकार परमेश्वर ने अधिकारियों को ज्ञान एवं मुक्ति के साधनों की आज्ञा दी है। उसी प्रकार से जिज्ञासु ईश्वर को प्राप्त करते हैं।

'जेता कीता तेता नाउ'—जेता जितना कीता=किया हुआ। तेता=वह सम्पूर्ण, नाउ= नाम मात्र है भाव यह है ब्रह्मरूप अधिष्ठान में अज्ञान रचित जितना जगत् है, वह समग्र नाम मात्र है। अर्थात् जैसे शुक्ति में रजत रज्जुमें सर्प और मृत्तिका में घट आदि नाम मात्र हैं। वैसे ही ब्रह्म में अज्ञान कृत यावत्कार्य नाम मात्र हैं अधिष्ठान के अतिरिक्त कल्पित जगत् की अपनी कोई सत्ता नहीं। इसलिये सम्पूर्ण संसार नाम मात्र है। कल्पित कार्यों की अधिष्ठान में नाम मात्र की सत्ता बताकर नाम से अन्य सत्ता का अभाव प्रतिपादन करते हैं।

"विणु नावै नाही को थाउ"—विणु नावै=नाम मात्र से विना अधिष्ठान में— 'नाही को थाउ=कोई भी आरोपित वस्तु नहीं है। अर्थात् सर्वाधिष्ठान जिस परमेश्वर में कोई कल्पित वस्तु नहीं वही तेरा परमार्थ स्वरूपहै। इस भावको गुरुदेवजी ने अन्य शब्दों में भी व्यक्त किया है।

"मन तूं जोति सरूपु है अपणा मूलु पछाणु"—गु०रु०ग्र०४४१

"जलते तरंग तरंग ते है जलु कहन सुनन कउ दूजा" गु० ग्र० पृ०१२५२

पूर्वार्द्ध समाप्तम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उत्तरार्ध

गुरुदेव ! मन को पापों की मैल लगी है इसे शुद्ध करने का उपाय बतायें ?

मूल— भरीऐ हथु पैरु तनु देह। पाणी धोतै उतरसु खेह॥
मूत पलीती कपड़ु होइ। दे साबूणु लईऐ ओहु धोइ॥
भरीऐ मति पापा कै संगि। ओहु धोपै नावै कै रंगि॥
पुंनी पापी आखणु नाहि। करि करि करणा लिखि लै जाहु॥
आपे बीजि आपे ही खाहु। नानक हुकमी आवहु जाहु॥

शरीर शुद्धि में प्रथम दृष्टान्त—

शब्दार्थ— भरीऐ हथुपैरु तनु देह। पाणी धोतै उतरसु खेह।

हथुपैरु=हाथ और पैर के, तनु=सहित, देह=शरीर धूली से जब, भरीऐ=भर जाता है अर्थात् धूली से लथपथ हो जाता है। तब पाणी धोतै=जल द्वारा धोने से उतरसु खेह=धूली उतर जाती है अर्थात् शरीर शुद्ध हो जाता है।

द्वितीय दृष्टान्त--

मूत पलीती कपड़ु होइ। दे साबुणु लईऐ ओहु धोइ॥

जैसे मल मूत्र से कपड़ु=वस्त्र पलीती होइ=अपवित्र हो जाते हैं, तब दे साबूणु= साबुन लगा कर ओहु=वह वस्त्र लईऐ धोइ=धो लिया जाता है। अर्थात् शुद्ध हो जाता है।

स्थूल से स्थूल की निवृत्ति बता कर अब दार्ष्टान्त में ईश्वर के सूक्ष्म नाम से बुद्धि के सूक्ष्म पापों की निवृत्ति बतलाते हैं।

भरीऐ मति पापा कै संगि। ओहु धोपै नावै कै रंगि।

वैसे ही जब मति पापा कै संगि=पापों के साथ भरीऐ=भर जाती है अर्थात् निषिद्ध कर्मों के करने से उत्पन्न हुए पाप रूपी मल से जब बुद्धि मलिन हो जाती है तब ओहु=वह मलिन बुद्धि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नावै कै रंगि = नाम के प्रेम से धोपै = धोई जाती है (पवित्र हो जाती है) अर्थात् ईश्वर के नाम को प्रेम पूर्वक बारम्बार उच्चारण करने से उत्पन्न हुए पुण्य रूप निर्मल जल से कलुषित बुद्धि पवित्र हो जाती है।

प्रश्न— नाम के जपने से कोई पवित्र भी हुआ है ?

समाधान— पुंनी पापी आखणु नाहि

नाम केजपने से, पापी = दुराचरण करने वाले कितने, पुनी = पुण्यात्मा हुये हैं, इस बात को आखणु नाहि = कह नहीं सकते क्योंकि कल्प भेद से असंख्य पापी पुण्यात्मा हुए हैं, इसलिये उनकी गणना करनी कठिन है। अथवा अपने पुण्य की वृद्धि के लिये नाम जपने वाले, पुंनी = पुण्यात्मा तथा पाप की निवृत्ति के लिये नाम जपने वाला, पापी = दुरात्मा संसार में कितने हैं इस बात को, आखणु नाहि = हम कह नहीं सकते अथवा धर्मात्मा और पापात्मा ये दोनों ही अपने अपने मनोरथों की पूर्ति के लिये नाहि = जगत्पति परमेश्वर को, आखणु = कहते हैं, अर्थात् उसके नाम को जपते हैं अथवा पुण्यी और पापी किसी के कहने मात्र से नहीं होते किन्तु ये जीव अपने हाथों से किए कर्मों को संस्कार रूप से लिख कर स्वयं साथ ले जाते हैं।

अथवा—करि करि करणा लिखि लैजाहु।

ये जीव, करि = हाथों द्वारा जिन जिन, करणा = कर्त्तव्यों को, करि = करते हैं उन सभी कर्त्तव्यों को चित्र गुप्त, लिख = लिख करके, लै जाहु = ले जाते हैं।

आपे बीजि आपे ही खाहु।

आपे = आप ही जीव कर्मों को बीजि = बीजता है अर्थात् करता है। तथा आपे ही = स्वयं कर्मों के फल सुख और दुःखों को खाहु = भोगता है।

नानक हुकमी आवहु जाहु।

श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि ये जीव, हुकमी = ईश्वर की आज्ञा के अनुसार, आवहु जाहु = शुभाशुभ कर्मों से अनेक योनियों में आते जाते हैं।

भावार्थ— मन एव मनुष्यानां कारणं बन्ध मोक्षयोः इस सूक्ति के अनुसार अशुद्ध मन बन्धन का कारण और शुद्ध मन मुक्ति का हेतु है। परन्तु अति मलिन एवम् दूषित संस्कारों से घिरा हुआ मन शुद्ध कैसे हो सकता है ?

सिद्ध मण्डली के प्रश्न को सुन कर उत्तर में श्री गुरुदेव जी लोक प्रसिद्ध दृष्टान्तों के द्वारा मन की शुद्धिका सरल साधन बतलाते हैं। जब हस्त पादादि अवयवों के सहित शरीर कीचड़ और धूलीसे विकृत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अशुद्ध तथा लथपथ हो जाता है, तब जल के द्वारा धोने से स्वच्छ एवम् शुद्ध परिष्कृत हो जाता है। एवं मूत्रादि अशुद्ध पदार्थों से जब वस्त्र अशुद्ध तथा दूषित हो जाते हैं, तब साबुन के द्वारा धोने से स्वच्छ एवम शुद्ध और पहरने योग्य हो जाते हैं। ऐसे ही निषिद्ध कर्मों के आचरण से उत्पन्न हुए पापों के द्वारा जब हमारी बुद्धि मलिन एवम दूषित हो जाती है, तब वह दूषित बुद्धि परमेश्वर के नाम को प्रेम पूर्वक बारम्बार उच्चारण करने से उत्पन्न हुये पुण्य रूप निर्मल जल से शुद्ध तथा उज्ज्वल हो जाती है। इस बात को सुन कर सिद्धों ने पूछा क्या ईश्वर के नाम को जपने से कोई व्यक्ति पवित्र भी हुआ है?

उत्तर में श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं कि परमात्मा के नाम को जपने से वाल्मीकि के समान चोरी डकैती करने वाले कितने दुराचारी पुरुषपुण्यात्मा सदाचारी बन गये हैं जिनकी गणना नहीं की जा सकती। क्योंकि पूर्व काल में युग और कल्प भेद से असंख्य पापी पुरुष भी शुद्धात्मा तथा पवित्र जीवी हुए हैं उनकी गणाना करना अत्यन्त कठिन है। कोई भी पुरुष किसी के कहने मात्र से धर्मात्मा और पापी नहीं हो सकता। किन्तु यह जीव अपने हाथों से किये कर्मों को संस्कार रूप से लिख कर परलोक में स्वयं साथ ले जाते हैं। किये कर्मों के संस्कारों के आधार पर ही पापी और पुण्यी सुख तथा दुःख को को भोगते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि ये जीव अपने हाथों से शुभाशुभ जिन कर्मों को करते हैं, फल देने के लिये सभी कर्मों को चित्र गुप्त लिख कर ले जाते हैं। यह जीव सोच विचार करके शुभाशुभ कर्मों को करता है। और आप ही किये कर्मों का फल सुख दुःख को भोगता है। श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं कि ये जीव अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार ईश्वर की आज्ञा से अनेक योनियों में निरन्तर आता और जाता है।

पूर्वार्ध में पूजनीय श्री गुरुदेव ने 'सोचै सोचि न होवई' इत्यादि पाठ से भक्ति सहित वैराग्यादि साधनों का और 'गावीऐ सुणीऐ' इत्यादि पाठ से श्रवण मननादि का निर्णय किया है। एवं सुणिऐ सिद्ध पीर सुरि नाथ तथा मंने की गति कहि न जाइ इत्यादि पाठ से जिज्ञासु को प्रवृत्त करने के लिये श्रवण, मनन की प्रशंसा की है। पंच परवाण, इत्यादि पाठ से निदिध्यासन का विषय, स्वरूप, हेतु, अधिकारी संक्षेप से बता कर उत्तम अधिकारी को जीव ईश्वर की एकता का उपदेश दिया है। 'असंख जप' इत्यादि पाठ से दैवी सम्पत्ति वाले मोक्ष मार्ग के अधिकारी उत्तम पुरुषों का निर्णय करके असंख मूरख अंध घोर' इत्यादि पाठ से मुक्ति मार्ग के अनधिकारी राजसी तामसी प्रकृति वाले पुरुषों का निरूपण किया है।

असंख नाव असंख थाव=इत्यादि पाठ से सात्त्विक, राजस और तामस पुरुषों को स्व स्व कर्मों के अनुसार प्राप्त होने वाले नाम और स्थान का निरूपण करके अद्वैत सिद्धि के लिये सम्पूर्ण प्रपञ्च की नाम मात्र सत्ता बता कर जीव ईश्वर की एकता का प्रतिपादन किया है। अब परम कारुणिक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्री गुरुदेव जी मन्दमति लोगों की दीन हीन दशा को देख कर उनकी शक्ति के अनुसार जिनके हृदय में किसी उत्तम संस्कार के प्रभाव से परमेश्वर को जानने की इच्छा उत्पन्न हुई है। परन्तु मन्द मति होने के कारण जीव ईश्वर के स्वरूप का निर्णय करन में असमर्थ हैं उन्हें उत्तरार्ध में लोक प्रसिद्ध दृष्टान्तों द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि का सरल उपाय बताते हैं।

भरीऐ हथु पैरु तनु देह। पाणी धोतै उतरसु खेह ॥

यहां पर हाथ पैर शब्द शिरादि अवयवों का परिचायक है। देह शब्द यहाँ पर ग्रीवासे लेकर मूल द्वार पर्यन्त का बोधक है। तन शब्द सम्पूर्ण शरीर का वाचक है। अर्थ इस प्रकार है। स्थूल शरीर में हस्त पाद शिरादि अवयव और ग्रीवा एवं वक्षस्थल नाभि मूल द्वार आदि मध्य भाग जब कीचड़ एवं धूली से लथपथ हो जाते हैं। तव जल से धो देने पर शुद्ध हो जाते हैं। अब दूसरा दृष्टान्त देते हैं।

मूत पलीती कापड़ु होइ। दे साबुणु लईऐ ओहु धोइ ॥

जब मूत्रादि अशुद्ध पदार्थों से वस्त्र अपवित्र हो जाते हैं तब साबुन आदि क्षार पदार्थों को लगा कर वस्त्र धो डालते हैं। तभी हम उन वस्त्रों को पुनः शरीर पर धारण करने के योग्य समझते हैं। लोक प्रसिद्ध स्थूल दृष्टान्तों को दिखा कर अब दार्ष्टान्त में परमेश्वर के नाम से मति के अति सूक्ष्म पापों की निवृत्ति वतलाते हैं।

भरीऐ मति पापा कै संगि। ओहु धोपै नावै कै रंगि ॥

भाव यह है कि जव इस जीव की मति अनेक पापों से मलिन हो जाती है तब परमेश्वर के नाम में प्रेम करने से अशुद्ध बुद्धि पवित्र हो जाती है। गुरु वाणी एवं अन्य गीता आदि धार्मिक ग्रन्थों का पाठ करने एवं श्रवण करने से ईश्वर के नाम में प्रीति उत्पन्न हो जाती है। और जन्म मरणादि महा दुःखों की निवृत्ति हो जाती है। श्री गुरु अर्जुन देव जी महाराज ने सुखमनी साहब में इसी भाव को व्यक्त किया है।

जिसु मनि वसै सुनै लाइ प्रीति। तिसु तन आवै हरि प्रभु चीति ॥
जनम मरन ता का दूःखु निवारै। दुलभ देह ततकाल उधारै ॥

गु० ग्र० पृ० २९६

प्रश्न— शुद्ध बुद्धि के सम्पादन से क्या होता है? ऐसी आशङ्का के उत्तर में कहते हैं।

पुंनी पापी आखणु नाहि।

ईश्वर के नाम का अभ्यास करने से जब मनुष्य की मति अति पवित्र हो जाती है तब उसे पुण्यात्मा वा पापात्मा अथवा पुण्यी पापी उभय नाम वाला नहीं कहा जाता है। किन्तु कृतकृत्य हो जात

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। तात्पर्य यह है कि योगीराज पातञ्जलि मुनि ने मनुष्यों के कर्म शुक्ल, कृष्ण, शुक्लकृष्ण, भेद से तीन प्रकार से कथन किये हैं। और योगी के कर्म तीनों कर्मों से विलक्षण अशुक्ला कृष्ण नाम से कहे हैं। इसलिये योगी पुण्य कर्म तथा पाप कर्म एवं उभयात्मक कर्म वाला न होने से पुण्यी, और पापी एवं उभय नाम वाला नहीं होता, किन्तु जीव ईश्वर की एकता को विषय करने वाली चित्त वृत्ति वाला होने से कृतार्थ हो जाता है। इसलिये तीन प्रकार के कर्मों से विलक्षण ईश्वर की प्रसन्नता के हेतु शुभ कर्मों से पाप नष्ट होकर बुद्धि की शुद्धि होती है। और शुद्ध मति से गुरु उपदेश के द्वारा अद्वितीय सत्य का ज्ञान होकर अधिकारी सफल मनोरथ हो जाता है।

अब आगे तीन प्रकार के कर्मों वाले जीवों को सर्वदा संसार की प्राप्ति और पुण्यी पापी आदि नाम तथा तीन प्रकार के कर्मों से स्वर्ग नरक मृत्यु लोक त्रिविध फल की प्राप्ति होती है। इस बात को मन्त्र की समाप्ति तक बतलायेंगे।

"करि करि करणा लिखि लै जाहु"

अन्तःकरण की शुद्धि से रहित जो मनुष्य पुण्य पाप मिश्रित कर्मों को वारम्वार करके कर्मजन्य धर्माधर्म संस्कारों को मन रूप कागद पर लिख कर उन्हों का फल भोगने के लिये परलोक में जाते हैं।

भाव यह है कि जो पुरुष बुद्धि को शुद्ध करने वाले निष्काम कर्मों से रहित हैं और पुण्य पाप मिश्रित कर्मों को करते हैं। वे पुनः पुनः तीन प्रकार के कर्मों को करके उनसे उत्पन्न होने वाले धर्मांधर्म और उभय रूप सुख दुःख और मिश्रित फलों के हेतु संस्कारों को मन रूप कागद पर लिख कर उनका फल भोगने के लिये परलोक में ले जाते हैं।

प्रश्न— परलोक में जाकर अपने अपने कर्मों का फल भोगते हैं? वा दूसरे के किये हुए कर्मों का भी फल भोगते हैं?

यह सुन कर श्री गुरुदेव जी उत्तर कहते हैं आप बीजि आपे ही खाहु। अपने कर्म के फल में यह जीव आप ही कारण है।

इसलिये आप ही उन कर्मों के सुख दुःखादि फल को भोगता है। दूसरे द्वारा किये कर्मों का कारण न होने से उस कर्म फल का भोक्ता नहीं हो सकता। इस भाव को गुरु जी ने अन्य शब्दों में प्रतिपादन किया है।

"जो मै कीआ सो मै पाइआ दोसु न दीजै अवर जना। गु० प्र० पृ० ४३३

करम धरती सरीरु जुग अंतरि जो बोवै सो खाति॥ गु० प्र० पृ० ७८

प्रश्न— संसार में आने और जाने तथा कर्म करने और फल भोगने में यह जीव स्वतन्त्र है?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वा ईश्वर के अधीन है ? इसके उत्तर में श्री गुरुदेव जी कहते हैं।

"नानक हुकमी आवहु जाहु"

श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि सम्पूर्ण कर्मों को कराने वाले तथा कर्म फल देने वाले ईश्वर के अधीन यह जीव परलोक से इस लोक में और इस लोक से परलोक में आता जाता है। जैसे यह जीव आने और जाने में स्वतन्त्र नहीं, वैसे कर्म करने और कर्म फल भोगने में भी स्वतन्त्र नहीं, किन्तु ईश्वराधीन है। इसी भाव को श्री गुरुदेव जी अनेक शब्दों में प्रतिपादन करते हैं।

'जिउ तू चलाइहि तिव चलहि सुआमी होरु किआ जाणा गुण तेरे ॥

गु० ग्र० पृ० ६१६

॥ विंशतितमं मन्त्रं समाप्तम् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अब तीर्थादि सकाम कर्मों का फल निरूपण करते हैं।

मूल-- तीरथु तपु दइआ। दत्तु दानु । जे को पावै तिलका मानु ॥
सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाउ । अंतर गति तीरथि मलि नाउ ॥
सभि गुण तेरे मै नाही कोइ । विणु गुण कीते भगति न होइ ॥
सुअसति आथि बाणी बरमाउ । सति सुहाणु सदा मनि चाउ ॥
कवणु सुवेला बखतु कवणु कवण थिति कवणु वारु ॥
कवणि सि रुति माहु कवणु जितु होआ आकारु
वेलन पाईआ पंडती जि होवै लेखु पुराणु।
वखतु न पाइओ कादीआ जि लिखनि लेखु कुराणु।
थिति वारु न जोगो जाणै रुति माहु न कोई॥
जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई।
किवकरि आखा किव सालाही किउ वरनी किव जाणा॥
नानक आखणि सभु को आखै इकदू इकु सिआणा ।
वडा साहिबु वडी नाई कीता जाका होवै।
नानक जे को आपौ जाणै अगै गइआ न सोहै ॥२१॥

तीरथु तपु दइआ दत्तु दानु । जे को पावै तिलक मानु ॥ तीरथु=तीर्थ यात्रा, तपु=वाचिक मानसिक तपश्चर्या, दइआ=दुखियों के दुःख को दूर करने की इच्छा दतु दानु=यज्ञ वेदि में बैठकर दान देना इत्यादि शुभकर्मों को जे को=जो कोई सकामी पुरुष करता है तिलका=तिल भर क्षण भङ्गर मानु=सम्मान, पावै=प्राप्त करता है। अर्थात् तीर्थादि सकाम कर्म करने से लौकिक पारलौकिक पदार्थों की प्राप्ति एवम् मान प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं।

सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाउ। अंतर गति तीरथि मलि नाउ ॥

जो कोई निष्काम मनुष्य ईश्वर नाम का सुणिआ=श्रवण= मंनिआ=मनन मनि कीता निदिध्यासन करता है उस निष्काम कर्म योगी को भाउ =तत्त्वज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञान प्राप्ति के वाद अपने अंतर =हृदय में गति=प्राप्त आत्मानन्द रूप तीरथि=तीर्थ में मलिनाउ=मलकर स्नान करता है। अर्थात् आत्मानन्द में निमग्न रहता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न—मनन निदिध्यासन के अतिरिक्त भगवत् प्राप्ति का कोई अन्य सरल मार्ग भी है ?

समाधान— सभि गुण तेरे मै नाही कोइ। विणु गुण कीते भगति न होइ।

हे अकाल पुरुष परमेश्वर ! सभि गुण तेरे =दया दाक्षिण्य वात्सल्यादि सभी श्रेष्ठ गुण आप में हैं। मै नाही कोइ=मेरे में कोई दैवीगुण नहीं। विणु गुण कीते =नम्रता सहन शीलतादि श्रेष्ठ गुणों को धारण किए बिना, भगति न होइ= भक्ति (भगवत् पूजन सेवनादि) नहीं हो सकता। इस प्रकार ईश्वर प्राप्ति के लिये सनम्र प्रार्थना करें यहीं सरल उपाय है।

प्रश्न—क्या जगत् की उत्पत्ति सगुण से होती है ? वा निर्गुण से ?

समाधान—सुअसति आथिबाणी बरमाउ। सति सुहाणु सदा मनि चाउ।

सुअसति=कल्याण स्वरूप माया विशिष्ट जो ईश्वर, आथि= हैं उससे वाणी, एकोऽहं बहुस्याम्- यह संकल्परूप वाणी उत्पन्न हुई और वाणी से बरमाउ =ब्रह्मा विष्णु महेशादि देव, दानव, मानवादि सभी प्रकार की सृष्टि उत्पन्न हुई।

अथवा—सुअसति= कल्याण स्वरूप परमात्मा जब आथि= माया विशिष्ट हुआ उससे वाणी= एकोऽहंबहुस्याम् =यह सङ्कल्पात्मक वाणी हुई उससे, बरमाउ =ब्रह्मा, विष्णु,महेशादि सभी प्रकार की भूत भौतिक सृष्टि उत्पन्न हुई।

जगत् स्रष्टा होते हुये भी परमेश्वर, सति =सर्वदा आत्मस्वरूप है। सुहाणु —चित् रूप है तथा सदा—सर्वदा, मनिचाउ =मनमें प्रिय प्रतीत लगने वाला अर्थात् आनन्द स्वरूप है।

प्रश्न—कवणु सुवेला वखतु कवणु कवण थिति कवणु वारु।
कवण सिरुति माहु कवणु जितु होआ आकारु ॥

जितु =जिस समय यह, आकारु—प्रपञ्च होआ उत्पन्न हुआ तब, कवणु सुवेला =कौनसा समय था ? वखतु कवणु—क्या वक्त था ? कवण थिति=अमावस्या पूर्णिमा इत्यादि कौनसी पवित्र तिथि थी ? कवणुवारु—रविवार, वृहस्पतिवार आदि कौन दिन था ? कवण सि रुति—वसन्त, ग्रीष्मादि कौन ऋतु था ? माहु कवणु—चैत्र वैशाख आदि कौनसा महीना था ?

समाधान—वेल न पाईआ पंडती जि होवै लेखु पुराणु।
वखत न पाइओ कादीआ जि लिखनि लेखु कुराणु।

सृष्टि की उत्पत्ति के वेल=समय को, पंडती=व्यासादि विद्वानों ने, न पाईआ—नहीं जाना, जि—यदि जानते तो, होवै लेखु पुराणु—पुराणों में लिखा होता, कादीआ—मुहम्मद आदि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पैगम्बरों ने, बखतुन पाइआ समय को नहीं जाना। जि-यदि जानते तो, लिखनि लेखु कुराणु-कुरान में लेखनी से लिखा होता।

तथा—थिति वारु न जोगी जाणै रुति माहु न कोई।
जा करता सिरठि कउ साजे आपे जाणै सोई॥ जोगी

योगी भी, थिति=प्रतिपदा द्वितीया तृतीयादि तिथि और वारु--सोम मंगल आदि वार, रुति--शिशिर हिमकर आदि ऋतु, माहु--माघ चैत्रादि मास न जाणै--नहीं जानते, न कोई-और कोईभी ज्योतिषी आदि नहीं जानता। जा करता-अकाल पुरुष परमात्मा, सिरठि कउ साजे—जब सृष्टि की रचना करता है आपे जाणै सोई--उस समय वह आपही जानता है।

किव करि आखा किव सालाही किव वरणी किव जाणा।

उस सृष्टिकर्ता परमेश्वर के उत्पत्ति प्रकार को, किव करि आखा--किस प्रकार कथन करूं, पुनः उस ईश्वर के पालना करने के प्रकार को, किउ वरनो-किस प्रकार वर्णन करूं। तथा किव जाणा—किस प्रकार जानूं कि परमेश्वर महा प्रलय काल में किस तरह सष्टि का संहार करता है। इसलिये उस अपरिमित शक्तिशाली ईश्वर की,
किव सालाही—कैसे उपमा करूं।

"नानक आखणि सभु को आखै इकदू इकु सिआणा"

श्री गुरु नानक देवजी कहते हैं। आखणि—उत्पत्ति संहार पालना के आख्यानों को कथाओं द्वारा उस परमेश्वर को, इकदू इकु सिआणा—एक दूसरे से अधिक चतुर बन कर सभु को—सब कोई आखै—कहते हैं, परन्तु ईश्वर के अन्त को नहीं पा सकते।

वडा साहिबु वडी नाई कीता जाका होवै। वडासाहिबु—
परमेश्वर सब से बड़ा है। और वडी नाई—वड़ाई भी उसकी महान् है सत्संकल्प होने के कारण कीता जाका होवै—उसका किया हुआ सब कुछ पूर्ण होता है।

नानक जे को आपौ जाणै अगै गइआ न सोहै—श्री गुरु नानक देवजी कहते हैं कि जेको-जो कोई आपौ जाणै—अपने आप जानता है। अर्थात् मैं परमेश्वर के समग्र गुणों को कह सकता हूं और सब कुछ कर सकता हूं। ऐसा अभिमानी पुरुष अगै गइआ—परलोक में जाकर न सोहै—ईश्वर के दरबार में शोभा को प्राप्त नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भावार्थ- जेहा बीजै सो लुणै करमा संदड़ा खेतु।

तथा— जैसा कीचै तैसो पाईअै ॥ एवं आपे बीजि आपे हीं खाहु।

इत्यादि गुरु वचनों के अनुसार यह जीव आपही शुभाशुभ कर्मों को करता है। और स्वयं ही उन कर्मों के फल सुख तथा दुःख को भोगता है। जब तक इसे ज्ञान नहीं होता तब तक कर्म फल भोगने के लिये ईश्वर की आज्ञा से अनेक योनियों में भ्रमण करता है। यह बात आपने पूर्व मंत्र में बताई है। शास्त्रों में तीर्थ स्नान और तप दानादि की विशेष प्रशंसा की है। इससे किस प्रकार के फल की प्राप्ति होती है ?

सिद्धों के प्रश्न को सुन कर श्री गुरु देवजी कहते हैं। कि तीर्थ यात्रा एवम् कायिक वाचिक मानसिक तपस्या, तथा दुखियों के दुःख को दूर करने की इच्छा, और यज्ञ वेदि में बैठ कर विधिवत् दान देना, इत्यादि शुभ कर्मों को जो कोई सकामी पुरुष करता है। उसे लोक पर लोक में मान प्रतिष्ठा एवम् क्षण भङ्गर विविध भोग्य सामग्री प्राप्त होती है। परन्तु यदि कोई निष्कामी पुरुष ईश्वर के नाम का श्रवण, मनन, और निदिध्यासन करता है। तब उस निष्काम कर्म योगी को तत्त्व ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् अपने हृदय में प्राप्त आत्मानन्द रूप तीर्थ में डुबकी लगा कर स्नान करता है। स्नान करने से आत्मानन्द में निमग्न हो जाता है। जो पुरुष मनन निदिध्यासम करने में असमर्थ है, उसे भगवत् प्राप्ति के लिये इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये। हे अकाल पुरुष परमात्मन्! दया दाक्षिण्य वात्सल्य, उदारता, गम्भीरता, आदि सभी दैवी गुण आपमें हैं। मेरे में कोई श्रेष्ठ गुण नहीं। नम्रता, सहनशीलता आदि श्रेष्ठ गुणों को धारण किये बिना भगवत् पूजन सेवन आदि नहीं हो सकता इस प्रकार श्रद्धालु भक्तकी सनम्र प्रार्थना को सुनकर कल्याण उपयोगी दैवी गुण प्रदान करता है श्री गुरु नानक देव को बचन को ध्यानपूर्वक सुनकर सिद्धों ने पूछा इस जगत् की उत्पत्ति सगुण ब्रह्म से होती है वा निर्गुण से ? उत्तर में गुरुदेव जी कहते हैं। कल्याण स्वरूप परमात्मा से-

एकोऽहंबहुस्याम्=मैं एक से अनेक रूप हो जाऊं यह संकलपात्मक वाणी उत्पन्न हुई, उस वाणी से ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, वरुण, कुरवे, देव, दानव, मानव आदि अनेक प्रकार की सृष्टि उत्पन्न हुई, जगत् स्रष्टा होते हुए भी परमातमा सत्चित् आनन्द स्वरूप है। यह बात सुनकर सिद्ध मण्डली ने पूछा, जब यह संसार उत्पन्न हुआ वह कौन समय था ? अमावस्या पूर्णिमा आदि कौनसी तिथि थी ? रविवार बृहस्पतिवार आदि कौन दिन था। बसंतग्रीष्म आदि ऋतुओं में कौनसा ऋतु था ? चैत्र, वैशाखादि में से कौनसा महीना था ? उत्तर में श्री गुरुनानक देवजी कहते हैं, सृष्टि की उत्पत्ति के समय को व्यास वशिष्ठ आदि कोई भी ऋषि नहीं जानते और ना, ही मुहम्मद आदि पैगम्बर तथा गोरक्षनाथादि योगी औरभृगु आदि ज्योतिषी ही जानते हैं। यदि ये लोग जानते तब इतिहास पुराण एवम् कुरान तथा योग वशिष्ठ भृगु संहिता आदि किसी न किसी ग्रन्थ में अवश्य उल्लेख होता।

सृष्टि कर्ता परमेश्वर स्वयं ही उत्पत्ति के प्रकार और सृष्टि निर्माण के समय को जानता है। अन्य कोई भी योगी वा सिद्ध पुरुष नहीं जानता। सृष्टि के उत्पत्ति प्रकार एवम् सृष्टि के पालन के प्रकार को मैं किस प्रकार तुम्हारे सामने वर्णन करूं। तथा अपरिमित शक्ति शाली ईश्वर की उस महिमा का भी कैसे वर्णन करूं कि महा प्रलयकाल में किस अलौकिक शक्ति से समस्त सृष्टि का संहार करता है।

श्रीगुरु नानकदेवजी कहते हैं, कि एक से एक अधिक बुद्धिमान् उत्पत्ति पालन संहार की कथाओं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के द्वारा ईश्वर की महिमा को वर्णन करते हैं। परन्तु उसकी महिमा का अन्त नहीं पा सकते । परमेश्वर हिरण्यगर्भ प्रजापति, इन्द्र, उपेन्द्र, वरुण, कुबेर आदि सर्व से बड़ा है। और संसार में उसकी कीर्ति भी उज्ज्वल है।

सत्य संकल्प होने के कारण उसका किया हुआ सभी कुछ पूर्ण है। श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं, जो कोई व्यक्ति ऐसा कहता है, कि मैं परमेश्वर के समग्र गुणों को कह सकता हूं, और सब कुछ कर सकता हूं ऐसा अभिमानी पुरुष ईश्वर के दरबार में शोभा को प्राप्त नहीं होता।

तीर्थ शब्द के अनेक अर्थ हैं। परन्तु यहां पर तीर्थ शब्द से ऋषि निर्मित तीर्थ ऋषिकेश, हरिद्वार प्रयाग राजादि तथा गुरु तीर्थ अमृतसर, मुक्तसर, तरनतारनादि का ग्रहण है। स्थावर और जङ्गम भेद से तीर्थ दो प्रकार का है। अमृतसर, हरिद्वारादि स्थावर, और साधु महात्मा विद्वान् जङ्गम तीर्थ हैं। निष्काम भावना से तीर्थ का सेवन अन्तःकरण की शुद्धि का हेतु है। श्रद्धाभक्ति पूर्वक तीर्थ स्नान से पापों की निवृत्ति और पुण्यों की उत्पत्ति होती है।

यथा—रामदास सरोवरि नाते । सभि उतरे पाप कमाते। निरमल होए
करि इसनाना ।

श्रीमद् भागवत् तथा पद्म पुराण में सन्त, भक्त, गुरु, माता, पिता, धर्मनिष्ठ पति, सती, साध्वी पत्नी को भी तीर्थ बतलाया है। गुरुवाणीमें नाम और शब्द विचार तथा ज्ञान को तीर्थ बतलाया है।

यथा----तीरथि नावण जाउ तीरथु नामु है ।
तीरथु सबद वीचारु अंतरि गिआनु है ॥

इस पवित्र ज्ञान तीर्थ में स्नान करने से पहिले नीचे लिखे तीर्थों का स्नान करना आवश्यक है।

यथा—सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रिय निग्रहः ।
सर्वभूत दया तीर्थं तीर्थमार्जवमेवच ॥

सत्य और क्षमा, इन्द्रियों पर नियन्त्रण और प्राणियों पर दया तथा सरलता ये उपयोगी तीर्थ हैं। कल्याणकारी ज्ञान तीर्थ का महत्त्व स्वीकार करते हुए भी गुरुदेव जी ने बाह्य तीर्थों के सेवन का मण्डन ही किया है।

यथा—तीरथ उदमु सति गुरु कीआ सभ लोक उधरण अरथा। गु० ग्र० पृ० १११६
तथा--दुतीआ जमुन गए गुरि हरि हरि जपनु कीआ ॥

गुरुवाणी में जहां कहीं खण्डन मिलता है वह पाखण्ड और मिथ्याचार का है।

यथा-- कहा भयो जो दोउ लोचन मूंद कै बैठि रहिओ बक ध्यान लगाइओ।
नात फिरिओ लीए सात समुंद्रन लोक गइयो परलोक गवाइयो ।
बासु कीओ बिखिआन सो बैठकै ऐसे ही ऐस सुबैस विताइओ ।
साचु कहो सुनलेहु सभै जिन प्रेम कियो तिन ही प्रभु पाइओ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यहां पर बिना प्रेम के किये शुभ कार्यों की निष्फलता का प्रतिपादन किया है। श्रद्धा भक्ति पूर्वक किये तीर्थ सेवन का खण्डन गुरुदेव जी को अभिप्रेत नहीं। कुछ विद्वानों का विचार है कि शास्त्र विधि से कृच्छ्र चान्द्रायणादि कठिन व्रतों के द्वारा शरीर को सुखाने का नाम तप है। किन्तु महाभारत के शान्ति पर्व में उक्त प्रकार के तामस तप का निषेध करते हुए सात्त्विक तप का निरूपण किया है।

यथा--अहिंसा सत्यवचनमानृशंस्यं दमो घृणा।
एतत्तपो विदुः, धीरा न शरीरस्य शोषणम्॥

अहिंसा—दूसरे का घात न करना और न सताना। सत्य भाषण, अक्रूरता, इन्द्रिय दमन, सभी जीवों पर दया करना, इन्हें बुद्धिमान तप कहते हैं। शरीर का शोषण करना तप नहीं। गुरु मत में सात्त्विक तप को स्वीकार किया है। फरीद के विचारों का संशोधन करते हुए गुरुदेव जी कहते हैं।

तनु न तपाइ तनूर जिउ बालणु हड न बालि।
सिरि पैरी किआ फेड़िआ अंदरि पिरी निहालि॥

मनुस्मृति के ग्यारहवें अध्याय में तप की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि जिस विपत्ति को पार करना कठिन है; तथा जिस सुख को प्राप्त करना बहुत कठिन है। जिस शिखर पर पहुंचना बड़ा कठिन है। जिस वस्तु को बनाना दुष्कर है, वह सभी कुछ तप से सिद्ध हो जाता है। तप को कोई भी लांघ नहीं सकता। सर्व साधनों में शिरोमणि तप है।

यद् दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुगमं यच्च दुष्करम्।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपोहि दुरतिक्रमम्॥

सदाचारी, विद्वान्, साधु महात्मा, एवं संतोषी क्रियावान्, सन्ध्या वन्दन करने वाला, ब्राह्मण धर्मोपदेशक को श्रद्धा भक्ति पूर्वक यथाशक्ति आवश्यकता के अनुसार अन्न वस्त्र धनादि देने का नाम दान है। इतिहास पुराण सद् ग्रन्थों में दान का बड़ा महत्त्व लिखा है। बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है कि विश्वात्मा परमेश्वर को ब्राह्मणादि सभी जाति के मनुष्य वेद पढ़ने और यज्ञ के करने से तथा दान के देने से एवं शरीर को न सुखाने वाले तप से जानने की इच्छा करते हैं। यथा—

तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन, दानेन, तपसाऽनाशकेन॥

यज्ञ, दान, और तप, ये तीनों ही परमोपयोगी हैं। जिज्ञासु को इनका त्याग एवं उपेक्षा करना कदापि उचित नहीं। इसलिये भगवद्गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने यज्ञ, दान, और तप के त्याग का निषेध करते हुये इन्हें निरन्तर करने का आदेश दिया है। क्योंकि यज्ञ दानादि मनीषी लोगों के जीवन को पवित्र करने वाले हैं।

यज्ञ दान तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञोदानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥ गीता अ० १८

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दान का महत्त्व यज्ञ और तप की अपेक्षा महान है। तैतिरीय आरण्यक में लिखा है कि दान यज्ञ की त्रुटियों का निवारण करने वाला है। संसार में सभी प्राणी दाता का आश्रय लेते हैं। दान से सभी शत्रु दब जाते हैं। दान के प्रभाव से द्वेषी भी मित्र हो जाते हैं। दान में सब कुछ प्रतिष्ठित है, इसलिये दान को सर्वोत्तम माना गया है।

यथा--दानं यज्ञानां वरुथं, लोके दातारं सर्वाणिभूतानि उपजीवन्ति। दानेन अरातीः
अपानुदन्त, दानेन द्विषन्तो मित्राणि भवन्ति दाने सर्वं प्रतिष्ठितम्।
तस्माद् दानं परमं वदन्ति ॥

मनुस्मृति में लिखा है कि भूमि को देने वाला और सुवर्ण का दान करने वाला दीर्घायु को, घर का दान करने वाला सुन्दर गृह को, चाँदी का दान करने वाला सुन्दर स्वरूप को प्राप्त होता है।

यथा--भूमिदो भूमिमाप्नोति, दीर्घमायुर्हिरण्यदः।
गृहदो, अग्रयाणि वेश्मानि, रूप्यदो रूपमुत्तमम्॥

दानी की प्रशंसा पूज्य गुरुदेव जी ने भी की है।

पुंनदान का करे सरीरु। सो गिरहीं गंगा का नीरु॥ पृ० ६५२।

इसलिये सद् गृहस्थ को उचित समय यथा शक्ति उत्तम अधिकारी को दान देना चाहिये।

यथा—खत्री सो जु करमा का सूरु। पुन दान का करे सरीरु खेतु पछाणै बीजै दानु
सो खत्री दरगहि परवाणु॥ पृ० १४११॥

प्रश्न— कर्म फल भोगने वाले इस जीव का संसार से कैसे छुटकारा हो सकता है? परम कृपालु गुरुदेव इस प्रश्न का आगे सरल उत्तर देते हैं।

तीरथु तपु दया दतु दानु। जे को पावै तिलका मानु।

विशेष व्याख्या— तीरथ और तप शब्द आश्रमों के धर्मों का वाचक है। दया, दत्त और दान शब्द निखिल वर्णों के धर्मों का बोधक है। तीर्थ शब्द से यहां पर हरिद्वार अमृतसर आदि पवित्र स्थानों का ग्रहण है। तप शब्द चान्द्रायणादि व्रतों का वाचक है, दूसरे के दुःख को दूर करने की इच्छा का नाम दया है। वाह्येन्द्रिय के दमन का नाम दत्त है अपने स्वत्त्व को छोड़ कर शास्त्रीय विधि से दूसरे के स्वत्त्व को उत्पन्न करने का नाम दान है। अर्थ इस प्रकार है जो कोई जिज्ञासु सम्पूर्ण अनात्म पदार्थों के मध्य में, मानु=गुरु के उपदेश रूप प्रमाण से, तिलका=तिलक स्वरूप सर्व के शिरोमणि आत्मज्ञान को, पावै=प्राप्त करने की इच्छा रखता है, तो उसे तीर्थ तपादि एवं दया दानादि वर्णाश्रम के मिश्रित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

धर्मों से सर्व प्रथम ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त करनी आवश्यक है। जब जिज्ञासु ईश्वर की प्रसन्नता के लिए दया, तप, दानादि शुभकर्मों को करता है, तब परमेश्वर की कृपा से उसके मन में आत्मज्ञान की इच्छा उत्पन्न होती है।

इसलिये तीर्थ, स्नान, एवं दानादि अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा ज्ञान के बहिरङ्ग साधन हैं। इसलिए यथाशक्ति दानादि करना आवश्यक है, त्याग करना श्रेयस्कर नहीं।

गुरुदेव जी का आशय भी शुभ कर्मों को निरन्तर करने में प्रतीत होता है। क्योंकि तीर्थ दानादि शुभ कर्मों से सर्व साधारण जनता की भलाई होती है। इसलिए श्रीगुरु अमरदेव जी महाराज ने शिष्य मण्डली के सहित तीर्थ यात्रा की और दानादि करने का आदेश दिया।

यथा— तीरथ उदमु सतिगुरु कीआ सभ लोक उधरण अरथा। गु० ग्र० पृ० ११९६

पुंन दान का करे सरीरु। खेतु पछाणै बीजै दानु॥ गु०ग्र०पृ०१४११

'तीरथ नाईऐ सुखु फलु पाईऐ मैलु न लागे काई॥ गु०ग्र०पृ०६३६

पूर्व पाठ से बहिरङ्ग साधनों को कहकर अब ज्ञान के अन्तरङ्ग साधनों को गुरुजी कहते हैं।

सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाउ, अंतरि गति तीरथि मलि नाउ॥

मन तू जोति सरूपु है आपणा मूलु पछाणु॥ गु०ग्र० पृ० ४४१

इत्यादि वचनों से, अंतरि गत=हृदय में अपने स्वरूप को विचार करके फिर—

सो प्रभु दूरि नहीं प्रभु तूहै॥ गु०ग्र०पृ० ३५४

इत्यादि गुरूपदेश से जिन जिज्ञासुओं ने सुणिआ— श्रवण किया है। पुनः श्रवण किये अर्थ को, मंनिआ मनन किया है। तथा मनन किये हुये अर्थ का, मनिकीता भाउ मनमें निदिध्यासन किया है। उन्हें आत्मा का साक्षात्कार रूप तीर्थ प्राप्त होता है,

उस तीर्थ में अज्ञान तत्कार्य रूप मल को दूर करना ही नाउ स्नान है। पवित्र होने के कारण ज्ञान को तीर्थ शब्द से कहा है। ज्ञान से अधिक पवित्र वस्तु संसार में और कोई नहीं। इसे गीता में,

"न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" गीता अ० ४

इत्यादि वचनों से प्रतिपादन किया है।

प्रश्न-मुक्ति ज्ञान से होती है और ज्ञान श्रवणादि से होता है, और श्रवण मननादि विवेक वैराग्यादि युक्त अधिकारी पुरुष को होते हैं? परन्तु मेरे में दैवी गुण एक भी नहीं? ऐसे गुणवान् विनम्र सेवक के प्रश्न को सुनकर परम कृपालु गुरुदेव स्वयं उसके गुणों को प्रकट करते हैं।

"सभि गुण तेरे मै नाहीं कोइ। विणु गुण कीते भगति न होइ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भज धातु से भक्ति शब्द बनता है भक्ति नाम सेवन का है यहाँ पर सेवन का अर्थ श्रवण और मनन है। भाव यह है। हे प्रिय शिष्य ! तुमने पूर्व यह कथन किया कि मेरे में कोई गुण नहीं और— विणु गुण कीते विवेकादि गुणों के बिना, भगति न होइ श्रवण मनन नहीं हो सकता परन्तु मेरी दृष्टि में, सभिगुण तेरे—तुम में सभी दैवी गुण हैं नाही कोइ—तुम में कौन गुण नहीं यह मुझे बताओ।

अथवा माया के सम्बन्ध से होने वाला सर्वज्ञता स्वतन्त्रता सत्य सङ्कल्पादि कोई भी गुण तेरे में नहीं यह बात ठीक है। परन्तु विवेक वैराग्यादि सभी दैवी गुण तेरे में विद्यमान हैं। अथवा व्यावहारिक दृष्टि से सभी दैवी गुण तेरे में विद्यमान हैं। परन्तु परमार्थ दृष्टि से नित्य शुद्ध बुद्ध होने के कारण तेरे में एक भी गुण नहीं। गुरु की प्रसन्नता को देख कर शिष्य प्रार्थना करता है।

सुअसति आथि बाणी बरमाउ' भावयह है यदि मैं आपकी दृष्टि में अधिकारी हूं तब कृपा करके मेरे कल्याण के लिये ईश्वरीय आज्ञा रूप अद्वितीय सत्य की बोधक वेद वाणी का उपदेश करो। तात्पर्य यह है जिस वाणी का ब्रह्म के साथ बोध्य बोधक भाव सम्बन्ध है लक्षणा वृत्ति से उस वाणी द्वारा मेरे को कल्याणप्रद उपदेश करने की कृपा करो ?

'सति सुहाणु सदा मनि चाउ' झाड़ू से साफ करने को सुहाणु कहते हैं अर्थ यह है सति सर्व कल्पना के अधिष्ठान सत्य ब्रह्म में कल्पित जो सम्पूर्ण दृश्य, उसको 'सुहाणु=साफ करने में सदा सर्वदा, मनि चाउ=मेरे मन में उत्साह है। अथवा सुहाणु=शब्द का मूल सुहानि है। इसका अर्थ अत्यन्त निवृत्ति है। भाव यह है सत्य ब्रह्म में कल्पित दृश्यमान की अत्यन्त निवृत्ति करने का मेरे मन में अति उत्साह है। किञ्च जिस दृश्य को दूर करने का मेरे मन में उत्साह है। उस दृश्य की उत्पत्ति को अर्थात् सामान्य एवं विशेष काल को क्या पौराणिक पण्डित जानते हैं ? वा कुरान को पढ़ने वाले काजी, या सिद्ध योगी जानते हैं ? इसको भी जानने की मेरे मन में तीव्र इच्छा है, कृपा करक आप बतायें।

'कवणु सुवेला वखतु कवणु कवण थिति कवणु वारु,
'कवणि सिरुतीं माहु कवणु जितु होआ आकारु

यहां पर आकारु=शब्द भूत भौतिक निखिल प्रपञ्च का वाचक है। भाव यह है जिस समय परमात्मासे भूत भौतिक निखिल प्रपञ्च उत्पन्न हुआ वह कौन काल था? सामान्यकाल पूछकर अब विशेष काल पूछता है। कवण थिति कवणु वारु=अमावस्या, पूर्णिमा, प्रतिपदा, द्वितीया इत्यादि कौन तिथि थी तथा रविवार, सोमवार, आदि सात दिनों में कौन वार था ? एवं वसन्त, ग्रीष्म, वर्षादि षड् ऋतुओं में कौन ऋतु था ? तथा चैत्र, वैशाख ज्येष्ठादि बारह मासों में कौन महीना था और शुक्ल कृष्णपक्ष में से कौन पक्षथा ? शिष्य के प्रश्नको सुनकर ईश्वरके बिना अन्य किसीको भी सामान्य विशेष काल का ज्ञान नहीं ऐसा गुरुदेव जी आगे कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"वेल न पाईआ पंडती जि होवै लेखु पुराणु"

भाव यह है कि जिस समय निखिल भूत भौतिक जगत को बनाने योग्य ज्ञान इच्छा कृति वाले परमेश्वर ने मैं एक से अनेक हो जाऊँ ऐसी इच्छा करके संसार को बनाया, उस काल को पुराण स्मृति आदि धर्म ग्रन्थों के पण्डितमानी लेखक विद्वान् भी नहीं जानते यदि जानते तो किसी ग्रन्थ में अवश्य उल्लेख करते, अब चार तत्त्वों से सृष्टि की उत्पत्ति मानने वाले यवनों का खण्डन करते हैं।

वखतु न पाइओ कादीआ जि लिखनि लेखु कुराणु"

इसलाम धर्म की व्यवस्था देने वाले को काजी कहते हैं। 'कादी' का मूल काजी है। अर्थ इस प्रकार है, जिस समय परमेश्वर ने सृष्टि बनाई उस काल को कुरान के लिखने वाले काजी भी नहीं जानते। यदि कुरान में कहीं उल्लेख होता तब उसे काजी अवश्य जानते। अब योगियों की भी इस विषय में अनभिज्ञता बताते हैं।

थिति वारु न जोगी जाणै रुति माहु ना कोई"

अणिमा महिमा आदि सिद्धि वाले योगी भी सृष्टि उत्पन्न होने की तिथि और बार को नहीं जानते, जैसे ये पातञ्जल नहीं जानते, वैसे प्रकृति पुरुष का विचार करने वाले सांख्य लोग भी नहीं जानते। गुरुदेव! वह वेला क्या वस्तु है जिसे पण्डित, काजी, योगी आदि नहीं जानते। जैसे मकड़ी अपने जाले का उपादान, और निमित्त कारण है वैसे ही भूत भौतिक निखिल प्रपञ्च का ईश्वर भी अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। और ईश्वर रचित सर्व प्रपञ्च माया स्वरूप है। इस बात को पूर्वोक्त सभी वादी नहीं मानते इसलिये वे नहीं जानते। और वह वेला माया का चैतन्य के साथ सम्बन्ध रूप है। जिसे न्याय मत में काल द्रव्य कहते हैं। इस प्रकार **कवण सुवेला** पाठ से सामान्य काल के प्रश्नका उत्तर देकर "कवण थिति कवणु वारु" इत्यादि पाठ से भूत भौतिक प्रपञ्च के रचना काल में कोई तिथि आदि विशेष काल है या नहीं? यदि है तब कौन है? इस अभिप्राय से पूछे प्रश्न का उत्तर "रुती माहु न कोई" इत्यादि के द्वारा प्रतिपदा आदि तिथि आदित्यादि वार, वसन्त अदि ऋतु चैत्र आदि मास इत्यादि कोई विशेष काल नहीं था। इसलिये यह सिद्ध हुआ।

जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई

जिस काल में सृष्टिकर्ता परमेश्वर संसार की रचना करता है। उस समय तिथि पक्ष मासादि विशेष काल की प्रतीति होना चाहिये थी, परन्तु उत्पत्ति काल में प्रतीति नहीं होती। केवल माया चेतन का सम्बन्ध रूप सामान्य काल ही होता है। उस सामान्य काल को परमेश्वर स्वयं ही जानता है। और कोई देवता दानव मानव ऋषि मुनि नहीं जान सकते।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भाव यह है कि जीवों को ज्ञान शरीरादि सामग्री से होता है परन्तु प्रलय काल में शरीरादि सामग्री रहती नहीं। सामग्री के बिना किसी जीव को सृष्टि उत्पत्ति काल का ज्ञान नहीं हो सकता। केवल ईश्वर को ही माया वृत्ति रूप ज्ञान से उस काल का ज्ञान सम्भव है। माया वृत्ति रूप ज्ञान से ही ईश्वर सम्पूर्ण संसार को तथा सर्व विद्याओं की मूल वेद विद्या को उत्पन्न करता है। उस वेद विद्या के तात्पर्य को जानने वाले शिष्ट पुरुषों को भी उत्तर काल में सामान्य काल का ज्ञान होता है। तात्पर्य से अनभिज्ञ पण्डित सानी एवं काजी तथा योगियों को ज्ञान नहीं होता। इस भाव से गुरु जी ने कहा।

"आपे जाणै सोई"

सर्वज्ञ एवं सर्व वित् होने के कारण परमेश्वर स्वयं ही उस काल को जानता है। सामान्य विशेष रूप से सर्व वस्तु को केवल परमेश्वर ही जानता है। इस बात को वेद ने प्रतिपादन किया है।

"यः सर्वज्ञः सर्व वित्"

इसलिये सम्पूर्ण जगत् की रचना का हेतु अनेक रूप होने की इच्छा से पहले माया की वृत्ति रूप ज्ञान वाला होने से ईश्वर माया के सम्बन्ध रूप काल को स्वयं जानता है। ईश्वर के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं जानता।

प्रश्न— जो ईश्वर संसार के उत्पत्ति काल को जानता है उस परमेश्वर के वास्तविक स्वरूप का आप कृपा करके मुझे उपदेश करें? सेवक के प्रश्न को सुन कर गुरुदेव जी कहते हैं।

"किव करि आखा किव सालाही किउ वरणी किव जाणा ॥"

किस प्रकार मैं तुम्हें उस परमेश्वर के स्वरूप का वर्णन करूं? भाव यह है कि सामान्य रूप से परमेश्वर के स्वरूप का प्रतिपादन करूँ? अथवा विशेष रूप से उसकी प्राप्ति के साधनों सहित? यदि प्रथम पक्ष कहें तब तो बालक भी आकाश की ओर अङ्गुलि उठा कर सामान्य रूप से परमेश्वर के अस्तित्व का बोधन करता है। इसलिये जाने हुए अर्थ को पुनः कहना पिष्ट पेषण न्याय से निष्फल है। व्यर्थ समझ कर तेरे जैसे बुद्धिमान् को प्रथम पक्ष से उपदेश देना उचित नहीं प्रतीत होता। इसी भाव से मूल में कहा है "किव करि आखा" अर्थात् तेरे जैसे उत्तम अधिकारी को परमेश्वर के सामान्य रूप से कैसे प्रतिपादन करूं। गुरुदेव! यदि प्रथम पक्ष उपयुक्त नहीं तब दूसरे पक्ष से ही उपदेश करो? दूसरे पक्ष में सगुण उपासना सहित परमेश्वर के स्वरूप को कहूं या ज्ञान सहित निर्गुण स्वरूप का निरूपण करूं? सगुण उपासना वाले प्रथम पक्ष के उत्तर में कहते हैं। "किव सालाही" जिस परमेश्वर को कोई भी इन्द्रिय नहीं जानता और जो सभी इन्द्रियों की चेष्टाओं को जानता है। वही परमेश्वर उत्तम अधिकारी को ज्ञातव्य है। जिस शिव आदि पञ्च मूर्ति की साधारण लोग उपासना करते हैं वह ज्ञानेच्छु को उपासनीय नहीं। इसलिये गुरुवाणी में—

"रोगी ब्रह्मा बिसनु सरुद्रा रोगी सगल संसारा ॥" गु० ग्रं० पृ० ११५३

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इत्यादि वचनों द्वारा इन्हें सरोगी बताया है। सरोगी की उपासना करने की प्रशंसा तुम्हारे पास किस प्रकार करूं। अर्थात् जिसमें वेद का तथा वक्ता का तात्पर्य नहीं उस कल्पित दृश्यको दूर करने की इच्छा वाले व्यक्ति के पास किसी प्रकार से प्रशंसा नहीं कर सकता।

प्रश्न— यदि सगुण पक्ष ठीक नहीं तब जो निर्गुण ब्रह्म यथार्थ ज्ञान से प्राप्त होता है उसे ही आप कहने की कृपा करें ?

सेवक के प्रश्न को सुन कर श्री गुरुदेव जी कहते हैं कि निर्गुण ब्रह्म को लौकिक वचनों से वा वैदिक वचनों से तुम्हारे प्रति कहें ? यदि लौकिक वचनों से कहने की शिष्य प्रार्थना करे, तब गुरु जी उत्तर देते हैं। **किउ वरनी**=अर्थात् लौकिक वचन अनात्म वस्तुओं को विषय करते हैं। इसलिये लौकिक वचनों से तेरे को ईश्वर के स्वरूप का क्या निरूपण करूं ? वैदिक वचनों से आप निरूपण करें ? यदि शिष्य ऐसा कहे। तब गुरुजी पूछते हैं कि शक्तिवृत्तिसे अथवा लक्षणावृत्ति से कथन करूं। प्रथम पक्ष शक्ति वृत्ति का खण्डन करते हैं। **किव जाणा**=उस परमेश्वर को शक्ति वृत्ति से किस ने किस प्रकार जाना अर्थात् उसे शक्ति वृत्ति से कोई नहीं जानता क्योंकि—

"महिमा न जानहि बेद। ब्रह्मे नहि जानहि भेद।
अवतार न जानहि अन्तु परमेसुर पारब्रह्म बेअंतु॥ गु० ग्र० पृ० ८९४

इत्यादि वचनों से गुरु जी ने शक्ति वृत्ति से जानने का निषेध किया है।

प्रश्न— लक्षणा वृत्ति से यदि शिष्ट पुरुष जानते हैं तब उसी वृत्ति से उपदेश देकर मुझे कृतार्थ करें ? इसके उत्तर में गुरु जी कहते हैं।

"नानक आखणि सभु को आखै"

लक्षणा वृत्ति वाले शब्द का नाम आखणु है। अर्थ इस प्रकार है, श्री गुरुनानकदेव जी कहते हैं कि लक्षणा वृत्ति वाले शब्द से सभी अद्वैत वादी परमेश्वर के स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं। मूल में आये सभु शब्द से उन लोगों का ग्रहण है, जो ब्रह्म को शक्ति वृत्ति का अविषय मानते हैं। जो लोग शब्द में अचिन्त्य शक्ति मानते हैं उन लोगों का यहां पर ग्रहण नहीं। क्योंकि वे शक्ति वृत्ति से ब्रह्म का जानना स्वीकार करते हैं।

प्रश्न—गुरुदेव ! क्या इन लोगों में कुछ न्यून अधिकता भी है ? ऐसा पूछने पर उत्तर कहते हैं।

इक दू इकु सिआणा=अर्थात् एक से एक अधिक बुद्धिमान् है। भाव यह है ज्ञान की सात भूमिकाएं हैं। पूर्व पूर्व भूमिका वाले की अपेक्षा उत्तर उत्तर भूमिका वाला ज्ञानवान् श्रेष्ठ माना गया है। जैसे चतुर्थी भूमिका वाला ब्रह्मवित्, पञ्चमी वाला ब्रह्मविद्वर्य, षष्ठी भूमिका वाला ब्रह्मविद्वरीयान्,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सप्तमी भूमिका वाला ब्रह्मविद्वरिष्ठ इत्यादि नाम से शास्त्रों में प्रतिपादन किया है। यही इन ज्ञानवानों में न्यून अधिकता है।

प्रश्न—गुरुदेव ! आपने ईश्वर बोधक शब्दों में लक्षणावृत्ति मानने वाले और अचिन्त्य शक्ति मानने वाले दो प्रकार के विद्वान् कहे हैं, इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है ? ऐसा प्रश्न सुनकर लक्षणा वृत्ति मानने वाले की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हैं ।

"वडा साहिबु वडी नाई कीता जा का होवै"

"नानक जे को आपौ जाणै अगै गइआ न सोहै" श्री गुरु नानक देवजी कहते हैं।

वडा साहिबु=जो परमेश्वर हिरण्यगर्भादि बड़ों का भी अधिपति है और वडी नाई= जिसका वेद रूपी उद्घोष (आवाज) महान् है।

तथा—'कीता जा का होवै=जिसका बनाया हुआ यह निखिल भूत भौतिक प्रपञ्च है। ऐसे सर्व शक्तिमान् परमेश्वर का लक्षणावृत्ति से संशोधन किए बिना, जे को आपौ जाणै= अन्तः करणोपाधि वाला जो कोई जीव उस परमेश्वर को अपना स्वरूप समझता है वह व्यक्ति, अगै गइआ न सोहै=तत्त्व दर्शी ब्रह्मनिष्ठों के आगे विचार करते समय शोभा को प्राप्त नहीं करता। क्योंकि जीव ईश्वर के विरोधी धर्मों का लक्षणा वृत्ति से त्याग किये बिना दोनों की एकता का प्रतिपादन प्रमाण एवं युक्ति के विरुद्ध है। भाव यह है कि वेद तथा गुरुवाणी में अभेद बोधक जितने भी वाक्य हैं वे सभी लक्षणा वृत्ति से ही जीव ईश्वर के अभेद का प्रतिपादन करते हैं। विरोधी धर्मों का त्याग किये बिना दोनों की एकता का होना असम्भव है। क्योंकि शक्तिवृत्ति से जीव तथा ईश्वर में अल्पज्ञता एवं सर्वज्ञता आदि परस्पर विरोधी धर्मों के होने के कारण दोनों की एकता का उपपादन जल और अग्नि को एक स्थान पर बैठाने के तुल्य है। इसलिये जो लोग शक्ति वृत्ति से विरोधी धर्मों का त्याग किये बिना अभेद बोधक शब्दों से जीव तथा ईश्वर का प्रतिपादन करते हैं। वे अदूरदर्शी लोक तत्त्वदर्शी ब्रह्मनिष्ठों के सम्मुख विचार गोष्ठी में शोभा को प्राप्त नहीं कर सकते। इस प्रकार लक्षणावृत्ति वाला पक्ष सर्वोत्तम है। दूषित होने के कारण अचिन्त्य शक्तिपक्ष ग्रहण करने के योग्य नहीं ।

एकविंशतितमं मन्त्रं समाप्तम्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न—परमेश्वर सृष्टि रचना को स्वयं जानता है। यह बता कर अब ईश्वरीय रचना की अनन्तता का प्रतिपादन करते हैं।

मूल—पाताला पाताल लख आगासा आगास। ओड़क ओड़क भालि थके-
वेद कहनि इक वात॥ सहस अठारह कहनि कतेबा असुलू इकु धातु॥
लेखा होइ त लिखीऐ लेखै होइ विणासु। नानक वडा आखीऐ-
आपे जाणै आपु॥२२॥ पाताला पाताल लख आगासा आगास। पाताला-

शब्दार्थ-अतल, वितल, सुतलादि पातालों से परे, लख=लाखों ही, पाताल=नीचे के पाताल लोक हैं। आगासा=भूर् भुवः स्वरादि ऊपर के सात लोकों से परे लाखों ही, आगास=आकाश लोक हैं।

ओड़क ओड़क भालि थके वेद कहनि इक वात।

न तो सृष्टि करता ईश्वर का, ओड़क=अन्त है और न हीं उसकी सृष्टि का, ओड़क=अन्त है। अर्थात् सृष्टि और सृष्टा दोनों ही अनन्त हैं।

अथवा—भूगोल खगोल के वेता, ओड़क=बल लगा कर, भालि=अन्वेषण करके, थके= थक गये हैं, तो भी ईश्वर की सृष्टि का, ओड़क=अन्त नहीं प्राप्त कर सके। वेद=चारों वेद, कहनि इक वात=एक बात को कहते हैं।

सहस अठारह कहनि कतेबा असुलू इकु धातु। सहस=हजारों ऋषि मुनि तथा अठारहों पुराण और कतेबें अञ्जील आदिक सभी मिलकर एक ही बात को कहते हैं। कि असुलू= वास्तव में, इकु=एक ही परमात्मा सत्य है। और नाम रूपात्मक जगत धातु=धाह भाव जाने वाला है, अर्थात् मिथ्या है।

लेखा होइ त लिखीऐ लेखै होइ विणासु=परमेश्वर का यदि लेखा होइ- गणना हिसाब किताब हो, त लिखीऐ=तब उसे लिखा जाये, लेखे-जो वस्तु लेखे जोखे में होती है। उसका—विणासु=विनाश होता है। इसलिए अकाल पुरुष परमात्मा अलेखनीय है।

नानक वडा आखीऐ आपे जाणै आपु।

श्री गुरु नानक देवजी कहते हैं कि परमेश्वर को वडा आखीऐ=सर्व से महान् अनन्त शक्ति शाली कहना चाहिये। आपे जाणै आपु=अपनी महिमा को ईश्वर आप ही जानता है, उसके अतिरिक्त कोई नहीं जान सकता।

भावार्थ— जगत् स्रष्टा परमेश्वर स्वयं ही सृष्टि की रचना को जानता है। यदि कोई मनुष्य विज्ञान के बल पर अपने आपको बुद्धिमान समझ कर सृष्टिके रहस्य को जानने का अभिमान करता है तब वह पुरुष परलोकमें शोभा को प्राप्त नहीं होता। क्योंकि ईश्वरकी रचना अनन्तहै, उसका पारपाना मनुष्य की शक्ति से बाहर की बात है। इस बात को सुन कर सिद्धों ने कहा कि गुरुदेव! हमने सुना है कि सृष्टि में कुल चौदह लोक हैं तब आप कैसे कहते हैं कि सृष्टि का अन्त पाना कठिन है?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उत्तर में श्री गुरुदेव जी सृष्टि की अनन्तता का निरूपण करते हैं।

ब्रह्माण्ड भेद से अतल, वितल, सुतलादि लाखों ही पाताल हैं, और भूर् भुवः स्वरादि ऊपर के लाखों ही आकाश लोक हैं। हजारों ऋषि, मुनि और भूगोल के जानने वाले, सृष्टि और सृष्टिकर्ता के अन्त का भेद पाने के लिये परिश्रम करते हुए थक गए हैं, परन्तु उन्हें आज तक सफलता प्राप्त नहीं हुई। चारों वेद, अठारह पुराण और अञ्जील कुरानादि सभी धार्मिक ग्रन्थ इसी एक बात का प्रतिपादन करते हैं, कि अद्वितीय परमात्मा एक है। शेष सम्पूर्ण सृष्टि विनश्वर है। एवं वेद और अठारह हजार आलम, तथा जम्बूर अंजीलादि इसी एक बातको कहते हैं। ईश्वर की बनाई हुई सष्टि अनन्त है। उसका किसी विज्ञान के द्वारा अन्त पाना बहुत कठिन है। परमेश्वर का यदि हिसाब किताब हो तब उसे लिखा जाए, जो वस्तु लेखे जोखे में होती है, वह विनश्वर होती है। इसलिये अविनाशी परमेश्वर हिसाब किताब से बाहर है।

श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि वह परमेश्वर महान् से महान् हैं। वह स्वयं ही अपने आपको तथा अपनी बनाई हुई सृष्टि को जानता है।

प्रश्न—लक्षणा वृत्ति से जिस लक्ष्य की सिद्धि होती है उसे निरूपण करने की आप कृपा करें। जिज्ञासु के पूछने पर गुरुदेव जी कहते हैं।

पाताला पाताल लख आगासा आगास। ओड़क ओड़क।

विशेष व्याख्या— यहां पर लख पद संख्या वाचक नहीं किन्तु लक्ष्य का वाचक है। अर्थ यह है जो परमेश्वर **पाताला**=अतल वितलादि सप्त पातालों का, **पाताल**=अधिष्ठान है और ये कल्पित सभी लोग वास्तव से जिसमें नहीं, तथा जो परमात्मा स्वर्गादि ऊपर के, **आगासा**=सात लोकों को **आगास**=सर्व ओर से प्रकाशित करने वाला है, एवं जो परमेश्वर, **ओड़क**=अखिल आनन्द की सीमा जो हिरण्यगर्भ प्रजापति, उनके आनन्द की भी, **ओड़क**=परमावधि है वही लक्ष्यार्थ है। ईश्वरीय आनन्द के एक बिन्दु से सारा संसार आनन्दित हो रहा है। इस बात को वेद के अनेक मन्त्रों में प्रतिपादन किया है।

प्रश्न— लक्ष्य स्वरूप का ज्ञान किस प्रमाण से होता है?

समाधान— **भालि थके वेद कहनि इक वात।**

चारवाक बौद्ध आदि तर्क निपुण वेद के बिना अन्य साधनों से लक्ष्य स्वरूप को खोजते हुए थक गए हैं। परन्तु प्रत्यक्ष अनुमानादि प्रमाणों से लक्ष्यार्थ वस्तु को नहीं प्राप्त कर सके। इसलिये वेद तथा तदनुसारी पवित्र सद् ग्रन्थ ही ईश्वर के वास्तविक स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं।

प्रश्न— वेद में अनेक प्रकार के वाक्य हैं, उनमें से कौन वाक्य लक्ष्यार्थ का बोधक है?

समाधान— **इक बात**=जीव ईश्वर की एकता के बोधक जो वाक्य हैं उन्हीं के द्वारा गुरुवाणी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा वेद लक्ष्यार्थ का बोधन करते हैं। केवल वेद ही नहीं कहता किन्तु, उसके अनुसारी अष्टादश पुराण और स्मृतियां भी लक्ष्यार्थ का निरूपण करती हैं।

"सहस अठारह कहनि कतेबा असुलू इक धातु"

अठारह पद से अष्टादश पुराणों का ग्रहण है। पुराण की समीपता से कतेब शब्द स्मृति का वाचक है। असुलू=वास्तव का बोधक है। धातु=पद यथार्थतत्त्व का वाचक है। अर्थ इस प्रकार है, वास्तव में एक यथार्थ तत्त्व है। इस बात को हजारों प्रकार से जिज्ञासु को समझाने के लिये अष्टादश पुराण और स्मृतियां प्रतिपादन करती हैं। कतेब=शब्द मुसलमानों के धार्मिक ग्रन्थ का भी वाचक है। इस पक्ष में यह अर्थ है। जैसे वेद तथा गुरु वाणी में ईश्वर से सृष्टि की उत्पत्ति बताई है। वैसे ही समग्र सृष्टि के भेदों को संक्षेप से अठारह हजार प्रतिपादन करती हुई कुरानादि कतेबें वेद के समान वास्तव में एक अद्वितीय तत्त्व का ही प्रतिपादन करती हैं। इसलिये वेदानुयायी अन्य मत तथा यवन मत एक अद्वितीय तत्त्व के बोधक होने के कारण लक्ष्यार्थ में प्रमाण हैं।

प्रश्न— जैसे गुरुवाणी तथा वैदिक वाक्यों से स्वर्गादि लोकों का परोक्ष ज्ञान होता है। वैसे ही कोसों और वर्षों के हिसाब से अद्वितीय वस्तु को वेद भी क्या परोक्ष प्रतिपादन करता है?

समाधान— "लेखा होइ त लिखीऐ लेखै होइ विणासु"

स्वर्गादि के समान इतने कोसों पर और इतने ही वर्षों से है इस प्रकार परमात्मा का भी यदि लेखा होइ=हिसाब किताब होता तब जिज्ञासु को समझाने के लिये वेद में भी लिखिऐ परोक्ष लिखा जाता, परन्तु वेद एवं गुरुवाणी परमेश्वर को देश काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित कहते हैं। देश काल की सीमा में यदि ईश्वर को भी मान लिया जाये तब विनश्वर स्वर्ग के समान उसे भी विनाशी मानना होगा। परन्तु गुरुवाणी में उसे अविनाशी बताया है।

"ओह अबिनासी बिनसत नाही। ना को आवै ना को जाही॥ गु० ग्र० पृ० ७३६

प्रश्न— जिस परमात्मा को अनेक गुरु वचन अविनाशी और अपरोक्ष कहते हैं, कृपया आप भी उस स्वरूप का निरूपण करें?

समाधान— नानक वडा आखीऐ आपे जाणै आपु"

श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि वेद ने परमात्मा को आकाश के सदृश वड़ा= व्यापक एवं महान् प्रतिपादन किया है।

"आकाशवत् सर्व गतश्च नित्यः। एवम्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गगनु अगंमु अनाथु आजोनी" गु० ग्र० पृ० ६३२

तथा वह परमात्मा 'आपै जाणै आपु" अपने आप को स्वयं ही जानता है। अपने ज्ञान के लिये उसे किसी अन्य प्रमाण जी आवश्यकता नहीं। गुरुवाणी तथा वेद उसको स्वयं प्रकाश कहते हैं। जो किसी अन्य प्रकाश से प्रकाशित न हो और अपने प्रकाश से सर्व को प्रकाशित करे उसे स्वयं प्रकाश कहते हैं।

"तिसदै चानणि सभ महि चानणु होए" एवम्

"तस्य भासा सर्वमिदं विभाति"

❀ द्वाविंशतितमं मन्त्रं समाप्तम् ❀

पूर्व ईश्वरीय सृष्टि की अनन्तता कह कर अब ईश्वर की अनन्तता को प्रतिपादन करते हैं।

मूल— सालाही सालाहि एती सुरति न पाइआ।
नदीआ अतै वाह पवहि समुंदि न जाणीअहि॥
समुंद साह सुलतान गिरहा सेती मालु धनु।
कीड़ी तुलि न होवनी जे तिसु मनहु न वीसरहि॥२३॥

शब्दार्थ— सालाही=प्रशंसा करने योग्य अकाल पुरुष परमात्मा की, सालाहि=प्रशंसा सभी श्रेष्ठ पुरुष करते हैं। परन्तु ईश्वर की महिमा, एती=इतनी ही है इस बात का सुरति=ज्ञान उन्हें न पाईआ=प्राप्त नहीं हुआ जैसे, नदीआ=बड़ी बड़ी नदियां और वाह=छोटे छोटे जल प्रवाह, नाले, पवहि समुंदि=समुद्र में पड़ते हैं परन्तु समुद्र के अन्त को न जाणी अहि=नहीं जानते कि इतना विशाल और गम्भीर है।

समंद साह सुलतान गिरहा सेती मालु धनु।
कीड़ी तुलि म होवनी जे तिसु मनहु न वीसरहि॥

'साह सुलतान=राजाओं का राजा सम्राट परमेश्वर समुद्र के समान है। जे=जो जिज्ञासु भक्त, तिसु मनहु न वीसरहि=उस परमेश्वर को मन से नहीं भुलाते वे प्रेमी भक्त समुंद=ब्रह्म रूप हो जाते हैं। और जो अहङ्कारी, गिरहा सेती=इन्द्र के समान विभूति वाले अथवा पर्वतों के समान अधिकाधिक धन सम्पत्ति तथा गुण गौरव वाले हैं। वे अभिमानी पुरुष कीड़ी तुलि=चींटी के समान तुच्छ निष्किञ्चन ईश्वरभक्त के समान न होवनि=नहीं हो सकते। अर्थात् निर्धन होते हुए भी ईश्वर भक्त सर्व से महान् श्रेष्ठ है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भावार्थ—पूजनीय गुरुदेव यद्यपि सृष्टि अनन्त है तथापि ईश्वर की भक्ति करने वाले साधु महात्मा सृष्टि तथा सृष्टि कर्ता के अन्त को अवश्य जानते होंगे ? सिद्ध मण्डली की बात को सुन कर गुरुदेव जी कहते हैं कि प्रतिदिन सुन्दर २ स्तोत्रों से परमात्मा की स्तुति करने वाले साधु महात्माओं को भी ऐसा निश्चित ज्ञान नहीं, कि परमात्मा की महिमा इतनी बड़ी है । जैसे नदियां और नाले प्रतिदिन समुद्र में पड़ते हैं, परन्तु समुद्र की गम्भीरता, विशालता, और उसकी महिमा को नहीं जानते कि इतना लम्बा और चौड़ा है । इसी प्रकार ईश्वर के भक्त भी परमेश्वर की महिमा को निश्चित रूप से नहीं जानते । समुद्र के तुल्य बड़े २ राजा महाराजा, धनी, मानी, चक्रवर्ती, जिन्हों के पास पहाड़ों के समान वैभव सम्पत्ति है वे साधारण तुच्छ निष्कंचन उस ईश्वर भक्त के समान नहीं हो सकते। जिसे परमपिता परमात्मा एक क्षण के लिए भी विस्मृत नहीं होता।

प्रश्न—आपने पूर्व जीव को ईश्वर स्वरूप बतलाया है, परन्तु इस बात को व्यवहार कुशल संसारी लोग क्यों नहीं जानते ? ऐसा पूछने पर गुरुजी समाधान करते हैं ।

सालाही सालाहि एती सुरति न पाईआ ।

विशेष व्याख्या…

सालाही—प्रशंसा के योग्य, सालाहि=स्तोत्र, एती=इस, सुरति=प्रेम, न पाईआ—प्राप्त नहीं हुआ, अर्थ यह है जो परमेश्वर अनेक प्रकार के स्तोत्रों से प्रशंसा करने के योग्य है, उसके प्रति प्रजा के मन में प्रेम उत्पन्न नहीं हुआ । इसलिये श्रेष्ठ कुलों में उत्पन्न होकर भी तथा जानने के योग्य साधन सामग्री को प्राप्त करके भी व्यवहार कुशल ये संसार के लोग ईश्वर को नहीं जानते।

प्रश्न— परम प्रेमास्पद, परमानन्द स्वरूप परमात्मा में लोगों को प्रेम क्यों नहीं होता ?

समाधान— नदीआ अतै वाह पवहि समुंदि न जाणीअहि ।

अज्ञानी लोगों को विषयों में आनन्द की भ्रान्ति हो रही है । वर्षाऋतु में जैसे नदियां नाले समुद्र में पड़ते हैं, वैसे अज्ञानी भी अपने स्वरूप से अपरिचित होने के कारण शब्द स्पर्शादि विषय रूप महान समुद्र में गिर रहे हैं । यहां पर गिरने मात्र में दृष्टान्त है ।

भाव यह है कि संसारी लोग स्वरूप के अज्ञान से विषयों में सुख बुद्धि से प्रवृत्त होते हैं । परन्तु गुरुउपदेश से अपने आत्म रूप को परमानन्द स्वरूप जानकर विषयों से निवृत्त नहीं होते । इस लिए ज्ञान की प्रमाणादि सामग्री के होते हुए भी परम प्रेमास्पद स्वरूप में संसारी लोगों का प्रेम नहीं होता, इस प्रकार सर्व की दशा बताकर ज्ञान सामग्री के होते हुए भी, जो पुरुष ईश्वर विमुख होकर विषयासक्ति में डूबे हुए अपने को बड़ा धनी मानते हैं, वैराग्य के लिए उनकी निन्दा करते हैं।

'समुंद साह सुलतान गिरहा सेती मालु धनु'

साह=शब्द धनी का वाचक है सुलतानु=चक्रवर्ती राजा का नाम है। समुंद=पद उपमा बोधक है। गिरहा=पाकट में मालु=मोती जवाहर इत्यादि धनु=रुपया आदि, भाव यह है ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कि जैसे समुद्र नदियों का स्वामी है वैसे चक्रवर्ती राजे महाराजे जनता के स्वामी हैं, जिन्होंकी जेवों में याचकों को देने के लिए बहुमूल्य रत्नों की माला सुवर्ण मुद्रा गिन्नी आदि विविध प्रकार का धन है। ऐसे उदार आत्मा राजा यदि ईश्वर विमुख हैं तो ऐश्वर्यवान् होते हुए भी तुच्छ हैं। अथवा **'गिरहा सेती मालु धनु'** जिनकी हुकम रूप वाणी के साथ पशु आदि माल और सुवर्णादि धन जिनके सामने लोक हाजिर कर देते हैं। ऐसे तेजस्वी शासक भी यदि विषय रूप संसार समुद्र में निमग्न हैं, तव वह कीटों के तुल्य तुच्छ जीवों के समान हैं। यदि धनवान् लोगों को परमेश्वर मन से नहीं भूलता तव वह लोक कीटों के तुल्य नहीं किन्त सर्वोत्तम हैं इसी भाय को आगे के वचन के द्वारा गुरुजी व्यक्त करते हैं।

कीड़ी तुलि न होवनी जि तिसु मनहु न वीसरहि।

भाव यह है। यद्यषि धनवान् इस काल में अपने ऐश्वर्य एवं शासन के प्रभाव से अग्रगण्य एवं मुख्य हैं तथापि विषयासक्ति से ईश्वर विमुख होने के कारण आगामी जन्मों में कीटादि निषिद्ध योनियों को प्राप्त होंगे। इसलिये वर्तमान काल में भी वह कीटों के तुल्य तुच्छ जीवों के समान हैं। यदि वे राजे महाराजे वर्तमान काल में परमेश्वर को मन से नहीं भूलते तव वे लोग कीड़ों के तुल्य न हैं न होंगे। जो पुरुष अनन्त परमेश्वर को अपना स्वरूप जानकर सर्वदा चिन्तन करने वाला है। वह बड़ा धनवान् और प्रजा के आदर का पात्र है। शेष धनवान् भी तुच्छ और उपेक्षणीय है। ऐसा कहने से यह सिद्ध हुआ कि परमेश्वर की प्राप्ति में जाति वर्ण स्वरूप एवं धन की अपेक्षा नहीं केवल विवेक वैराग्यादि की आवश्यकता हैं। यदि नीच जाति कुल वर्ण का पुरुष भी विवेकादि साधन सम्पन्न है तब उसे ईश्वर प्राप्ति अवश्य होगी। इसमें किंचन मात्र भी सन्देह नहीं भगवद्गीता के नवमे अध्याय मे भगवान् श्रीकृष्ण ने इसी भाव को व्यक्त किया हैं।

मांहि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपिस्युः पाप योनयः।

स्त्रियो वैस्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगतिम्॥

स्त्री, वैश्य, शूद्रादि तथा पाप योनि वाले जो भी हैं, वे मेरी शरण होकर परम गति को प्राप्त होते हैं।

त्रयोविंशति तमंमन्त्रं समाप्तम्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मूल—अंतु न सिफती कहणि न अंतु। अंतु न करणै देणि न अंतु।
अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु। अंतु न जापै किआ मनि मंतु।
अंतु न जापै कीता आकारु। अंतु न जापै पारावारु।
अंत कारणि केते बिललाहि। ताके अंत न पाए जाहि।
एहु अंतु न जाणै कोइ। बहुता कहीए बहुता होए।
बडा साहिबु ऊचा थाउ। ऊचे ऊपरि ऊचा नाउ।
एवड ऊचा होवै कोइ। तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ।
जे बडु आपि जाणै आपिआपि। नानक नदरी करमी दाति ॥२४॥

शब्दार्थ— अंतु न सिफती कहणि न अंतु। अंतु न करणै देणि न अंतु।

सिफती=प्रशंसनीय ईश्वर का न तो अन्त है और नाही स्तुति तथा स्तुतियों को कहणि=कहने वालों का अन्त है तथा ईश्वर के करणै=किये हुये कार्यों का, अर्थात् प्रपञ्च रचना का अंतुन=अन्त नहीं है। और ईश्वर के, देणि=जीवों को दिये हुये पदार्थों का भी अन्त नहीं है।

अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु। अंतु न जापै किआ मनि मंतु।

प्रशंसनीय ईश्वर के वेखणि=देखने वाले ज्ञानियों का, अंतु न=अन्त नहीं है। तथा ईश्वर के यश को सुणणि=सुनने वाले श्रोताओं का, न अंतु=अन्त नहीं है। श्लाघा योग्य ईश्वर के, मनि=मन में, 'किआ मंतु=क्या विचार है इस बात का भी, अंतु न जापै=अन्त नहीं जाना जाता।

अंतु न जापै कीता आकारु। अंतु न जापै पारावारु।

ईश्वर के स्थावर जंगमात्मक स्थूल प्रपञ्च के कीता आकारु=किये हुये आकार प्रकार का अंतु न जापै=अन्त नहीं जाना जाता तथा संसार के, पारावारु=विस्तार की सीमा का, अंतु न जापै=अन्त नहीं जाना जाता अर्थात संसार के इस पार और उस पार का, एवं उसके आकार प्रकार का किसी को अन्त नहीं पाता।

अंत कारणि केते बिललाहि। ताके अंत न पाए जाहि।

जगतपति परमेश्वर के, अंत कारणि=अन्त को पाने के लिये, केते=कितने ही योगी तपस्वी एवं विद्वान्, बिललाहि=विलाप करते हैं। अर्थात् अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार यत्न करते हैं। ताके=परन्तु उस ईश्वर के अंत न पाए जाहि=अन्त को प्राप्त नहीं कर सके।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एहु अंतु न जाणै कोइ । बहुता कहीऐ बहुता होए ।

ईश्वर की महिमा एहु =इतनी ही है, अंतु =इसका अन्त न जाणै कोइ =कोई नहीं जानता । बहुता कहीऐ =जितना अधिक लोग उसे कहते हैं, बहुता होए =उतना ही अधिक हो जाता है। अर्थात् मन वाणी का अविषय होने के कारण उसे पूर्णतया कह नहीं पाते ।

वडा साहिबु ऊचा थाउ । ऊचे ऊपर ऊचा नाउ ।

वडा साहिबु =परब्रह्म परमात्मा हिरण्यगर्भादि सर्व की अपेक्षा बड़ा है। ऊचा थाउ = उसके रहने का स्थान वैकुण्ठ भी स्वर्गादि की अपेक्षा ऊंचा है। ऊचे ऊपरि =सर्वोपरि, ऊचा नाउ= ईश्वर का नाम ऊंचा है अर्थात् सर्व से श्रेष्ठ है।

एवड ऊचा होवै कोइ । तिस ऊचे कउ जाणै सोइ ।

कोइ =जब कोई, एवड =इतना ऊचा होवै =महान् हो तब सोइ =वह मनुष्य तिस ऊचे कउ =उस ऊंचे अकाल पुरुष के भेद, जाणै =निश्चित रूप से जान सकता है । अर्थात न कोई ईश्वर के सदृश है, और न कोई उसके रहस्य को इदमित्थम् भाव से जान सकता है।

जे वड आपि जाणै आपि आपि ।

जेवड =जितना बड़ा परमेश्वर, आपि =आप है। जाणै आपि आपि = अपने आपको वह स्वयं ही जानता है।

नानक नदरी करमी दाति ।

श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं कि, नदरी =परमेश्वर जीवों के, करमी =कर्मों के अनुसार, दाति =खाने पीने के उपभोग्य पदार्थों को देता है।

भावार्थ— सिद्ध मण्डली ने कहा गुरुदेव ! सर्व शक्तिमान् परमेश्वर के गुण और महिमा की कुछ प्रशंसा करके बताओ ।

उत्तर में श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं कि न तो प्रशंसनीय ईश्वर का अन्त है और न उसके गुणों का अन्त है, और न ही प्रशंसा करने वाले भक्तों का अन्त है। न ईश्वर की रचना का अन्त है, और न ही उसके दिए हुए पदार्थों का अन्त है। न तो ईश्वर को देखने वाले भक्तों का अन्त है, और न ही उसके यश को श्रवण करने वाले प्रेमियों का अन्त है । श्लाघनीय ईश्वर के मन में क्या मन्त्रणा और क्या विचार है, इसका भी कोई अन्त नहीं जानता। ईश्वर की बनाई हुई स्थावर जङ्गम रूप सृष्टि के आकार प्रकार का भी कोई अन्त नहीं जानता तथा संसार के विस्तार की सीमा का भी कोई अन्त नहीं जानता ।

यथा--नालि कुटंबु साथ बरदाता, ब्रह्मा भालण सृष्टि गइआ ।
आगे अन्तु न पाइओ ताका, कंसु छेदि क्या बडा भइआ ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मूल—अंतु न सिफती कहणि न अंतु। अंतु न करणै देणि न अंतु।
अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु। अंतु न जापै किआ मनि मंतु।
अंतु न जापै कीता आकारु। अंतु न जापै पारावारु।
अंत कारणि केते बिललाहि। ताके अंत न पाए जाहि।
एहु अंतु न जाणै कोइ। बहुता कहीए बहुता होए।
बडा साहिबु ऊचा थाउ। ऊचे ऊपरि ऊचा नाउ।
एवड ऊचा होवै कोइ। तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ।
जे बडु आपि जाणै आपिआपि। नानक नदरी करमी दाति ॥२४॥

शब्दार्थ— अंतु न सिफती कहणि न अंतु। अंतु न करणै देणि न अंतु।

सिफती=प्रशंसनीय ईश्वर का न तो अन्त है और नाही स्तुति तथा स्तुतियों को कहणि= कहने वालों का अन्त है तथा ईश्वर के करणै=किये हुये कार्यों का, अर्थात् प्रपञ्च रचना का अंतुन= अन्त नहीं है। और ईश्वर के, देणि=जीवों को दिये हुये पदार्थों का भी अन्त नहीं है।

अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु। अंतु न जापै किआ मनि मंतु।

प्रशंसनीय ईश्वर के वेखणि=देखने वाले ज्ञानियों का, अंतु न=अन्त नहीं है। तथा ईश्वर के यश को सुणणि=सुनने वाले श्रोताओं का, न अंतु=अन्त नहीं है। श्लाघा योग्य ईश्वर के, मनि=मन में, 'किआ मंतु=क्या विचार है इस बात का भी, अंतु न जापै=अन्त नहीं जाना जाता।

अंतु न जापै कीता आकारु। अंतु न जापै पारावारु।

ईश्वर के स्थावर जंगमात्मक स्थूल प्रपञ्च के कीता आकारु=किये हुये आकार प्रकार का अंतु न जापै=अन्त नहीं जाना जाता तथा संसार के, पारावारु=विस्तार की सीमा का, अंतु न जापै=अन्त नहीं जाना जाता अर्थात संसार के इस पार और उस पार का, एवं उसके आकार प्रकार का किसी को अन्त नहीं पाता।

अंत कारणि केते बिललाहि। ताके अंत न पाए जाहि।

जगतपति परमेश्वर के, अंत कारणि=अन्त को पाने के लिये, केते=कितने ही योगी तपस्वी एवं विद्वान्, बिललाहि=विलाप करते हैं। अर्थात् अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार यत्न करते हैं। ताके=परन्तु उस ईश्वर के अंत न पाए जाहि=अन्त को प्राप्त नहीं कर सके।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एहु अंतु न जाणै कोइ। बहुता कहीऐ बहुता होए।

ईश्वर की महिमा एहु =इतनी ही है, अंतु =इसका अन्त न जाणै कोइ =कोई नहीं जानता। बहुता कहीऐ =जितना अधिक लोग उसे कहते हैं, बहुता होए =उतना ही अधिक हो जाता है। अर्थात् मन वाणी का अविषय होने के कारण उसे पूर्णतया कह नहीं पाते।

वडा साहिबु ऊचा थाउ। ऊचे ऊपर ऊचा नाउ।

वडा साहिबु =परब्रह्म परमात्मा हिरण्यगर्भादि सर्व की अपेक्षा बड़ा है। ऊचा थाउ = उसके रहने का स्थान वैकुण्ठ भी स्वर्गादि की अपेक्षा ऊंचा है। ऊचे ऊपरि =सर्वोपरि, ऊचा नाउ= ईश्वर का नाम ऊंचा है अर्थात् सर्व से श्रेष्ठ है।

एवड ऊचा होवै कोइ। तिस ऊचे कउ जाणै सोइ।

कोइ =जब कोई, एवड =इतना ऊचा होवै =महान् हो तब सोइ =वह मनुष्य तिस ऊचे कउ =उस ऊंचे अकाल पुरुष के भेद, जाणै =निश्चित रूप से जान सकता है। अर्थात न कोई ईश्वर के सदृश है, और न कोई उसके रहस्य को इदमित्थम् भाव से जान सकता है।

जे वड आपि जाणै आपि आपि।

जेवड =जितना बड़ा परमेश्वर, आपि =आप है। जाणै आपि आपि =अपने आपको वह स्वयं ही जानता है।

नानक नदरी करमी दाति।

श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं कि, नदरी =परमेश्वर जीवों के, करमी =कर्मों के अनुसार, दाति =खाने पीने के उपभोग्य पदार्थों को देता है।

भावार्थ— सिद्ध मण्डली ने कहा गुरुदेव ! सर्व शक्तिमान् परमेश्वर के गुण और महिमा की कुछ प्रशंसा करके बताओ।

उत्तर में श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं कि न तो प्रशंसनीय ईश्वर का अन्त है और न उसके गुणों का अन्त है, और न ही प्रशंसा करने वाले भक्तों का अन्त है। न ईश्वर की रचना का अन्त है, और न ही उसके दिए हुए पदार्थों का अन्त है। न तो ईश्वर को देखने वाले भक्तों का अन्त है, और न ही उसके यश को श्रवण करने वाले प्रेमियों का अन्त है। श्लाघनीय ईश्वर के मन में क्या मन्त्रणा और क्या विचार है, इसका भी कोई अन्त नहीं जानता। ईश्वर की बनाई हुई स्थावर जङ्गम रूप सृष्टि के आकार प्रकार का भी कोई अन्त नहीं जानता तथा संसार के विस्तार की सीमा का भी कोई अन्त नहीं जानता।

यथा—नालि कुटंबु साथ बरदाता, ब्रह्मा भालण सृष्टि गइआ।
आगे अन्तु न पाइओ ताका, कंसु छेदि क्या बडा भइआ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मूल—अंतु न सिफती कहणि न अंतु। अंतु न करणै देणि न अंतु।
अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु। अंतु न जापै किआ मनि मंतु।
अंतु न जापै कीता आकारु। अंतु न जापै पारावारु।
अंत कारणि केते बिललाहि। ताके अंत न पाए जाहि।
एहु अंतु न जाणै कोइ। बहुता कहीए बहुता होए।
बडा साहिबु ऊचा थाउ। ऊचे ऊपरि ऊचा नाउ।
एवड ऊचा होवै कोइ। तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ।
जे बडु आपि जाणै आपिआपि। नानक नदरी करमी दाति ॥२४॥

शब्दार्थ— अंतु न सिफती कहणि न अंतु। अंतु न करणै देणि न अंतु।

सिफती=प्रशंसनीय ईश्वर का न तो अन्त है और नाही स्तुति तथा स्तुतियों को कहणि=कहने वालों का अन्त है तथा ईश्वर के करणै=किये हुये कार्यों का, अर्थात् प्रपञ्च रचना का अंतुन=अन्त नहीं है। और ईश्वर के, देणि=जीवों को दिये हुये पदार्थों का भी अन्त नहीं है।

अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु। अंतु न जापै किआ मनि मंतु।

प्रशंसनीय ईश्वर के वेखणि=देखने वाले ज्ञानियों का, अंतु न=अन्त नहीं है। तथा ईश्वर के यश को सुणणि=सुनने वाले श्रोताओं का, न अंतु=अन्त नहीं है। श्लाघा योग्य ईश्वर के, मनि=मन में, 'किआ मंतु=क्या विचार है इस बात का भी, अंतु न जापै=अन्त नहीं जाना जाता।

अंतु न जापै कीता आकारु। अंतु न जापै पारावारु।

ईश्वर के स्थावर जंगमात्मक स्थूल प्रपञ्च के कीता आकारु=किये हुये आकार प्रकार का अंतु न जापै=अन्त नहीं जाना जाता तथा संसार के, पारावारु=विस्तार की सीमा का, अंतु न जापै=अन्त नहीं जाना जाता अर्थात संसार के इस पार और उस पार का, एवं उसके आकार प्रकार का किसी को अन्त नहीं पाता।

अंत कारणि केते बिललाहि। ताके अंत न पाए जाहि।

जगत्पति परमेश्वर के, अंत कारणि=अन्त को पाने के लिये, केते=कितने ही योगी तपस्वी एवं विद्वान्, बिललाहि=विलाप करते हैं। अर्थात् अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार यत्न करते हैं। ताके=परन्तु उस ईश्वर के अंत न पाए जाहि=अन्त को प्राप्त नहीं कर सके।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एहु अंतु न जाणै कोइ। बहुता कहीऐ बहुता होए।

ईश्वर की महिमा एहु =इतनी ही है, अंतु =इसका अन्त न जाणै कोइ =कोई नहीं जानता। बहुता कहीऐ =जितना अधिक लोग उसे कहते हैं, बहुता होए =उतना ही अधिक हो जाता है। अर्थात् मन वाणी का अविषय होने के कारण उसे पूर्णतया कह नहीं पाते।

वडा साहिबु ऊचा थाउ। ऊचे ऊपर ऊचा नाउ।

वडा साहिबु =परब्रह्म परमात्मा हिरण्यगर्भादि सर्व की अपेक्षा बड़ा है। ऊचा थाउ = उसके रहने का स्थान वैकुण्ठ भी स्वर्गादि की अपेक्षा ऊंचा है। ऊचे ऊपरि =सर्वोपरि, ऊचा नाउ= ईश्वर का नाम ऊंचा है अर्थात् सर्व से श्रेष्ठ है।

एवड ऊचा होवै कोइ। तिस ऊचे कउ जाणै सोइ।

कोइ =जब कोई, एवड =इतना ऊचा होवै =महान् हो तब सोइ =वह मनुष्य तिस ऊचे कउ =उस ऊंचे अकाल पुरुष के भेद, जाणै =निश्चित रूप से जान सकता है। अर्थात न कोई ईश्वर के सदृश है, और न कोई उसके रहस्य को इदमित्थम् भाव से जान सकता है।

जे वड आपि जाणै आपि आपि।

जेवड =जितना बड़ा परमेश्वर, आपि =आप है। जाणै आपि आपि =अपने आपको वह स्वयं ही जानता है।

नानक नदरी करमी दाति।

श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं कि, नदरी =परमेश्वर जीवों के, करमी =कर्मों के अनुसार, दाति =खाने पीने के उपभोग्य पदार्थों को देता है।

भावार्थ— सिद्ध मण्डली ने कहा गुरुदेव! सर्व शक्तिमान् परमेश्वर के गुण और महिमा की कुछ प्रशंसा करके बताओ।

उत्तर में श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं कि न तो प्रशंसनीय ईश्वर का अन्त है और न उसके गुणों का अन्त है, और न ही प्रशंसा करने वाले भक्तों का अन्त है। न ईश्वर की रचना का अन्त है, और न ही उसके दिए हुए पदार्थों का अन्त है। न तो ईश्वर को देखने वाले भक्तों का अन्त है, और न ही उसके यश को श्रवण करने वाले प्रेमियों का अन्त है। श्लाघनीय ईश्वर के मन में क्या मन्त्रणा और क्या विचार है, इसका भी कोई अन्त नहीं जानता। ईश्वर की बनाई हुई स्थावर जङ्गम रूप सृष्टि के आकार प्रकार का भी कोई अन्त नहीं जानता तथा संसार के विस्तार की सीमा का भी कोई अन्त नहीं जानता।

यथा——नालि कुटंबु साथ बरदाता, ब्रह्मा भालण सृष्टि गइआ।

आगे अन्तु न पाइओ ताका, कंसु छेदि क्या बडा भइआ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ईश्वर के अन्त को पाने के लिये कितने हठ योगी साधु महात्मा अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार प्रयत्न करते हैं। परन्तु उस ईश्वर के अन्त को प्राप्त नहीं कर सके। परमात्मा की महिमा इतनी ही है और इतनी बड़ी है इसका कोई अन्त नहीं जान सकता। उसे जितना अधिक लोग कहते हैं वह उतना ही अधिक और महान् है। मन वाणी का अविषय होने के कारण उसे पूर्णतया कोई कह नहीं सकता। परमेश्वर, हिरण्यगर्भ, प्रजापति आदि सर्व की अपेक्षा बड़ा है, और उसके रहने का स्थानभी स्वर्गादि लोकों की अपेक्षा ऊँचा है। सर्वोपरि ईश्वर का नाम ऊंचा और श्रेष्ठ है। यदि कोई व्यक्ति ईश्वर के समान महान् और ऊंचा हो तभी वह उस महान् ऊंचे सर्व श्रेष्ठ परमेश्वर को जान सकता है। जितना महान् और विशाल व्यापक परमेश्वर है इस बात को ईश्वर स्वयं ही जानता है। श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि यदि परमेश्वर की कृपा दृष्टि हो तभी इस जीव को कृपा की दात प्राप्त होती है। एवं परमेश्वर सभी जीवों को कर्मों के अनुसार खाने पीने के उपभोग्य पदार्थों को देता है।

जो पुरुष सर्वव्यापी परमात्मा का स्मरण करने वाले हैं वही सर्वोत्तम तथा माननीय हैं ईश्वर-विमुख धनी, मानी तुच्छ एव निर्धन हैं। ऐसा पूर्व में प्रतिपादन किया है। अब जिस परमेश्वर को आकाश के समान व्यापक और अनन्त बताया है, उसी ईश्वर की अनन्तता का प्रतिपादन करते हैं।

अंतु न सिफति कहणि न अंतु।

विशेष व्याख्या— यहां पर अन्तु पद भेद और परिच्छेद का वाचक है। सिफति पद स्तुति का बोधक है। गुणों के कथन करने का नाम नाम स्तुति है। अर्थ यह है—परमात्मा को व्यापक और अनन्त होने के कारण स्तुति से उसका परिच्छेद नहीं हो सकता। क्योंकि परमात्मा को निर्गुण होने से वास्तव में गुण कथन रूप स्तुति का उसमें अभाव है।

त्रिपुटी भेद को भ्रम रूप बता कर स्थूण खनन न्याय से पुनः भेद का सर्वथा अभाव बोधन करते हैं।

"अंतु न जापै पारावारु"

वह परमात्मा पारावारु परमानन्द रूप महासागर है। ज्ञानवान् की वृत्ति सर्वदा तदाकार रहती है। इसलिये उसे अंतु न जापै _ भेद कदापि प्रतीत नहीं होता। जैसे लवण की पुतली (डली) समुद्र की गम्भीरता को देखने के लिये नीचे की ओर गई थी परन्तु जल रूप हो जाने के कारण वापस लौट कर कुछ भी न बता सकी। वैसे ही ज्ञानी की वृत्ति सर्वदा ब्रह्माकार रहने के कारण त्रिपुरी रूप भेद का अनुभव नहीं करती। केवल अज्ञानी ही भेद का अनुभव करता है ज्ञानवान् नहीं।

प्रश्न— सर्वज्ञ परमात्मा से अल्पज्ञ जीव भिन्न है। इस प्रकार अनेक वादी भेद सिद्ध करते हैं। परन्तु आप कहते हैं कि ज्ञानवान को भेद प्रतीत नहीं होता? ऐसी आशङ्का को सुन कर गुरु जी समाधान करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"अंत कारणि केते बिललाहि"

अंत कारणि =जीवात्मा का परमात्मा से भेद सिद्ध करने के लिये, केते =अनेक वादी बिललाहि =अनेक भेद साधक युक्तियों का वाणी से प्रलाप करते हैं।

ताके अंत न पाए जाहि"

परन्तु ताके =उन भेद साधक युक्तियों से अंत न पाए जाहि =जीव का परमात्मा से भेद सिद्ध नहीं कर सकते। युक्ति एवं प्रमाण से विरुद्ध भेद को सिद्ध करने वाले भेदवादियों को गुरुवाणी एवं शास्त्रों ने दण्ड का विधान किया है।

"जब इनि किछु करि माने भेदा। तब ते दूख डण्ड अरु खेदा। गु० ग्र० पृ० २३५

द्वितीयाद्वै भयं भवति। बृहदारण्यक

प्रश्न—जो लोग जीव ईश्वरकी एकता जानते हैं उन्हें किस पद की प्राप्ति होती है ?

समाधान— "एहु अंतु न जाणै कोइ। बहुता कहीऐ बहुता होइ"

जीव ईश्वर में भेद वादियों द्वारा माना हुआ एहु अंतु =यह भेद न जाणै कोइ =जो कोई अधिकारी नहीं जानता वह, बहुता होइ =ब्रह्म रूप होता है इस बात को बहुता कहीऐ =गुरु वाणी एवं वेद के अनेक वचन प्रतिपादन करते हैं।

"नानक ब्रह्मज्ञानी आपि परमेसुर" गु० ग्र० पृ० २७३

जब इस ते सभ बिनसे भरमा। भेदु नाहीं है पार ब्रहमा। गु० ग्र० पृ० २३५

एवम्—ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति। उपनिषद्

इसलिये ब्रह्म रूप होना अभेद दर्शन का फल है।

प्रश्न— पूर्व कही ज्ञानी की ब्रह्मरूपता क्या जाग्रत स्थानीय है ? अथवा स्वप्न सुषुप्ति में से कोई एक स्थानीय है ?

समाधान—"वड़ा साहिबु ऊचा थाउ। ऊचे उपरि ऊचा नाउ"

वडा साहिबु =व्यापक ब्रह्म ज्ञानी का स्व स्वरूप ऊचा थाउ =तुरीय चैतन्य रूप चतुर्थ स्थान है। असत् जड़ दुःख रूप होने के कारण विनाशी और तुच्छ रूप जाग्रतादि तीनों में से कोई नहीं।

प्रश्न— उस तुरीय पद का ज्ञान कैसे होता है ?

समाधान— ऊचे ऊपरि=सर्व से ऊचा स्थान जो तुरीय पद है उस स्थान का प्रतिपादक

"इह जग हरि का रूप है हरि रूप नदरी आइआ"

इत्यादि विविध वचनों में प्रतिपादित जो नाम है। वह भी ऊंचा है। इस प्रकार ब्रह्म ज्ञान का होना गुरु के उपदेश रूप नाम से कह कर मुक्ति ज्ञान से होती है, अब इसे बताते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"ए वडु ऊचा होवै कोइ । तिस ऊचे कउ जाणै सोइ ।

ए वडु ऊचा =जितना बड़ा ऊंचा तुरीय पद है, उतना ऊंचा तुरीय स्वरूप ब्रह्म होवै कोइ = कोई बिरला अधिकारी पुरुष होता है । तिस ऊचे कउ =उस तुरीय पद परमात्मा को गुरु उपदेश से जो जानता है । जाणै सोइ =वही तुरीय पद को प्राप्त होता है । इसी भाव का प्रतिपादक नीचे लिखा गुरु वाक्य है ।

गुरि सबदु दृढ़ाइआ परम पदु पाइआ । दुतीया गए सुख होऊ" गु० ग्र० पृ० ५३५

जिस अधिकारी की परमेश्वर के समान गुरु में भक्ति है। उस को यह ज्ञान रूप उत्तम वस्तु प्राप्त होती है इस बात को आगे बताते हैं ।

जे वडु आपि जाणै आपि आपि"

जे वडु आपि =जितना बड़ा ईश्वर है उसको जो अधिकारी पुरुष, जाणै आपि =अपने अन्तःकरण में जानता है उस जिज्ञासु को ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति ब्रह्मनिष्ठ गुरु से होती है ।

❀ चतुर्विंशतितमं मन्त्रं समाप्तम् ❀

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मूल—बहुता करमु लिखिआ ना जाइ। वडा दाता तिलु न तमाइ॥
केते मंगहि जोध अपार। केतिआ गणत नही वीचारु॥
केते खपि तुटहि वेकार। केते लै लै मुकरु पाहि॥
केते मूरख खाही खाहि। केतिआ दूख भूख सद मार॥
एहि भि दात तेरी दातार। बंदि खलासी भाणै होइ॥
होरु आखिन सकै कोइ। जे को खाइकु आखणि पाइ॥
ओहु जाणै जेतीआ मुहि खाइ। आपे जाणै आपे देइ॥
आखहि सिभि केई केइ। जिसनो बखसे सिफति सालाह॥
नानक पातिसाही पातिसाहु॥ २५॥

शब्दार्थ— बहुता करमु लिखिआ न जाइ। वडा दाता तिलु न तमाइ॥

परमेश्वर का करमु = दान कर्म वा अनुग्रह, बहुता = बहुत अधिक है, अर्थात् उसकी इयता कि इतना है, नहीं कह सकते। लिखिआ न जाइ = उसे लिख नहीं सकते। वडा दाता = परमेश्वर महान् दाता है। तिलु = तिल भर अर्थात् किंचन् मात्र भी, न तमाइ = उसे किसी से कुछ लेने की इच्छा नहीं, क्योंकि वह पूर्ण काम है।

केते मंगहि जोध अपार। केतिआ गणत नहीं वीचारु।

परमेश्वर से, केते = कितने ही शूरवीर, अपार = अधिक, जोध = शौर्य शूरवीरता, मंगहि = मांगते हैं। अर्थात् युद्ध भूमि में मेरी कदापि पराजय न हो। परमेश्वर से केतिआ = कितने ही जिज्ञासु पुरुष वीचारु = आत्म विचार को मांगते हैं जिन्होंकी गणत नहीं = गणना नहीं हो सकती अथवा केतिआ = और कितने ही जीव परमेश्वर से अनेक प्रकार के पदार्थों को मांगते हैं। जिन्हों की गणत = गणना का, नही वीचारु = विचार नहीं हो सकता। केते खपि तुटहि वेकार = पामर और विषयी, केते = कितनेही पुरुष, वेकार = विषय विकारों में, खपि = आसक्त होकर तुटहि = परमेश्वर से टूट जाते हैं, अर्थात् विमुख हो जाते हैं। केते लैलै मुकरु पाहि = केते = कितने ही कृतघ्न मनुष्य परमेश्वर से अनेक पदार्थों को लैलै = ले ले कर, मुकरु पाहि = इनकार कर देते हैं। अर्थात् परमेश्वर के किये हुए उपकारों को भुला देते हैं। केते मूरख खाही खाहि = केते मूरख = कितने ही अज्ञानी मूर्ख, खाही = पदार्थों को खाहि = खाते ही रहते हैं। अर्थात

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पदार्थों को जीवन भर खाकर भी तृप्त नहीं होते। केतिआ दूख भूख सदमार= केतिआ कितने ही लोगों को दूख भूख=भूख के दुःख की सदमार=सर्वदा मार ही पड़ती है। अर्थात् भूख से सर्वदा पीड़ित रहते हैं, भरपेट उन्हें खाने को भोजन भी नहीं मिलता। इन क्लेशों से छुटकारा पाने के लिये ईश्वर के आगे इस प्रकार प्रार्थना करे।

एहिभि दात तेरी दातार=सभी के देने वाले परमेश्वर? एहिभि=यह भूख का दुःख भी-- तेरीदाति=तेरी ही दी हुई दात है। अर्थात् विवेक शील भक्त जन ईश्वर इच्छा से प्राप्त दुःख सुख में सर्वदा प्रसन्न रहते हैं। क्योंकि वह समझते हैं कि सुख दुःख जीवों को कर्मानुसार प्राप्त होते हैं। इसलिये ईश्वर इच्छा में सर्वदा प्रसन्न रहना हमारा कर्त्तव्य है।

बंदि खलासी भाणै होइ। होरु आखि न सकै कोइ॥

इस संसार रूप कारागार में जीव का, बंदि =बन्दी होना अर्थात् कैद होना और चौरासी के चक्र से खलासी मुक्त होना, बन्धनों से रहित होना ईश्वर के, भाणै =आज्ञा में होता है, होरु= और कोइ =कोई भी पुरुष, आखि न सकै= कह नहीं सकता कि ईश्वर ने ऐसा क्यों किया उसे ऐसा करना चाहिये नहीं था।

जे को खाइकु आखणि पाइ। ओहु जाणै जेतीआ मुहि खाइ॥

जे को =जो कोई, खाइकु —मूर्ख मनुष्य ईश्वर का तथा उसके दिये हुए पदार्थों का आखणि पा अन्त कहने लगे तव ओहु जाणै= वही भुक्त भोगी पुरुष जान सकता है कि परलोक में यमदूतों के द्वारा मुहि =मुख पर, जेतीआ =जितनी चोटों को खाइ =खाता है, सहन करता है। अर्थात् वेद शास्त्र गुरु वचनों के विरुद्ध अनर्गल प्रलाप करने वाले वञ्चक लोगों को यमराज अवश्य दण्ड देता है।

आपे जाणै आपै देइ। आखहि सिभि केई केइ॥

आपे—आपही परमेश्वर जाणै—जीवों के कर्मों को जानता है। तथा आपे—आपही देइ— कर्मों के अनुसार सभी जीवों को फल देता है इस बात को केई केइ कोई कोई जो विरले श्रेष्ठ पुरुष हैं सिभि =वे भी आखहि =कहते हैं।

जिसनो वखसे सिफति सालाह। नानक पाति साही पाति साह।

जिसनो= जिस प्रेमी भक्त को, सिफति= अकाल पुरुष परमात्मा सालाह= अपनी स्तुति कराने की शक्ति वखसै =प्रदान करता है। श्री गुरु नानक देवजी कहते हैं कि वह ईश्वर की स्तुति करने वाला प्रेमी भक्त पाति साही पातिसाहु=राजाओं का भी राजा है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यथा–'वसता तूटी झूपड़ी चीर सभि छिंना'।
जाति न पति न आदरो उदिआन भ्रमिंना॥
मित्र न इठि धन रूप हीण किछु साकु न सिंना।
राजा सगली सृसटिका हरि नाम मनु भिंना॥
तिसकी धूडि मनु उधरै प्रभु होइ सु प्रसंना॥ गु० ग्र० पृ० ७०७

भावार्थ—सिद्धों ने पूछा गुरुदेव! परमात्मा कितना बड़ा दाता है और उसकी दी हुई दात कितनी बड़ी है? ऐसी जिज्ञासा पर गुरुदेव जी कहते हैं। परमात्मा का दानकर्म अनुग्रह एवं उसकी दी हुई दात बहुत अधिक है उसे लिख नहीं सकते। ईश्वर सर्व से महान् दाता है उसे एक तिल मात्र भी किसी से कुछ लेने की इच्छा नहीं। क्योंकि वह पूर्ण काम है। निस्पृह होकर सर्व को दे रहा है।

यथा— जान को देत अजान को देत, जमीन को देत जमान को दे है॥

अच्छे बुरे सभी प्रकार के लोगों को अपनी कृपा से खाने पीने को निरन्तर दे रहा है। अनन्त योद्धा शूरवीर लोग परमात्मा से अनेक प्रकार के पदार्थ मांगते हैं कितने ही जिज्ञासु पुरुष ईश्वर से आत्म विचार को माँगते हैं। जिन्हों की गणना नहीं हो सकती। कितने ही पामर विषयी लोग विषय विकारों में आसक्त होकर ईश्वर से सर्वदा के लिये विमुख हो जाते हैं। कितने ही कृतघ्न मनुष्य परमेश्वर से अनेक पदार्थों को लेकर भी इनकार करते हैं। उसका धन्यवाद नहीं करते किन्तु उपालम्भ देते हैं कि हमें ईश्वर ने क्या दिया। कितने हो अज्ञानी लोग खाने पीने के पदार्थों को जीवन भर खाकर भी तृप्त नहीं होते।

कितने ही लोगों को दुःख और भूख की पीड़ा निरन्तर बनी रहती है शरीर से सर्वदा रोगी रहते हैं और पदार्थों के अभाव से निरन्तर दुःखी रहते हैं। क्लेशों से छुटकारा पाने के लिये ईश्वर से इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये।

हे दाता परमेश्वर! ये दुःख और भूख तेरी ही दी हुई दात है। क्योंकि दुःख और सुख जीवों को कर्मानुसार आप प्रदान करते हैं। इस संसार रूप कारागार से जीव का बन्दी और मुक्त होना ईश्वर की आज्ञा से ही होता है। कोई भी पुरुष कह नहीं सकता कि ईश्वर ने ऐसा क्यों किया उसे ऐसा करना चाहिये था। जो कोई मूर्ख मनुष्य ईश्वर का तथा उसके दिए हुए पदार्थों काअन्त कहने लगे तब परलोक में यमदूतों के द्वारा मुख पर जितनी चोटों को वह सहन करता है उसे वही भुक्त भोगी पुरुष ही जान सकता है, क्योंकि मिथ्यावादी अनर्गल प्रलाप करने वाले वञ्चकलोग यमराज के यहाँ अवश्य दण्ड के भागी होते हैं। आप ही परमेश्वर जीवों के कर्मों को जानता है, और आपही उन्हें कर्मों के अनुसार फल देता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परमात्मा फल प्रदाता है इसे विरले श्रेष्ठ पुरुष ही जानते हैं। अकाल पुरुष परमात्मा जिस प्रेमी भक्त को अपनी स्तुति करने की शक्ति प्रदान करता है, गुरु नानक देवजी कहते हैं, वह स्तुति करने वाला प्रेमी राजाओं का राजा है।

प्रश्न— जिस कर्म से ईश्वर का नाम कर्मी है उस जगद्रूप कर्म की व्याख्या करके समझाने की कृपा करें?

समाधान— बहुता करमु लिखिआ न जाइ ।

मदारी की माया के समान ईश्वर की माया से बना हुआ, बहुता करमु = जगद्रूप कर्म अनेक प्रकार का होने से, लिखिआनजाइ = लिखने में नहीं आ सकता। जैसे परमेश्वर की माया का स्वरूप सद् और असद् तथा सद् असद् उभय रूप से जाना नहीं जा सकता वैसे ही माया रचित प्रपञ्च का स्वरूप भी सद् और असद् तथा उभय रूप से जाना नहीं जा सकता।

प्रश्न- सभी प्राणी फल की इच्छा से कर्म करते हैं। जगत् रूप महान् कार्य को करने वाले ईश्वर को किस फल की इच्छा है? ऐसी शङ्का को सुन कर गुरुदेव उत्तर देते हैं!

"वडा दाता तिलु न तमाइ"—

उपासकों की इच्छा के अनुसार फल देने वाले हिरण्यगर्भ प्रजापति को भी ईश्वर सर्व प्रथम वेद विद्या का उपदेश देता है।

इसलिये वडा दाता = सम्पूर्ण दानियों से बड़ा दाता परमात्मा को तिलु न तमाइ = तनिक मात्र भी इच्छा नहीं। जगत् रचना से मुझे अमुक फल की प्राप्ति होगी ऐसी तनिक मात्र भी ईश्वर के मन में इच्छा नहीं क्योंकि उसे गुरुवाणी तथा गीता आप्त काम एवं निस्पृह प्रतिपादन करती हैं।

नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एवच कर्मणि। गी० अ३

'वे परवाहु अगोचरु आपि। आठ पहरि मन ताको जापि। गु० ग्र० पृ० ८६६
नानक विगसै वे परवाहु।

यह जगत् ईश्वर का कार्य है। इसकी रचना से ईश्वर को किसी फल की इच्छा नहीं यह बता कर अब अनेक कार्यों को लेकर ईश्वर को महादानी सिद्ध करते हैं।

"केते मंगहि जोध अपार"

यहां पर 'जोध—शब्द कठिन तपस्या का वाचक है। कितने सकामी पुरुष अपनी कामना की पूर्ति के लिये कठिन तपस्या करके ईश्वर से अनेक पदार्थों की याचना करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"केतिआ गणत नही वीचारु"

निष्काम कर्मों को करने से शुद्ध अन्तःकरण वाले अनेक पुरुषों को परमेश्वर ज्ञान वा हेतु विचार प्रदान करता है। भूत भविष्यत् वर्तमान में उन विचारशीलों की संख्या अनन्त होने के कारण गणना नहीं हो सकती।

यद्यपि— कोटि मधे कोई विरला सेवकु पूरनु भगत चिरानो। गु०ग्र०पृ० १२६६

तथा— जग महि उत्तम काढीअहि विरले केई केइ। ॥ गु०ग्र० पृ० ५१७

इत्यादि गुरु वचनों से श्रेष्ठ पुरुषों की न्यून संख्या बताई है। और यहाँ पर उन्हें अगणित कहा है तथापि पूर्वोक्त वचनों में ज्ञानियों की दुर्लभता का प्रतिपादन किया है। और यहाँ पर अधिकारियों को अगणित प्रतिपादन किया है। उत्तन मध्यम भेद से अधिकारियों का अनन्त होना स्वाभाविक है। इसलिए गुरु वचनों का आपस में विरोध नहीं। ईश्वर जैसे विचारवान् सात्त्विक पुरुषों को शुभ फल प्रदाता है वैसे विचारहीन राजस तामस पुरुषों को अशुभ फल देने वाला है। इसी बातको आगे निरूण करते हैं।

'केते खपि तुटहि वेकार'

खपि=शब्द आसक्ति का वाचक है। वेकार—शब्द षड् विकारों में से मरण विकार पूरक है।

कितने विचारहीन रजोगुणी एवं तमोगुणी पुरुष विषयों में आसक्त होकर मरण रूप विकार को प्राप्त हुये एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को प्राप्त होते हैं। इसलिए उनके अशुभ कर्मों के अनुसार ईश्वर उनको निषिद्ध शरीर देता हैं। निषिद्ध शरीरों को प्राप्त होकर रजोगुण तथा तमोगुण से असुर स्वभाव वाले पुरुष जो अशुभ कर्म करते हैं। उनको संक्षेप से कहते हैं।

'केते लै लै मुकरु पाहि'

कितने पुरुष आवश्यकता के अनुसार धनियों से ऋण लेकर वापस करने में इन्कार कर देते हैं। अर्थात् माँगने पर हमने तुम्हारे से कुछ नहीं लिया ऐसा मिथ्या भाषण करते हैं। मन्द कर्मों के अनुसार आसुरी प्रकृति वाले पुरुषों को ईश्वर मिथ्या भाषण परवञ्चना, दम्भ; कपटादि आसुरी सम्पत्ति प्रदान करता है। राजस, तामस, मिश्रित पुरुषों की दशा कहकर अब केवल तमोगुण युक्त पशु तुल्य जीवन वाले पुरुषों की दशा कहते हैं।

"केते मूरख खाही खाहि"

खाहीं =विषय, खाहि =खाना (भोगना) शास्त्र जन्य ज्ञान और लौकिक व्यवहार से हीन अनेक मूर्ख लोग कुमार्ग में प्रवृत्त करने वाले विषयों को अधिक राग युक्त होकर सेवन करते हैं परन्तु इस बात को नहीं जानते कि ये विषय हमें ही खा रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"कामु करोधु काइआ कउ गालै । जिउ कंचन सोहागा ढालै" गु० ग्र० पृ० ६३२

काम क्रोधादि को नरक का द्वार गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने बताया है।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
काम क्रोधस्तथालोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ गीता अ० १६

काम क्रोधादि ये तीनों नरक के द्वार हैं। इसलिये इन तीनों को यथा शक्ति त्यागने का यत्न करना चाहिये। वर्तमान काल में आसुरी सम्पत्ति वाले असुरों की दशा कह कर अब वैराग्य के लिये पूर्व जन्मों में जिन्होंने अशुभ कर्म किये हैं, उन्हें किस प्रकार का फल प्राप्त होता है इसे निरूपण करते हैं।

केतिआ दूख भूख सदमार।

पूर्व जन्म में पाप करने वाले कितने पापी पुरुषों को इस जन्म में मानसिक दुःख होता है। और अन्न जल की अप्राप्ति से भूख ओर प्यास से पीड़ित रहते हैं। एवं अशुभ कर्मों के प्रभाव से बाल्यावस्था में माता की ताड़ना, युवावस्था में चोरी आदि कुकर्म करने से राजा की ताड़ना तथा वृद्धावस्था में अशक्त होने के कारण पुत्रादि से भर्त्सन। तथा मृत्यु के समय यमदूतों की ताड़ना सहन करते हैं। इस प्रकार पाप कर्म के प्रभाव से पापी पुरुषों को सर्वदा मार पड़ती है। इसी अभिप्राय से गुरु जी ने "सदमार" शब्द का प्रयोग किया है। अथवा

केतिआ दूख भूख सदमार।

यह पंक्ति अत्यन्त तमोगुणी पशु योनी परक है। इसलिये अनेक पशुओं को दुःख और भूख सर्वदा सताते रहते हैं और उनके स्वामी सर्वदा उन्हें मारते पीटते रहते हैं। इसलिये हे जगदीश्वर! शुभ कर्मों के अनुसार आप श्रेष्ठ गति देते हैं वैसे अशुभ कर्मों से दुर्गति भी आप ही देते हैं। इस बात को आगे निरूपण करते हैं।

"एह भि दाति तेरी दातार"

हे परमेश्वर! जैसे शुभ कर्मों का फल देव योनि में सुख और मिश्रित कर्मों का फल मनुष्य योनि में दुःख और सुख और निष्काम कर्मोंका फल शुभ विचार आप देते हैं। वैसे निषिद्ध कर्मों का फल पशु योनि में दुःख भूख प्यास आदि भी आपही देते हैं। आपके अतिरिक्त और कोई देने वाला नहीं। शुभ एवं अशुभ प्रिय एवं अप्रिय आप की दी हुई दात है। यदि परमेश्वर कहे कि मैं तो सभी को मुक्ति ही देता हूं। कर्म और उसके फल में कर्तृत्त्व एवं भोक्तृत्त्व का अभिमान रूप बन्धन किसी को नहीं देता तब आप मुझे "एहभिदाति तेरी दातार" इस वचन से बन्धनदाता क्यों कहते हैं। इसके उत्तर में गुरु जी कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"बंदि खलासी भाणै होइ"

भाणै=नाम इच्छा का है। खलासी=नाम मुक्ति का है। बंदि=बन्धन। अर्थ इस प्रकार है, हे परमेश्वर ! अज्ञान कृत बन्धन और संसार बन्धनोंसे छूटना रूप मुक्ति आपकी इच्छा से ही होती है। तुम्हारी इच्छा के बिना निरन्तर प्रयत्न करने पर भी किसी से कुछ नहीं होता। अथवा भाणै पद ज्ञान का वाचक है। क्योंकि पहले ज्ञान होता है पश्चात् इच्छा होती है। इसलिये हे परमेश्वर ! जीवों को बन्ध और मुक्ति आपके माया वृत्ति रूप ज्ञान से होती है। बिना ज्ञान से नहीं होती, ज्ञान से बन्ध और मुक्ति होने की रीति यह है। चेतन में माया अपने सम्बन्ध से सम्पूर्ण कार्यों से प्रथम अपनी वृत्ति रूप ज्ञान को उत्पन्न करती है। ज्ञान के बाद एक से अनेक होने की इच्छा होती है। इच्छा के बाद माया त्रिधा अहङ्कार से लेकर कर्मफल को भोगने के लिये सम्पूर्ण स्थूल प्रपञ्च को बनाती है। जगत् को बना कर अज्ञानी जीवों को अपने अधीन करके देहादि में देहोऽहं गौरोऽहं कृष्णोऽहम् इत्यादि मिथ्या ज्ञान उत्पन्न करती है। मिथ्या ज्ञान के उत्तर काल में कर्तृत्त्व भोक्तृत्त्व रूप बन्ध को उत्पन्न करती है। इसलिये जिस ज्ञान द्वारा इच्छादि को उत्पन्न करके बन्ध की उत्पत्ति करती है वह ज्ञान ही बन्ध का कारण है। एवं जीवों ने ईश्वर की प्रसन्नता के लिये जो निष्काम कर्म किये हैं उन्हीं की सहायता से निष्कामी पुरुषों के हृदय में तत्त्व ज्ञान को उत्पन्न करके ईश्वरीय ज्ञान मुक्ति का साधक है। जैसे जल के तरङ्ग फेन बुदबुदादि जल स्वरूप हैं। वैसे माया का वृत्ति रूप ईश्वरीय ज्ञान भी माया स्वरूप है। माया अज्ञान का नाम है, और अज्ञान बन्ध का कारण है ज्ञान मुक्ति का कारण है। ज्ञान के बिना केवल कर्म तथा केवल उपासना वा कर्म उपासना दोनों मुक्ति के हेतु नहीं इसी बात को आगे गुरु जी कहते हैं।

होरु आखि न सकै कोइ

मुक्ति के प्रति ज्ञान के बिना होर=कर्म वा उपासना अथवा दोनों को मिला कर कोई भी वादी कारण नहीं कह सकता। क्योंकि मुक्ति केप्रति कर्म वा उपासना को हेतु मानने में श्रुति एवं युक्ति का प्रबल विरोध दिखाई देता है। अभिप्राय यह है अज्ञान तत्कार्य का नाश और परमानन्द की प्राप्ति मुक्ति है। ज्ञान के बिना केवल कर्म वा केवल उपासना अथवा कर्म उपासना दोनों से अज्ञान तत्कार्य का नाश नहीं हो सकता। यह बात सर्वानुभव सिद्ध है। जैसे रज्जु के अज्ञान से सर्प की भ्रान्ति उत्पन्न होती है। उसे दूर करने के लिये गरुड़ पुराण एवं उपनिषद् का पाठ रूप कर्म वा गरुड़ की उपासना रज्जु का अज्ञान दूर नहीं कर सकते।

केवल दीपक की सहायता से नेत्र द्वारा रज्जु को जान लेने पर रज्जु का अज्ञान और सर्प की भ्रान्ति दूर हो जाते हैं। रज्जु के वास्तविक स्वरूप का प्रकाश भी ज्ञान से ही होता है। कर्म अथवा उपासना से नहीं। जैसे दृष्टान्त में अज्ञान तत्कार्य का नाश और रज्जु के स्वरूप का प्रकाश ज्ञान से होता है। वैसे दार्ष्टान्त में भी अद्वितीय परमात्मा के परमानन्द स्वरूप का प्रकाश और अज्ञान तत्कार्य का नाश ज्ञान से ही होता है। इस अर्थ में श्रुति भी प्रमाण है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ज्ञानादेव तु कैवल्यं नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।

'साध संग भ्रमभै मिटै कथे नानक ब्रह्मज्ञान' ॥ गु०ग्र० पृ० १३·२

ब्रह्म वीचार विचारे कोइ । नानक ताको परम गति होइ ॥ गु० ग्र० पृ० ६००

इत्यादि अनेक गुरु वचन ज्ञान से मुक्ति का स्पष्ट प्रतिपादन करते हैं। यहां पर यह जानना आवश्यक है। जैसे कर्म और उपासना के संयोग से मुक्ति नहीं होती। वैसे कर्म और ज्ञान तथा उपासना एवं ज्ञान के संयोग से भी मुक्ति नहीं होती। न होने में यह हेतु है। शास्त्र में कर्म उपासना के संयोग से मुक्ति मानने को समुच्चय कहते हैं। क्रम समुच्चय और सम समुच्चय भेद से वह दो प्रकार का है। कर्म और ज्ञान में अथवा उपासना एवं ज्ञान में सम समुच्चय नहीं हो सकता, क्रम समुच्चय बन सकता है। जिस अन्तःकरण में ज्ञान उत्पन्न होता है, उसी में निष्काम कर्म एवं उपासना की जाती है। इसलिये प्रथम शुभकर्म तदनन्तर उपासना तदनन्तर ज्ञान इस प्रकार यथा क्रम से एक स्थान में करने का नाम क्रम समुच्चय है। यह क्रम समुच्चय मुक्ति में स्वीकार करना युक्ति युक्त है। परन्तु कर्म और उपासना तथा कर्म और ज्ञान का एक काल में एक स्थान में स्वीकार करना समसमुच्चय युक्ति संगत नहीं। इसमें यह हेतु है। जाति गोत्र और नाम का अभिमान करके ही कर्म किया जाता है। एवम् उपासना भी सेव्य सेवक का भेद मान करके ही की जाती है। परन्तु ज्ञान तो जाति गोत्र एवम् नामादि के अभिमान को दूर करके एवं सेव्य सेवकादि के भेद को दूर करके होता है। इसलिये अन्धकार और प्रकाश तथा शीत एवं उष्णता के समान परस्पर विरोधी होने के कारण कर्म उपासना आदि दोनों में समसमुच्चय नहीं बन सकता। इसलिये केवल कर्म को वा केवल उपासना को अथवा दोनों को इसी प्रकार कर्म ज्ञान वा ज्ञान उपासना दोनों को भी मुक्ति में कारण कोई नहीं कह सकता। इसी अभिप्राय से गुरु जी कहते हैं।

"होरु आखि न सकै कोइ'

वेदान्तियों से भिन्न जो समुच्चयवादी है उनमें से कोई भी केवल कर्म तथा केवल उपासना और इनके समुच्चय को मोक्ष के प्रति हेतु कथन नहीं कर सकते क्योंकि ऐसा स्वीकार करना श्रुति और युक्ति के विरुद्ध है।

प्रश्न—समुच्चय वादी भी जबकि श्रुति का सहारा लेता है, तब वेद के अनुसारी आचार्य लोग उसका खण्डन क्यों करते हैं? ऐसा पूछने पर गुरुजी उत्तर देते हैं।

जे को खाइकु आखणि पाहि। ओहु जाणै जेतीआ मुहि खाइ।

जे को=जो कोई समुच्चय वादी खाइ=वेदानुयायी होकर भी, कु आखणि=वेद के अभिप्राय से विरुद्ध कथन को, पाहि=प्राप्त होता है ओहु जाणै=तब वही जानता है। जेतीआ मुहि खाइ= जितने तर्क वेद के रहस्य को जानने वाले मुख्य पुरुषों से खाता है, अर्थात् सहन करता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तात्पर्य यह है बन्ध निवृत्ति का कारण केवल ज्ञान है। आरोपित बन्ध की निवृत्ति अधिष्ठान के साक्षात्कार से होती है। प्रकारान्तर से नहीं। जैसे तम की निवृति प्रकाश से होती है वैसे ज्ञानरूप प्रकाश से आरोपित बन्धरूप तम की निवृत्ति होती है। इस अर्थ का प्रतिपादक स्मृति वचन भी है।

'कर्मणा बध्यते जन्तु विद्यया च विमुच्यते'

'तस्मात् कर्म न कुर्वन्ति यतयः पार दर्शिनः'

प्रश्न—गुरुवाणी एवं वेद के रहस्य को न जानने वाले मूर्खों की बात को त्याग कर यह बताने की कृपा करें कि तात्पर्य वेता सत्पुरुष कैसे होते हैं ? और उनका व्यवहार कैसे होता है ? ऐसा पूछने पर श्री गुरुदेवजी उत्तर देते हैं।

'आपे जाणै आपे देइ'

तात्पर्य को जानने वाले वे श्रेष्ठ पुरुष श्रवण मनन निदिध्यासनादि के द्वारा परब्रह्म को आपै जाणै=स्वस्वरूप से साक्षात्कार करते हैं। और आप साक्षात्कार करके पीछे उनकी शरण में आये अधिकारियों को उपदेश द्वारा आपे देइ=अपने स्वस्वरूप का प्रत्यक्ष करा देना रूप दान करते हैं।

प्रश्न—जिन अधिकारियों को ब्रह्मवेता उपदेश करते हैं वे भी आगे किसी को उपदेश करते हैं या नहीं ? ऐसा पूछने पर उत्तर में गुरुजी कहते हैं।

'आखहि सिभि केई केइ'

आखहि=उपदेश करते हैं, सिभि=वे भी अधिकारी, केई केइ=कोई कोई, अर्थात् ज्ञात ज्ञेय कोई २ अधिकारी तत्त्वदर्शी होकर शरण में आये जिज्ञासुओं को उनके कल्याण के लिये उत्तम उपदेश करता है। भाव यह है कोई तो स्वरूप का साक्षात्कार होने पर समाधि निष्ठ हो जाता है कोई एक अन्तःकरण के दोष से बहिर्मुख होकर वद्ध ज्ञानी हो जाता है। इन दोनों से उपदेश नहीं हो सकता, उपदेश उन्हीं से हो सकता है जो स्वयं मर्यादा में रह कर शिष्यों को भी उत्तम मर्यादा में रहने की शिक्षा देते हैं। इसलिए कोई २ तत्त्वदर्शी ब्रह्मविद्या का उपदेश करता है। क्योंकि ब्रह्मविद्या का वक्ता और श्रोता दोनों ही दुर्लभ हैं।

'आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानु शिष्टः॥ कठोपनिषद्

जग में उत्तम काढीऐ बिरले केई केइ॥

केई केइ=कह कर गुरुजी ने यह सूचित किया है। कि जो उत्तम अधिकारी उपदेश लेकर पवित्र मर्यादा का पालन करता है। वही राजाओं का राजा है।

'सेई पूरे साह जिनी पूरा पाइआ'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न—जैसे मर्यादा में रहने वाले ब्रह्मदर्शी गुरु अधिकारी पुरुषों को अपने सदुपदेशों से ज्ञान देकर विचार शील बना देते हैं। वैसे शरण में आये साधन हीन बहिर्मुख पुरुषों को कौनसी वस्तु देकर प्रमुख पुरुषों में बैठने योग्य माननीय बना देते हैं ? ऐसा पूछने पर गुरुजी समाधान करते हैं।

'जिस नो बखसे सिफति सालाह। नानक पाति साही पात साहु'

सिफति= शब्द ईश्वर की सामान्य प्रशंसा का बाचक है। सालाह=विशेष प्रशंसा का बाचक है अर्थ इस प्रकार है जिस अधिकारी पुरुष को ब्रह्मदर्शी महात्मा परमेश्वर का नाम उच्चारण रूप सामान्य स्तुति तथा हिरण्य गर्भादि उपासना रूप विशेष स्तुति प्रदान करते हैं। वह जिज्ञासु

पाति साही पाति साहु=ब्रह्मा, इन्द्र, कुबेरादि का अधिपति जो परमेश्वर उसका स्वरूप होजाता है। अथवा श्री गुरु नानक देवजी कहते हैं, जिस शरणागत अधिकारी पुरुष को उसके कल्याण के लिये तत्त्वदर्शी ज्ञान का उपदेश करते हैं।

वह सर्व ऐश्वर्य से महान् ज्ञानरूप ऐश्वर्य को प्राप्त करके ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। वह ब्रह्म सर्व राजाओं का अधिपति हिरण्य गर्भादि सर्व का अधिष्ठाता है।

पञ्चविंशतितमं मन्त्रं समाप्तम्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मूल—अमुल गुण अमुल वापार । अमुल वापारीए अमुल भंडार ।
अमुल आवहि अमुल लै जाहि । अमुल भाइ अमुला समाहि ।
अमुलु धरमु अमुलु दीबाणु । अमुलु तुलु अमुलु परवाणु ।
अमुलु बखसीस अमुलु नीसाणु । अमुलुं करमु अमुलु फुरमाणु ।
अमुलो अमुलु आखिया न जाहि । आखि आखि रहे लिवलाइ ।
आखहि वेद पाठ पुराण । आखहि पढ़े करहि वखिआण ।
आखहि बरमे आखहि इन्द । आखहि गोपी तै गोविन्द ।
आखहि ईसर आखहि सिध । आखहि केते कीते बुध ।
आखहि दानव आखहि देव । आखहि सुरि नर मुनि जन सेव ।
केते आखहि आखणि पाहि । केते कहि कहि उठि उठि जाहि ।
एते कीते होरि करेहि । ता आखिन सकहि केई केइ ।
जे वडु भावै ते वडु होइ । नानक जाणै साचा सोइ ।
जे को आखै बोलु बिगाड़ु । ता लिखीऐ सिरि गावारा गावारु ॥२६॥

शब्दार्थ— अमुल गुण अमुल वापार । गुण=विवेक वैराग्य एवम् शान्ति दान्ति आदि दैवी गुण सत्पुरुषों में अमुलु=अमूल्य हैं । तथा ईश्वर का कीर्तन और भक्ति करना एवम् कराना श्रेष्ठ पुरुषों का वापार=व्यापार, अमुल=अमूल्य है । अमुल वापारीए अमुल भण्डार। वापारीए= ईश्वर की भक्ति करने वाले सत्पुरुष व्यापारी भी अमुल=अमूल्य है । अर्थात दुर्लभ है । ईश्वर की भक्ति और दैवी गुणों का हृदय रूप भण्डारभी अमुल=अमूल्य अर्थात् अद्भुत है ।

अमुल आवहि अमुल लै जाहि । हरि धन को प्राप्त करने के लिये जिज्ञासुओं का श्रेष्ठ पुरुषों के पास आवहि=श्रद्धा भक्ति से आना भी अमुल=अमूल्य है । और श्रेष्ठ पुरुषों से नम्रतादि सद्गुणों को लैजाहि=ले जाना भी अमुल=अमूल्य है। अमुल भाइ अमुला समाहि। गुरु और शिष्य का परस्पर जो भाइ—प्रेम है वह भी अमूल्य है, पूर्ण गुरु के उपदेश से समाहि= आत्मानन्द में स्थित हो जाना भी अमूलय अर्थात् दुर्लभ है ।

अमुलु धरमु अमुलु दीबाणु । सत्पुरुषों का ईश्वर भक्ति रूप धर्म भी अमूल्य है, और श्रेष्ठ पुरुषों की दीबाणु=सभा भी अमूल्य है, अर्थात धर्म चर्चा करने का स्थान भी दुर्लभ है। अमुलु तुलु अमुलु परवाणु । सत्पुरुषों की तुलु=बुद्धि रूपी तराजू भी अमूल्य है। और विचार रूप परवाणु=परिमाण तोल के साधन सेर पांच सेर आदि बाट भी अमूल्य हैं ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अमुलु बखसीस अमुलु नीसाणु । सत्पुरुषों का उपदेश रूप बखसीस =पुरस्कार भी अमूल्य है। तथा सत्पुरुषों के उपदेश से अपने आत्मा का नीसाणु =प्रकट होना अमूल्य है अर्थात् आत्म साक्षात्कार होना भी दुर्लभ है। अमुलु करमु अमुलु फुरमाणु । सत्पुरुषों की करमु = कृपा अमूल्य है तथा उन सत्पुरुषों की फुरमाणु आज्ञा भी अमूल्य है।

प्रश्न—जिस परमेश्वर की भक्ति करने से सत्पुरुषों की इतनी अधिक महिमा है, वह ईश्वर कैसा है। अर्थात् उसकी महिमा कितनी है ?

समाधान— अमुलो अमुलु आखिआ न जाइ। परब्रह्म परमेश्वर अमुलो =अमूल्य हिरण्यगर्भादि से भी अमुलु =अमूल्य है, अर्थात् दुर्लभ है। इसलिये आखिया न जाइ =मन वाणी का अविषय होने से ईश्वर ऐसा है, इस प्रकार का है, इतना है यह निश्चयात्मक नहीं कह सकते।

आखि आखि रहे लिवलाइ । आखि आखि =उपासक जन ईश्वरके स्वरूप को कह कह करके रहेलिवलाइ =सच्चिदानन्द परब्रह्म परमेश्वर में चित्त वृत्ति को लगा कर रहे = तल्लीन हो रहे हैं।

प्रश्न—ईश्वर के यश को केवल सत्पुरुष ही कहते हैं ? अथवा कोई और भी कहता है ?

समाधान— आखहि वेद पाठ पुराण। वेद=ईश्वर के यश को चारों वेद तथा पुराण= अठारह पुराण भी कहते हैं। अथवा— वेदपाठ = वेद पाठी तथा पुराण पाठी ईश्वर के यश को कहते हैं। आखहि पढ़े करहि वखिआणु ईश्वर के यश को पढ़े =पढ़े लिखे विद्वान् आखहि= कहते हैं तथा— करहि बखिआणु = व्याख्यान करने वाले तथा व्याख्याकार (टीका करने वाले) ईश्वर के यश को कहते हैं।

आखहि बरमे आखहि इंद । आखहि गोपीतै गोविन्द । ईश्वर की महिमा को वेद मन्त्रों के द्वारा बरमे=ब्रह्मा एवम् इंद = चन्द्रमा वा इन्द्र भी कहते हैं तथा गोपी = गोपियां तै = और गोविन्द = भगवान् श्रीकृष्ण जी गीता भागवतादि में आखहि = ईश्वर की महिमा को कहते हैं। आखहि ईसर आखहि सिध। आखहि केते कीते बुध। ईश्वर की महिमा को ईसर = महादेव भी आखहि = कहते हैं। तथा सिध =गोरक्षनाथादि चौरासी सिद्ध भी कहते हैं। केते= कितने ही कीते =ईश्वर के किये हुये बुध =बुधादि नव ग्रह वा बुद्धिमान् ईश्वर की महिमा को आखहि =कहते हैं।

आखहि दानव आखहि देव। आखिहि सुरिनर मुनिजन सेव। ईश्वर की महिमा को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दानव = प्रहलाद आदि आखहि=कहते हैं। तथा देव = अजान देवता, आखहि = कहते हैं। तथा मुनि = नारदादि मुनि एवम् सुरि = इन्द्रादि सभी देवता, एवम नर = मनुष्य और जन = भक्त जन और सेव = शिव के उपासक शैव ये सभी ईश्वर की महिमा को आखहि = कहते हैं।

केते आखहि आखणि पाहि। केते कहि कहि उठि उठि जाहि।

केते = कितने ही वर्तमान काल में आखहि = कहते हैं तथा कितने ही भविष्यत काल में आखणि पाहि = कहेंगे और केते = कितने ही कहि कहि = कह कह कर भूत काल में उठि उठि जाहि = उठउठ कर चलेगये हैं अर्थात् मरगये हैं, अथवा कितने ही आखहि = कहते हैं तथा कितने ही आखणि = कहने का पाहि = यत्न करते हैं। और कितने ही कहने वाले होकर उठि उठि जाहि = मृत्यु हो जाते हैं।

एते कीते होरि करेहि। ता आखिन सकहि केई केइ।

ईश्वर ने एते = पूर्वोक्त जितने कीते = उत्पन्न किये हैं वे तो उनकी महिमा को कहते हैं। परन्तु इतने ही होरि = और उत्पन्न होकर करेहि = उसकी महिमा को कहें तो भी केई = किसी रीति से केइ = कोई भी आखि न सकहि = उसकी महिमा को कह नहीं सकता। अर्थात् जितनों ने कहा है उतने और मिल कर कहें तो भी उसके स्वरूप को कह नहीं सकते।

जे वडु भावै ते वडु होइ। नानक जाणै साचा सोइ।

सत्य संकल्प होने के कारण परमेश्वर जे वडु=जितने बड़े विस्तार वाला, भावै=होना चाहता है, तेवडु=उतना ही महान् होइ = हो जाता है। श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं, सोइ = वह साचा = सर्वज्ञ परमेश्वर जाणै=अपने बड़प्पन को आप ही जानता है अथवा सभी जीवों के हृदय के भावों को जानता है।

जे को आखै बोलु बिगाडु। ता लिखीऐ सिरि गावारा गावारु।

जे को=जो कोई बोलु बिगाडु= व्यर्थ बोलने वाला मिथ्या भाषी परमेश्वर की महिमा का अन्त आखै= कथन करे अर्थात् उसकी इयत्ता (परिमाण) का निरूपण करे, ता = तो सिरि गावारा गावारु = गंवारों से भी बढ़ कर गंवार, अर्थात् महा मूर्ख लिखीऐ = लिखा जाता है। भाव महा मूर्खों की श्रेणी में समझा जाता है।

भावार्थ— शान्ति, दान्ति एवं विवेक वैराग्यादि दैवी गुण सत्पुरुषों में अमूल्य हैं ईश्वर का कीर्तन और भक्ति करना एवं कराना रूप व्यापार भी सत्पुरुषों का अमूल्य है। ईश्वर की भक्ति करने वाले

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

व्यापारी सत्पुरुष महात्मा दुर्लभ हैं। परमात्मा की भक्ति और दैवी गुणों का हृदय रूप भण्डार भी दुर्लभ है। हरि धन को प्राप्त करने के लिये जिज्ञासुओं का सत्पुरुषों के पास श्रद्धा भक्ति पूर्वक आना और उन से नम्रतादि सद्गुणों को ले जाना भी अमूल्य है। गुरु और शिष्य का परस्पर प्रेम भी अमूल्य है। ब्रह्मनिष्ठ गुरु के उपदेश से आत्मानन्द में स्थित हो जाना भी दुर्लभ है।

सत्पुरुषों का ईश्वरभक्ति रूप धर्म भी अमूल्य है। श्रेष्ठ पुरुषों की सभा भी दुर्लभ है। सत्पुरुषों की बुद्धि रूपी तराजू भी दुर्लभ है। और विचार रूप तोलने के साधन सेर दो सेर आदि वाट भी अमूल्य हैं। सत्पुरुषों की उपदेश रूप बखसीश (पुरस्कार) भी अमूल्य है। सत्पुरुषों के उपदेश से अपने आत्मा का साक्षात्कार होना भी दुर्लभ है। श्रेष्ठ पुरुषों की कृपा तथा उनकी आज्ञा भी अमूल्य है। जिस परमात्मा की भक्ति करने से सत्पुरुषों की इतनी अधिक महिमा है वह परमेश्वर प्रजापति, इन्द्र, वरुण हिरण्यगर्भादि की अपेक्षा अमूल्य है। इसलिये मन वाणी का अविषय होने से ईश्वर ऐसा, है, इस प्रकार का है, इतना है यह निश्चय से नहीं कह सकते।

उपासक पुरुष ईश्वर के स्वरूप को जिज्ञासुओं के सामने निरूपण करके परब्रह्म परमात्मा में चित्त वृत्ति लगा कर स्वयं रात्रि दिन लीन रहते हैं। परमात्मा के यश को केवल सत्पुरुष ही नहीं कहते किन्तु चारों वेद, अष्टादश पुराण एवं वेदपाठी और पौराणिक लोग भी कहते हैं।

ईश्वर के यश को विद्वान् लोग एवं व्याख्यान करने वाले तथा टीका करने वाले अहोरात्र प्रेम पूर्वक जिज्ञासुओं के सामने कहते हैं। ईश्वर की महिमा को वेद मन्त्रों के द्वारा ब्रह्मा, इन्द्र और चन्द्रमा आदि देवता भी कहते हैं। एवं गोपियां और गोविन्द गीता और भागवतादि में ईश्वर की महिमा को कहते हैं।

परमात्मा की महिमा को महादेव, गोरक्षनाथादि अनेक सिद्ध कहते हैं। और भी कितने ईश्वर के बनाये हुए बुद्धिमान लोग एवं बुध शुक्रादि नवग्रह ईश्वर की महिमा को कहते हैं। परमात्मा की महिमा को प्रह्लादादि अनेक दानव तथा अजान देवता और कर्म देवता और यक्ष किन्नरादि भी कहते हैं।

नारदादि मुनि और इन्द्रादि सभी देवता, मानव एवं भक्त जन शैव वैष्णवादि ये सभी ईश्वर की महिमा को कहते हैं। कितने ही लोग वर्तमान काल में कहते हैं, कितने ही मनुष्य भविष्यत् काल में कहेंगे और कितने ही लोग भूत काल में ईश्वर की महिमा को कह कर मर गये हैं।

जितने जीव ईश्वर ने उत्पन्न किये हैं इतने ही और उत्पन्न होकर यदि ईश्वरकी महिमा को कहें तो भी किसी प्रकार से ईवर की महिमा को कह नही सकते। सर्वज्ञ एवं सत्संकल्प होने के कारण परमात्मा जितने विस्तार वाला होना चाहता है, केवल संकल्प मात्र से उतना ही महान् हो जाता है।

श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं वह सर्व शक्तिमान् परमात्मा अपनी विशालता, गम्भीरता, व्यापकता को स्वयं जानता है। एवं सभी जीवों के हृदय के भावों को स्वयं अच्छी तरह जानता है। जो कोई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

व्यर्थ बोलने वाला मिथ्याभाषी परमेश्वर की महिमा का अन्त कहता है तब वह महा मूर्खों की श्रेणी में समझा जाता है।

प्रश्न— जिस ज्ञान के प्रभाव से ज्ञानी सर्व का स्वामी बनता है, वह ज्ञान कितने मूल्य से प्राप्त होता है ? ऐसी जिज्ञासा करने पर गुरु जी ज्ञान को अमूल्य कथन करते हैं।

विशेष व्याख्या— **अमुल गुण**—यहां पर गुण शब्द ज्ञान का वाचक है। अमुल शब्द अमूल्य का बोधक है, अर्थात् ज्ञान अमूल्य है। क्योंकि मूल्य मूर्तिमान वस्तु का होता है। जैसे अकाल पुरुष मर्ति हीन होने के कारण अमूल्य है, वैसे ज्ञान भी निरवयव होने के कारण अमूल्य है ?

प्रश्न— सेवक की सेवा से प्रसन्न होकर ब्रह्मवेत्ता शिष्य को उपदेश करते हैं। इसलिये शिष्य की सेवा से उपदेश रूप व्यापार की सिद्धि होने से ज्ञान की प्राप्ति मूल्य से प्रतीत होती है ?

समाधान— **अमुल वापार।**

ज्ञान का साधन गुरु वाणी एवं वेदान्त श्रवण रूप जो व्यापार है वह भी अमूल्य है। क्योंकि सेवा के बिना भी बीत राग ब्रह्मवेत्ता साधन सम्पन्न उत्तम अधिकारी को उपदेश करते हैं।

प्रश्न— जैसे यज्ञादि कर्मों के लिये धनी मानी यजमान लोग यज्ञ की समाप्ति पर्यन्त ऋत्वक् ब्राह्मण को धन से खरीद लेते हैं। वैसे सम्पन्न अधिकारी भी ब्रह्म वेत्ता को धन से खरीद सकता है ?

समाधान—**अमुल वापारीए।**

ब्रह्मनिष्ठ तत्वदर्शी भी मूल्य से रहित हैं। **'ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर'**

इत्यादि गुरु वचनों के अनुसार ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म स्वरूप है। सर्व का अन्तरात्मा है। इसलिये सांसारिक पदार्थों से उसे कौन खरीद सकता है। प्रश्न—जैसे मेरा मन अमुक आदमी ने खरीद लिया। यह अनुभव लोक प्रसिद्ध है, वैसे ज्ञान रूप रत्न का स्थान जो ज्ञानी का अन्तःकरण उसको सेवा के द्वारा वशीभूत करने से ज्ञान को मूल्य से प्राप्त करना स्वतः सिद्ध है ?

समाधान— **अमुल भण्डार।**

आत्मज्ञान रूप रत्न का स्थान जो ज्ञानी का अन्तःकरण है वह भी अमूल्य है। अन्तःकरण का वशीभूत करना किसी विषय वासना से हो सकता है। ब्रह्मवेत्ता विषय वासना से रहित है। क्योंकि बैराग्य एवं ज्ञान के प्रभाव से कोई वस्तु ब्रह्म वेत्ता को अपने अधीन नहीं कर जकती। ज्ञानी ब्रह्म के अतिरिक्त किसी अन्य विषय की स्वतन्त्र सत्ता का अनुभव नहीं करता। इसलिये कोई वस्तु उसके चित्त को लुभायमान नहीं कर सकती। इस अभिप्राय से गुरु जी कहते हैं। ज्ञान रूप रत्न के रहने का स्थान ब्रह्मवेत्ता का अन्तःकरण रूप भण्डार भी अमूल्य है।

प्रश्न—**तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत।**

सति गुरु आइओ शरणि तुहारी। गु० ग्र० पृ० ७१३

इत्यादि वचनों के अनुसार ज्ञान एवं भक्ति की इच्छा वाला अधिकारी गुरु के समीप जाए जो जिज्ञासु ज्ञान के वास्ते गुरु के समीप रहते हैं उन्हें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुरु कै गृहि सेवकु जो रहै। गुर की आगिआ मनमहि सहै॥

इत्यादि गुरु वचनों से गुरु भक्ति नम्रता संयम नियमादि द्वारा भारी मूल्य चुकाना पड़ता है। इसलिए अधिकारियों का मूल्य तो निश्चित हो सकता है?

समाधान—अमुल आवहि अमुल लै जाहि॥ आत्मज्ञान के लिये जो जिज्ञासु ब्रह्मवेत्ता के समीप आता है वह भी अमूल्य है। भाव यह है आत्मज्ञानी तो परमानन्द परमात्मा के लाभ से पूर्ण काम है। उनको अपनी सेवा के लिए किसी को खरीदने की कामना नहीं वास्तव में वह सभी को अपना आत्मा ही समझते हैं। अपने आपको कोई खरीद नहीं सकता।

प्रश्न—ब्रह्मवेता यदि पूर्ण काम है तब वह प्रयोजन के विना अधिकारी को उपदेश नहीं करेंगे? ऐसी अवस्था में शिष्य को ज्ञान और ज्ञान के साधन श्रवणादि की प्राप्ति कैसे होगी?

समाधान—'अमुल लै जाहि' वीतराग पूर्ण काम ब्रह्म वेता से बिना मूल्य से स्वाभाविक ही उपदेश द्वारा यथार्थ ज्ञान को तथा ज्ञान के साधन वेदान्त श्रवणरूप व्यापार को योग्य अधिकारी प्राप्त कर लेता है। जिसके प्रकाश से निखिल जगत् का प्रकाश होता है। उस चैतन्य स्वरूप नित्यज्ञान को गुरुदेवजी आगे प्रतिपादन करते हैं।

'अमुल भाइ' गुरु के उपदेश द्वारा प्राप्त सर्व का प्रकाशक शुद्ध चेतन रूप ज्ञान गन्ता गमनादि त्रिपुटि से रहित होने के कारण अमूल्य है।

प्रश्न—यदि विशुद्ध ज्ञान स्वरूप ब्रह्म गन्ता गमन गन्तव्यत्रिपुटि से रहत है। तब मुक्त पुरुषों को ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकेगी?

यदि मुक्त पुरुषों का ब्रह्म में गमन स्वीकार करें तब त्रिपुटी सिद्ध होने के कारण ज्ञान विशुद्ध चैतन्य नहीं हो सकता?

समाधान—"अमुला समाहि"=प्रारब्ध की समाप्ति में ब्रह्मज्ञानी सर्वोपाधि को त्याग कर जो ब्रह्म में लीन होता है वह भी अमूल्य है। अर्थात् शुद्ध परमात्मा को जानने से उसमें ज्ञानी पुरुष देह त्याग काल में जल में जल के समान लीन हो जाता है। त्रिपुटी के भेद का हेतु जो उपाधि उससे रहित होकर एक रस स्व स्वरूप में लीन होजाने के कारण अमूल्य है। तात्पर्य यह है जैसे गमन करता पुरुष गमन क्रिया से ग्राम को प्राप्त होता है। इसलिए गन्ता, गम्य, गमन, यह त्रिपुटी सिद्ध होती है। वैसे अधिकारी पुरुष अपने से अतिरिक्त कहीं अन्यत्र गमन करे तब त्रिपुटी सिद्ध हो सकती है।

यहां तो ज्ञानी को उपाधि का दूर करना मात्र ही नित्य प्राप्त ब्रह्म में प्राप्त होता है। उपाधि के दूर होने से वहचैतन्य अत्यन्त शुद्ध रूप हैं। उसमें त्रिपुटी की लेशमात्र भी सम्भावना नहीं। मुक्त पुरुष जिस शुद्ध ब्रह्म में मिलता है। उस स्वरूप को अमूल्य कह कर अब मुक्ति का जनक जो आत्मज्ञान उसके उत्पादक निष्काम धर्म को अमूल्य कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'अमुलु धरमु'–ज्ञान में उपयोगी निष्काम धर्म भी निरूपण न होने से ज्ञान के समान वह भी अमूल्य है।

प्रश्न – निष्काम धर्म का निर्णय करने वाली सभा का कोई मूल्य अवश्य होगा? ऐसा पूछने पर गुरु जी उत्तर देते हैं।

'अमुलु दीबाणु' धर्म का विचार निर्णय करने वाले पुरुषों की सभा भी अमूल्य है अर्थात दुर्लभ है। वेद में जिस का प्रतिपादन हो और जिससे महान् प्रयोजन की सिद्धि हो तथा अनर्थ रूप फल का निवारक हो उसे मीमांसा में धर्म कहते हैं निष्काम और सकाम भेद से धर्म दो प्रकार का है।

धन, पुत्र, कलत्र स्वर्गादि फलों के निमित्त यज्ञादि जन्य धर्म को सकाम कहते हैं। मुक्ति रूप फल के निमित्त ईश्वर अर्पण किये कर्मों से जन्य धर्म का नाम निष्काम है। इन दोनों में निष्काम धर्म को ही अमूल्य कहा है। निष्काम धर्म की दुर्लभता से ही धर्म का विचार करने वाले पुरुषों की सभा को भी दुर्लभ बताया है।

'अमुलु तुलु–तुल्य शब्द धर्म विचार में हुई समानता का बोधक है अर्थ इस प्रकार है। विवाद के बिना धर्म सम्बन्धि निर्णय में उत्तम पुरुषों की जो समानता (एकरूपता) वह भी अमूल्य है।

अमुलुपरवाणु' यहां पर 'परवाणु' शब्द धर्म बोधक कर्म काण्ड का वाचक है। अर्थात जिस कारण से उन उत्तम पुरुषो में धर्म का निर्णायक वेदरूप प्रमाण अमूल्य है, इसलिये सर्व सम्मत विचार में उनकी समानता भी दुर्लभ है।

प्रश्न · परमेश्वर की कृपा से धर्म एवं ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप को जानने वाले किसी एक पुरुष से ही सकाम एवं निष्काम धर्म का निर्णय हो जायेगा। अधिक पुरुषों की अति दुर्लभ सभासे क्या प्रयोजन है?

समाधान ·· 'अमुलु बखसीस' बखसीस = शब्द कृपा का वाचक है। जिस पुरुष को ईश्वर की कृपा रूप दात प्राप्त हुई है, वह भी दुर्लभ है और बखसीस भी दुर्लभ है।

प्रश्न--यदि हम बखसीस की दुर्लभता को त्याग भीदें तो भी ज्ञानी को उसके लक्षणों से पहचान सकते हैं? उत्तर में गुरुदेव जी ज्ञानी के लक्षणों की दुर्लभता का प्रतिपादन करते हैं।

'अमुलु नीसाणु'··· निसाणु चिह्न का वाचक होता है। जिन चिह्नों को देख कर लोग ज्ञानी की पहचान करते हैं वह चिह्न भी दुर्लभ हैं।

प्रश्न··· ब्रह्मज्ञानी को पहचानने के लिए मैत्री, करुणा, मुदिता, अमानित्व, अदम्भित्वादि बहुत से चिह्न लोगों को दिखाई देते हैं, इसलिए चिह्नों की दुर्लभता का प्रतिपादन युक्ति संगत नहीं?

समाधान··· अमुलु करमु–ज्ञानी में मैत्री करुणा, मुदिता आदि जिन चिह्नों के निर्देश है, वे चिह्न तो जिज्ञासु में भी रहते हैं। इसलिये जिन लक्षणों से ज्ञानो का निश्चय होता है। वे चिह्न रूप कर्म भी दुर्लभ हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न— तरति शोकमात्मबित् ॥ छान्दोग्य उपनिषद्

तथा हरखु सोगु जाकै नहीं वैरी मीत समानि ॥ गु० ग्र० पृ० १४२७

इत्यादि—वेद तथा गुरु वचन ज्ञानी पुरुष में शोक एवं मोह के अभाव का प्रतिपादन करते हैं। शोक एवं मोह के अभावरूप चिह्नों से ज्ञानवान् की ईश्वर की कृपा से पहचान हो सकती?

समाधान—अमुलु फुरमाणु= यदपि ज्ञानी के लक्षणों का प्रतिपादन करने वाले वेद एवं गुरु वचन प्रसिद्ध होने के कारण सुनने सुनाने में अति सुलभ है। तथापि परमेश्वर की कृपा के सहित गुरुवाणी एवं श्रुति रूप आज्ञा का प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है।

प्रश्न—गुरुदेव! निष्काम धर्म से उत्पन्न होने वाली ईश्वर कृपा अति दुर्लभ है, यह बात ठीक है। परन्तु ईश्वर जीव से अभिन्न होने के कारण अति सुलभ है। इसलिए उसे दुर्लभ कहना ठीक नहीं?

समाधान— 'अमुलो अमुलु'—दुर्लभ ईश्वर कपा से भी वह ईश्वर अति दुर्लभ है क्योंकि जानने में अत्यन्त कठिन साधनों से प्राप्त होने वाला ईश्वर अपनी कृपा के पश्चात् अधिकारी को प्राप्त होता है। इसी अभिप्राय से गुरुजी कहते हैं।

'तिसहि बुझाए नानका जिह होवै सुप्रसंन ॥ सुखमनी

अर्थ—जिस पर परमेश्वर कृपा करता है उसको अपने स्वरूप का ज्ञान प्रदान करता है जिस ज्ञान के बिना सर्वदा प्राप्त स्व स्वरूप को अप्राप्त समझ कर जीव अत्यन्त दुःख उठाता है।

प्रश्न—जब परमात्मा का जानना अत्यन्त दुर्लभ है तब परम कपालु आप उसे समझाने के लिए मुझे उपदेश देकर कृतार्थ करें?

समाधान— 'आखिआ न जाइ' जाति गुण क्रिया आदि जो शब्द की प्रवृत्ति के निमित्त हैं। उन्हीं से रहित होने के कारण परमात्मा का कथन नहीं कर सकते। इसी भाव से गुरुजी कहते हैं। 'महिमा न जानहि वेद' क्योंकि शक्तिवृत्ति से मन वाणी का अविषय ईश्वर को गुरुवाणी और वेद ने बताया है।

प्रश्न…यह बात ठीक है कि शक्ति वृत्ति से ईश्वर का निरूपण करना कठिन है। परन्तु लक्षिणा-वृत्ति से तो निरूपण हो सकता है?

समाधान— आखि आखि रहे लिव लाइ—जिज्ञासुओं के प्रति लक्षणा वृत्ति से उस परमात्मा के स्वरूप को बारम्बार उपदेश करके हम अखण्ड शुद्ध बुद्ध स्वरूप में तदाकार वृत्ति करके स्थित हो रहे हैं। स्वरूपाकार वृत्ति का करना ही समाधि है। सविकल्पक निर्विकल्पक भेद से वह दो प्रकार की है।

सविकल्पक समाधि में ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय एवं ध्याता ध्यान ध्येय त्रिपुटी की प्रतीति होती है। निर्विकल्पक समाधि में त्रिपुटी की प्रतीति नहीं होती चतुर्थी भूमिका में त्रिपुटी की प्रतीति होती हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इसलिये व ह सविकल्पक साक्षात्कार रूप है। पञ्चमी षष्ठी सप्तमी में त्रिपुटी की प्रतीति नहीं होती ज्ञान की सात भूमिकाएं हैं। चित्त की अवस्था विशेष का नाम भूमिका है। निष्काम कर्म द्वारा नित्यानित्य वस्तु के विवेक से लेकर मुक्ति की इच्छा पर्यन्त का नाम पहली भूमिका है। गुरु के समीप जाकर उपदेश ग्रहण करके श्रवण मनन करना दूसरी भूमिका है। निदिध्यासन से सूक्ष्म वस्तु के ग्रहण योग्य चित्त वृत्ति कर लेना तीसरी भूमिका है। ये तीनों भूमिकायें साधन रूप हैं। योग मत में इन्हें जाग्रतावस्था कहते हैं। इन तीनों में जगत् की अलग २ प्रतीति होती है इसलिए इन्हें जाग्रत कहते हैं। चतुर्थ भूमिका में मैं शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वरूप हूं मेरे में अन्य किसी वस्तु का लेश मात्र भी भेद नहीं। इस प्रकार जीव ईश्वर के अभेद का साक्षात्कार होता है। सम्पूर्ण जगत् इस अवस्था में स्वप्न पदार्थ वत् मिथ्या प्रतीत होता है। इसलिए इस अवस्था का नाम स्वप्न है। इस अवस्था वाले ज्ञानी को ब्रह्मवित् कहते हैं। आगे की तीन भूमिका जीवन-मुक्ति के भेद हैं। चतुर्थ भूमिका में सविकल्पक समाधि के अभ्यास से मनका निरोध होकर जो निर्विकल्पक अवस्था प्राप्त होती है वही पञ्चमी भूमिका है। इसमें ज्ञानी पुरुष खान पानादि के व्यवहार को स्वयं करता है। इस अवस्था वाले को ब्रह्मविदवर्य कहते हैं। पञ्चमी भूमिका के निरन्तराभ्यास से षष्ठी भूमिका प्राप्त होती है। इसे गाढ़ सुषुप्ति कहते हैं। इस भूमिका वाले ज्ञानी का नाम ब्रह्म विद्वर्यान् है। पदार्थाभावनी के अधिक अभ्यास से तुरीय नाम की सप्तसी भूमिका प्राप्त होती है। इस अवस्था में किसी प्रकार का भेद प्रतीत नहीं होता, सर्वदा ज्ञानी अपने स्व स्वरूप में स्थित रहता है। केवल परमेश्वर की इच्छा के अनुसार श्रद्धालु लोग उसके खाने पीने का स्वयं प्रबन्ध करते हैं। इस अवस्था वाले ज्ञानी का नाम ब्रह्म विद्वरिष्ठ हैं। पूर्वोक्त सप्त भूमिकाओं के निम्न लिखित नाम हैं।

शुभेच्छा, शुभ विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति,–
असंसक्ति, पदार्थाभावनी तुरींया

प्रश्न…गुरुदेव! जिस स्वरूप का आपने शिष्यों को उपदेश किया है और जिस स्वरूप में आप समाधिस्थ रहित हैं। उस में क्या प्रमाण है?

समाधान 'आखहि वेद पाठ पुराण ॥ वेद शब्द से ऋगादि चारों वेदों का ग्रहण है। पुराण शब्द से महाभारतादि एवं स्मृति ग्रन्थों का ग्रहण है। ऋगादि वेदों के उपनिषद् भाग के हजारों मन्त्र उस अद्वितीय स्वरूप को कहते हैं। तथा वेदार्थ के प्रतिपादक अष्टादश पुराण महाभारतादि इतिहास एवं स्मृति ग्रन्थ भी उस अद्वितीय तत्त्व का प्रतिपादन करते हैं।

'आखहि पढ़े करहि वखिआण' जो पुरुष वेदार्थ को जानने की इच्छा से वेदों का अध्ययन करते हैं, वे भी अद्वितीय तत्त्व को कहते हैं, तथा जो लोग वेद के तात्पर्य को जान कर उनकी व्याख्या करने वाले हैं वे लोग भी परमार्थ तत्त्व का प्रतिपादन करते हैं।

आखहि बरमे आखहि इन्द ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपने अपने कल्प में शिष्य एवं पुत्रों को उस अद्वितीय तत्त्व का ब्रह्मा भी उपदेश करता है। इन्द्र विरोचन आदि को ब्रह्म तत्त्व का उपदेश ब्रह्मा ने किया है। ये बात वेद में स्पष्ट है। इन्द्र भी अद्वितीय तत्त्व का उपदेश करता है। इन्द्र ने प्रतर्दन को ब्रह्म तत्त्व का उपदेश किया है यह बात कौषीतकी में प्रसिद्ध है।

"आखहि गोपी तै गोविन्द"

गोपियों को भगवान् श्रीकृष्ण ने इसी परम तत्त्व का उपदेश किया है। भागवत में यह बात स्पष्ट है। जब श्रीकृष्ण भगवान् ने गोपियों को पांच कोशों के अतिरिक्त यथार्थ आत्म तत्त्व का उपदेश किया तब वे अपने परमार्थ स्वरूप को समझ कर उसी में तल्लीन हो गयीं।

"आखहि ईसर आखहि सिध"

उस वास्तव स्वरूप का शिवजी ने पार्वती के प्रति उपदेश किया, तथा कपिलादि सिद्धों ने अपने शिष्यों को उस परम तत्त्व का उपदेश दिया। देवहूती के पुत्र महा मुनि कपिल का उपदेश करना श्रीमद् भागवत में प्रसिद्ध है।

"आखहि केते कीते बुध"

वे ज्ञानी पुरुष भी उस परम तत्त्व को कहते हैं। जिन्होंने अपने पवित्र उपदेश से अनेक अधिकारियों को ज्ञानवान् बना दिया। जो कोई ब्रह्मवेत्ता इस तत्त्व का अधिकारी को उपदेश करेगा वह अधिकारी भी अवश्य ज्ञानवान् हो जायेगा। इसलिये योग्य पुरुष के प्रति ब्रह्म तत्त्व का उपदेश देना निष्फल नहीं।

"आखहि दानव आखहि देव"

इस परम तत्त्व को दानव कुलोत्पन्न भक्त प्रह्लाद और चन्द्र देवता आदि भी कहते हैं।

आखहि सुरि नर मुनि जन सेव

सुरिनर=किन्नर देवता। मुनि=मननशील, जन=चारों वर्णों के मनुष्य। भाव यह कि उस परम तत्त्व को किन्नर देवता और मननशील मुनि जीवन्मुक्त तथा सर्व साधारण चारों वर्णोंके मनुष्य भी कहते हैं। यह बात गुरु वाणी में प्रसिद्ध है कि जो मनुष्य देवता ऋषि मुनि उस परम तत्त्व को जानता है। वह परमात्म स्वरूप हो जाता है। जाति पाति ऊंच नीच कुल गोत्र का कोई भेद भाव नहीं।

खत्री ब्रह्मणु सूदु वैसु उधरै सिमरि चण्डालु।
जिनि जानिओ प्रभु आपना नानकु तिसहि रवालु। गु० ग्र० पृ० ३००

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपिस्युः पाप योनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥ गीता अ० ६

पूर्वोक्त गीता के श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने गुरुदेव जी के भाव का ही अनुमोदन किया है कि जो नीच योनि एवं स्त्री वैश्य शूद्रादि कोई भी प्राणी ईश्वर की आराधना करता है वह परम गति को प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न— क्या सभी ज्ञानी देहपात पर्यन्त ब्रह्म तत्त्व का उपदेश करते हैं? अथवा क्लेश मान कर कोई ज्ञानी उपराम भी हो जाता है?

समाधान— केते आखहि आखणि पाहि।

कितने ज्ञानी पुरुषसमीप आए अधिकारी को उपदेश करते हैं। यदि फिर भी कई अधिकारी उनकी शरण में आता है तो उसे भी कृपा दृष्टिसे उपदेश करने में प्रवृत्त हो जाते हैं। विक्षेप मान कर उपराम नहीं होते।

"केते कहि कहि उठि उठि जाहि"

कितने ही ज्ञानी पुरुष बारम्बार उपदेश करके पश्चात् स्वमत स्थापन और परमत खण्डन में अनेक प्रकार के दृष्टान्त प्रमाणादि को खोजने में विक्षेप मान कर उपदेश करना छोड़ करके त्याग वृत्ति से भिक्षा वृत्ति द्वारा जीवन निर्वाह करते हुए स्वतन्त्रता पूर्वक यत्र तत्र भ्रमण करते हैं।

प्रश्न— क्या अधिकारी के प्रति ब्रह्मवेत्ता लक्षणा वृत्ति से ही उपदेश करते हैं वा लक्षणा के बिना भी?

समाधान— एते कीते होरि करेहि। ता आखि न सकहि केई केइ।

एते कीते=ये पृथिवी जल अग्नि आदि पञ्च महाभूत जो परमेश्वर ने प्राणियों के कल्याण के लिये बनाये हैं। होरि करे=अर्थात् करुणा के वशीभूत होकर ईश्वर यदि अग्नि को शीतल, जल को उष्ण, पृथिवी को कोमल इत्यादि विपरीत स्वभाव वाला बनादे तो भी आखि न सकहि कई केइ ब्रह्म स्वरूप को लक्षणा वृत्ति के बिना कोई भी ज्ञानी पुरुष कह नहीं सकता।

प्रश्न— जब जिज्ञासू को ब्रह्म वेत्ता लक्षणा से ब्रह्म का उपदेश करता है, तब अधिकारी पुरुष को क्या लाभ होता है?

समाधान— जे वडु भावै ते वडु होइ

यह अधिकारी पुरुष श्रवण मनन के पश्चात् चित्तवृत्ति की एकाग्रता रूप ध्यान से जे वड भावै= देश काल वस्तु परिच्छेद से रहित जितने बड़े सर्वव्यापक ब्रह्म की अभिन्न रूप से भावना करता है ते वड होइ=वह जिज्ञासु उतना ही बड़ा सर्व व्यापक प्रभाव वाला होता है।

प्रश्न— गुरुमुखि गिआनु ततु वीचारा जोती जोति मिलाए ॥ गु० ग्र० पृ० ११३१

इत्यादि वचनों से कैवल्य मुक्ति का साधन ज्ञान प्रतीत होता है। परन्तु पूर्व में ब्रह्म रूप होने में आपने ध्यान को हेतु बताया है? यह बात युक्ति संगत प्रतीत नहीं होती?

समाधान नानक जाणै साचा सोइ।

मुक्ति ज्ञान से होती है यह बात सत्य है। परन्तु निदिध्यासन से जब तक विपर्यय दूर नहीं होता, तब तक देश कालादि परिच्छेद से रहित परमात्मा का ज्ञान नहीं होता। इसलिये श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं। जब निदिध्यासन से विपर्यय ज्ञान दूर हो जाता है। तब सोइ=साधन सम्पन्न जिज्ञासु जाणै साचा=अपने अविनाशी स्वरूप को प्रत्यक्ष कर लेता है जिस साक्षात्कार से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वह अधिकारी मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

प्रश्न— सोहं सो जाको है जाप। जा कउ लिपत न होइ पुंन अरु पाप।
सोहं आपु पछाणीऐ सबदि भेदि पतीआइ। गु० ग्र० पृ० ६०

इत्यादि गुरु वाक्य यदि वास्तविक अभेद का प्रतिपादन करते हों तब ज्ञान को हम मुक्ति का हेतु मान सकते हैं परन्तु ये वचन तो सादृश्य के बोधक हैं। जैसे किसी उदार मन्त्री को राजा एवं क्रूर राजा को यमराज कह दिया जाता है। वैसे ही जिसने भक्ति पूर्वक ज्ञान से अपने स्वरूप को अच्छी प्रकार जान लिया है। "जिन जानिआ सो तिस ही जेहा" इत्यादि गुरु वचनो से उस जिज्ञासु को ईश्वर के तुल्य बताया गया है। इसलिये तुल्य बोधक होने के कारण पूर्वोक्त वचन अभेद प्रतिपादक नहीं किन्तु भेद के साधक हैं?

समाधान— "जे को आखै बोलु बिगाड़ु। ता लिखीऐ सिरि गावारा गावारु"

बोलु=अभेद बोधक वचन, विगाड़ु=भेद, सिरि=प्रधान, शिरोमणि। भाव यह है कि जो कोई पुरुष अभेद बोधक वचनों से भेद को सिद्ध करता है। वह भेद वादी अज्ञानियों की दृष्टि में वेद वेदाङ्ग को जामने वाला कितना भी महान् विद्वान् क्यों न हो परन्तु विचारशीलों की दृष्टि से वह मूर्खों में शिरोमणि मूर्ख हैं। क्योंकि महा वाक्य जीव ईश्वर के अभेद का बोधन करते हैं। यह बात उपक्रम उपसंहारादि षड्लिङ्गों से निश्चित है। इसलिये मुक्ति अभेद ज्ञान से होती है इसमें किञ्चन मात्र भी सन्देह नहीं।

॥ षड्विंशतितमं मन्त्रं समाप्तम् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न— गुरुदेव ! आपने जिस अकथनीय परमेश्वर की महिमा का पूर्व मन्त्र में निरूपण किया है, उस महामहिम शाली ईश्वर का द्वार और घर कैसा है यहां पर बैठ कर सम्पूर्ण चराचरात्मक सृष्टि की देख रेख करता है।

समाधान—

मूल— सोदरु केहा सोघरु केहा जितु बहि सरब समाले।
वाजे नाद अनेक असंखा केते वावण हारे।
केते राग परी सिउ कहीअनि केते गावण हारे॥
गावहि तुहनो पउणु पाणी वैसंतरु गावै राजा धरमु दुआरे।
गावहि चितु गुपतु लिखि जाणहि लिखि लिखि धरमु वीचारे॥
गावहि ईसरु बरमा देवी सोहनि सदा सवारे।
गावहि इंद इदासणि बैठे देवतिआ दरि नाले।
गावहि सिध समाधी अंदरि गावनि साध विचारे।
गावनि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे।
गावनि पंडित पढ़नि रखीसर जुगु जुगु वेदा नाले।
गावहि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मछ पइआले।
गावनि रतन उपाए तेरे अठ सठि तीरथ नाले।
गावहि जोध महाबल सूरा गावहि खाणी चारे।
गावहि खंड मंडल वर भंडा करि करि रखे धारे।
सेई तुधुनो गावहि जो तुधु भावनि रत्ते तेरे भगत रसाले।
होरि केते गावनि से मै चिति न आवनि नानकु किआ वीचारे।
सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई।
हैभी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई।
रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई।
करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिसदी वडिआई।
जोतिसु भावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई।
सो पातिसाहु साहा पातिसाहिबु नानक रहणु रजाई॥ २७॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्दार्थ —सो दरु केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले ।

प्रश्न— वह 'दरु=द्वार (स्थान) केहा=कैसा है ? तथा सो घरु केहा=वह घर कैसा है ?

जितु बहि=जहां पर बैठ कर, सरब समाले=सर्व जीवों की देख भाल करता है ?

उत्तर— संसार द्वार है और वैकुण्ठ घर है। अब संसार द्वार का निरूपण करते हैं।

वाजे नाद अनेक असंखा केते वावण हारे । उस ईश्वर के द्वार पर अनेक=अनेक प्रकार के नाद=शब्द, वाजे= वज रहे हैं। अथवा अनेक प्रकार की ध्वनि करने वाले वाजे हैं तथा असंखा =असंख्य ही, नाद=शब्द हो रहे हैं, केते वावण हारे=कितने ही बाजों को बजाने वाले हैं। अनेक प्रकार के बाजे तथा असंख्य ही नाद और अनेक ही बजाने वाले हैं। अर्थात् अधिक से अधिक वर्णात्मक (वर्णरूप) तथा ध्वन्यात्मक (ध्वनिरूप बाजे तथा उनको बजाने वाले असंख्य हैं)

केते राग परि सिउ कहीअनि केते गावण हारे।

कितने ही राग= परी राग बिलावलादि राग, परि सिउ =रागनियों के सहित कहीअनि = कहे जाते हैं । और कितने ही, गावण हारे =रागों को स्वर ताल के साथ गाने वाले गन्धर्वादि गायक हैं।

गावहि तुहनो पउण पाणी वैसंतरु गावै राजा धरमु दुआरे ।

हे परमेश्वर ! तुहनो =आपके यश को वायु देवता एवं वरुण देवता तथा, वैसंतरु = अग्नि देवता, द्वारे =आपके द्वार पर राजाधरमु =धर्म राजा अथवा धर्मात्मा राजा लोग गावै = अनेक प्रकार के स्तोत्रों से तुम्हारे यश का गायन करते हैं ।

"गावहि चितु गुपतु लिखि जाणहि लिखि लिखि धरमु वीचारे ।

हे परमेश्वर ! लिखि जाणहि =जीवों के शुभाशुभ कर्मों को लिख कर जानने वाले, चितु गुपतु = चित्र गुप्त भी आपके यश को गावहि =गायन करते हैं। जिनके लिखि=लिखे हुए, लिखि=लेखको, धरमु=धर्मराज न्याय करने के लिए वीचारे =विचार करता है।

गावहि ईसरु बरमा देवी सोहनि सदा सवारे ।

आपके सवारे बनाये हुए, 'ईसरु =महादेव, बरमा =ब्रह्मा, देवी सोहनि=शोभायमान शक्तियों के सहित तुम्हारेयश को, सदा=प्रतिदिन, गावहि=गायन करते हैं।

गावहि इंद इदासणि बैठे देवतिआ दरि नाले । इंद =इन्द्र देवता,

देवतिआ दरि नाले=देवताओं के दल के सहित । इदासणि बैठे=सिंहासन पर बैठ कर आपके यश को, गावहि=गायन करता है। अथवा-आदर के सहित इन्द्र देवता देवताओं के साथ मिलकर आपके यश का गायन करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गावहि सिध समाधी अंदरि गावनि साध विचारे। सिध=सिद्ध लोग, समाधीअंदरि=समाधि में स्थित होकर, गावहि=आपके यश का गायन करते हैं। साध विचारे—साधु महात्मा भी विचार के द्वारा' गावनि=आपके यश को गायन करते हैं।

गावनि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे। जती=जितेन्द्रिय। तथा सती=सत्यवादी और संतोखी=यथा लाभ से संतुष्ट रहने वाले सन्तोषी। गावनि=आपके यश को गायन करते हैं। करारे=हठीले;वीर=शूरवीर गावहि=आपके यश को गायन करते हैं।

अथवा वीर=बावन वीर, करारे= सावधान होकर आपके यश को गायन करते हैं।

गावनि पंडित पढ़नि रखीसर जुगु जुगु वेदा नाले। पंडित=सारासार विवेक वाली बुद्धि वाले विद्वान् एवम्—पढ़नि=शास्त्रों को पढ़ने वाले विद्यार्थी तथा—रखीसर=मन्त्र द्रष्टा वशिष्ठादि ऋषि, जुगु जुगु=प्रत्येक युग में वेदा नाले=वेदों के साथ अर्थात् वेद मन्त्रों से आपके यश को गावनि=गाते हैं।

गावहि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मछ पइआले।

सुरगा=स्वर्ग में रहने वाली और, मछ= मर्त्यं लोक में रहने वाली। तथा, पइआले=पाताल लोक में निवास करने वाली मनु मोहनि=मन को मोहित करने वाली, मोहणीआ=अप्सराएँ आपके यश का गायन करती हैं। अथवा तीनों लोकों में रहने वाली सुन्दरियाँ आपके यश का गायन करती हैं।

गावनि रतन उपाए तेरे अठ सठि तीरथ नाले। रतन उपाए= उत्पन्न किए हुये चौदह रत्न तथा अठसठि तीरथ=प्रयागादि प्रधान अठ सठ तीर्थों के अभिमानी देवता। एवम् नाले=नदी नालों के अभिमानी देवता, तेरे=आपके यश का, गावनि= गायन करते हैं।

गावहि जोध महाबल सूरा गावहि खाणी चारे। जोध = अर्थात् रथी तथा, महाबल= दश हजार के साथ अकेला लड़ने वाला महारथी एव,सूरा=असंख्य शूरवीरों के साथ लड़ने वाला अतिरथी ये सभी आपके यश का गायन करते हैं।

खाणी चारे=अण्डज, जरायुज, स्वेदजादि चारों खानियों में उत्पन्न होने वाले सभी जीव आपके यश को गावहि=गायन करते हैं।

गावहि खंड मंडल वरभंडा करि करि रखे धारे। खंड=भारतादि नवखंड, मंडल=अवान्तर खण्ड वरभंडा=ब्रह्माण्ड इनके निवासी भी आपके यश को, गावहि=गायन करते हैं जिन्हें आपने, करि करि=उत्पन्न करके, रखे धारे=अपनी सत्ता से धारण कर रखे हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सेई तुधनो गावहि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले । भगत रसाले=

प्रेम के घर प्रेमी भक्त, रते तेरे=प्रेम के रङ्ग में रङ्गे हुए हैं ।

सेई तुधनो=वे ही आपको यथार्थ रूप से, गावहि=गायन करते हैं ।

जो तुधु=जो आपको, भावनि=अच्छे लगते हैं ।

होरि केते गावनि से मै, चिति नआवनि नानकु किआ वीचारे ।

पूर्व प्रतिपादित किये हुये लोगों से अन्य, होरि केते=और कितने ही, गावनि=आपको गायन करते हैं । से=वे सभी, मै चिति=मेरे चित्त में, न आवनि=नहीं आरहे हैं । अर्थात् मुझे उनका स्मरण नहीं हो रहा है । नानक=श्रीगुरु नानक देवजी कहते हैं ।

किआ वीचारे=इस विषय में मैं कहां तक विचार करूं । अर्थात् ईश्वर को गायन करने वाले लोगों की गणना करना अत्यन्त कठिन है ।

सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई । सोई=वही, सदा=सर्वदा, सचुसाहिबु= अविनाशी परमेश्वर भूतकाल में था । सोई=वही, साचा=सच्चा परमेश्वर, साचीनाई= सच्ची बड़ाई वाला अब भी है ।

है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई । हैभी=पुनः वही सच्चा परमेश्वर भविष्यत् काल में, होसी=होगा, रचना=भूत भौतिक स्थूल रचना । जाइ=नष्ट हो जायेगी । जिनि रचाई=जिसने यह सृष्टि उत्पन्न की है वह अविनाशी स्वयंभु परमेश्वर, न जासी=नष्ट नहीं होगा अथवा जिस शक्तिमान परमेश्वर ने अपने संकल्प मात्र से यह अद्भुत रचना की है वह न जाइ=जन्म नहीं लेता, न जासी=नष्ट भी नहीं होगा ।

रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई । जिनि=जिस परमेश्वर ने । माइआ=अपनी अनादि शक्ति माया के द्वारा । रंगी रंगी=श्वेत नील पीतादि विविध रङ्गों की । तथा, भाती=सुरूप, कुरूप, लघु, विशालकाय आदि अनेक भान्ति की । जिनसी=देव, दानव, मानव, पशु, पक्षी, लता, वृक्षादि अनेक भेद प्रभेदों वाली, करि करि=सृष्टि रचना करके । उपाई=बनाई हैं, अर्थात् उत्पन्न की है । करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिसदी वडिआई । जिव=जैसे तिसदी=अकाल पुरुष परमेश्वर की । वडिआई=इच्छा है वैसे वह परमेश्वर । कीता आपणा= अपने किये हुए जगत् को । करि करि=रच रच करके । वेखै=देखता है ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जोतिसु भावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई। जोतिसु=जो कुछ परमेश्वर को भावें=अच्छा लगता है। सोई=वही कार्य करता है और आगे भविष्य में भी, करसी=करेगा उस ईश्वर के ऊपर किसी की हुकमु=आज्ञा, करणा=करनी; नजाई=नहीं बन सकती। अर्थात् वह कार्य ऐसे क्यों किया, और ऐसे क्यों नहीं किया इस प्रकार की आज्ञा ईश्वर के ऊपर कोई नहीं कर सकता।

सो पातिसाहु साहा पति साहिबु नानक रहणु रजाई। श्रीगुरु नानकदेव जी कहते हैं कि। सो-वह परमेश्वर। पाति साहु साहा पाति साहिबु-राजा महाराजाओं का अधिपति सम्राट है। इसलिए जिज्ञासुओं को उस परमेश्वर की रजाई=आज्ञा में रहणु=रहना सुख प्रद है।

भावार्थ— परमात्मा के अमूल्य यश को सुन कर सिद्ध मण्डली ने पूछा माननीय गुरुदेव ? परम ऐश्वर्य-शाली शक्तिमान् ईश्वर का दर और घर कैसा है ? यहां पर बैठ कर सारे संसार की देखभाल करता है। सिद्धों की जिज्ञासा को देखकर पूजनीय श्री गुरु नानकदेव जी उनके प्रश्न को दिखाकर ईश्वर के द्वार और घर का ऐश्वर्य निरूपण करते हैं। वह द्वार और घर कैसा है ? जहाँ पर बैठकर ईश्वर सारे विश्व का निरीक्षण करता है। उत्तर में गुरुजी कहते हैं कि—संसार द्वार है और वैकुण्ठ घर है। सर्व प्रथम द्वार का ऐश्वर्य दिखाते हैं। उस परमात्मा के द्वार पर अनेक प्रकार की ध्वनि करने वाले वाजे हैं, तथा असंख्य ही शब्द हो रहे हैं। कितने ही गायक लोग वाजों को वजाने वाले हैं। अनेक प्रकार के वाजे तथा असँख्य नाद और अनेक हीं बजने वाले हैं। कितने ही श्रीराग, बिलावलादि राग रागणियों के सहित कहे जाते हैं, और कितने ही स्वर ताल के साथ रागों को गाने वाले गन्धर्व किन्नरादि गायक हैं। हे ईश्वर ? आपके यश को वायु देवता, एवं वर्ण देवता, अग्नि देवता, गायन करते हैं। और आपके द्वार पर धर्मराज, एवं धर्मात्मा राजा लोग अनेक प्रकार के स्तोत्रों से तुम्हारे यश का गायन करते हैं। हे जग-दीश्वर ? जीवों के शुभाशुभ कर्मों को लिखकर जानने वाले चित्रगुप्त भी आपके यश का गायन करते हैं। जिनके लिखे हुए लेख को न्याय करने के लिए धर्मराज भी विचारता है। आपके बनाए हुए महादेव, ब्रह्मा, अपनी २ शक्तियों के सहित प्रति दिन तुम्हारे यश को गायन करते हैं। देवताओं के दल के सहित इन्द्र देवता अपने सिंहासन पर बैठ कर आपके यश का गायन करता है। सिद्ध लोग समाधि में स्थित होकर आप के यश का गायन करते हैं।

साधु महात्मा विचार के द्वारा अहोरात्र तुम्हारे यश का गायन करते हैं। सत्यवादी एवं जितेन्द्रिय, आपके यश का गायन करते हैं। शूरवीर सावधान होकर आपके यश को गाते हैं। पण्डित लोग तथा विद्यार्थी एवं वसिष्ठादि ऋषि प्रत्येक युग में वेदमन्त्रों के द्वारा आपके यश को गाते हैं। स्वर्ग तथा मृत्यु-लोक में रहने वाली, मन को मोहित करने वाली अपसराएं आपके यश को गायन करती हैं।

उत्पन्न किए हुए चौदह रत्न तथा प्रयागादि प्रधान तीर्थों के और नदी नालों के अभिमानी देवता तेरे यश का गायन करते हैं। रथी, महारथी, अतिरथी, सभी आपके यश का गायन करते हैं। अण्डज, जरायुज, स्वेदजादि चारों खानियों में उत्पन्न होने वाले जीवजन्तु आपके यश को गाते हैं। भारतादि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नवखण्डों के वासी आपके यश को गाते हैं, जिन्हें आपने उत्पन्न करके अपनी सत्ता से धारण किया हुआ है। प्रेम के घर प्रेमी तेरे प्रेम के रङ्ग में रङ्गे हुए हैं। वे ही आपको यथार्थ रूप से गायन करते हैं, जो आप को अच्छे लगते हैं। पूर्व प्रतिपादन किए हुए लोगों से अन्य और कितने ही आपको गायन करते हैं, जिनका स्मरण मेरे मन में नहीं हो रहा है। श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं इस विषय पर मैं कहां तक विचार करूं। क्योंकि ईश्वर को गायन करने वाले लोगों की गणना करना अत्यन्त कठिन है। वह अविनाशी परमेश्वर भूतकाल में था, अब भी है, और भविष्यत काल में भी होगा। भूत भौतिक स्थूल रचना नष्ट होगी, परन्तु जिसने यह सृष्टि उत्पन्न की है वह अविनाशी परमेश्वर सर्वदा रहेगा।

जिस परमेश्वर ने अपनी अनादि शक्ति माया के द्वारा, श्वेत, नील, पीतादि अनेक रङ्गों की तथा सुरूप, कुरूप आदि अनेक भांति की देव दानव पशुपक्षी लता वृक्षादि अनेक भेद प्रभेदों वाली सृष्टि उत्पन्न की है। अकाल पुरुष परमेश्वर की जैसी इच्छा है वैसे वह परमेश्वर अपने उत्पन्न किए हुए जगत् को देखता है। जो कुछ ईश्वर को अच्छा लगता है वही कार्य करता है, और आगे भविष्य में भी वैसे ही करेगा।

उस ईश्वर के ऊपर कोई आज्ञा नहीं कर सकता। श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं वह परमेश्वर राजा महाराजाओं का अधिपति शासक है, इसलिए जिज्ञासुओं को ईश्वर की आज्ञा में रहना लाभदायक है।

विशेष व्याख्या—

प्रश्न— अभेद बोधक जिन वाक्यों से ज्ञान की उत्पत्ति होती है वह ज्ञान कैसा है ?

तथा ज्ञान से जो मुक्तिरूप स्थान प्राप्त होता है वह स्थान कैसा है ? इस बात को जिज्ञासु,

सोदरु केहा सोघरु केहा।

इस बचन के द्वारा गुरु जी से पूछता है। सेवक के प्रश्न को सुनकर जितु वहि सरब समाले। इस वाक्य के द्वारा दोनों प्रश्नों का गुरुजी समाधान करते है। वह ज्ञान कैसा अपूर्व है। जितु बहि= जिस अभेद ज्ञान में स्थित होकर सभी ज्ञानी स्व स्वरूप को, सरब समाले = सर्वदा सावधान होकर अनुभव करते हैं।

पुनः मुक्ति स्थान ऐसा है जिसमें एक रूप हुए सभी ज्ञानी गुरुवाणी एवं वेद पुराणादि के द्वारा स्मरण किये जाते हैं।

सूरज किरणि मिले जल का जलु हूआ राम गु० ग्र० पृ० ८४६

ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति। उपनिषद्।

'आपि मुकतु मुकतु करै संसारु। नानक तिस जन कउ सदा नमसकारु।' गु० ग्र० पृ० २६४

एवम् 'कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्य वती च तेन। इत्यादि

अथवा सोदरु केहा सो घरु केहा—गुरुदेव! जिस परमात्मा की प्राप्ति का द्वार आपने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ज्ञान को बताया है। वह परमात्मा कैसा है? प्रश्न का भाव यह है जैसे अनेक पुरुषों में पुरुषत्व जाति एक है वैसे सर्व देश और सर्व काल में क्या वह परमात्मा एक है? वा जैसे पुरुषत्व जाति वाले पुरुष व्यक्ति भेद से अनेक होते हैं वैसे क्या परमात्मा भी अनेक हैं? यह सोदरु केहा=का तात्पर्य है।

पुनः जिस घर की प्राप्ति का मार्ग देवयान है।

और जिस घर का नाम ब्रह्मलोक एवम् इतिहास पुराणादि में वैकुण्ठ लिखा है उस घर वाला सगुण परमात्मा कैसा है? पूच्छने का भाव यह है जिसे अपनी विभूति से अन्य किसी और विभूति की इच्छा नहीं ऐसा पूर्ण काम है वा अपने ऐश्वर्य से अतिरिक्त किसी अन्य ऐश्वर्य की इच्छा वाला है? दोनों प्रश्नों को सुन कर गुरुजी एक ही वाक्य से उत्तर कहते हैं।

'जितु बहि सरब समाले=जिस घर की प्राप्ति का द्वार ज्ञान को कहा है वह परमात्मा एक है।

जितु बहि=जिस एक स्वरूप में बैठकर सभी ब्रह्म वेता, सरब समाले=सर्व स्वरूप से अपने आप का अनुभव करते हैं। ज्ञानी पुरुषों के लिए ज्ञेय ब्रह्म को एक कह कर आगे उपासकों के लिए ध्येय ब्रह्म का स्वरूप कहते हैं। जितु बहि=जिस ध्यान योग्य सगुण ब्रह्म का धाम ब्रह्मलोक कहा गया है वह परमात्मा सर्व से अधिक विभूति वाला है।

जितु= जिस के ऐश्वर्य में, बहि=सालोक्य सामीप्यादि मुक्ति को प्राप्त होकर, सरब समाले= उपासक लोग सम्पूर्ण ऐश्वर्य का अनुभव करते हैं। इस प्रकार सर्व से अधिक ऐश्वर्य वाला ध्येय परम विभूति वाले ध्येय ब्रह्म के स्थान का ही अनेक विशेषणों से निरूपण करते हैं।

'वाजे नाद अनेक असंखा केते वावण हारे'

यहां पर अनेक शब्द का बाजे के साथ और असंखा शब्द का नाद के साथ सम्बन्ध समझना चाहिये। भाव यह है सगुण ध्येय ब्रह्म का ऐसा रमणीक वैकुण्ठ स्थान है। जहां पर शंख गोमुख भेरी मृदङ्गादि अनेक वाजे हैं, जिन्हों से ध्वनि रूप शब्द असँख्य उत्पन्न हो रहे हैं केते वावण हारे= कितने ही उन अनेक प्रकार के बाजों को बजाने वाले हैं।

वाद्य एवं वादक रूप विभूति को बता कर अब गायन और गायक रूप विभूति को कहते हैं।

'केते राग परी सिउ कही अनि केते गावण हारे'

गाने वाले अनेक गन्धर्व अप्सराओं के साथ मिल कर भैरवादि रागों को पाञ्च पाञ्च रागनियां और आठ २ पुत्रों के सहित गायन करते हैं।

प्रश्न— क्या ये गन्धर्व गायक मुझ से भिन्न सगुण परमेश्वर का गायन करते हैं? ऐसा प्रश्न सुन कर श्री गुरुदेव जी कहते हैं कि सर्व के साक्षी एवं सर्व से अभिन्न उस परमेश्वर को ही गायन करते हैं।

'गावहि तुहनो पउण पाणी वैसंतरु गावै राजा धरमु दुआरे'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यहां पर पउण पाणी इत्यादि शब्द उनके अभिमानी देवों के वाचक हैं। भाव यह है कि सत्य संकल्पादि गुण विशिष्ट सब के साक्षी ईश्वर को ही सर्व देवता दिव्य स्तोत्रों से गायन करते हैं। सामान्य रूप से कह कर विशेष रूप से वायु देवता वरुण अग्नि इत्यादि तथा धर्मराज ये सारे ही तेरी प्राप्ति का द्वार जो ज्ञान उसमें स्थित हुये सर्वदा गायन करते हैं।

गावहि चितु गुपतु लिखि जाणहि लिखि लिखि धरमु विचारे।"

चित्रगुप्त अपने स्वामी की आज्ञा से यौगिक शक्ति के द्वारा निखिल प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों को बारम्बार लिख कर फल देने के लिये यमराज के सामने उन कर्मों का विचार करते हैं, अथवा चित्र गुप्त की लिखी हुई रिपोर्ट को धर्मराज पुनः स्वयं लिख कर प्राणियों को फल देने के लिये उस पर विचार करता है। धर्मराज के समान चित्रगुप्त भी परमेश्वर के यश का गायन करते हैं।

"गावहि ईसरु बरमा देवी सोहनि सदा सवारे"

महादेव चतुर्मुख ब्रह्मा पार्वती तथा सरस्वती ये सभी अपने अपने पुत्रों के सहित ईश्वरीय यश का गायन करते हैं, और गायन करते हुए सर्वदा सुशोभित होते हैं। महादेव ब्रह्मादि भी जब कि परमेश्वर के यश के गायक हैं तो ऋषि मुनियों का गायन करना तो कैमुतिक न्याय से सिद्ध होता है।

"गावहि इंद इदासणि बैठे देवतिआ दरि नाले"

अपने सिंहासन पर बैठ कर देवताओं के सहित इन्द्र देवता दिव्य स्तोत्रों से उस परमेश्वर के यश का गायन करते हैं।

"गावहि सिध समाधी अन्दरि गावनि साध विचारे"

अणिमा, महिमा, गरिमा आदि सिद्धियों वाले कपिलादि सिद्ध, समाधि में स्थित हो कर परमात्मा के यश को सप्रेम गायन करते हैं। साध शब्द चतुष्टय साधन सम्पन्न अधिकारी का वाचक है। अर्थात् ईश्वर की भक्ति के विना कोई वस्तु सिद्ध नहीं होती ऐसा जान कर श्रवणादि रूप विचार के लिये अधिकारी पुरुष परमेश्वर का गायन करते हैं। त्यागी पुरुष दो प्रकार के होते हैं। एक ज्ञान की इच्छा से त्याग करने वाला दूसरा ज्ञान को प्राप्त होकर त्याग करने वाला। पहिले त्यागी को विविदिषा संन्यासी और दूसरे को विद्वत् संन्यासी कहते हैं।

साध विचारे—यहां साध शब्द से विविदिषा संन्यासी को कह कर अब पूर्ण काम विद्वत् संन्यासी का निरूपण गुरु जी करते हैं।

"गावनि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यहां पर सती और संतोखी यह दोनों यती के विशेषण हैं।

भावार्थ--परमात्मा को सती =सत्य स्वरूप जानने वाले तथा संतोखी =विषय भोगों का त्याग कर संतोष धारण करनेवाले, जती =विद्वत् संन्यासी जीवन्मुक्त होकर ईश्वरीय यश का गायन करते हैं। लोगों में जती शब्द ब्रह्मचारी का और सती दानी का वाचक है। यथा लाभ संतुष्ट एवं राग द्वेषादि से रहित व्यक्ति का नाम संतोषी है। ये तीनों ही परमात्मा का प्रेम से गायन करते हैं। ये मृदुल प्रकृति वाले ही नहीं गाते अपितु महादेव के गणों में प्रसिद्ध भैरव, वीरभद्र आदि क्रूर प्रकृति वाले वीर भी प्रेम से गायन करते हैं।

"गावनि पंडित पढ़नि रखीसर जुगु जुगुवेदा नाले"

सारासार विवेचिनी बुद्धि वाले पुरुष का नाम पण्डित है। वन्दनीय श्री गुरु अर्जुनदेव जी ने पण्डित शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है।

सो पंडितु जो मनु परबोधै। राम नामु आतम महि सोधै (गु० ग्र० पृ० २७४)

वेद मन्त्र के द्रष्टा को ऋषि कहते हैं, ऋषियों में प्रधान का नाम रखीसर है। जिन वेद वचनों के विचारने से पण्डितों को आत्मविचार वाली बुद्धि उत्पन्न हुई है, वे वेद मन्त्रों से ईश्वर का गायन करते हैं। पुनः वेदार्थ के प्रकाशक ऋषियों में प्रधान वेद व्यासादि प्रत्येक युग में वैदिक सूक्तों से ईश्वर का गायन करते हैं।

"गावहि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मछ पइआले"

मोहणीआ =अप्सरायें, मछ =मृत्युलोक, पइआले =पाताल।

मोहन, मारण, वशीकरण, उन्मादन, उच्चाटन, इन पाँच बाणों से स्वर्ग, मर्त्य, पाताल लोक में देव, मनुष्य गण गन्धर्व नागादि के मन को मोहित करने वालियां मोहनियां प्रेम से परमात्मा का गायन करती हैं। इनके गायन करने में यह हेतु है, इन्द्र की आज्ञा से स्वर्गीय अप्सरायें विशेष जपी तपी लोगों के व्रत को भंग करने के लिये जाती हैं। उत्तम पुरुषों के व्रत को भंग करके पाप जनक कर्म के पीछे जब कभी किसी पुण्य कर्म के प्रभाव से उनके चित्त में पश्चात्ताप होता है तब वे भी अपनी कल्याण के लिये ईश्वर के नामों का गायन करती हैं। भगवन्नाम से महापापियों का भी कल्याण होता है इस बात का गुरुवाणी तथा गीता में प्रतिपादन किया है।

कउन को कलंकु रहिओ राम नामु लेत ही।पतित पवित भये रामु कहित ही।"

(गु० ग्र० पृ० ७१८)

अपिचेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ गीता अ० ६ ॥३०॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यदि दुराचारी पुरुष भी अनन्य भाव से ईश्वर की भक्ति करता है तो वह शीघ्र ही श्रेष्ठ जीवन वाला हो जाता है।

"गावनि रतन उपाये तेरे अठसठि तीरथ नाले"

मुख्य वस्तु का का नाम रत्न है। जीवों के कल्याण के लिये परमेश्वर ने सभी जातियों में मुख्य २ वस्तुओं को उत्पन्न किया है। वे सभी अठसठ तीर्थों के स्वामी देवताओं के साथ मिल कर परमात्मा के ही गुण गायन करते हैं। **अठसठि,** शब्द गुरुवाणी में मुख्य तीर्थों का वाचक है, संख्या बोधक नहीं। इसलिये तीर्थों की अधिक संख्या होने पर भी विरोध नहीं हो सकता। कुछ लोगों के मत से तीर्थों की संख्या तीन करोड़ है। अधिक विद्वानों की दृष्टि से प्रधान तीर्थों की अठसठ संख्या ही उचित प्रतीत होती है। गुरुवाणी के अनेक शब्द भी इसी बात की पुष्टि करते हैं।

अठसठि तीरथ मजनु कीये साधु धूरी नाता ॥ गु० ग्र० पृ० ५३२

अठसठि तीरथ सगल पुंन जीअ दइआ परवान ॥ गु० ग्र० पृ० १३६

परन्तु अठसठ तीर्थों की संख्या देवताओं द्वारा स्थापित प्रधान तीर्थों की है।

अठसठि तीरथ देवी थापे पुरबी लगै बाणी ॥ गु० ग्र० पृ० १५०

वास्तव में यदि गुरु वचनों का सूक्ष्म अध्ययन किया जाये तो ऐसा प्रतीत होता है कि जहां कहीं भी ऋषि मुनि सिद्ध पुरुषों ने ईश्वर की उपासना एवं तपस्या साधना अर्चना की है वह श्रद्धालुओं के लिये पवित्र तीर्थ हैं।

अठसठि तीरथ जह साध पग धरहि ॥ गु० ग्र० पृ० ८९०

अनेक मत मतान्तरों के प्रवर्तक आचार्यों के तीर्थों की गणना करने पर असंख्य तीर्थ प्रतीत होते हैं। इस विषय में श्रद्धालु पुरुषों को विवाद करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिये। क्योंकि ईश्वर ही सर्वत्र फल प्रदायक है। श्रद्धा भक्ति से किसी भी तीर्थ पर उसकी आराधना करने से भक्तों के मनोरथों की सिद्धि देखी जाती है। इसलिये श्री अमृतसर के पवित्र तीर्थ गुरु रामदास सरोवर के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए उसके स्नान से अनेक दुःखों की निवृत्ति एवं पुण्योत्पत्ति का निरूपण वन्दनीय श्री गुरु अर्जुनदेव जी ने किया है।

रामदासि सरोवरि नाते। सभी उतरे पाप कमाते। गु० ग्र० पृ० ६२४

संतहु रामदास सरोवरु नीका। जो नावै
सो कुल तरावै उधारु होइ है जीका ॥ गु० ग्र० पृ० ६२३

इत्यादि वचनों से प्रतीत होता है कि तीर्थों के स्नान से विशेष पुण्य की उत्पत्ति होती है!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गावहि जोध महा बल सूरा गावहि खाणी चारे ॥

महान् बल से रण में भयङ्कर युद्ध करने वाले शूरवीरतादि अनेक गुण सम्पन्न असुर कुल विनाशक श्री रामचन्द्र, भीम, अर्जुनादि भी परमेश्वर के गुणों को गायन करते हैं, इससे अधिक और परमेश्वर के ऐश्वर्य को क्या कथन किया जाये। जहां श्री रामचन्द्रादि के रूप में स्वयं परमेश्वर अपने आपको गायन करता है पुनः अण्डज, जरायुज, स्वेदज, उद्भिद् इन चार खानियों के अभिमानी सभी जीव यथाशक्ति परमेश्वर को गायन करते हैं।

गावहि खंड मंडल्ल वरभंडा करि करि रखे धारे ॥

मंडल्ल=द्वीप, **भंडा**=पात्र, यहां पात्र पद से समुद्र का ग्रहण है। **वरभंडा**, का मूल ब्रह्माण्ड है। भाव यह है कि पृथिवी के नवखण्ड और उनके आधारभूत सप्त द्वीप पुनः ईश्वर की विभूति रूप जल के पात्र जो सात समुद्र हैं, वे सभी ईश्वर का गायन करते हैं। जिन्हें ईश्वर प्रत्येक कल्प में बना कर अपनी शक्ति से धारण करता है, और धारण करके वेद मर्यादा के अनुसार सर्व की रक्षा करता है। गाने वालों की विशेषता कहते हैं।

सेई तुधनो गावहि जो तुधु भावनि ॥

पूर्व कथन किये गायन करने वालों में से परमेश्वर को वही सम्यक् गायन करते हैं। **जो तुधु भावनि**=जो परमेश्वर को श्रवण मनन निदिध्यासन से साक्षात्कार करते हैं, क्योंकि साक्षात्कार किये बिना सम्यक् गायन नहीं हो सकता इसलिये प्रत्यक्ष करके गायन करते हैं।

प्रश्न— निर्गुण ब्रह्म के साक्षात् करने वाले पुरुष को कृतकृत्य होने से उनकी सगुण ब्रह्म में भक्ति नहीं बन सकती।

समाधान— **रते तेरे भगत रसाले**

निर्गुण केसाक्षात्कार वाले भी जीवन्मुक्ति की सिद्धि के लिये सगुण ब्रह्म की प्रीति में **रते**=रंगे हुये ज्ञानी भक्त, भक्ति का जो **रस** (सार) अर्थात् आनन्द, उस रस के, **आले**=स्थान रूप होते हैं। इसलिये निर्गुण उपासकों की भी सगुण में प्रीति हो सकती है?

प्रश्न— पूर्व ईश्वर की विभूति में जो गायक कहे गये हैं केवल वही ब्रह्म का गायन करते हैं वा और भी हैं?

समाधान— **होरि केते गावनि से मै चिति न आवनि ॥**

गायन करने वाले पूर्व जो कथन किये हैं उनके अतिरिक्त और भी गरुड़, जटायु, काक भूशुण्ड, कामधेनु, ऐरावत आदि अनेक पशु पक्षी अपनी भाषा में परमेश्वर के गुण गायन करते हैं। ईश्वरीय विभूतियों के अनन्त होने के कारण उनकी यथार्थ संख्या का सङ्कलन करना मुझे अपने चित्त में कठिन प्रतीत होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न— गुरुदेव ! आप समाधिस्थ होकर अलौकिक शक्ति से ईश्वर की विभूतियों का का वर्णन करें ?

समाधान— नानकु किआ वीचारे ।

श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि मैंने यह संक्षेप से ईश्वर की विभूतियों का निरूपण किया है परन्तु उन्हें अनन्त होने के कारण और अधिक इस पर क्या विचार किया जा सकता है ।

इसी भाव से अर्जुन के प्रति भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं, मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं, केवल संक्षेप से तेरे प्रति अपनी विभूतियों का दिग्दर्शन मात्र कराया है ।

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ।

एषतूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥ गीता अ० १०

प्रश्न-- निर्गुण के साक्षात्कार वाले ज्ञानियों की सगुण में प्रीति नहीं होती इसलिये सगुण और निर्गुण भिन्न २ प्रतीत होते हैं । क्या यह बात सत्य है ? उत्तर में दोनों की एकता का गुरु जी प्रतिपादन करते है ।

"सोई सोई सदा सचु साहिबु" माया उपाधि को कल्पित होने से, सोई=वह सगुण परमात्मा ही । सोई =निर्गुण रूप है । वह निर्गुण परमेश्वर सदा =सर्वदा, सचु= सत्यस्वरूप है, वही निर्गुण ब्रह्म माया उपाधि से साहिबु=मायापति सगुण रूप है ।

प्रश्न--- सगुण ईश्वर की शुद्ध स्वरूपता तब सिद्ध हो सकती है, जब सगुण की माया उपाधि मिथ्या हो और गुणों का आश्रय चैतन्य भाग वास्तविक हो ?

समाथान—"साचा साची नाई"

यहां पर नाई पद तुल्य का वाचक है । सगुण ईश्वर में जो चैतन्य भाग है वह वास्तव में साचा=तीनों कालों में नाश से रहित है । पुनः त्रिगुणात्मक जो माया भाग है, वह साची नाई= अनादिता, अजता, आदि अनेक धर्मों से चैतन्य के तुल्य सत्य प्रतीत होता है, परन्तु परमार्थ में माई माइआ छल इत्यादि वचनों से मिथ्या है, इसलिये त्रिगुणात्मक माया के संयोग से सगुण काल में भी परमेश्वर वास्तव में निर्गुण रूप है इसमें किञ्चित् भी विरोध नहीं । सुखमनी में श्री गुरु अर्जुनदेव जी ने इसी भाव को व्यक्त किया है ।

निरगुनु आपि सरगुनु भी ओही । कलाधारि जिनि सगली मोही ॥ गु० ग्र० पृ० २८७

परब्रह्म की सत्यता और माया की असत्यता में श्री गुरु जी हेतु कहते हैं ।

है भी हो सी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जिस कारण से, है=वर्तमान जगत, तथा भी=अतीत जगत् और, होसी=भविष्य में होने वाला जगत वह सम्पूर्ण स्वप्न के हस्ती अश्वादि के समान, जाइ=निरन्तर नाश को प्राप्त हो रहा है, परन्तु स्वप्नद्रष्टा पुरुष के समान वह ईश्वर न जासी=नाश को प्राप्त नहीं होता। जिनि=जिस परब्रह्म ने सगुण स्वरूप होकर अपनी मायाशक्ति से सम्पूर्ण जगत की, रचना=उत्पत्ति, रचाई=कराई है वह माया असत्य है और परब्रह्म सत्य स्वरूप है।

प्रश्न-- जिस लोहित, शुक्ल, कृष्ण रूप वाली माया से नाना प्रकार के जगत् की रचना हुई है' क्या उस माया को ईश्वर ने उत्पन्न किया है ? श्री गुरु जी उत्तर में माया की उत्पत्ति का निषेध करते हैं।

"रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई"

जिनि शब्द निषेध का वाचक है। जिनसी शब्द महदादि का बोधक है। जिस परमात्मा ने रंगी रंगी भांती=अनेक प्रकार से माया द्वारा विविध रंगों की जगत् रचना करि करि=पुनः पुनः बना कर के भी माइआ जिनि उपाई=अनादि होने के कारण माया की उत्पत्ति नहीं की। इसी लिये वेद ने, अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णाम् ॥ इत्यादि के द्वारा माया को नित्य कहा है।

प्रश्न''' यदि माया अनादि है तब अनादि ब्रह्म में अनादि माया रूप वस्तु का भेद होने से वस्तुकृत भेद दूर नहीं हो सकता ? दोष निवृत्ति के लिये श्री गुरु जी कहते हैं।

कार करि वेखै कीता आपणा जिव तिसदी वडिआई"

परमेश्वर अपनी माया शक्ति से करि करि=अनेक बार बनाये हुए संसार को, वेखै=स्वतन्त्र सत्ताहीन मायिक कार्य को देखने योग्य बना कर स्वरूपभूत चेतन से प्रकाशित करता है। जिव=जिस प्रकार के प्रकाशन से स्वतन्त्र सत्ताहीन दृश्य का वास्तव भेद न होने के कारण तिस दी वडिआई= उस परमात्मा की अपरिछिन्नता रूप महिमा प्रतीत होती है। भाव यह है माया तत्कार्य की सत्ता व्यावहारिक वा प्रातिभासिक है। परमात्मा की सत्ता पारमार्थिक है परस्पर ये विषम सत्ता वाले हैं। जैसे विषम सत्ता वाले सर्प से रज्जु में कभी विष देखने में नहीं आता, वैसे माया तत्कार्य को अपनी सत्ता से प्रकाशित करने वाले परमात्मा में परिच्छेद नहीं किया जा सकता। इसलिये परमात्मा सर्व परिच्छेद से रहित है।

प्रश्न— यह सत्य है कि ईश्वर में वस्तु कृत् भेद नहीं परन्तु परमात्मा आकाशादि क्रम के बिना संसार की रचना क्यों नहीं करता ?

समाधान— "जो तिसु भावै सोई करसी"

जैसी रचना उसको हितकर प्रतीत होती है, वह परमात्मा आकाशादि क्रम से वैसी ही रचना करता है, विपरीत क्रम से नहीं करता, वैसे वह स्वतन्त्र है, जब जैसा चाहे वैसा करने में समर्थ है। आकाशादि के क्रम को तोड़ कर पृथिवी, जल तेजादि विपरीत क्रम से वा पांच तत्त्व के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्थान पर सात आठ तत्त्व से सृष्टि बनाओ ऐसी राजाज्ञा उसके प्रति कोई नहीं कर सकता। इस बात को श्री गुरु जी ने 'हुकमु न करणा जाई' के द्वारा स्पष्ट किया है। परमेश्वर अत्यन्त चतुर शिल्पी है इसलिये उसके प्रति ऐसा करो ऐसा न करो वा अन्य प्रकार से करो इस प्रकार की कोई भी आज्ञा नहीं की जा सकती।

भाव यह है कि जिस क्रम से और जितनी संख्या में सृष्टि रचना को उचित समझता है उसी क्रम से और उतनी संख्या में परमेश्वर सृष्टि का निर्माण करता है इस विषय में आज्ञा देने वाला यदि कोई अपने आपको शक्तिशाली समझता है, तब वह भी कुछ नवीन सृष्टि को बना कर दिखाये। परन्तु जगत रचना कोई नहीं कर सकता। इसलिये ईश्वर के अतिरिक्त सृष्टि रचने में सभी जीव असमर्थ हैं। इसी भाव को श्री गुरुदेव जी व्यक्त करते हैं।

पंज ततु करि तुधु सिर सटि सभि साजी कोई छेवा करिहु जे किछु कीता होवै।

गु०ग्र० पृ० ७३६

ईश्वर के परमैश्वर्य को कहते हुए श्री गुरुदेव इस प्रकरण को समाप्त करते हैं।

"सो पाति साहु साहा पाति साहिबुन ानक रहणु रजाई"

पातिसाहु=सिंहासनाधिपति साहा=धनीमानी प्रान्तपति पातिसाहिबु=राजाधिराज,— जैसे राजाधिराज चक्रवर्ती मण्डलेश्वर राजा लोगों के सहित अपनी निखिल प्रजा की पालना करता है, वैसे ही यह सगुण परमेश्वर इन्द्र, वरुण, कुवेरादि धनियों का स्वामी राजाधिराज सम्पूर्ण विश्व की मर्यादा का पालन करता है। वह राजाधिराज परमेश्वर अपनी माया से बनाये हुए भूत, भावी वर्तमान के निखिल जीवों का प्रेरक एवं शक्तिशाली स्वामी हे। इसी भाव को गीता में अर्जन ने व्यक्त किया है।

"त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यञ्च परञ्च धाम त्वया ततं विश्वमनन्त रूप ॥

गीता अध्याय ११।

आप आदि देव सनातन पुरुष हैं इस जगत के परमाश्रय और जानने वाले तथा जानने योग्य परम धाम हैं। आप से यह जगत् परिपूर्ण है। परमेश्वर में सर्व की स्वामिता को स्पष्ट करने के लिये हेतु कहते हैं।

"नानक रहणु रजाई"

श्री गुरू नानकदेव जी कहते हैं कि जिस कारण से सम्पूर्ण जगत् की पालना करने वाले सूर्य चन्द्र वरुणादि उस राजाधिराज परमेश्वर की आज्ञा में रहते हैं, इसी हेतु से ईश्वर में सर्व जगत् का स्वामित्त्व रूप परमैश्वर्य सिद्ध होता है।

❀ सप्त विंशतितमं मंत्रं समाप्तम् ❀

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनेक प्रकार के प्रश्नों का यथार्थ उत्तर सुनकर सिद्ध मण्डली ने कहा, यदि आप योगियों की वेश भूषा धारण करलें तब आपकी संसार में बड़ी मान्यता होगी। इस प्रकार की पक्षपातपूर्ण सिद्धों की बात को सुनकर श्री गुरुदेव जी चिह्नों के व्याज से आगे के मन्त्रों में कल्याणकारी उपदेश करते हैं।

मूल—

मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली धिआनकी करहि बिभूति।
खिंथा कालु कुआरी काइआ जुगति डंडा परतीति।
आई पंथी सगल जमाती मनि जीतै जगु जीतु। आदेसु तिसै आदेसु।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगुजुगु एको वेसु ॥ २८ ॥

शब्दार्थ=संतोखु=संतोष और सरमु=लज्जा इन दो, मुंदा=मुद्राओं को हमने धारण किया है। यथा लाभ में प्रसन्न रहने का नाम सन्तोष है, और अशुभ कर्मों से लज्जा करने का नाम शरम है।

पतु झोली, पतु=प्रतिष्ठा को बनाए रखना ही हमारी झोली है पापों से रहित होकर लोक परलोक में अपनी प्रतिष्ठा को बनाए रखना ही पत है। अथवा हम सन्तोष की मुंद्राएं पहनते हैं और पात्र तथा झोली के स्थान पर लज्जा को धारण करते हैं। धिआनकी = परमेश्वर के ध्यान की, करहि विभूति = शरीर पर भस्म लगाते हैं। अर्थात् अविनाशी परमात्मा का ध्यान करना शरीर पर लगाने के लिए हमारे पास भस्म है। काइआ=शरीर को, कालुकुआरी=काल का ग्रास जानकर अनित्य समझना ही, खिंथा=गोदड़ी है। जैसे गोदड़ी को धारण करने वा उतारने में कोई परिश्रम नहीं होता, वैसे ही इस शरीर रूप गोदड़ी के त्यागने में हमें कोई दुःख वा परिश्रम नहीं होता। अथवा जब तक, काइआ = शरीर, कालुकुआरि=मृत्यु से अविवाहित है। अर्थात् शरीर को काल ने अपना ग्रास नहीं बनाया, उससे पहले ही ईश्वर के पूजनसेवनमें, जुगति= जुड़ना ही, खिंथा=गोदड़ी है। गुरुओं के वचनों में वा परमेश्वर में, परतीति=निश्चय करके, जुगति= चित्तवृत्ति का जोड़ना ही, डंडा=दण्ड है। अर्थात् दुर्जनों के मुख मर्दन करनेके लिए, और अभिमानियों को सन्मार्ग पर लाने के लिये, दण्डे के स्थान पर परमेश्वर के विश्वास को हमने धारण किया है। सगल जमाती = सर्व को अपने बराबर समझना किसी को तुच्छ न समझना ही सगल जमाती होना है, यही हमारा आई पंथ है। इसके अनुयायी होने से हम सर्वोत्तम आई पंथी हैं। योगियों के बारह ग्रन्थों में आई पन्थ सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। इस पन्थ के साधु योगियों में आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अथवा—जिस परमात्मा की सत्ता सर्वत्र व्याप्त है, उस ईश्वर का नाम आई है। ईश्वर पंथ के अनुयायी होने के कारण हम आई पंथी हैं।

मन जीते जग जीतु=मन को जीतना, अर्थात् मन को विजय करना ही, **जगु जीतु**=जगत् को विजय करना है। क्योंकि मन के संकल्प के भीतर ही सारा संसार है। संकल्पों के रहते हुये सिद्धियों से संसार को वश करना कठिन है। जब तक मनरूप धर्मी शान्त नहीं होता तब तक उसके संकल्प विकल्प रूप धर्म भी शान्त नहीं हो सकते।

योगी लोग मिलने के समय शिष्टाचार के रूप में परस्पर आदेश कहते हैं। श्रीगुरु जी कहते हैं कि मैं, **तिसै**=उस परमात्मा को, **आदेसु**=नमस्कार करता हूँ, जो **आदि**=सर्व का मूल कारण, तथा **अनीलु**=अनेक श्वेत नील पीतादि रङ्गों से रहित है। अथवा—नील दशनील आदि संख्या से अतीत है। और **अनादि**=कारण से रहित तथा, **अनाहति**=विनाश से रहितहैं।

जुगुजुगु=प्रत्येक युग में, **एकोवेसु**=अखण्ड एक रस है, अर्थात् अपरिणामी है।

भावार्थ—अनेक प्रश्नों के युक्ति युक्त उत्तर सुनकर सिद्धों ने कहा, कि आप नाथसम्प्रदाय के आई पन्थ में दीक्षित होकर यदि कानों में मुन्द्राएं और कन्धे पर झोली धारण करलें एवं हाथ में कमण्डलु और शरीर में विभूति रमालें तब आपकी संसार में बड़ी प्रतिष्ठा होगी, इस प्रकार की सारहीन पक्षपात पूर्ण योगियों की बातों को सुन कर गुरुदेव जी योगियों को कहते हैं, कि कानों में कांच की मुंद्राओं की अपेक्षा संतोष की मुन्द्राओं को हमने धारण किया है। जो कदापि टूटती फूटती नहीं। पात्र तथा झोली के स्थान पर हम लज्जा को धारण करते हैं। जो अनेक प्रकार के पापों से लोक परलोक में हमारी रक्षा करती है। अविनाशी परमात्मा का ध्यान करना ही शरीर पर लगाने के लिये हमारे पास विभूति है।

शरीर को काल का ग्रास जानकर अनित्य समझना ही हमारे पास गोदड़ी है। जैसे गोदड़ी को धारण करने और उतारने में कोई परिश्रम नहीं होता, वैसे इस शरीर रूप गोदड़ी के त्यागने में हमें कोई दुःख वा कठिनाई नहीं प्रतीत होती। गुरुओं के वचनों में और परमेश्वर में विश्वास करके चित्तवृत्ति का जोड़ना ही हमारे पास डण्डा है, अर्थात् दुर्जनों को सन्मार्ग में प्रवृत्त करने के लिये तथा अहङ्कारियों के अभिमान को दूर करने के लिये डण्डे के स्थान पर ईश्वरीय विश्वास को हमने धारण किया है। सर्व को अपने समान समझना किसी को तुच्छ वा हेय न समझना ही सगल जमाती होना है। यही हमारा आई पन्थ है। योगियों के सम्प्रदाय में आई पन्थ सर्व से श्रेष्ठ माना जाता है। योगी लोग आई पन्थ के साधु को सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। जिस परमात्मा की सत्ता सर्वत्र व्याप्त है उस परमात्मा को भी आई कहते हैं। ईश्वर पथ के अनुयायी होने के कारण हम भी आई पन्थी हैं। मन को जीतना ही जगत् का विजय करना है। क्येंकि मन के सङ्कल्प के भीतर ही सारा संसार है। जब तक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मनरूप धर्मी शान्त नहीं होता तब तक उसके सङ्कल्प विकल्प रूप धर्म भी शान्त नहीं हो सकते। मिलने के समय योगी लोग शिष्टाचार के रूप में परस्पर एक दूसरे को आदेश कहते हैं। श्री गुरुनानक देवजी कहते हैं कि मैं उस परब्रह्म अविनाशी परमेश्वर को नमस्कार करता हूँ, जो सर्व का मूल कारण तथा श्वेत नील पीतादि रङ्गों से रहित और अनादि, अयोनी, अजन्मा, जगदाधार, अविनाशी, स्वयम्भू है। एवं युग युग में अखण्ड एक रस अपरिणामी, तथा स्वयं ज्योति है।

विशेष व्याख्या—

पूर्वोक्त रीति से अपने शिष्यों के प्रति ज्ञेय एवं ध्येय ब्रह्म का उपदेश—गुरुदेव कर रहे थे उसी समय नाथ सम्प्रदाय के एक साधु ने आकर कहा, कि हमारे मत प्रवर्तक आचार्य ने नाथ सम्प्रदाय की जो वेशभूषा चलाई है उससे बढ़कर और कोई मुक्ति का श्रेष्ठ मार्ग नहीं। कानों में मुंद्रा का धारण एवं बगल में झोली लटकाना शरीर पर विभूति रमाना शीत वात से परित्राण के लिये गोदड़ी का ओढ़ना इत्यादि वेशभूषा को धारण करके आप भी कल्याण के भागी बनें। व्यवहारपटु योगी की बात सुनकर परमदयालु श्री गुरुदेव सर्वजीवों के कल्याण के लिये उसे निमित्त बना कर सामाजिक चिह्नों के नाम से हितकारी उपदेश करते हैं।

"मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली"

चित्त वृत्ति निरोध का नाम योग है। यद्यपि कानों में मुंद्रा का धारण करना योग में सहायक नहीं और न ही यम नियमादि में इसकी गणना है, तथापि दूषणों को भूषण करने के लिये योगियों के अनेक सामाजिक चिह्नों में ज्ञान की साधनता सिद्ध करते हैं।

गोरक्ष मत के योगी तो काञ्च की मुंद्रा धारण करते हैं, परन्तु हमने ज्ञान योग की बोधक सन्तोष रूपी मुंद्रा को कानों में धारण किया है। शब्द स्पर्शादि विषयों के राग से रहित होकर अपने स्वरूप में तृप्त होना संतोष है, अथवा प्रारब्ध के अनुसार जैसा प्राप्त हो उसी से संतुष्ट होकर शरीर की रक्षा करने का नाम संतोष है। यह संतोष शम दमादि मुक्ति के द्वारपालों का सहायक है। अग्नि के ज्ञापक धूम के समान संतोष भी आत्मज्ञानी का ज्ञापक है। हमने जीवन मुक्ति की सिद्धि के लिये संतोष रूपी मुंद्रा को धारण किया है। हम तीन अवस्थाओं को छोड़ कर केवल तुरीय रूप चार कोने वाली सुखप्रद झोली अपने कंधे पर लटकाते हैं, अर्थात् परमानन्द रूप सम्पूर्ण सुखों का स्वामी तुरीय सुखरूप झोली को हम धारण करते हैं।

यद्यपि सुषुप्ति अवस्था से उठ कर मैं बड़े सुख से सोया ऐसा अनुभव सर्वको होता है इसलिए तीसरी अवस्था को भी सुख स्थान होने के कारण उसे आप झोली क्यों नहीं कहते ? तथापि वहां भी तुरीय चैतन्य को ही सुखरूपता है। अवस्था रूप अज्ञान को दुःख रूप होने के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कारण उसे सुखरूपता नहीं बन सकती इसीलिये उसे झोली नहीं कहा है। भाव यह है यहां सुखस्वरूप को सुखस्थान कहना ऐसा है जैसे लोग राहु का सिर और शिला की मूर्ति इत्यादि शब्दों का प्रयोग करते हैं। वास्तव में राहु शिर रूप है और मूर्ति शिला रूप है। अभिन्न होने पर भी जैसे भेद की प्रतीति होती है, वैसे सुखरूप तुरीय को सुख का स्थान कहा जाता है।

प्रश्न—इस तुरीय चैतन्य का साक्षात्कार कैसे होता है? और झोली में कौनसी आप विभूति रखते हैं?

समाधान= 'धिआन की करहि बिभूति"

चित्त को सर्व ओर से हटा कर ब्रह्माकार वृत्ति के प्रवाहरूप विभूति से तुरीय चेतन्य का साक्षात्कार होता है इसी विभूति को हम मति रूपी झोली में धारण करते हैं।

प्रश्न-- शीत निवारण के लिये आप गोदड़ी कौनसी ओढ़ते हैं?

समाधान= "खिंथा कालु कुआरी काइआ जुगति डंडा परतीति"

कुआरी =अविवाहित, विवाह पद से काल परिच्छेद का ग्रहण है।

काल परिच्छेद से रहित जो अखंड चैतन्य रूप हमारी देह है वही हमने ज्ञान द्वारा जन्म मरणादि शीत निवारण के लिये गोदड़ी धारण की है।

प्रश्न— जिस अभेद ज्ञान से अखंड चैतन्य देह रूप गोदड़ी धारण की है उस ज्ञान को भेद साधक युक्तियों से भेदवादी दूर कर देते हैं, अतः अभेदज्ञान कैसे स्थिरहोसकता है? और शीत निवारक गोदड़ी के समान आप कौनसे डंडे को रखते हैं?

समाधान— 'जुगति डंडा परतीति' अभेद प्रतीति की दृढ़ता के लिये तथा भेदवादी पशुओं को दूर करने के लिये ब्रह्मज्ञानियों का निश्चय एवं अनुमानादि तर्क तथा जीव ब्रह्म के अभेदसाधक युक्तिरूप डंडे को हमने धारण किया है। मैं ब्रह्म नहीं इस भेद को सिद्ध करने वाला अनुभव भ्रामक है।

प्रश्न—आई पंथ वाले योगी शिष्य मण्डली के सहित संसार को जीतने के लिये भ्रमण करते हैं, परन्तु आप ऐसा नहीं करते तब संसार कैसे जीत सकोगे?

समाधान— आई पंथी सगल जमाती मन जीतै जगु जीत"

जो उत्तम पुरुष मुक्ति के मार्ग ज्ञान में 'आई, आ=सर्व और से, ई=प्राप्त हुए हैं उनके साथ मिलकर हम भी, जमाती=जमात वाले हैं। बहिर्मुख लोगों के साथ मिल कर हम मण्डली नहीं घुमाना चाहते, संसार की विजय मन रूप शत्रु के जीतने में हम समझते हैं। मन को विजय किये बिना संसार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की जीत अहङ्कार को उत्पन्न करके बारम्बर संसार चक्र में फैंकती है, इसलिए वह जीत नहीं अपितु करारी हार है। अथवा मन शत्रु के जीते हुए सगल जगत् जी रहा है अर्थात् मन रूप शत्रु की विद्यमानता में हम सफलता पूर्वक मोक्ष मार्ग में चल नहीं सकते तो फिर सर्व दुःखों का स्थान जन्म मरण रूप संसार को कैसे जीत सकते हैं।

प्रश्न— योगी लोग शिष्टाचार के समय आदेश आदेश कह कर एक दूसरे को प्रणाम करते हैं। आप जैसे ज्ञानयोगियों के मत में कैसी रीति है ?

समाधान— "आदेसु तिसै आदेसु"

आदेश पद उपदेश का वाचक है। विधि निषेधभेद से उपदेश दो प्रकार का है, इस लिये दो बार आदेश पद का उल्लेख है। विधि रूप उपदेश यह है "तू सदा सलामत निरङ्कार"

ततु निरंजनु जोति समाई सोहं भेदु न कोई जीउ गु० ग्र० पृ० ५६६

इत्यादि वाक्य साक्षात् ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं।

नेह नानाऽस्ति किञ्चन। इत्यादि निषेध वाक्य स्थूल सूक्ष्म सर्व का निषेध करके अद्वितीय ब्रह्म का प्रति पादन करते हैं। इस विधि निषेध रूप दो प्रकार के उपदेश रूप आदेश को हम भी स्वीकार करते हैं। इस आदेश के अतिरिक्त संप्रदाय विशेष के शिष्टाचार बोधक आदेश शब्द को हम निष्प्रयोजन एवम् अप्रमाणिक मानते हैं। तिसै=पद का देहली दीपक न्याय से दोनों आदेश पदों के साथ सम्बन्ध है।

भाव यह है—उस परमात्मा का विधिमुख वचनों से तथा निषेधमुखवचनों से उपदेश है। वह परमात्मा कैसा है जिसका दो प्रकार से आदेश है।

"आदि अनीलु" आदि=माया के सम्बन्ध से वही परमेश्वर सर्व प्रपञ्च का प्रथम कारण है। वास्तविक दृष्टि से, अनील=तम रूप अज्ञान के सम्बन्ध से रहित है।

प्रश्न— यदि परमात्मा जगत् का आदि कारण है तब वह किसी का कार्य भी अवश्य होगा ? जैसे दण्ड घट का कारण है और स्वयं किसी का कार्य भी है।

समाधान-अनादि=वह परमात्मा नित्य होने के कारण उत्पत्ति से रहित अनादि है, इसीलिए वह किसी का कार्य नहीं। कार्य न होने का प्रबल हेतु कहते हैं, अनाहति=आहत शब्द अज्ञान निर्मित मिथ्या वस्तु का वाचक है, अनाहति=सत्य वस्तु का नाम है, सत्य पदार्थ मिथ्या वस्तु का अधिष्ठान होता है। इसलिये परमात्मा, अनाहति=सर्व का अधिष्ठान रूप है।

प्रश्न— गुरुदेव ! जो कुछ आपने कहा वह सत्य है, परन्तु वह परमात्मा शिव, विष्णु, विरञ्चि शक्ति सूर्यादि अनेक रूपों को कैसे प्राप्त होता है ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समाधान= "जुगु जगु एको वेसु" भक्तों पर कृपा करने के लिये,

हरि जुगु जुगु भगत उपाइआ पैज रखदा आइआ राम राजे" गु० ग्र० पृ० ४५१

"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥ गी० अ० ४

इत्यादि वचनों से वैदिकधर्म तथा धार्मिक पुरुषों की रक्षा के लिये अपनी इच्छा से वह परमात्मा विष्णु, शिव, राम, कृष्णादि अनेक वेशों को करता हुआ भी वास्तव से सभी युगों में एक वेश है। अथवा जो परमात्मा आदि तथा अनील एवम् अनादि और अनाहत है वही सभी युगों में एक होकर भी अनेक रूपों को धारण करता है। इसी भाव की पुष्टि भगवद्गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने भी की है।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्म मायया॥ गी० अ० ४।

अजन्मा अविनाशी होने पर भी तथा सर्व प्राणियों का ईश्वरहोनेपरभी अपनी प्रकृति को अधीन करके मैं योग माया से युग युग में प्रकट होता हूँ।

अष्टाविंशं मन्त्रं पूर्णम्॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मूल= भुगति गिआनु दइआ भण्डारणि घटि घटि वाजहि नाद।
आपि नाथु नाथी सभ जाकी रिधि सिधि अवरासाद।
जो गुसं विजोगु दुइकार चलावहि लेखे आवहि भाग।
आदेसु तिसै आदेसु आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगुजुगु एकोवेसु ॥२६॥

शब्दार्थ= भुगति गिआनु दइया भण्डारणि घटि घटि वाजहि नाद। गिआनु= आत्म ज्ञान ही, भुगति=भोजन है। बने हुये भोजन को योगी लोग भुगत कहते हैं। सर्वत्र परिपूर्ण परमेश्वर को सर्व प्राणियों में देखना, यही ज्ञान रूप हमारे यहां भोजन है।

दइआ=दुःखियों के दुःख को दूर करने की इच्छा का नाम दया है। यही हमारे यहाँ, भण्डारणि= भण्डारी है। भोजन को बनाने और बांटने वाले का नाम भण्डारी है। सर्व को परमेश्वर स्वरूप जान कर सर्व भूतों पर दया करना ही हमारे यहां भण्डारी है।

घटि घटि=प्रत्येक हृदय में चेतन सत्ता, वाजहि=जो प्रकट हो रही है वही हमारा नाद है। अथवा प्रत्येक हृदय तन्त्री में जो नाद=शब्द, वाजहि=बज रहा है (प्रतिध्वनित हो रहा है वही हमारा नाद है।

आपि नाथु नाथी सभ जाकी रिधिसिधि अवरासाद। जाकी=जिसकी आज्ञारूप सूत्र में, सभ=सम्पूर्ण सृष्टि, नाथी=नत्थी हुई है, अर्थात् वशीभूत है। वही परमेश्वर, आपि= स्वयमेव ही, नाथु=हमारा स्वामी है, रिधि=अन्न, धन, पदार्थों की वृद्धि, सिधि= अणिमा, महिमा, गरिमा आदि अष्ट सिद्धि, इन्हीं का अवरासाद=निकृष्ट स्वाद है क्योंकि ये ईश्वर प्राप्ति में प्रति-बन्धक हैं। इसलिये हमारे यहां इनका त्याग करना श्रेयस्कर माना है। अथवा= ऋद्धियों और सिद्धियों का, अवरासाद=स्वाद सकामी पुरुषों को है। निष्कामी ईश्वर प्रेमियों को उनका स्वाद व्यर्थ है। अष्टसिद्धियों के ये नाम हैं। अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व।

संजोगु विजोगु दुइकार चलावहि लेखे आवहि भाग।

संजोगु=इष्ट पदार्थों का संयोग कराने वाला शुभ कर्म और, विजोगु=अभिलषित पदार्थों का वियोग कराने वाला प्रारब्ध कर्म, दुइ=शुभाशुभ कर्मरूपी ये दोनों चेले: कारचलावहि=हमारे यहां कार्य चलाते हैं, अर्थात् संयोग वियोग ये दोनों हमारे यहां कारवारी हैं। लेखे=हमारे भाग्य रूप लेखे में जो लिखा है, आवहि भाग=वह भाग हमको प्रारब्धानुसार प्राप्त हो जाता है, अर्थात् प्रारब्धानुसार सुख वा दुःख आता जाता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आदेसु तिसै आदेसु । आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एकोवेसु ।

इस पाठ का अर्थ पूर्ववत् हैं।

भावार्थ—गुरुदेव जी के मधुर और स्पष्ट उत्तर को सुनकर सिद्ध कहने लगे, कि अन्नपूर्णा हमारा भण्डारी है जिससे हमारे भण्डारे में त्रुटि नहीं आती। ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ हमारे अधीन हैं, जिन्हों के द्वारा हम अनेक प्रकार के पदार्थों को भोगते हैं। जयकार ध्वनि करने के लिए हम अपने पास नाद को रखते हैं, गोरक्षनाथ को हम अपनी सम्प्राय का स्वामी मानते हैं। आश्रम का कार्य चलाने के लिये हमारे यहां कुठारी और कारबारी होता है, परन्तु आप पूर्वोक्त सामग्री के बिना ही अपने को योगी मानते हैं। सिद्ध मण्डली की बात को सुनकर गुरु जी कहते हैं।

आत्म ज्ञान ही हमारा भोजन है, परिपूर्ण परमेश्वर को सभी प्राणियों में देखना यही ज्ञान रूप हमारे यहां भोजन है। सर्व को ईश्वर स्वरूप जानकर सर्व प्राणियों पर दया करनी हमारे यहां भण्डारी है, प्रत्येक हृदय में चैतन्य सत्ता जो प्रकट हो रही है वही हमारा नाद है। जिसकी आज्ञा रूप सूत्र में सम्पूर्ण सृष्टि नत्थी हुई है, वह परमेश्वर स्वयं ही हमारा स्वामी है। ऋद्धियों और सिद्धियों का स्वाद सकामी पुरुषों के लिए महत्त्व पूर्ण है, परन्तु निष्कामी ईश्वर प्रेमियों के लिए उनका स्वाद कोई महत्त्व नहीं रखता, क्योंकि वे ईश्वर प्राप्ति में अणिमा, महिमादि सिद्धियों को प्रतिबन्धक मानते हैं। इष्ट पदार्थों का संयोग कराने वाला और अभिलषित पदार्थों का वियोग कराने वाला शुभाशुभ कर्म हमारे यहां कारबारी (प्रबन्धक) है।

हमारे भाग्य रूप लेखे में जो लिखा है वह भाग हमको प्रारब्ध के अनुसार अवश्य प्राप्त हो जाता है। सर्व शक्तिशाली परमेश्वर को हमारी नमस्कार है, जो सर्व का आदि कारण है, परन्तु स्वयं अयोनि एवं अजन्मा, अखण्ड एकरस अपरिणामी है।

विशेष व्याख्या =प्रश्न—योगियों के भोजन के समान शीघ्र तृप्ति करने वाला आप के यहां कौनसा भोजन है ?

समाधान—भुगति गिआनु=अद्वितीय परमात्मा का ज्ञान, भुगति=हमारा भोजन है।

प्रश्न—योगियों के भण्डारी के समान आपके ज्ञान भोजन को कौन सिद्ध करता है ?

समाधान—दइआ भंडारणि=दुःखी पुरुषों के दुःख को नाश करने की इच्छा का नाम दया है, दया से श्रेष्ठ धर्म की उत्पत्ति होती है।

तथा धर्म से अन्तःकरण की शुद्धि होती है, और पवित्र अन्तःकरण में विवेक वैराग्यादि उत्पन्न होते हैं, तथा विवेकादि से श्रवणादि साधन उत्पन्न होते हैं, श्रवणादि साधनों से ज्ञान की उत्पत्ति होती है, और ज्ञान से तृप्ति का लाभ होता है। इसलिए तृप्ति के साधन आत्म ज्ञान का परम्परा से साधन होने के कारण दया को भंडारी कहा है।

प्रश्न- योगियों के गले में एक छोटा सा बाजा रहता हैं जिसे योगी नाद कहते हैं, आपके यहां वह नाद कौन है ?

समाधान- घटि घटि बाजहि नाद"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हमारा नाद ज्ञान काण्ड रूप वेद है। इसलिये ब्रह्मनिष्ठ गुरुद्वारा किया हुआ ज्ञान का उपदेश प्रत्येक अधिकारी के **घटि घटि**=अन्तः करण में, बाजे प्रसिद्ध है। अर्थात् सभी उत्तम अधिकारी ऐसा कहते हैं कि मैं प्रभु से अभिन्न हूँ। यह अभेद ज्ञान ही हमारे यहाँ नाद है।

प्रश्न— योगियों के आदि नाथ के समान आप के यहां मुख्य नाथ कौन है ?

समाधान— **'आपि नाथु नाथी सभ जाकी'** हमारे मत में, **आपि**=अपना आत्मा ही, **नाथु**=सर्व का स्वामी ईश्वर है, **जाकी**=जिसका, **नाथी**=ईश्वरत्व, **सभ**=सर्वत्र प्रसिद्ध है, इस लिए आत्मा से भिन्न शेष सर्व जड़ होने के कारण किसी में भी नाथ होने की योग्यता नहीं।

प्रश्न— योगी अष्टाँग योग से सिद्धियों को प्राप्त करते हैं, आप सिद्धियों को कैसे प्राप्त करते हैं ?

समाधान— **"रिधि सिधि अवरा साद"** अवरासाद यहां पर अवर तथा आसाद दो पद हैं। अवर का अर्थ अशुभ और आसाद का अर्थ प्राप्त होना है। अथवा अवरा और साद, ऐसा पदच्छेद है। अणिमा, महिमादि, सिद्धियों को मुख्य मान कर **अवर**=निकृष्टयोगी, **आसाद**=प्राप्त होते हैं।

वैराग्यवान् जीवनमुक्त हम ऋद्धि सिद्धि को मुख्य नहीं मानते। अथवा रिद्धि और सिद्धि में अनात्म दर्शी पुरुषों को, **अवरा**=और ही, **साद**=स्वाद प्राप्त होता है। आत्मानन्द से तृप्त होने वाले आत्म वेताओं को किञ्चित् मात्र भी आनन्द नहीं आता इस लिए वे ऋद्धि सिद्धि को आत्मचिन्तन में प्रतिबन्धक मान कर उन्हें प्राप्त करने का विशेष प्रयत्न नहीं करते।

प्रश्न— योगियों के यहां जैसे कारबारी सेवा करता है, वैसे आपके यहां कौन सेवा करता है ?

समाधान— **संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि"**

प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त होने वाले इष्ट पदार्थों का संयोग और वियोग, **दुइ**=ये दोनों ही जीवन मुक्तों के अनुकूल, **कारचलावहि**=सेवा करने वाले हैं।

प्रश्न— इष्ट और अनिष्ट पदार्थों का संयोग और वियोग किस निमित्त से पुरुषों को प्राप्त होता हैं ?

समाधान— **लेखे आवहिभाग**=अनुकूल और प्रतिकूल पदार्थों के संयोग और वियोग **भाग**=प्रारब्ध कर्म के अनुसार ही, **लेखे आवहि**= हसाब किताब से प्राप्त होते हैं।

भाव यह है, कभी उत्तम प्रारब्ध से इष्ट वस्तु का संयोग और अनिष्ट वस्तु का वियोग होता है। कभी मन्द प्रारब्ध से अनिष्ट का संयोग और इष्ट का वियोग होता है। समस्त विश्व में प्रारब्ध के बिना किसी को अपनी इच्छा के अनुसार अभीष्ट पदार्थ प्राप्त नहीं होते, गुरु वचन से भी इसी भाव की पुष्टि होती है।

विणु करमा किछु पाईऐ नाही जे बहुतेरा धावे। गु० ग्र० पृ० ७२२

आदेसु तिसै आदेसु इत्यादि पाठ की व्याख्या पूर्ववत् है।

❀ एकोनत्रिंशंमंत्रं समाप्तम्॥ ❀

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मूल एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु।

इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु।

जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु।

ओहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु।

आदेसु तिसै आदेसु। आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जगु एकोवेसु ॥३०॥

शब्दार्थ—एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु। एक अकाल पुरुष परमात्मा जब माई=माया के साथ, जुगति=मिला, अर्थात् माया विशिष्ट हुआ तब माया, विआई=प्रसूत हुई। तब उस से, परवाणु=प्रामाणिक अर्थात् विश्वास पात्र, तिनिचेले=ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीन चेले उत्पन्न हुए।

इकु संसारी इकु भंडारी, इकु लाए दीबाणु।

इकु संसारी=एक संसार को उत्पन्न करने वाला स्रष्टा ब्रह्मा संसारी है। इकु भंडारी=सर्व का पालन पोषण करने वाला प्रतिपालक विष्णु भंडारी है। दीबाणु=संसार को, लाए=नाश करने वाला, इकु=एक शिव संहारक है, अथवा इकु=शिव का, लाए दी=नाश करने का, बाण=स्वभाव है, अर्थात् प्रार्यो का संहार करना उसकाज न्मसिद्ध अधिकार है।

जिवतिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु।

जिव=जिस प्रकार, तिसु=उस ईश्वर को, भावै=अच्छा लगता है, तिवै=उसी प्रकार, चलावै=ब्रह्मा, विष्णु, महेश को चलाता है। जिव=जिस प्रकार की, फुरमाणु=ईश्वर की आज्ञा होवै=होती है, उसीं प्रकार से तीनों देवता अपने अपने कार्य को करते हैं। अथवा जिस प्रकार परमेश्वर को अच्छा प्रतीत होता है उसी प्रकार ये तीनों देवता जगत् के कार्य को चलाते है, और जिस प्रकार परमेश्वर की आज्ञा होती है उसी प्रकार ये तीनों स्वयं भी चलते हैं।

ओहु वेखै ओ ना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु।

ओहु=वह अविनाशी परमेश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन तीनों के उत्पत्ति, पालन संहारादि प्रत्येक कार्य को, वेखै=देखता है, अथवा वह परमेश्वर ब्रह्मा, विष्णु, महेश के आदि और अन्त के समय को तथा बल को अपनी दिव्य दृष्टि से, वेखै=देखता है। परन्तु ओना=उन तीनों को उस परमेश्वर का स्वरूप इदम् इत्थम् भाव से अर्थात् वह इतना है और इस प्रकार का है इस रूप से, नदरि न आवै=दृष्टिगोचर नहीं होता। एहु=यह, बहुता=महान्, विडाणु=आश्चर्य है अर्थात

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अतिसमीप होते हुए भी दीर्घजीवी देवताओं को दृष्टिगोचर न होना इससे बढ़कर और महान् आश्चर्य क्या हो सकता है !

आदेसु तिसै आदेसु । इत्यादि का अर्थ पूर्ववत् है ।

भावार्थ— यद्यपि श्री गुरुदेव जी ने, सुअसति आथि बाणी बरमाउ, इत्यादि वचनों के द्वारा सृष्टि उत्पत्ति का प्रकार बतलाया है तथापि योगियों की जिज्ञासा को देख कर यहां पर पुनः सृष्टि-उत्पत्ति का संक्षिप्त प्रकार निरूपण करते हैं ।

एक अविनाशी परमात्मा जब माया विशिष्ट हुआ तब उसके सम्बन्ध से त्रिगुणात्मक माया प्रसूत हुई । उस माया से ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये विश्वासपात्र तीन चेले उत्पन्न हुए। सम्पूर्ण संसार को उत्पन्न करने वाला ब्रह्मा संसारी है, तथा सर्व का पालन पोषण करने वाला विष्णु भण्डारी है, और संसार को नाश करने वाला शङ्कर संहारक है। जिस प्रकार उस सर्वशक्तिशाली परमेश्वर को अच्छा लगता है, उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं अन्य जीवों को अपनी आज्ञा में चलाता है। जिस प्रकार की ईश्वरीय आज्ञा होती है उसी प्रकार से ये तीनों देवता तथा अन्य समस्त प्राणी अपने अपने कार्य को करते हैं। वह अविनाशी परमेश्वर ब्रह्मादि तीनों देवताओं के उत्पत्ति पालन संहारादि प्रत्येक कार्य को देखता है, परन्तु उन तीनों को उस परमेश्वर का स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं होता, अत्यन्त समीप होते हुए भी बलशाली देवताओं को जब अलौकिक बलधाम भगवान् दृष्टिगोचर नहीं होता, तब इससे अधिक और आश्चर्य की बात क्या हो सकती है ।

मेरा उस सर्वशक्तिशाली परमेश्वर को प्रणाम है, जो सर्व का आदि कारण होते हुए भी स्वयं अयोनि, अजन्मा, अविनश्वर, अखण्ड, एक रस, अपरिणामी स्वयं ज्योति है ।

विशेष व्याख्या---

प्रश्न-- योगी लोग पार्वती को जगत्-माता मानते हैं, आपके मत में जगत जननी कौन है ?

समाधान--- एका माई=जो माया जीवभाव और ईश्वर भाव की कल्पना करती है उसी को माई=निखिल जगत् की हम जननी मानते हैं, और वह माया, एका=एक है अनेक नहीं, और जड़ रूप है ।

प्रश्न---- वह जड़ माया स्वतन्त्र जगत् की कैसे रचना करती है ?

समाधान--- "जुगति विआई" ।

जुगति नाम संयोग का है, परन्तु यहां पर माया और चेतन के कल्पित तादात्म्य सम्बन्ध का बोधक है, वह माया सत्ता स्फूर्ति देने वाले ब्रह्म के, जुगति=तादात्म्य सम्बन्ध से, विआई=प्रसूत होती है, अर्थात् आकाशादि क्रम से अखिल भूत भौतिक संसार की रचना करती है। जड़ होने के कारण ज्ञानशून्य होने से स्वतन्त्र निर्माण नहीं कर सकती किन्तु चैतन्य के सम्बन्ध से सृष्टि उत्पन्न करती है। इसी बात को गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने भी प्रतिपादन किया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्। गीता अ० ६।

मेरी अध्यक्षता में प्रकृति सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् का निर्माण करती है।

प्रश्न— योगी लोग माया के विष्णु, ब्रह्मा, शिव ये तीन मुख्य चेले मानते हैं, आपके मत में माया के कौन प्रधान चेले हैं ?

समाधान— **"तिनि चेले परवाणु।**

अनुकूल चलने वाले का नाम चेला है, अपना स्वरूप सदा अपने अनुकूल होता है। त्रिगुणात्मक माया का स्वरूप है इसलिये तीनों गुण माया के सर्वदा अनुसारी हैं। इस प्रकार हमारे मत में भी उस माया के तीन चेले, **परवाणु**=प्रामाणिक हैं। अब प्रमाण सिद्ध तीन चेलों के कार्य कहते हैं।

इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु।

इकु संसारी=एक रजोगुण जीवों को जन्म मरण के प्रवाह रूप संसार को देता है। इसलिये रजोगुण संसार का कारण होने से संसारी है। रजोगुण का कार्य बताकर अब सत्त्वगुण का कार्य कहते हैं। **इकु भंडारी**=भोजन बनाने वाले का नाम भण्डारी है। दया दाक्षिण्यादि दैवी सम्पत्ति से युक्त जिज्ञासुओं के ज्ञान रूप भोजन को पकाने वाला होने से सत्त्वगुण भण्डारी है। ऐसा कहने से यह सिद्ध हुआ कि जैसे संसार में फैंकने वाला रजोगुण है, वैसे संसार से निकालने वाला सत्त्वगुण है। इसके आगे तमो गुण का कार्य बताते हैं।

"इकु लाएदीबाणु" एक तमोगुण रजोगुण के द्वारा संसार में आसक्त प्राणियों की **लाए दीबाणु**=सभा लगाता है। भाव यह है कि रजोगुण के प्रभाव से संसार में पड़े हुए जीवों के विचारों को तमोगुण आच्छादित कर लेता है, कभी भी उन्हें स्वरूप का साक्षात्कार नहीं होने देता। इसलिये संसार चक्र में उन जीवों की सभा लगाता है। इस प्रकार जिस कार्य को माया सम्पन्न करती है, उसी कार्य में स्वरूपभूत ये तीन गुण माया के सहायक होने से चेले कहे जाते हैं। अथवा जैसे योगी अपने अनुकूल चलने वाले को चेला बनाना स्वीकार करते हैं वैसे आप किस प्रकार के व्यक्ति को चेला बनाना स्वीकार करते हैं ?

"तीनि चेले परवाणु=पूर्व में जिन तीन गुणों को माया का चेला बताया है वही तीन गुण हमारे भी चेले हैं। गुणों में शिष्यपन का हेतु अपने अनुकूल चलना मात्र है। ज्ञानवान् में ज्ञान के प्रभाव से गुण शिथिल पड़ जाते हैं, इसलिये वे अपने कार्य को सम्पादन नहीं कर सकते। वा अपने कार्य को सम्पादन करने में असमर्थ हो जाते हैं अर्थात् अपने स्वभाव को त्याग कर ज्ञानी की मुक्ति में सहायक हो जाते हैं, इसी बात को गुरु जी कहते हैं।

जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जिस प्रकार ज्ञानवान् गुणों में भावना करता है, उसी प्रकार गुणों को अपने अनुकूल चलाता है। अपने प्रतिकूल उन्हें कभी चलने नहीं देता। भाव यह है कि ज्ञान होने से विद्वान् ऐसा निश्चय करता है कि मैं साक्षी एवं कूटस्थ हूं। मेरे स्वरूप में इन गुणों से कोई विकार नहीं हो सकता। ये गुण असत्य जड़ दुःख रूप हैं, मैं सच्चिदानन्द सभी का द्रष्टा शुद्ध, बुद्ध मुक्त स्वरूप हूँ। इस प्रकार ज्ञान द्वारा गुणों को लांघ कर मुक्तरूपता का निश्चय करता है। पूर्वोक्त भावना करके गुणों को अपने अनुकूल चलाता है, प्रतिकूल नहीं चलने देता। अनुकूल होने के कारण सभी गुण जीवन्मुक्त पुरुष के चेले हैं।

प्रश्न-- इस प्रकार का ज्ञान विद्वान् को कैसे होता है ?

समाधान— "जिव होवै फुरमाणु।

जिव=जिस प्रकार, फुरमाणु=ईश्वर की आज्ञा रूप वेद कहता है, वैसे ही ज्ञान होता है। जैसे नैयायिक को आकाश में नित्यता का ज्ञान और चार्वाक को देह में आत्मभान हो रहा है। ऐसा विपरीत ज्ञान तत्त्वदर्शी को नहीं होता। पूर्वोक्त बात को स्पष्ट करने के लिये जीव का द्रष्टापन तथा गुणों का दृश्यपन आगे के वचन से श्री गुरुदेव जी निरूपण करते हैं।

ओहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु ॥

विडाणु नाम आश्चर्य का है, यहां पर विस्तार रूप आश्चर्य का ग्रहण है। जिन गुणों का विस्तार रूप जगत् प्रत्यक्ष दिखाई देता है, उन गुणों को, ओह वेखै=वह तत्त्ववेत्ता अपने स्वरूपभूत ज्ञान से देखता है, इसलिए तत्त्वदर्शी गुणों का द्रष्टा है। ओना नदरि न आवै=देह इन्द्रियादि कार्य सहित उन जड़ गुणों को वह साक्षी प्रतीत नहीं होता, इसलिये वे गुण साक्षी के अद्रष्टा हैं।

❁ त्रिंशं मंत्रं समाप्तम् ❁

—✺✺—

प्रश्न-- आपके नाथ स्वामी का आसन और भण्डार कहां पर है ?

समाधान-- आसणु लोइ लोइ भंडार जो किछु पाइआ सु एका वार।

करि करि वेखै सिरजन हारु। नानक साचे की साची कार ॥

आदेसु तिसै आदेसु। आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगुजुगु एको वेसु ॥३१॥

शब्दार्थ··· आसणु लोइ लोइ भंडार।

उस सर्व शक्तिमान् परमेश्वर का, आसणु=आसन, (निवास) स्थिति, लोइ=चौदह लोकों में, अथवा लोकवासियों के हृदय में है।तथा उस ईश्वर का भंडार=भोजनालय, लोइ=प्रत्येक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लोक में है, अर्थात् वह परमेश्वर सर्वत्र परिपूर्ण है, और उसका भण्डार भी सभी प्राणियों के लिये सर्वत्र खुला हुआ है। जहां से सभी को बिना भेद भाव के स्वयं दे रहा है।

यथा--जान को देत अजान को देत जमीन को देत जमान को दै है॥

जो किछु पाइआ सु एका वार। ईश्वर के भण्डार से अपने अपने कर्मानुसार जीवों ने जो किछु=जो कुछ प्राप्त करना था, सु=वह, एका वार=एक ही वार अर्थात् एक ही समय, पाइआ=प्राप्त कर लिया है। उसी से जीवन पर्यन्त जीवों के आहार व्यवहार का निर्वाह होता है।

करि करि वेखै सिरजणहारु।

सिरजणहारु=विश्व निर्माता अविनाशी परमेश्वर, करि करि=सृष्टि को रच रच कर, वेखै= देखता है, अर्थात् यथा समय यथोचित सर्व का भरण पोषण करता है।

नानक सचे की साचीकार। श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं,सचे की=सत्य स्वरूप परमेश्वर की, साचीकार=सभी कर्त्तव्य सच्चे हैं। सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने जो नियम बनाये हैं वह प्रलय पर्यन्त उसी प्रकार सुचारु रूप से चलते रहते हैं, जैसे पुण्यों का फल सुख एवं शान्ति, और पापों का फल दुःख एवम् अशान्ति है, ज्ञानियों को मोक्ष, तथा अज्ञानियों को जन्म मरण की प्राप्ति इत्यादि सारी बातें पूर्ववत् सुचारु रूप से आज तक चली आ रही हैं।

आदेसु तिसै आदेसु आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगुजुगु एको वेसु।

तिसै=उस अविनाशी परमेश्वर को मेरा, आदेसु=प्रातःकाल का प्रणाम है। तथा उसी दयालु परमेश्वर को मेरा सायंकाल का आदेसु=नमस्कार है, अर्थात् कायिक, वाचिक, मानसिक सभी प्रकार से जगन्नियन्ता परम पिता परमेश्वर को मेरा बारम्बार कोटिशः सप्रेम प्रणाम है। जो ईश्वर सर्व का आदि=आदि कारण है। तथा अनीलु=जो नील पीतादि रङ्गों से रहित है। तथा नील, दशनीलादि संख्या से अतीत है। अनादि=जिसका कोई आदि कारण नहीं अर्थात् नित्य शाश्वत है। अनाहति= शस्त्रों के आघात प्रत्याघात से रहित है, अर्थात् विनाश से रहित है। जुगुजुगु=युग युग में प्रत्येक युग में,एको वेसु=अखण्ड एक रस है।

भावार्थ— सिद्ध मण्डली ने पूछा, गुरुदेव! उस सर्व शक्तिमान् परमेश्वर का निवास तथा भण्डार कहां है? जहाँ से समस्त प्राणियों को वह भोजनादि प्रदान करता है। उत्तर में श्री गुरुदेव जी कहते हैं, उस महामहिमशाली ईश्वर का निवास चतुर्दश लोकों में रहने वाले प्राणियों के हृदय में है। उस परम पिता परमात्मा का भण्डार प्रत्येक लोक में है, जहां से सर्व प्राणियों को भेद भाव के विना अनेक प्रकार के पदार्थ दे रहा है। ईश्वर के भण्डार से अपने २ कर्मों के अनुसार जीवों ने जो कुछ प्राप्त करना था वह एक ही समय प्राप्त कर लिया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विश्व निर्माता परमेश्वर सृष्टि को बना कर देखता है और यथोचित सर्व का पालन पोषण भी करता है।

श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं कि उस अविनाशी परमेश्वर के सभी कर्त्तव्य सच्चे हैं। सृष्टि के प्रारम्भ काल में प्राणियों के लाभ के लिये ईश्वर ने जो नियमोपनियम बनाए हैं वे प्रलय पर्यन्त उसी प्रकार सुचारु रूप से चलते रहते हैं। उनमें कदापि न्यूनाधिकता नहीं होती। पुण्यात्माओं को सुख और शान्ति, और पापियों को दुःख और अशान्ति एवं, ज्ञानियों को मोक्ष तथा अज्ञानियों को जन्म मरण की प्राप्ति इत्यादि सभी बातें ईश्वरीय विधान के अनुसार पूर्ववत् आजतक सुचारु रूप से चल रही हैं। उस अविनाशी परमात्मा को मेरा प्रातः तथा सायङ्काल का प्रणाम है।

जो सर्व का आदि कारण तथा नील पीतादि वर्णों से रहित है। जिस ईश्वर का कोई आदि कारण नहीं, वह शस्त्रों के आघात प्रत्याघात से रहित नित्य शाश्वत है एवं युग युग में अखण्ड एक रस स्वयं ज्योति है।

विशेष व्याख्या—

प्रश्न-- आपके यहां बैठने का आसन कौन है?

समाधान— आसणु लोइ, मन तू जोति सरूपु है, इत्यादि वचनों से अपने आपको लोइ=ज्योति स्वरूप कहा है, ज्ञान से स्थिर होने के लिये वही हमारा आसन है।

प्रश्न--- आपकी भोजनशाला कौन है?

समाधान---"लोइ भंडार" लोइ=प्रकाश रूप चैतन्य के प्रत्यक्ष का साधन शुद्ध तथा विचारशील मन ही ज्ञान रूप भोजन को पकाने का, भंडार=भोजनालय है।

प्रश्न--- इस ज्ञान रूप भोजन को आप एक वार करते हैं वा अनेक वार?

समाधान— जो किछु पाइआ सु एकावार।

जो=गुरु के उपदेशजन्य ज्ञान भोजन से पहले सर्वदा प्राप्त स्वस्वरूप को भी अज्ञान कृत आवरण के प्रभाव से हम अप्राप्त सा समझते थे। अब आवरण को दूर करने मात्र से किछुपाइआ=कुछ प्राप्त कर लिया है ऐसा मानते हैं, सु=वह ज्ञान रूप भोजन, एकावार=एक वार प्राप्त हुआ तृप्ति का हेतु है।

किञ्च–करि करि वेखै सिरजन हारु।

उस अज्ञान से, सिरजनहारु=जगत् स्रष्टा परमेश्वर को माया से पृथक् करके, करि करि=हस्तामलकवत्=वेखै=हम अपरोक्ष देखते हैं। जैसे संशय विपर्यय के बिना अपने हाथ को देखते हैं, वैसे परमात्मा को हमने जिस ज्ञान से साक्षात्कार किया है, वह ज्ञान एक ही वार प्राप्त किया है, उसे पुनः पुनः प्राप्त करने की हमको इच्छा नहीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न--- योगियों के समान आपकी कौनसी पूजा है ?

समाधान--- **नानक सचे की साची कार ।**

श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं, **सचे**=अविनाशी परमेश्वर की, **साची**=श्रेष्ठ, **कार**= ब्रह्मज्ञान रूप पूजा है। ब्रह्मवेत्ता की भी ज्ञान रूप ही पूजा है जिस पूजा के प्रभाव से ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म-स्वरूप हो जाता है इस बात को गुरुवाणी तथा वेद ने प्रतिपादन किया है।

यथा-- ब्रह्म गिआनी आपि परमेसुर । ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति ।

अथवा गुरु जी से योगी पूछता है कि ज्ञान होने के बाद ज्ञानवान् लौकिक वा वैदिक कोई क्रिया करता है या नहीं ? उत्तर में श्री गुरु जी कहते हैं।

नानक सचे की साचीकार । ब्रह्मज्ञानी कृतकृत्य होने के कारण यद्यपि उसे कोई कर्त्तव्य शेष नहीं तथापि लोक संग्रह के लिये प्रारब्धकर्मानुसार, **सचे की**=ब्रह्मवेत्ता पुरुष की ईश्वर भजनादि, **साचीकार**=श्रेष्ठ क्रिया स्वाभाविक होती है। उसकी स्वाभाविक शुभक्रिया को देख कर जिज्ञासु लोग अपनी कल्याण के लिये शुभ कर्मों में प्रवृत्त होते हैं । वन्दनीय गुरुदेव जी ने सत्पुरुषों की संगति से प्राप्त होने वाले लाभ का तथा उसकी दुर्लभता का सुन्दर शब्दों में प्रतिपादन किया है।

नानक जन संग केते तरे । जन का संग बाछे सुर देव ।

जन का संग वडभागी पाईऐ । सुखमनी ॥

आदेसु तिसै आदेसु, पाठ की व्याख्या पूर्ववत् है।

॥ एकत्रिंशं मन्त्रं समाप्तम् ॥

सिद्धों ने पूछा, गुरुदेव ! सर्व के आदि कारण अखण्ड, एकरस, अविनाशी परमात्मा की प्राप्ति का कौनसा मार्ग है ? ऐसी शङ्का के उत्तर में श्री गुरुदेव जी कहते हैं।

मूल—इक दू जीभौ लख होहि लख होवहि लख वीस ।
लखु लखु गेड़ा आखीअहि एकु नामु जगदीस ।
एतु राहि पति पावड़ीआ चड़ीऐ होई इकीस ।
सुणि गला आकास की कीटा आई रीस ।
नानक नदरी पाईऐ कूड़ी कूड़ै ठीस ॥ ३२ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्दार्थ--इक दू जीभौ लख होहि लख होवहि लखवीस ।

हे परमेश्वर ! मेरी, इक दू जीभौ =एक जिह्वा से, लख होहि =लाख जिह्वायें हो जाएं तथा लख होवहि लख वीस =एक लाख जिह्वा से बीस लाख जिह्वा हो जायें ।

यथा–लाख जिहवा देहु मेरे पिआरे मुखु हरि आराधे मेरा राम । गु० ग्र० पृ० ७८०

हरि गुन गावहु जगदीस ! एका जोह कीचै लख बीस । गु० ग्र० पृ० १२६६

इत्यादि गुरु वचनों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ईश्वर प्राप्ति के लिये प्रेमी भक्त को अपने मन में नाम जपने के लिये ऐसी उत्कट पवित्र भावना सर्वदा करनी आवश्यक है ।

लखुलखु गेड़ा आखिअहि एकु नामु जगदीस ।

एक एक जिह्वा से, जगदीस =जगतपिता परमेश्वर के, एकु नामु =पाप विनाशक तथा सुखप्रद स्वरूप बोधक एक नाम को, लखु लखु गेड़ा =लाख लाख बार, आखिअहि =हम कहें, अर्थात् हे परमेश्वर ! आपके स्वरूप बोधक पवित्र नाम को सादर सप्रेम हम निरन्तर जपते रहें ।

एतु राहि पति पवड़ी आ चढ़ीऐ होइ इकीस ।

नाम स्मरण रूप, एतु राहि =इस मार्ग से, पति =जगतपति परमेश्वर की प्राप्ति के साधन, पवड़ीआ =सात भूमिका रूप सीढ़ियों पर श्रद्धालु भक्त धीरे धीरे, चढ़ीए =चढ़ जाता है, नाम के प्रभाव से प्रेमीके मार्ग में कोई विघ्न बाधा उपस्थित नहीं होती भूमिका आरूढ़ होने से, इकीस =जिज्ञासु ईश्वर स्वरूप, होइ =हो जाता है, अर्थात् ईश्वर में अभिन्न रूप से स्थित हो जाता है। अथवा, एतु-राहि= इस भक्ति मार्ग से, पति =जगतपति परमेश्वर के स्वरूप महल पर चढ़ने के लिये, पवड़ीआ = सीढ़ियां प्राप्त होती हैं, इन सीढ़ियों पर, चढ़ीऐ =चढ़ने से, इकीस =ईश्वर के साथ एकता, होइ =स्थापित होती है, अर्थात् नाम स्मरण से भक्त को ईश्वर की प्राप्ति होती है ।

सुणि गला आकास की कीटा आई रीस । आकास=चिदाकाशवासी ब्रह्मनिष्ठ सत्पुरुषों के महत्त्व की, गला=बातों को गुरुवाणी तथा वेदों से, सुण=श्रवण करके, कीटा=विवेक वैराग्यादि साधन हीन पामर पुरुषों को, आई रीस=ब्रह्मज्ञानी बनने की स्पर्धा उत्पन्न होती है, कि हम भी ब्रह्मनिष्ठ हैं । जैसे आकाश में उड़ते हुए गरुड़ को देखकर तुच्छ कीट पतङ्गादि स्पर्धा से आकाश में उड़ने की चेष्टा करते हैं, वैसे ही साधनहीन तुच्छ पुरुष ब्रह्मज्ञानियों को देखकर शिवोऽहम्, शुद्धोऽहम्, बुद्धोऽहम् इत्यादि वचनों को कहकर अपनी ज्ञान निष्ठा प्रकट करने की चेष्टा करते हैं, परन्तु हंस के समान ज्ञानी सत्पुरुषों की साधन हीन कीट सदृश अज्ञानी पुरुष कैसे समानता कर सकते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नानक नदरी पाईऐ कूड़ी कूड़ै ठीस । श्री गुरु नानक देवजी कहते हैं, नदरी=परमेश्वर की कृपा दृष्टि से ही जिज्ञासु को भक्ति वा ज्ञाननिष्ठा, पाईऐ=प्राप्त होती है, कूड़ै= साधनहीन असत्यवादी पुरुषों की बातें झूठी ही होती हैं, अर्थात् भक्ति एवं ज्ञान से हीन अज्ञानी पुरुषों की बातें सारहीन यथार्थता से दूर होती हैं ।

भावार्थ···मन्दमति पुरुषों की कल्याण के लिए कोई सरल मार्ग बताने की कृपा करें । सिद्धों की ऐसी जिज्ञासा को देख कर श्री गुरुदेव जी कहते हैं कि 'विवेक' वैराग्यादि साधनहीन प्राणियों के कल्याण का सर्वोत्तम सुगम मार्ग श्रद्धाभक्तिपूर्वक परमेश्वर के नाम का उच्चारण करना है । सर्व प्रथम श्रद्धालु पुरुष को प्रेम और उत्साह के साथ निरन्तर ईश्वर के आगे प्रार्थना करनी चाहिये कि हे प्राणनाथ जगदीश्वर ? मेरी एक जिह्वा से लाख जिह्वा हो जाएं और एक लाख जिह्वा से बीस लाख जिह्वा होजाये, यथा–एका जीह की चैलख बीस ।

लाख जिहवा देहु मेरे पिआरे मुखु हरि आराधे मेरे राम ॥

इत्यादि गुरु वचनों से प्रतीत होता है कि प्रेमी भक्त को ईश्वर प्राप्ति के लिए अपने मन में ऐसी उत्कट भावना सर्वदा करनी चाहिए कि हम एक एक जिह्वा से जगत्पति परमेश्वर के पाप विनाशक सुखोत्पादक स्वरूप बोधक परम पावन नाम को लाख २ बार कहें । इस भक्ति मार्ग से परमपिता परमात्मा की प्राप्ति के साधनभूत सात भूमिका रूप सीढ़ियों पर श्रद्धालु भक्त धीरे धीरे चढ़ जाता है । नाम के प्रभाव से प्रेमी भक्त के मार्ग में कोई विघ्न बाधा उपस्थित नहीं होती, किन्तु ईश्वर के साथ उसकी एकता स्थापित हो जाती है । ब्रह्मनिष्ठ सत्पुरुषों के महत्त्व की बातों को सुनकर विवेकादि साधन हीन तुच्छ पुरुषों को ज्ञानी बनने की स्पर्धा होती है । जैसे आकाश में उड़ते हुए गरुड़ को देख कर क्षुद्र कीट पतङ्गादि ईर्ष्या से उड़ने की चेष्टा करते हैं, वैसे ही निष्ठाहीन पामर पुरुष ब्रह्मज्ञानी को देख कर शिवोऽहम, असङ्गोऽहम् इत्यादि वचनों के द्वारा अपनी ज्ञाननिष्ठा प्रकट करने की चेष्टा करते हैं । परन्तु सारासार विवेकी हंस के समान ज्ञानवान् सत्पुरुषों की साधन हीन कीट सदृश अज्ञानी कैसे समानता कर सकते हैं । श्री गुरुनानक देवजी कहते हैं कि परमेश्वर के अनुग्रह से ही ज्ञान वा भक्तिनिष्ठा प्राप्त होती है । साधनहीन असत्यवादी पुरुषों की बातें सारहीन एवं यथार्थता से कोसों दूर होती है ।

विशेष व्याख्या—प्रश्न·· मन्दमति पुरुषों को मोक्ष की प्राप्ति के लिए कोई सरल मार्ग बताने की कृपा करें । ऐसी जिज्ञासा को देख कर परमेश्वर का नामोच्चारण कल्याण का सरल उपाय है । ऐसा विचार कर नाम को कहने की रीति श्री गुरुदेव जी कहते हैं ।

इकदू जीभौ लख होहि लख होवहि लख वीस ॥

सर्व प्रथम प्रेम और उत्साह से प्रेमी को ऐसा चिन्तन करना चाहिये जो किसी प्रकार मेरी एक जिह्वा से लाख जिह्वा हो जाएं, और लाख जिह्वाओं से बीस लाख जिह्वा होजाएं । मैं उन सम्पूर्ण जिह्वाओं से,

लखु लखु गेड़ा आखीअहि एकु नामु जगदीस ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्रद्धा भक्ति पूर्वक जगदीश्वर के किसी एक नाम को लाख लाख बार उच्चारण करूं । स्वरूप वा तटस्थ बोधक नामों में से किसी एक नाम का निर्णय किए बिना परमेश्वर के एक नाम को जपने की इच्छा व्यक्त करने का यह भाव है । तटस्थ और स्वरूप बोधक जितने भी परमेश्वर के नाम हैं वे सभी एक ही अर्थ के प्रतिपादक हैं । भक्त के अन्तःकरण की मलिनता को दूर करके उसे कल्याण का भागी बनाते हैं। इसलिए प्रत्येक नाम को महामन्त्र जानकर रुचि के अनुसार किसी एक नाम का अवश्य सर्वदा जप करना चाहिये। मूलपाठ में, एक जिह्वा से लाख होने की तथा लाख में बीस लाख होने की भावना करने का निर्देश है । उपनिषदों में इसे सम्पद् उपासना कहते हैं। अन्यरूप वाली वस्तु में अन्यरूप की भावना करने का नाम सम्पद् उपासना है, जैसे यहां पर एक जिह्वा में अनेक होने की भावना की गई है । गुरु में देवता बुद्धि और नाम में नामी की भावना करने का भी वेद में निर्देश है । गुरुदेव में माता और पिता एवम् स्वामी और ईश्वर की भावना करने का निर्देश गुरुवाणी में भी मिलता है ।

यथा— गुरदेव माता गुरदेव पिता गुरदेव सुआमी परमेसुरा ॥ गु॰ग्र॰ पृ॰ २६२

परमेश्वर की प्रसन्नता के हेतु भूत, एतु राहि पति पवड़ीआ चड़ीए होइ इकीस ॥

इस सम्पद् उपासनारूप भक्ति मार्ग से मन्दमति पुरुषों को भी ज्ञानमार्ग की, पति=प्रतिष्ठा वाली, पवड़ीआ=शुभेच्छा, सुविचारणा, तनुमानसा, इत्यादि ज्ञान की सात भूमिकाएं प्राप्त होती हैं ।

अथवा एतु=इस भक्ति मार्ग से, राहिपति=मार्गपति अर्थात् सर्व मार्गों में मुख्य ज्ञान मार्ग की, पवड़ीआ=सातभूमिकारूप सीढ़ियां प्राप्त होती हैं ।

जिन सीढ़ियों पर चढ़ने से, होइ इकीस=भक्तिजन्य ज्ञान द्वारा जिज्ञासु ब्रह्म स्वरूप होजाता है ।

यथा— जिन जाता सो तिस ही जेहा ॥ गु॰ ग्र॰ पृ॰ ६३१

प्रश्न---- बहुत लोग साधन किए बिना अपने को ज्ञानी समझते हैं, ऐसे साधनहीन पुरुषों की क्या गति होती है ?

समाधान--- सुणि गला आकास की कीटा आई रीस ॥ आकास पद ब्रह्म का वाचक है, गला=पद ब्रह्म बोधक वाक्यों का नाम है । जिन पुरुषों ने सर्व ओर से प्रकाशकरनेवालेब्रह्म के प्रतिपादक वाक्यों का श्रवणमात्र किया है, साधनहीन होने के कारण सारासार का विवेक नहीं किया, उन विवेकहीन, कीटा=कीटतुल्य पुरुषों को, आई रीस=ब्रह्मवेत्ताओं के सदृश चित्त में केवल भावनामात्र ही आई है, अर्थात् उच्च अवस्था वाले ज्ञानियों के साथ स्पर्धा होने के कारण साधनहीन क्षुद्र हृदय वाले ज्ञानियों के स्वाङ्ग को धारण करने का पाखण्ड करते हैं । प्रश्न--जब साधनहीन पुरुषों की भावना मात्र से मानी हुई कृतकृत्यता झूठी है तब सच्ची कृतार्थता किसे प्राप्त होती है ?

समाधान--- नानक नदरी पाईऐ कूड़ी कूड़ै ठीस ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जो पुरुष विवेकादि साधन सम्पन्न होकर, इहुजगत हरि का रूप है हरिरूप नदरी आइआ इहु जग धूए का पहार । गु० ग्र० पृ० ११८७ ॥ इत्यादि वचनों से अद्वितीय ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करता है। वह चिज्जड़ ग्रन्थि, कर्म ग्रन्थि, संशय ग्रन्थि को छिन्न भिन्न कर देता है, संसार में उसे कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहता। इसलिए सच्ची कृतकृत्यता को, नदरी पाईऐ=ज्ञानवान् प्राप्त होता है। ग्रन्थियों को तोड़ने के बाद ज्ञानी कृतार्थता को प्राप्त होता है। इस बात को कठोपनिषद् में नचिकेता के प्रति यमराजने भी कहा है ।

यदासर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येहग्रन्थयः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावत्येतावद्ध्यनुशासनम् ॥

जब जिज्ञासु के हृदय की सभी ग्रन्थियां खुल जाती हैं, तब वह इसी शरीर में अमर होजाता है, बस इतना ही उपदेश है। जो पुरुष विवेकादि साधनों से हीन है, उसे श्रवणादि की प्राप्ति नहीं होती। श्रवण मनन के बिना आत्मज्ञान नहीं हो सकता। देहादि से भिन्न आत्मा को जाने बिना मैं ब्रह्म हूं, ऐसा मिथ्या कहना वञ्चनामात्र है। इसलिए, कूड़ै=उस मिथ्यावादी का अपने आपको, कूड़ीठीस=कृतार्थ मानना भी सर्वथा झूठा है, अर्थात् झूठी कृतकृत्यता मानने वाले उभयभ्रष्ट अज्ञानी बड़े मन्द भागी हैं।

॥ द्वात्रिंशं मन्त्रं समाप्तम ॥

जीव को अकाल पुरुष परमात्मा के अनुग्रह से संसार में सभी कुछ प्राप्त होता है। अपने बल से इच्छा के अनुसार किसी को कुछ प्राप्त नहीं होता। इसी वार्ता को गुरु जी आगे के मन्त्र में विस्तार पूर्वक निरूपण करते हैं।

मूल—आखणि जोरु चुपै नह जोरु । जोरु न मंगणि देणि न जोरु ।
जोरु न जीवणि मरणि नह जोरु । जोरु न राजि मालि मनि सोरु ॥
जोरु न सुरती गिआनि वीचारि ॥ जोरु ना जुगती छुटै संसारु ।
जिसु हथि जोरु करि वेखै सोइ ॥ नानक उतमु नीचु न कोइ ॥३३॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्दार्थ— आखणि जोरु चुपै नह जोरु। परमेश्वर की कृपादृष्टि के बिना इस जीव का आखणि=किसी को कुछ कहने अथवा प्रवचनादि करने में, नह जोरु=सामर्थ्य नहीं, तथा चुपै=मौन रहने में, नह जोरु=बल नहीं है, क्योंकि व्याधिग्रस्त होने पर इच्छा के रहते हुए भी जीव जिह्वा से बोल नहीं सकता, और वायुग्रस्त होने पर विवश होकर बोलता ही रहता है। मौन नहीं रह सकता। इसलिये बोलने और मौन रहने में जीव का अपना कोई बल नहीं किन्तु ईश्वराधीन है।

जोरु न मंगणि देणि न जोरु। इस जीव को, मंगणि=किसी से माँगने का भी, जोरु न=बल नहीं, अर्थात् अपनी इच्छा के अनुसार किसी से मांग कर कुछ प्राप्त नहीं कर सकता। तथा किसी को इच्छा के अनुसार, देणि=दानादि देने का भी, न जोरु=सामर्थ्य नहीं है। दानी पुरुषों को दान करते देख कर इच्छा रहते हुए भी निर्धन वा कृपण, अथवा परिवार वालों के निषेध करने से किसी को कुछ दे नहीं सकता।

जोरु न जीवणि मरणि न जोरु। ईश्वर की कृपा के बिना, जीवणि=दीर्घ काल तक जीने का, जोरु न=जीव को बल नहीं है। तथा मरणि=इच्छा के अनुसार मरने में भी इस जीव का, नह जोरु=अपना बल नहीं है। क्योंकि लाखों प्राणी अपनी इच्छानुसार जीने के लिये, एवम् अपनी इच्छानुसार मरने के लिये कायाकल्प, हजारों रस रसायनादि औषधियों का सेवन तथा विष आदि को भक्षण करते हैं। परन्तु अपने मनोरथों में सफल नहीं होते।

जोरु न राजि मालि मनि सोरु। राजि मालि=राज्य और धन, माल आदि की प्राप्ति में भी इस जीव का अपना कोई, जोरु न=बल नहीं है। प्राप्त होने पर भी अपनी आंखों के सामने विविध प्रकार की धन सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। मनि=मन में उठने वाले संकल्प, विकल्पों के, सोरु=कुलाहल को दबाने में भी जीव की अपनी सामर्थ्य नहीं है। जो व्यक्ति मन के संकल्पों को दमन करने में अशक्त है, वह राज्य की प्राप्ति और उसकी रक्षा कैसे कर सकता है?

जोरु न सुरती गिआनि वीचारि। सुरती=वेद के पठन पाठन में, तथा गिआनि वीचारी=ज्ञान के विचार करने में, जोरु न=जीव का अपना सामर्थ्य नहीं है। अथवा ईश्वर की कृपादृष्टि के बिना, सुरती=वेदों का, गिआनि=ज्ञानी होने में तथा वीचारि=सदसद् के विचार करने में जीव का अपना जोरु न=कोई बल नहीं।

जोरु न जुगति छुटै संसारु। संसारु=संसार से, छुटै=छूटने की, जुगति=युक्तियों के धारण करने में, जोरु न=अपनी शक्ति नहीं है। किन्तु जब परमेश्वर की कृपादृष्टि होती है, तब संसार से मुक्त होने की युक्तियों को जीव धारण करके कल्याण का भागी होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जिसु हथि जोरु करि वेखै सोइ।

जिसु = जिस अकाल पुरुष परमात्मा के, हथि = हाथ में, जोरु = बल है, सोइ = वह परमेश्वर, करि = जीवों को उत्पन्न करके, वेखै = देख रहा है, अर्थात् धारण पोषण कर रहा है।

नानक उतमु नीचु न कोइ। श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि इस सृष्टि में अपने बल से न कोई उत्तम है, और न कोई नीच है। किन्तु परमेश्वर ने पूर्व कर्मानुसार जिसे जैसा बनाया है, वह वैसा ही है।

भावार्थ— यह जीव स्वतन्त्र है वा परतन्त्र ? बलवान् है वा निर्बल ? अपने बल पर कुछ कर सकता है वा नहीं ? इत्यादि सिद्धों के प्रश्नों को सुन कर श्री गुरुदेव जी कहते हैं कि ईश्वर की कृपादृष्टि के बिना इस जीव का किसी को कुछ कहने और प्रवचनादि करने में सामर्थ्य नहीं, तथा मौन रहने में भी बल नहीं है। व्याधियुक्त पुरुष इच्छा के रहते हुए भी कुछ बोल नहीं सकता, और वायु-ग्रस्त होने पर विवश होकर बोलता ही रहता है। इसलिये बोलने और मौन रहने में जीव की अपनी कोई शक्ति नहीं सभी कुछ ईश्वराधीन है।

इस जीव को किसी से कुछ पदार्थ माँगने की भी शक्ति नहीं, क्योंकि अपनी इच्छा के अनुसार किसी से मांग कर तृप्त नहीं हो सकता तथा किसी को इच्छा के अनुकूल दानादि देने का भी इसमें सामर्थ्य नहीं है। दानी पुरुषों को दान करते हुए देख कर इच्छा रखते हुए भी निर्धन वा कृपण होने के कारण किसी को कुछ दे नहीं सकता। ईश्वर कृपा के बिना दीर्घ काल तक जीने का भी जीव को बल नहीं है। इच्छा के अनुसार जीव को मरने का भी बल नहीं है, क्योंकि लाखों प्राणी इच्छा के अनुसार जीने के लिये एवम् इच्छा के अनुसार मरने के लिये कायाकल्प हजारों रस रसायनादि औष-धियों का सेवन तथा विषादि भक्षण करते हैं। परन्तु अपने मनोरथों में सफल नहीं होते, राज्य और धन पदार्थों की प्राप्ति में भी जीव का अपना कोई बल नहीं क्योंकि अनेक प्रकार के बहुमूल्य पदार्थ अपनी आंखों के सामने नष्ट हो जाते हैं। मन में उठने वाले अनेक प्रकारके संकल्प विकल्पों के कोला-हल को दबाने में भी जीव की अपनी कोई शक्ति नहीं है। वेदों के पठन पाठन में तथा ज्ञान के विचार करने में जीव का अपना कोई सामर्थ्य नहीं है। संसार से छूटने की युक्तियों के धारण करने में अपनी शक्ति नहीं है, किन्तु जब परमेश्वर की कृपादृष्टि होती है तब संसार से मुक्त होने की अनेक प्रकार की युक्तियों को धारण करके जीव कल्याण का भागी होता है। जिस परम पिता परमात्मा के हाथ में सम्पूर्ण बल है वह परमेश्वर जीवों को उत्पन्न करके देख रहा है, और यथा समय सर्व का यथोचित धारण पोषण कर रहा है। श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि सृष्टि में कोई भी जीव अपने बल पर न उत्तम है और न कोई नीच है, किन्तु परमेश्वर ने पूर्व कर्मों के अनुसार जिसको जैसा बनाया है, वह वैसा ही है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विशेष व्याख्या— बलात्प्राप्त अनिच्छित वस्तु का नाम अनर्थ है। अज्ञान तत्कार्य प्रपञ्च भी अनर्थ कोटि में है, इस अनर्थ की निवृत्ति ही कृतकृत्यता है। वह ब्रह्मज्ञान से प्राप्त होती है। ब्रह्मज्ञान सत्यासत्य वस्तु के विचार से होता है। सत्यासत्य के विवेक का बल साधनों से होता है। निष्काम कर्म और ईश्वरभक्ति रूप साधनों के बिना अन्य किसी उपाय से प्राप्त नहीं होता। इसी बात को श्री गुरुदेव जी आगे प्रतिपादन करते हैं।

आखणि जोरु चुपै नह जोरु।

अज्ञान शत्रु को नाश करने वाले, ज्ञान की उत्पत्ति के योग्य विवेक रूप, जोरु=जो बल है वह आखणि=बहुत शास्त्रों के अध्ययन और अध्यापन से सिद्ध नहीं होता। इस अर्थ में गुरु वचन भी प्रमाण है,

पढ़ि पंडितु अवरा समझाए। घर जलते की खबरि न पाए॥ गु० ग्र० पृ० १०४६।

अथवा जैसे कोई पुरुष अपने को कृतार्थ मानता है तथा अपने में विवेचन करने की शक्ति समझता हो कि हम आत्मतत्त्व के विवेचन में बड़े कुशल हैं। ऐसे वाक्पटु पुरुष के प्रति गुरु जी कहते हैं कि आत्मतत्त्व के विवेचन में हम बड़े समर्थ हैं। इस प्रकार आखणि=कहने मात्र से, जोरु=बल की सिद्धि नहीं होती। जैसे घर में बैठ कर हम युद्ध में बड़े निपुण हैं ऐसा कहने वाले भीरु पुरुष में शूरवीरता नहीं होती, वैसे हम विवेकी हैं ऐसा कहने मात्र से विवेक बल की सिद्धि नहीं होती।

प्रश्न— यदि शास्त्रों के पठन पाठन से विवेक बल प्राप्त नहीं होता तब हम उसे मौन से प्राप्त कर लेंगे?

समाधान— चुपै नह जोरु। वाणी के संयम रूप मौन से भी विवेक बल प्राप्त नहीं होता। यदि मौन मात्र से विवेक बल की प्राप्ति होती तब सभी मूक पुरुष विवेचन में समर्थ हो जाते, परन्तु ऐसा देखने में नहीं आता। इसलिये मौन से भी विवेक बल की प्राप्ति नहीं होती। विचार के अन्य साधनों के बिना केवल काष्ट मौन से विवेक बल प्राप्त नहीं होता, इसी भाव से वाणी के संयम रूप मौन का खण्डन किया है।

प्रश्न— गुरुदेव! मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप मुझे विवेक बल प्रदान करें क्योंकि मैं साधन करने में असमर्थ हूँ।

समाधान-- जोरु न मंगणि। वैराग्यादि अन्य साधनों के बिना मांगने मात्र से वह सामर्थ्य प्राप्त नहीं होता। यदि मांगने मात्र से प्राप्त होता तब सभी प्राणी उसे मांग कर प्राप्त कर लेते, परन्तु ऐसा देखने में नहीं आता। इसलिये मांगने मात्र से वह सामर्थ्य नहीं मिलता।

प्रश्न-- यदि केवल मौन से तथा याचना करने से वह सामर्थ्य नहीं मिलता तब हम उसे दान द्वारा प्राप्त कर लेंगे?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समाधान-- **देणि न जोरु,** जिस वस्तु के उद्देश्य से दान किया जाता है दाता को वही वस्तु प्राप्त होती है। यदि तुम विवेक प्राप्ति के लिये दान नहीं करते तब **'देणि न जोरु'** अन्य कामना को लेकर किये दान से वह विवेक रूप सामर्थ्य प्राप्त नहीं होता, यदि निष्काम भाव से ईश्वर प्रसन्नता के लिये कोई दान करता है तब उसे विवेक अवश्य प्राप्त होता है, क्योंकि वेद में जहां वर्ण आश्रमों के धर्म ज्ञान की इच्छा के लिये लिखे हैं वहां दान यज्ञादि को भी हेतु बताया है।

प्रश्न-- सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के लिये किये दान से विवेक की प्राप्ति नहीं होती, यह सत्य है परन्तु तीव्र तप के प्रभाव से दीर्घजीवी होकर हम विवेक बल को प्राप्त कर लेंगे ?

समाधान-- **"जोरु न जीवणि मरणि नह जोरु"**

यदि अन्य साधनों के बिना दीर्घजीवी पुरुष को वह सामर्थ्य प्राप्त हो सकता तब दीर्घायु वाले सर्पों को भी वह सामर्थ्य प्राप्त हो जाता। इसलिये **जोरु न जीवणि** वैराग्यादि साधनों के बिना अधिक जीने मात्र से विवेक रूपी बल प्राप्त नहीं होता।

प्रश्न--- यदि दीर्घजीवी पुरुष को वह सामर्थ्य प्राप्त नही होता तब हम तीर्थराज प्रयाग, वाराणसी, कुरुक्षेत्र, बद्रीनाथ, अमृतसर आदि किसी पवित्र तीर्थ पर मरकरके भावी जन्म में विवेक बल को प्राप्त करेंगे ?

समाधान--- विवेक रूप बल के संकल्प किये बिना प्रयागादि तीर्थों में प्राणों के त्याग मात्र से विवेक बल की प्राप्ति नहीं होती। इसी भाव को **'मरणि नह जोरु'** इस वचन से प्रकट किया है।

प्रश्न--- संकल्प किये बिना तीर्थों पर केवल मरने मात्र से वह बल प्राप्त नहीं होता यह बात सत्य है।

परन्तु हम उसी उद्देश्य से यज्ञ दानादि द्वारा सामर्थ्य को प्राप्त करेंगे। यद्यपि यह बात वेद सम्मत है तथापि यज्ञ दानादि कर्म भी अधिक सम्पत्ति के बिना सिद्ध नहीं होते। यदि किसी देवता या सत्पुरुष के प्रसाद से राज्य सम्पत्ति प्राप्त हो जाये तो भी सम्पत्ति से उस बल की प्राप्ति असम्भव है। इसी भाव को **'जोरु न राजिमालि मनि सोरु'** के द्वारा प्रकट किया है।

जोरु=वह विवेक बल, **राजि मालि**=राज्य सम्पत्ति से भी सिद्ध नहीं होता क्योंकि राज्य लक्ष्मी, **मनि**=अन्तःकरण में काम क्रोधादि का, **सोरु**=क्षोभ करने वाली है।

प्रश्न--- राज्य लक्ष्मी से हम उस बल को प्राप्त नहीं करना चाहते किन्तु योगियों के संसर्ग से उसे प्राप्त कर लेंगे ?

समाधान--- **जोरु न सुरती गिआनि वीचारि।**

जोरु=विवेक बल, **न सुरती**=ध्यान करने वाले योगियों के संसर्ग से भी प्राप्त नहीं होता,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्योंकि योगी पदार्थ संशोधन पूर्वक वाक्यार्थ के विवेचन में कुशल नहीं होते, तथा गिआनि वीचारि= प्रकृति से पुरुष का भेद ज्ञान करने के लिये चतुर्विंशति तत्त्वों का विचार करने वाले सांख्य लोग भी उस विवेक बल को प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि वे भेद वादी होने के कारण अद्वैत बोधक वचनों के तात्पर्य से अनभिज्ञ हैं। इसलिये जीव ईश्वर का भेद मानने वाले पुरुषों की संगति से जिज्ञासुओं को कभी विवेक बल प्राप्त नहीं हो सकता।

प्रश्न--सांख्य एवं पातञ्जल मत से हम उस बल को प्राप्त नहीं करना चाहते, क्योंकि ये दोनों भेद वाद के समर्थक हैं किन्तु नैयायिक वैशेषिकों की संगति से हम विवेक बल को प्राप्त करलेंगे ?

समाधान-- जोरु न जुगती छुटै संसारु।

जिस बल से ज्ञान को प्राप्त होकर अधिकारी पुरुष अज्ञान तत्कार्य रूप संसार से, छुटै=मुक्त हो जाता है। वह बल केवल शुष्क तर्कों से विचार करने वाले नैयायिक वैशेषिकों की, जुगती=श्रुति विरुद्ध युक्तियों से प्राप्त नहीं होता, किन्तु वैराग्यादि साधनों सहित विचार से वह बल प्राप्त होता है।

प्रश्न--- वैराग्यादि साधनों के बिना और किसी उपाय से वह बल प्राप्त नहीं होता, यह मैंने निश्चय कर लिया है परन्तु अब आप कृपा करके उस बल की अवधि बतायें ?

समाधान--- जिसु हथि जोरु करि वेखै सोइ।

जिस अधिकारी पुरुष को श्रवण मनन के द्वारा वह बल प्राप्त हुआ है। सोइ=वही अधिकारी पुरुष उस विवेक बल से, वेखै=हस्तामलकवत् स्वस्वरूप को प्रत्यक्ष देखता है। इसलिये ब्रह्म साक्षात्कार ही विचार की अवधि है। ब्रह्म दर्शन के बाद विचार की समाप्ति है, अर्थात् ब्रह्मदर्शन से कृत-कृत्यता प्राप्त होने के कारण उसे कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहता। इसी बात को भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में व्यक्त किया है।

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
नचास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थ व्यपाश्रयः॥ गीता अ० ३ श्लो० १८

इस संसार में ज्ञानी पुरुष को कुछ करने और न करने से कोई प्रयोजन नहीं तथा उसका सम्पूर्ण भूतों में कुछ भी स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं है तो भी वह लोक संग्रह के लिए श्रेष्ठ कर्म ही करता है।

प्रश्न---ज्ञानवान को क्या लाभ होता है ? पूर्वोक्त विचार को समाप्त करते हुए गुरु जी इसका उत्तर देते हैं।

'नानक उतमु नीचु न कोई।'

ज्ञानवान् की दृष्टि में शम दमादि दैवी सम्पत्ति वाला उत्तम पुरुष और काम क्रोधादि आसुरी सम्पत्ति वाला, रजोगुणी तथा तमोगुणी प्रकृति वाला नीच पुरुष कोई नहीं। ब्रह्मदर्शी होने के कारण उसे सर्वत्र ब्रह्म ही दिखाई देता है। उत्तम मध्यम नीच की भावना उसके हृदय में सर्वदा के लिये लुप्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हो जाती है। अथवा देह से भिन्न आत्मा को देखने वाला उत्तम और देह को आत्मा मानने वाला मध्यम और सांसारिक विषयों में प्रीति वाला मन्द पुरुष है। इत्यादि भेद दृष्टि से ज्ञानी किसी को नहीं देखता। इसी भाव से भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है।

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनिचैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥ गीता अ० ५।

ज्ञानी जन विद्या एवं विनय युक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हस्ती, कुत्ते और चाण्डाल में समभाव से देखते हैं। वन्दनीय गुरुदेव ने भी ज्ञानी के विषय में ऐसे ही भाव व्यक्त किये हैं।

ब्रह्म गिआनी सदा सम दरसी। ब्रह्म गिआनी की द्रिसटि अमृत बरसी॥

इस प्रकरण में श्री गुरुदेव जी ने यह निर्णय किया कि तत् त्वम् पदों के अर्थ का विवेचन अधिकारी पुरुषों का बल है, उस बल से अधिकारी के अन्तःकरण में जीव ब्रह्म की एकता का ज्ञान होता है। इसलिये वाक्यजन्य साक्षात्कार ही अधिकारी के बल का फल है। प्रकरण के अन्त में ज्ञानी पुरुष की समदृष्टि का प्रतिपादन करने से राग द्वेष से हीन जीवन मुक्ति का प्रतिपादन भी स्वाभाविक हो जाता है।

❀ त्रयस्त्रिंशं मंत्र समाप्तम् ❀

प्रश्न—माननीय गुरुदेव! कर्मकाण्ड का निरूपण करने की कृपा करें? इसके उत्तर में गुरु जी कहते हैं।

मूल—राती रुती थिती वार॥ पवण पाणी अगनी पाताल॥
तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल।
तिसु विचि जीअ जुगति के रंग॥ तिन के नाम अनेक अनन्त॥
करमी करमी होइ वीचारु॥ सचा आपि सचा दरबारु॥
तिथै सोहनि पंच परवाणु॥ नदरी करमि पवै नीसाणु॥
कच पकाई ओथे पाइ॥ नानक गइआ जापै जाइ॥ ३४॥

शब्दार्थ —

राती रुती थिती वार। पवण पाणी अगनी पाताल॥ तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल।

वार=सोमवार आदि दिन, राती=रात्रि, थिती=प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीयादि तिथि, रुती=वसन्त ग्रीष्मादि ऋतु एवम्, पवण=वायु, पाणी=जल, अगनी=अग्नि, पाताल=अतल वितलादि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सप्त पाताल तथा भूर्भुवादि ऊपर के सात लोकों को बना कर, तिसुविचि=चतुर्दश भुवनात्मक ब्रह्माण्ड में परब्रह्म परमेश्वर ने, धरती=पृथिवी को, धरमसाल=धर्मशाला अर्थात् शुभकर्मानुष्ठान करने के लिये थापि रखी=स्थापित कर रखा है।

तिसु विचि जिअ जुगति के रंग। तिनके नाम अनेक अनन्त ॥

तिसु विचि=उस शुभ कर्मानुष्ठान करने योग्य भारतभूमि में, जीअ=अनेक भांति के जीव हैं, तथा उन जीवों के, जुगति=अनेक प्रकार के कर्म, धर्म करने की युक्तियां रीति रिवाज एवम् प्रथायें प्रचलित हैं। तथा उन जीवों के अनेक प्रकार के, रंग=श्याम गौरादि रूप हैं, और तिनके= उन जीवों के, नाम अनेक अनन्त=अनेक ही नाम हैं तथा अनन्त ही जीव हैं।

करमी करमी होइ वीचारु। सचा आपि सचा दरबारु ॥

सचा आपि=परमेश्वर आप सच्चा है तथा, सचा दरबारु=उसका दर्शनीय एवम् अलौकिक दरबार भी सच्चा है उस सच्चे दरबार में, करमी करमी=शुभाशुभ कर्मों के अनुसार भिन्न भिन्न जीवों के, होइ बीचारु=पुण्य पाप का विचार होता है।

तिथै सोहनि पंच परवाणु। नदरी करमि पवै नीसाणु।

तिथै=परमेश्वर के सच्चे दरवार में, परवाणु=प्रामाणिक अर्थात् स्वीकृत, पंच=काम क्रोधादि पांचों को जीतने वाले सत्पुरुष, सोहनि=शोभा को प्राप्त करते हैं, जिन सत्पुरुषों के माथे पर, नदरी=परमेश्वर की, करमि=कृपा रूप, नीसाणु=भाग्य रेखा पवै=पड़ती है वही सच्चे दरबार में सुशोभित होते हैं।

कच पकाई ओथै पाइ नानक गइआ जापै जाइ।

ओथै=उस सच्चे दरबार में, कच=कच्चापन, और पकाई=पक्कापन, पाइ=प्राप्त होता है, जाना जाता है, अर्थात् शुभाशुभ कर्मों की, कचाई, (बुराई) पकाई (भलाई) का ज्ञान जीवों को सच्चे दरवार में ही प्राप्त होता है। श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं, गइआ=परलोक में जाते ही, जापै जाइ=सच्चा एवम् झूठा जाना जाता है, अर्थात् इस लोक में पाखण्ड के द्वारा अपने आपको कोई कितना ही धर्मात्मा सिद्ध करने की चेष्टा करे परन्तु सच्चे दरबार में उसका पोल खुल जाने से वास्तविकता शीघ्र प्रकट हो जाती है। किए हुए कर्मों पर पश्चात्ताप करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रहता।

भावार्थ—अनेक प्रश्नों के युक्तियुक्त उत्तर सुन कर सिद्ध मण्डली ने का। कृपया आप अब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कर्मकाण्ड का संक्षिप्त निरूपण करें। सिद्धों की जिज्ञासा को देख कर श्री गुरुदेव जी कहते हैं कि रविवार, सोमवार, आदि दिन रात्रि तथा प्रतिपदा, द्वितीया, अमावस्या, पूर्णिमादि तिथियां, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्मादि ऋतुयें तथा वायु, जल, अग्नि और अतल वितलादि सप्त पाताल, एवं भूर्भुवादि ऊपर के सात लोकों को बना कर चतुर्दशात्मक ब्रह्माण्ड में परब्रह्म परमेश्वर ने पृथिवी को शुभकर्मानुष्ठान करने की धर्मशाला स्थापित कर रखा है। क्योंकि यज्ञ दानादि जितने भी शुभकर्मानुष्ठान हैं वे सभी वैदिक रीति से भारतखण्ड की भूमि पर ही विधिवत सम्पन्न होते हैं। तिथि, वार, शुभ मुहूर्त एवं अनुकूल जल वायु की आवश्यकता प्रत्येक शुभकर्मानुष्ठान में होती हैं। इसलिये परम पिता परमात्मा ने रात्रि, तिथि, ऋतु आदि का सर्व प्रथम निर्माण किया है। अनेक प्रकार के शुभ कर्मानुष्ठान करने योग्य आर्यावर्त भारत भूमि में अनेक भांति के जीव हैं तथा उन जीवों की कर्म धर्म करने की रीति रिवाज एवं प्रथायें अनेक प्रकार की प्रचलित हैं। भारतादि खण्डों में रहने वाले जीवों के श्याम गौरादि अनेक प्रकार के रूप तथा अनेक ही नाम हैं। परमेश्वर स्वयं अविनाशी और उसका दर्शनीय दरबार भी सच्चा है। उस सच्चे दरबार में शुभाशुभ कर्मों के अनुसार भिन्न भिन्न जीवों के पुण्य पाप का विचार होता है। ईश्वर के दिव्य सच्चे दरबार में काम क्रोधादि पाँचों को जीतने वाले सत्पुरुष महात्मा शोभा को प्राप्त करते हैं।

जिन महापुरुषों के माथे पर ईश्वर की कृपादृष्टिरूप भाग्यरेखा होती है वही ईश्वरीय दरबार में सुशोभित होते हैं। शुभाशुभकर्मों की कचाई और पकाई अर्थात् भलाई बुराई का ज्ञान जीवों को उस सच्चे दरबार में ही प्राप्त होता है। श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि परलोक में जाते ही सच्चे और झूठे का ज्ञान हो जाता है। इस लोक में पाखण्ड के द्वारा कोई अपने आपको कितना ही पुण्यात्मा, धर्मात्मा, महात्मा सिद्ध करने का यत्न करे परन्तु ईश्वरीय महान अलौकिक दिव्य दरबार में सभी जीवों की वास्तविकता आँखों के सामने प्रकट हो जाती है। मिथ्याचारी अपने किये कर्मों का पश्चात्ताप करते हैं। भक्तलोग ईश्वरीय कृपादृष्टि को पाकर प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

विशेष व्याख्या —पूर्व प्रतिपादित विवेक बलजन्य साक्षात्कार का जो विषय है वही ब्रह्म, अज्ञान तथा अज्ञान के कार्य भूत, भौतिक समस्त प्रपञ्च का भी अधिष्ठान है। इस बात को आगे के मन्त्र में श्री गुरुदेव जी दिखाते हैं।

राती रुती थितीवार ॥ पवण पाणी अगनी पाताल ॥

जिस अधिष्ठान के साक्षात्कार से ज्ञानी को उत्तम, मध्यम, नीच भाव प्रतीत नहीं होता उस अधिष्ठानमें रात्रि, दिन, ऋतु दक्षिणायन, उत्तरायण, तिथि, वार, पक्ष, मास, वर्ष, वायु, जल, अग्नि, आकाशादि भूत, भौतिक समस्त प्रपञ्च अज्ञान से कल्पित है। उस अधिष्ठान में पृथिवी लोक भी कल्पित है यह आगे कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल ॥

यावद्दृश्य वर्ग की सत्ता अज्ञान की स्थिति पर्यन्त है, इसलिये अज्ञान ने अधिष्ठान में, धरती=पृथिवी को, थापि=कल्पित करके अपनी स्थिति पर्यन्त, रखी=स्थिर कर रखा है। जिस पृथिवी पर वैदिक स्मार्त सभी प्रकार के शुभ कर्म किये जाते हैं, इसलिये पृथिवी सम्पूर्ण धर्मों की, साल=शाला(स्थान) है। निखिल धर्मों के स्थान को अधिष्ठान में कल्पित कह कर अब धर्मों के करने वाले जीवों को भी ब्रह्म में कल्पित कहते हैं।

तिसु विचि जीअ जुगति के रंग ॥ तिसुविचिजीअ=उस अधिष्ठान ब्रह्म में सभी प्रकार के धर्मों को करने वाले चिदाभास जीव भी कल्पित हैं।

प्रश्न—जीवों को कल्पित मानने से घटपटादि के समान वे अनित्य हो जायेंगे, जीवों को अनित्य मानने से उन से अभिन्न ब्रह्म भी अनित्य हो जाएगा?

समाधान— जुगति के रंग=जुगति पद तादात्म्य सम्बन्ध का बोधक है। चिदाभास और कूटस्थ भेद से जीव दो प्रकार का है। जो जीव, जुगति=अपने तादात्म्य वाले देह इन्द्रियादि के, रंग=स्वरूप हो रहे हैं, वे चिदाभास ही कल्पित हैं। जो देह इन्द्रियादि से भिन्न साक्षी कूटस्थ है वह कल्पित नहीं किन्तु ब्रह्म स्वरूप होने से नित्य है। इसलिये कूटस्थ साक्षी से भिन्न जीवों को कल्पित मानने में कोई दोष नहीं।

प्रश्न— वे चिदाभास जीव कितने नामों वाले और कितनी संख्या में हैं?

समाधान— तिनके नाम अनेक अनंत ॥

तिनके नाम=उन चिदाभास जीवों के रामतीर्थ, रघुवीर, दिलीप, मधुसूदन, सर्वेश्वर, भागसिंह, सदनमोहनसिंह इत्यादि अज्ञान से कल्पित अनेक नाम हैं, जिनके नाम अनेक हैं वे चिदाभास जीव भी, अनन्त=असंख्य हैं।

प्रश्न— वे कल्पित जीव अपने वास्तविक कूटस्थ रूप को कब जानेंगे?

समाधान— करमी करमी होइ वीचारु ॥

करमी=शुभ कर्म करने वाले सकाम कर्मियों के मध्य में ईश्वर की प्रसन्नता के लिये, करमी=निष्काम कर्म करने वाले निष्कामी जीव उन्हें निष्काम कर्मों से अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा, होइ वीचारु=जब अपने स्वस्वरूप कूटस्थ का वास्तविक विचार उत्पन्न होता है तब वे कूटस्थ को ब्रह्मरूप जानते हैं। विचार का विषय दिखा कर अब विचार का स्वरूप कहते हैं।

सचा आपि सचा दरबारु ॥ दरबारु शब्द श्रेष्ठ पुरुषों की सभा का वाचक है। यहां पर दरबारु शब्द से संशोधित तत् पद के अर्थ का ग्रहण है। दरबारु=संशोधित तत् पद का अर्थ जैसे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सचा =तीनों कालों में नाश से रहित है वैसे ही, आपि =कूटस्थ आत्मा, सचा =नाश से रहित है, इस प्रकार जब अन्तःकरण में विचार उत्पन्न होता है तब यह जीव अपने परमार्थ स्वरूप कूटस्थ को ब्रह्म रूप जानता है।

प्रश्न— ब्रह्म में कूटस्थ के समान सूर्यादि को तथा चिदाभास को भी सत्य मानना चाहिये ?

समाधान— तिथै सोहनि पंच परवाणु ॥

तिथै =उस ब्रह्म में, पंचपरवाणु =वेद प्रमाण में कहे हुए, दुर्गा, गणेश, सूर्यादि पांचों, नेह नानास्ति किञ्चन ॥ इत्यादि वचनों द्वारा कल्पित रूप से ही, सोहनि=सुशोभित हो रहे हैं, परमार्थ स्वरूप से नहीं।

नदरी करमि पवै नीसाणु ॥ नदरी=ज्ञान वाला चिदाभास तथा उसके, करमि=शुभाशुभादि कर्म पुनः, नीसाणु=सात अवस्था रूपी चिह्न कल्पित रूप से ही, पवै=प्राप्त होते हैं वास्तविक रूप से प्रतीत नहीं होते।

भाव यह है अज्ञान, आवरण, विक्षेप, परोक्ष ज्ञान, अपरोक्ष ज्ञान, शोक निवृत्ति, निरंकुशा तृप्ति, ये सात अवस्थायें चिदाभास की हैं। सम्पूर्ण कर्मों का कर्ता और भोक्ता चिदभास ही है कूटस्थ नहीं। ब्रह्म ज्ञान से कर्मों के सहित चिदाभास का बाध होता है। साक्षी कूटस्थ ब्रह्म स्वरूप है। उसका बाध नहीं होता। पति को भावी जन्म में प्राप्त करने के लिये सती पतिव्रता के समान साक्षी कूटस्थ की प्राप्ति के लिये चिदाभास अपना नाश स्वयं ज्ञान से चाहता हैं। इसलिये नदरी=जींव ईश्वर के अभेद ज्ञान वाला चिदाभास और चिदाभास, के शास्त्र विहित शुभाशुभ कर्म तथा,

भै काहु कउ देत नहि नहि भै मानत आनि।

इत्यदि वचनों से प्रतिपादित नीसाणु=जींवन्मुक्ति के चिह्न, वे सभी ब्रह्म स्वरूप कूटस्थ में बाधित होने से पवै=कल्पित रूप से पाये जाते हैं। इसलिये अन्य पदार्थों के सदृश कूटस्थ को ब्रह्म स्वरूप करके जानने वाला चिदाभास भी मिथ्या है। किञ्च. चिदाभास की सात अवस्थाओं में दृढ़ तथा अदृढ़ ज्ञान भी उसमें कल्पित है इस बात को गुरु जी आगे प्रतिपादन करते हैं।

"कच पकाई ओथै पाइ"

ज्ञान की दो अवस्थायें हैं एक दृढ़ तथा दूसरी दुर्बल, श्रवण, मनन, निदिध्यासन काल में ब्रह्म ज्ञान सम्पूर्ण अज्ञान तत्कार्य को दूर नहीं करता, इसलिये तीन भूमिकारूप ज्ञान कच्चा (दुर्बल) है। ब्रह्म साक्षात् के समय अज्ञान तत्कार्य को ब्रह्म ज्ञान पूर्णतया दूर कर देता है। इसलिये चतुर्थी भूमिका से लेकर सप्तमी भूमिका तक ज्ञान पक्का (परिपक्व) है। वह कच्चा और पक्का ज्ञान ओथै= ब्रह्मरूप सच्चे अधिष्ठान में पाइ=कल्पित रूप से पाया जाता है। जिस अधिष्ठान में पूर्वोक्त सभी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कल्पित हैं वह अधिष्ठान ब्रह्म किसी में कल्पित नहीं।

प्रश्न— ऐसाज्ञान जिस सरल उपाय से हो सके उसे कहने की कृपा करें ? प्रकरण को समाप्त करते हुए गुरुदेव जी सुगम उपाय बतलाते हैं।

नानक गइआ जापै जाइ ॥ ब्रह्म श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ गुरु के समीप, गइआ=जाने से अधिकारी पुरुष को ब्रह्मरूप अधिष्ठान, जापै=अपरोक्ष प्रतीत होता है, उसके अपरोक्ष होने से जिज्ञासु जाइ=कृतकृत्य हो जाता है।

॥ चतुस्त्रिंशंमन्त्रंसमाप्तम् ॥

——):❀:(——

कर्मकाण्ड का प्रकार बता कर अब ज्ञानकाण्ड के प्रकार को गुरुदेव जी बतलाते हैं।

मूल— धरम खंड का एहो धरमु ॥ गिआन खंड का आखहु करमु ॥
केते पवण पाणी वैसंतर केते कान महेस ॥
केते बरमे घाड़ति घड़ीअहि रूप रंग के वेस ॥
केतीआ करम भूमी मेर केते, केते धू उपदेस ॥
केते इंद चंद सूर केते, केते मंडल देस ॥
केते सिध बुध नाथ केते, केते देवी वेस ॥
केते देव दानव मुनि केते, केते रतन समुंद ॥
केतीआ खाणी केतीआ बाणी । केते पात नरिंद ॥
केतीआ सुरती सेवक केते नानक अंतु न अंतु ॥३५॥

शब्दार्थ— धरमखंड का एहो धरमु ॥ कर्मकाण्ड का यही प्रकार है जो पीछे बतलाया गया है। अथवा धरमखंड का=कर्मकाण्ड का, एहो=ऐसा ही, धरमु=स्वभाव है, अर्थात् जो व्यक्ति जैसा शुभाशुभ कर्म करता है उसे वैसा ही फल प्राप्त करा देता है।

प्रश्न— गुरुदेव ! अब ज्ञान काण्ड के प्रकार का निरूपण करें।

समाधान— गिआन खंड का आखहु करमु ॥

गिआनखंड का=ज्ञानकाण्ड का, करमु=प्रकार, आखहु=कहते हैं। जिस ज्ञानी को आत्मसाक्षात्कार हुआ है और जो सर्वत्र परिपूर्ण परमेश्वर को ही देखता है, उस ज्ञानवान् की दृष्टि इस प्रकार की होती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

केते पवरा पारणी वैसंतर केते कान महेस ॥

केते पवरा पारणी=कितने ही वायु हैं, और कितने ही जल हैं, और कितने ही, वैसंतर=अग्नियां हैं, तथा केते कान महेस =युग एवम् कल्प भेद से कितने ही श्रीकृष्ण और रुद्र हैं।

केते बरमे घाड़ति घड़ीअहि रूप रंग के वेस ॥

केते बरमे =कितने ही ब्रह्मा संसार की, घाड़ति =रचना करने में, घड़ीअहि =लगे हुए हैं, अर्थात् सृष्टि को उत्पन्न कर रहे हैं, और कितने ही चतुर्मुख, अष्ट मुख षोडशमुखादि, रूप =ब्रह्मा के रूप हैं, और कितने ही, रंग के =श्वेत, श्याम, रक्तादि रङ्गों के हैं, तथा कितने ही, वेस =अनेक प्रकार के वस्त्रों की वेष भूषा को धारण करने वाले हैं।

केतीआ करम भूमी मेर केते । केते धू उपदेस ॥

केतीआ करम भूमी =कल्प भेद से कितनी ही भारतखण्डादि कर्मप्रधान भूमियां हैं जहां पर लोग यज्ञ दानादि अनेक प्रकार के शुभकर्मानुष्ठान करते हैं। मेर केते =और कितने ही सुमेरु पर्वत हैं, केते धू उपदेस =तथा कितने ही कल्प भेद से ध्रुवभक्त और उसे उपदेश करने वाले नारदादि मुनि हैं।

केते इंद चंद सूर केते। केते मण्डलदेस ॥

केते इंद चंद =कितने ही इन्द्र और कितने ही चन्द्रमा हैं। सूर केते =तथा कितने ही सूर्य हैं। केते मण्डल देस =कितने ही भारतादि मण्डल तथा मण्डलान्तर्गत देश, प्रान्त उपप्रान्त हैं।

केते सिध बुध नाथ केते, केते देवी वेस ॥

कितने ही, सिध =अणिमा, महिमादि सिद्धियों वाले कपिलादि सिद्ध तथा मङ्गल बुधादि नवग्रह अथवा बुद्धिमान् विद्वान् तथा गोरक्षनाथ, मत्स्येन्द्र, भर्तृहरि इत्यादि कितने ही नाथ हैं, एवम् दुर्गा, सरस्वती, पार्वती, काली, महाकाली इत्यादि कितने ही देवियों के, वेस =स्वरूप हैं।

केते देव दानव मुनि केते, केते रतन समुंद ॥

कितने ही देवता और कितने ही दानव एवम् कितने ही मननशील मुनि गौतम भारद्वाजादि हैं, तथा कितने ही रत्न और कितने ही समुद्र हैं। अथवा कितने ही रत्नोंवाले समुद्र हैं।

केतीआखाणी केतीआबाणी, केते पाप नरिंद

केतीआ =कितनियां ही, खाणी =अण्डज, जेरजादि खानियां हैं, और केतीआबाणी =परा,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पश्यन्ती, मध्यमादि, **वाणी** =वाणियां हैं, **केते** =कितने ही, **पात** =सम्राट और कितने ही, **नरिंद** = राजे महाराजे हैं अथवा कितनियां ही राजाओं की, **पात** =पंक्तियां हैं।

केतीआ सुरती सेवक केते, नानक अन्तु न अन्तु ॥

केतीआ =कितनियां ही वेदों की, **सुरती** =श्रुतियां हैं, और कितने ही, **सेवक** =श्रुतियों को मानने वाले सेवक लोग हैं, अर्थात् कितने ही वेदों के अनुसार शुभकर्मानुष्ठान करने वाले श्रद्धालु सेवक लोग हैं। श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं कि न तो परमेश्वर का अन्त है और न ही उसकी बनाई हुई सृष्टि का अन्त है। अर्थात् परब्रह्म रूप समुद्र में असंख्य ब्रह्माण्ड लहरों के समान हैं। जैसे समुद्र में, बीचि, तरङ्ग, फेन, बुदबुदों की गणना नहीं हो सकती, वैसे इस अनिर्वचनीय सृष्टि का भी अन्त नहीं प्राप्त हो सकता।

भावार्थ— पूर्व में कर्म काण्ड के उपयोगी तिथि, वार, स्थान और कर्ता एवम् उसका प्रकार बता कर अब सिद्धों की जिज्ञासा के अनुसार ज्ञान काण्ड का प्रकार श्री गुरुदेव जी कहते हैं।

जिस ज्ञानी को आत्मसाक्षात्कार हुआ है तथा जो सर्वत्र परिपूर्ण परमेश्वर को देखता है उस ज्ञानवान् की दृष्टि इस प्रकार की होती है कि ईश्वरीय रचना में असंख्य ही वायु हैं और कितने ही प्रकार के जल हैं। एवम् अनन्त ही अग्नियां हैं और युग तथा कल्प भेद से अनन्त ही कृष्ण एवम् शिव हैं। अगणित ही ब्रह्मा, अनेक प्रकार के रूप रङ्गों वाले संसार को बनाने में लगे हुए हैं। चतुर्मुख, अष्टमुख षोडश मुखादि कितने ही ब्रह्मा के रूप हैं, और कितने ही उनके श्वेत श्यामादि रङ्ग हैं तथा अनन्त ही वस्त्रों की वेष भूषा को धारण करने वाले हैं। कितनी ही कर्मभूमियां हैं जहां पर श्रद्धालु लोग अनेक प्रकार के शुभकर्मानुष्ठान करते हैं। कितने ही सुमेरु पर्वत हैं जहां पर सिद्ध लोग समाधि लगा कर ईश्वर चिन्तन करते हैं। कल्प भेद से कितने ही ध्रुवभक्त और उपदेष्टा नारदादि मुनि हैं। ईश्वर की सृष्टि में इन्द्र, चन्द्रमा, एवम् सूर्य भी अनन्त हैं। तथा कितने ही भारतादि मण्डल और मण्डलान्तर्गत प्रान्त उपप्रान्त हैं। असंख्य ही कपिलादि सिद्ध और बुद्धिमान् विद्वान् तथा गोरक्ष-आदि नाथ हैं। एवम् गङ्गा, सरस्वती, दुर्गा, पार्वती इत्यादि देवियों के अनन्त स्वरूप हैं। असंख्य ही देवता और कितने ही दानव एवम् गौतम भारद्वाजादि अनन्त ही मननशील मुनि हैं।

अनन्त ही रत्न और रत्नों को उत्पन्न करने वाले अनेक ही समुद्र हैं। अण्डज जेरजादि जीवों की अनन्त ही खानियां हैं, और अपने हृदय के भावों को प्रकट करने के लिये मध्यमा बैखरी आदि अनेक ही वाणियां हैं। संसार में कितने ही राजे महाराजे और सम्राट हैं, तथा अनन्त ही राजाओं की पंक्तियां हैं। अनन्त ही श्रुतियां हैं और अनन्त ही उन्हें मानने वाले श्रद्धालु सेवक लोग हैं।

श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि न तो ईश्वर का अन्त है और न ही उसकी सृष्टि का अन्त है। क्योंकि सर्वतो महान् परब्रह्म समुद्र में अनन्त ब्रह्माण्ड लहरों के समान है। जैसे नदी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के बालुकणों तथा समुद्र के बीचि तरङ्ग बुदबुदों की गणना नहीं हो सकती, वैसे ही इस अनिर्वचनीय सृष्टि का भी अन्त प्राप्त नहीं हो सकता। इसी भाव से श्री गुरुदेव जी कहते हैं।

नालि कुटंबु साथ वरदाता ब्रह्मा भालण सृष्टि गइआ।
आगै अन्तु न पाइयो ताका कंसु छेदि किआ वडा भइआ ॥

विशेष व्याख्या— धरम खंडा का एहो धरमु।

धरम पद वेद विहित धर्म का वाचक है। खंड शब्द निष्काम धर्म का बोधक है। पूर्व प्रकरण के अन्त में ज्ञान का सरल उपाय ब्रह्मवेत्ता के समीप जाना बतलाया है। इसलिये धरमखंड= वेद विहित निष्काम धर्म का एहो धरमु=यह स्वभाव है। अर्थात् निष्काम धर्म के प्रभाव से जिज्ञासु पुरुष ब्रह्मवेत्ता के समीप जाता है। यहां पर यह जानना आवश्यक है कि श्रेष्ठ पुरुषों की संगति से मनुष्य अशुभ कर्मों से हट कर श्रेष्ठ कर्मों में प्रवृत्त होता है। मुक्ति की इच्छा से जिज्ञासु सकाम कर्मों को छोड़ कर निष्काम कर्मों को सर्वदा करता है। ऐसा करने से चित्त की शुद्धि और ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त होती है। शुद्ध चित्त में ईश्वर की कृपा से विवेक उत्पन्न होता है। उसके पश्चात् अधिकारी, गुरु के समीप जाता है, ब्रह्मदर्शी गुरु से उपदेश लेकर मनन निदिध्यासन करने के अनन्तर आत्मसाक्षात्कार को प्राप्त होकर अधिकारी कृतकृत्य हो जाता है। इस प्रकार परम्परा से कृतकृत्यता सम्पादन करा देना निष्काम धर्म का स्वभाव है।

गुरुदेव! आपने निष्काम धर्म का स्वभाव तथा गुरु के समीप जाना मुझे बतलाया है, अब कृपया गिआन खंड का=जीव ईश्वर के अभेद ज्ञान का, करमु=जो कार्य है, अर्थात् स्वभाव है, उसे, आखहु=कहने की कृपा करें। पूछने का यह भाव है कि जिस दृश्य वर्ग का आगे निषेध करना है, वह दृश्य परिमित है वा अपरिमित? सेवक के प्रश्न को सुन कर किसी के मत में व्यावहारिक और किसी के यहां प्रातिभासिक पदार्थों की अनेकता को गुरुदेव जी कहते हैं।

केते पवण पाणी वैसंतर केते कान महेस।

इस प्रकरण में केते पद अनेक का वाचक है। पदार्थों की अनेकता दो मतों से सिद्ध होती है। "आपि सति सति सभ धारी" इस वचन के द्वारा गुरुदेव जी ने दोनों मतों को व्यक्त किया है। आप परमात्मा पारमार्थिक सत्य है, और उसका बनाया हुआ प्रपञ्च व्यावहारिक और प्रातिभासिक सत्य है। एक मत वाले ऐसा कहते हैं कि पारमार्थिक, व्यावहारिक, प्रातिभासिक भेद से सत्ता तीन प्रकार की है। जिसका कभी नाश नहीं होता वह पारमार्थिक सत्य है। जिस का ब्रह्मज्ञान के बिना अन्य किसी ज्ञान से नाश नहीं होता वह व्यावहारिक है। जिसका ब्रह्मज्ञान के बिना अन्य ज्ञान से भी बाध होता है, वह प्रातिभासिक है। प्रथम सत्तावाला ब्रह्म है। दूसरी सत्तावाला यह जगत है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तीसरी सत्ता शुक्ति में रजत और रज्जु में सर्प की है । पारमार्थिक सत्ता वाला ब्रह्म एक रूप है । व्यावहारिक प्रातिभासिक सत्ता वाले पदार्थों में व्यावहारिक सत्ता वाले पदार्थ कल्प भेद से और एक कल्प में भी भूत भावी वर्तमान काल के भेद से अनेक हैं । प्रातिभासिक सत्ता वाले पदार्थ अपने ज्ञान के साथ उत्पन्न होते हैं, और ज्ञान के साथ नाश होते हैं, अज्ञात होकर नहीं रहते । इसलिये बारम्बार उत्पत्ति विनाश वाले शुक्ति रजतादि प्रातिभासिक पदार्थ भी अनेक हैं। पूर्वोक्त विचार तीन सत्ता मानने वालों का है । दूसरे मत वाले पारमार्थिक और प्रातिभासिक दो प्रकार की सत्ता स्वीकार करते हैं । व्यावहारिक सत्ता की अस्वीकृति में यह कारण है । ब्रह्म से भिन्न जितने पदार्थ हैं जिस काल में उनका ज्ञान होता है उसी काल में उत्पन्न होते हैं । ज्ञान से पूर्व तथा उत्तर काल में नहीं रहते। इसलिये शुक्ति रजतादि और घट पटादि सभी पदार्थ अज्ञान के सहित प्रातिभासिक सत्तावाले हैं । व्यावहारिक सत्तावाली कोई वस्तु नहीं । इस मत में ब्रह्म के अतिरिक्त कोई वस्तु अनादि नहीं । सभी पदार्थों की रचना ज्ञान काल में होती है । ब्रह्म भिन्न सभी पदार्थ प्रतीति काल में उत्पन्न होने के कारण प्रातीतिक हैं । बारम्बार उत्पत्ति विनाश होने से अनेक हैं । दो प्रकार की सत्ता मानने वाले ऐसा कहते है । इसलिये पूर्वोक्त दोनों मतों में उस अधिष्ठान ब्रह्म में, **केते पवण** =जगत् को पवित्र करने वाले अनेक पवन हैं । **पाणी वैसंतर**= प्यास को शान्त करने वाले अनेक जल एवं पाकादि कार्य करने वाले अनेक अग्नि हैं ।

मायिक पदार्थों की अनेकता बता कर अब अपनी इच्छा से भक्तों पर कृपा करने के लिये युग युग में अवतार धारण करने वाले ईश्वर के अनेक स्वरूपों को कहते हैं ।

केते कान महेस =भक्तों के सुख के लिये चेष्टा करने वाले विष्णु का नाम काहन है । बड़े ऐश्वर्य वाले का नाम महेश्वर है । भूत भावी वर्तमान भेद से सृष्टि अनन्त है । सृष्टि के भेद से शिव, विष्णु के स्वरूप भी अनन्त हैं और वे सभी ब्रह्म में कल्पित हैं ।

प्रश्न— सृष्टि भेद से शिव, विष्णु की अनेकता सिद्ध होने पर भी कल्पित कहने में कोई युक्ति प्रमाण प्रतीत नहीं होता ।

समाधान— चक्र, चिह्न, वर्ण, जाति, पाति रहित परमात्मा नेत्रों का विषय नहीं हो सकता । मुरली मनोहर तथा जटाधारी अनेक भगवत् स्वरूप नेत्रों से देखे जाते हैं । इसलिये उन्हें मायिक मानना आवश्यक है, जो जो मायिक है वह कल्पित है । इस व्याप्ति से भगवत् स्वरूपों को कल्पित मानने में कोई दोष नहीं ।

अजोऽपिसन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ गी० अ० ४ श्लो० ६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इत्यादि प्रमाण एवं व्याप्ति रूप युक्ति से भगवत् स्वरूपों को मायिक और कल्पित मानने में कोई विरोध नहीं।

"केते बरमे घाड़ति घड़ीअहि रूप रंग के वेस"

ब्रह्मरूप अधिष्ठान में केते बरमे=अनेक प्रजापति कल्पित हैं। जो सम्पूर्ण जीवों की तत् तत् योनियों के योग्यशरीरों की, घाड़ति घड़ीअहि=उत्पत्ति को करते हैं। उत्पत्ति और उसके कर्ता को अध्यस्त कहने में दृष्टान्त कहते हैं। "रूप रंग के वेस" रूप नाम रजत का है। रंग नाम वंग का है। जैसे शुक्ति में रजत और रांगे का क्रम से अथवा एक काल में कल्पित, वेस=स्वरूप प्रतीत होता है। वैसे ही उत्पत्ति और उसके कर्ता ब्रह्मा का तथा निखिल जगत् का भी कल्पित स्वरूप है। अब प्रजापति के बनाये हुए पदार्थों में मुख्य पदार्थों की अनेकता को दिखाते हैं।

केतीआ करम भूमी मेर केते, केते धू उपदेस ॥

मिश्रित पाप कर्मों के फल सुख दुःख भोगने की स्वर्ग नरक मनुष्यलोकादि अनेक भूमियां उस अधिष्ठान ब्रह्म में कल्पित रूप से अवस्थित हैं। मेरु पर्वत सदृश अनेक स्तम्भ भी उन भूमियों में विद्यमान् हैं, अथवा कर्मकाण्ड में प्रतिपादित नाना प्रकार के यज्ञ दानादि शुभ कर्म हैं, और उनके करने योग्य भारत खण्डादि अनेक भूमियां हैं। और उनमें अनेक सुमेरु पर्वत हैं तथा सुमेरु पर्वतों पर अनेक ध्रुवभक्त हैं। जिन्हें नारदादि ने उपदेश दिया है।

"केते इंद चंद सूर केते केते मंडल देस"

उस अधिष्ठान में बड़े ऐश्वर्य वाले देवाधिदेव राजा इन्द्र अनेक हैं, चन्द्र सूर्य के समीपवर्ती बुध शुक्रादि ग्रहों के अनन्त देश हैं। वे सभी अधिष्ठान ब्रह्म में स्वप्नवत् कल्पित हैं।

"केते सिध बुध नाथ केते केते देवीवेस"

अणिमा महिमादि सिद्धियों वाले गोरक्षनाथादि सिद्ध और वस्तुओं का चतुराई से चिन्तन करने वाले बुद्धिमान् अथवा बुद्धावतार एवं प्रजापति के तुल्य प्रताप वाले प्रजा के नाथ दक्षादि तथा पार्वती, लक्ष्मी, सावित्री आदि अनेक देवियों के स्वरूप उस अधिष्ठान ब्रह्म में कल्पित हैं।

"केते देव दानव मुनि केते, केते रतन समुंद"

सत्त्व गुण के प्रभाव से प्रकाशस्वभाववाले यमराज, कुवेर वरुणादि देवता तथा इनके विरोधी दानव और मनन करने के स्वभाव वाले व्यासादि मुनि, चौदह रत्नों को उत्पन्न करने वाला क्षीर सागर भी कल्पित है।

"केतीआ खाणी केतीआ बाणी केते पात नरिंद"

अण्डज, जरायुज, स्वेदज, उद्भिज्ज इत्यादि अनेक खानियां तथा परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आदि अनेक वाणियाँ और सिंहासन के स्वामी अनेक नरेन्द्र ये सभी उस अधिष्ठान में कल्पित हैं।

"केतीआ सुरती सेवक केते"

सुरती=उस अधिष्ठान में प्रेम करने वालियां द्रौपदी, सावित्री, भीलनी आदि अनेक स्त्रियां तथा ध्रुव, प्रह्लाद विदुरादि अनेक सेवक हैं। अब प्रकरण को समाप्त करते हुए गुरुदेव जी सभी पदार्थों की अनेकता का बोधन करते हैं। "नानक अंतु न अंतु"

श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं जो परमात्मा नेति नेति के द्वारा सर्व के निषेध की अवधि रूप है, उस परमात्मा में कल्पित पदार्थों का अन्त नहीं। जैसे मरु भूमि में अध्यस्त जल की उर्मियों का अन्त नहीं आता, वैसे अधिष्ठान में अध्यस्त पदार्थों का भी अन्त नहीं। क्योंकि सर्व पदार्थों का अधिष्ठान परब्रह्म परमात्मा है, इसलिये सभी पदार्थ उसमें कल्पित हैं।

❀ पञ्चत्रिंशंमंत्रंसमाप्तम् ❀

ज्ञान काण्ड के प्रकार को बता कर आगे गुरुदेव जी उपासना से प्राप्त होने वाले लाभ का संक्षिप्त निरूपण करते हैं।

मूल— गिआन खंड महि गिआनु परचंडु ॥ तिथै नाद विनोद कोड अनंदु ॥
सरमखंडकी बाणी रूपु ॥ तिथै घाड़ति घड़ीऐ बहुतु अनूपु ॥
ताकीआ गला कथीआ न जाहि ॥ जे को कहै पिछै पछुताइ ॥
तिथै घड़ीऐ सुरति मति मनि बुधि ॥ तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि ॥३६॥

शब्दार्थ—गिआनखंड महि गिआनु परचंडु ॥

गिआनखण्ड महि=ज्ञानकाण्ड में, गिआनु=जिस ज्ञान का पूर्व प्रतिपादन किया है, वह ज्ञान, परचंडु=अधिक तेज वाला है, अर्थात् अज्ञान को नाश करने के लिये कर्म वा उपासना की सहायता नहीं चाहता।

प्रश्न— गुरुदेव! ज्ञानियों को कैसा आनन्द प्राप्त होता है?

समाधान— तिथै नाद बिनोद कोड अनंदु ॥

तिथै=ज्ञानावस्था में ज्ञानी को, नाद=अनाहत शब्द के आनन्द से तथा विषयों के,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बिनोद=विलास से, **कोड**=करोड़ों गुणा अधिक, **अनंदु**=ब्रह्मानन्द की प्रतिदिन अनुभूति होती है। अर्थात् योगीजन पाँच प्रकार के शब्दों को सुन कर जिस आनन्द का अनुभव करते हैं, तथा विषयी लोग कञ्चन कामिनी के सम्बन्ध से शब्द स्पर्शादि विषयों के जिस आनन्द का अनुभव करते हैं उससे करोड़ों गुणा अधिक आनन्द ब्रह्मज्ञानी को प्राप्त होता है।

प्रश्न— पूज्य गुरुदेव ! उपासना काण्ड के प्रकार को कहने की कृपा करें ? इसके उत्तर में श्री गुरुदेव जी कहते हैं।

सरमखंड की बाणी रूपु ॥ **सरम खण्ड की**=संयमशील उपासकों की, **बाणी रूपु**=अति मनोहर मधुर वाणी है, अर्थात् उपासक लोग असत्य और कटु भाषण नहीं करते।

तिथै घाड़ति घड़ीऐ बहुतु अनूपु ॥

तिथै=वहां पर उपासकों के अन्तःकरण की, **बहुतु**=बहुत ही, **अनूपु**=उपमा से रहित, **घाड़ति**=शुद्धि, **घड़ीऐ**=हो जाती है, अर्थात् उपासना द्वारा उपासकों का अन्तःकरण पवित्र हो जाता है।

ताकीआ गला कथीआ न जाहि। जे को कहै पिछै पछुताइ ॥

ताकीआ=उपासना काण्ड वाले संयमी उपासकों की, **गला**=वार्ता अर्थात् उनके वचनों की महिमा, **कथीआ न जाहि**=कथन नहीं की जा सकती। अपनी शक्ति को मापे तोले बिना, **जेको**=जो कोई पुरुष, **कहै**=कहने का उद्योग करता है तो वह, **पिछै पछुताइ**=पीछे पश्चात्ताप करता है, क्योंकि वह समग्र महिमा कहने में अपने आपको असमर्थ समझता है।

तिथै घड़ीऐ सुरति मति मनि बुधि।

तिथै=उपासना काण्ड में उपासकों की, **मनि**=मन, **बुधि**=बुद्धि, **मति**=चित्त, **सुरति**=अहङ्कार अर्थात् चतुष्टय अन्तःकरण, **घड़ीऐ**=शुद्ध किया जाता है, अर्थात् परमेश्वर की निष्काम भक्ति से अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। **तिथै**=वहां पर, **सुरासिधा की**=देवताओं और सिद्धों जैसी, **सुधि**=पवित्रता, **घड़ीऐ**=प्राप्त हो जाती है, अर्थात् उपासक शक्ति सम्पन्न हो जाता है। अथवा '**सुरा सिधा की सुधि**' उपासना के प्रभाव से पुरुष को, **सुरा**=देवताओं और, **सिधा**=सिद्धों जैसी, **सुधि**=अलौकिक सूझ बूझ एवं विलक्षण शक्ति प्राप्त हो जाती है।

भावार्थ— ज्ञान काण्ड में जिस ज्ञान का प्रतिपादन किया है वह ज्ञान अधिक तेजस्वी और शक्तिशाली है, अपने विरोधी अज्ञान को नष्टकरने के लिये कर्म वा उपासना की सहायता ज्ञान नहीं चाहता। विषयों के सम्पर्क से प्राप्त होने वाले सुख की अपेक्षा कोटि गुणा अधिक आनन्द का अनुभव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ज्ञानी लोग ज्ञानावस्था में करते हैं। योगी लोग पांच प्रकार के शब्दों को सुन कर तथा विषयी लोग अनेक प्रकार के विषयों से जिस सुख का अनुभव करते हैं, उस सुख से अत्यधिक आनन्द की अनुभूति ब्रह्मज्ञानी को निरन्तर होती है। ज्ञान के प्रभाव को श्रवण करने के बाद सिद्धों की जिज्ञासा को देख कर गुरुदेव जी संक्षेप से उपासना से प्राप्त होने वाले लाभ का दिग्दर्शन कराते हैं। संयमशील उपासकों की वाणी अति मधुर और मनोहर होती है। वे असत्य और कटुभाषण कदापि नहीं करते। उपासना द्वारा उपासकों का अन्तःकरण निर्मल हो जाता है। संयमी उपासकों की महिमा को कोई निश्चित रूप से कह नहीं सकता, अपनी शक्ति का विचार किये बिना हठात् यदि कोई कहने का साहस करता है तो वह समग्र महिमा को कहने में अपने आपको असमर्थ पाकर उसे पीछे पश्चात्ताप ही करना पड़ता है। परमेश्वर की निष्काम भक्ति से उपासकों की मन, बुद्धि अत्यन्त स्वच्छ हो जाती है। अन्तःकरण की निर्मलता से उपासकों को देवताओं और सिद्धों जैसी अलौकिक सूझ बूझ और दिव्य शक्ति प्राप्त हो जाती है।

विशेष व्याख्या— गुरुदेव! कौन ज्ञान अज्ञान का विरोधी है? इसके उत्तर में गुरुदेव जी कहते हैं, **गिआनखंडमहि गिआनु परचंडु ॥**

ज्ञानपद के दो अर्थ हैं। ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानम्। इस व्युत्पत्ति से ज्ञान शब्द अहिंसा, शान्ति, अपिशुनता, क्षमा, धृति, सरलता आदि ज्ञान सामग्री को बोधन करता है। ज्ञप्तिर्ज्ञानम्, इस व्युत्पत्ति से ज्ञान शब्द का अर्थ जानना है।

गिआनखंडमहि=ज्ञान नाम से प्रसिद्ध ज्ञान की सामग्री श्रवण मननादि साधनों द्वारा मध्याह्न काल के सूर्य के समान निखिल अविद्या रूप अन्धकार को दूर करने वाला, **गिआनु परचंडु**=अत्यन्त तीक्ष्ण अपरोक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है।

प्रश्न— ज्ञान की सामग्री से प्रचण्ड ज्ञान की उत्पत्ति किस प्रकार होती है?

समाधान— **तिथै नाद बिनोद कोड अनंदु।**

तिथै=साधन सामग्री के विद्यमान काल में जीव ब्रह्म की एकता के बोधक, **नाद**=शब्द का गुरु उपदेश करता है। तब जिज्ञासु को उस शब्द में, **बिनोद**=उत्साह होता है, तब गुरु के किये उपदेश को मनन, निदिध्यासन के बाद उसे प्रचण्ड ज्ञान उत्पन्न होता है। उस प्रचण्ड ज्ञान के उदय से सर्व अनर्थों का मूल कारण अज्ञान का नाश होता है। अज्ञान के नाश काल में ही अखण्ड एकरस ब्रह्मानन्द का प्रकाश होता है। इस बात को, **कोड अनंदु** के द्वारा गुरु जी ने व्यक्त किया है। करोड़ का वाचक कोड पद यहां पर अपरिमित का बोधक है। ब्रह्मानन्द में अपरिमितपन अखण्डता रूप है। इसलिये प्रचण्ड ज्ञान से अखण्ड एक रस ब्रह्मानन्द का प्रकाश होता है।

सरम खंड की बाणी रूपु ॥

सरमखण्ड शब्द सुख विशेष का बोधक है, वह सुख विशेष ब्रह्मानन्द है। इसलिए विषयानन्द

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भजनानन्द का मूल जो, **सरम खंड**=ब्रह्मानन्द उसकी बोधक, **बाणीरूपु**=अवान्तर वाक्यरूप वाणी का लक्षणावृत्ति से अखण्डार्थ को बोधन करना ही वास्तविक रूप है।

प्रश्न— ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को कहने की कृपा करें ?

समाधान— **तिथै घाड़ति घड़ीऐ बहुतु अनूपु ॥**

तिथै=परमात्मा के स्वरूप बोधक वचन, **घाड़ति**=लक्षणावृत्ति से अखण्ड ब्रह्म का बोधन, **घड़ीऐ**=करते हैं, वह बोधन करना ही अवान्तर वाक्य में, **बहुतु अनूपु**=अत्यन्त अनुपम है, इसलिए परमेश्वर के बोधक वचन अखण्डार्थ के प्रतिपादक हैं भेद के बोधक नहीं। जिस अर्थ में देश, काल वस्तु का भेद नहीं होता उसे अखण्ड कहते हैं। एवम् जो अर्थ भिन्न २ रूप से एक वस्तु के बोधक अनेक शब्दों के द्वारा कहा जाए उसे अखण्डार्थ कहते हैं।

प्रश्न— लक्षणा के बिना शक्ति वृत्ति से आप अखण्डार्थ क्यों नहीं कहते ?

समाधान— **ताकीआ गला कथिआ ना जाहि ॥ ताकीआ**=महावाक्य शक्ति वृत्ति से उस अखंड ब्रह्म का निरूपण करते हैं। ऐसी बातें, **कथिआ ना जाहि**=कथन नहीं कर सकते, क्योंकि **'महिमा न जानहि बेद'** इत्यादि गुरु वचन शक्ति वृत्ति से कथन करने का निषेध करते हैं।

प्रश्न— कोई तार्किक विद्वान् शब्द में अचिन्त्य शक्ति मान कर अखण्डार्थ का निरूपण कर देगा ?

समाधान— **जे को कहै पिछै पछुताइ ॥ जे को**=जो कोई विद्वान्, **कहै**=सोचे समझे बिना ब्रह्म बोधक शब्दों के शक्यार्थ को कहेगा तब वह पुरुष, **पिछै**=मनन निदिध्यासन के बाद, **पछुताइ**=पश्चात्ताप ही करेगा कि वृथा ही मैंने जाति, गुण, क्रिया प्रवृत्ति के निमित्त से हीन ब्रह्म को शक्तिवृत्ति का विषय मान कर प्रतिपादन किया।

प्रश्न—वेद वचनों में और क्या प्रतिपादन किया है ?

समाधान— **तिथै घड़ीऐ सुरति मति मनि बुधि ॥ तिथै**=वहां पर, **सुरति**=श्रवण, **मति**=मनन, **मनि**=निदिध्यासन, **बुधि**=बुद्धिमानों को आत्म साक्षात्कार के लिए, **घड़ीऐ**=कथन किए हैं। **यथा—श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः** ॥ जिज्ञासु को आत्मतत्त्व का श्रवण मनन निदिध्यासन करना चाहिये

तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि ॥ तिथै=वेदवचनों में, **सुरा**=देव तुल्य स्वभाव वाले जिज्ञासुजनों की, ज्ञान के साधनों को धारण करना रूप **सुधि**=पवित्रता, **घड़ीऐ**=विधान की है। पुनः **सिधा**=ज्ञान की सिद्धिवाले ज्ञानी पुरुषों की जीवन मुक्ति की, **सुधि**=पवित्रता का विधान किया है।

॥ षट्त्रिंशं मन्त्रं समाप्तम ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्री गुरु देव जी आगे के मन्त्र में ईश्वर की कृपावाले उपासकों की महिमा का निरूपण करते हैं।

मूल—करमखंड की बाणी जोरु। तिथै होरु न कोई होरु।
तिथै जोध महा बल सूर। तिन महि रामु रहिआ भरपूर॥
तिथै सीतो सीता महिमा माहि। ताके रूप न कथने जाहि॥
ना ओहि मरहि न ठागे जाहि। जिनकै रामु वसै मन माहि॥
तिथै भगत वसहि के लोअ। करहि अनंदु सचा मनि सोइ॥
सच खंडि वसै निरंकारु। करि करि वेखै नदरि निहाल॥
तिथै खंड मंडल वरभंड। जे को कथै त अंत न अंत॥
तिथै लोअ लोअ आकार। जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार॥
वेखै विगसै करि वीचारु। नानक कथना करड़ा सारु॥३७॥

शब्दार्थ— करम खंड की=ईश्वर की कृपादृष्टि वाले उपासकों की, बाणी जोरु=शक्तिशाली वाणी है, अर्थात् वर शाप देने की सामर्थ्य वाली वाणी है। उपासक लोग जो कुछ वाणी से बोलते हैं वह निष्फल नहीं होता। अथवा उपासकों की वाणी बिछुड़े हुए जीवों को ईश्वर के साथ, जोरु= जोड़ने वाली होती है।

तिथै होरु न कोई होरु। तिथै =उन कृपा दृष्टि वाले उपासकों के बल को, कोई होरु= और कोई मनुष्य, होरु न =हटा नहीं सकता। अर्थात् उन उपासकों से अधिक और कोई शक्तिशाली नहीं जो उन्हें पराजित कर सके।

तिथै जोध महा बल सूर। तिथै=ईश्वर की कृपादृष्टि वाले उपासकों में शीतोष्ण, भूख प्यासादि द्वन्द्वों को सहन करने वाले, जोध=योद्धा रथी हैं, और कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रियों को दमन करने वाले, महाबल=बलवान् महारथी हैं, तथा मन को वशीभूत करने वाले, सूर= अतिरथी शूरवीर हैं।

तिनमहि रामु रहिआ भरपूर। तिनमहि=कृपादृष्टि वाले उपासकों में, रामु= व्यापक रमणशील राम, रहिआ भरपूर=परिपूर्ण हो रहा है। अर्थात् उपासक पुरुषों का मन जहां भी जाता है वे सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक राम को ही देखते हैं।

तिथै सीतो सीता महिमा माहि। ताके रूप न कथने जाहि॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जहां ईश्वर की महिमा रूप, माहि =चन्द्रमा है, तिथै =वहां पर, सीतोसीता =शीतलता ही शीतलता है। अथवा परिपूर्ण व्यापक राम की, सीता =महिमारूप सीता, माहि =चन्द्रमा के समान प्रकाश रूप। और, सीतो=शीतल करने वाली है। यद्वा – तिथै =परमेश्वर के दिव्य धाम में, सीता =सीता के तुल्य सती स्त्रियां हैं। जिन्होंने अपने चित्त को परिपूर्ण राम की, महिमा माहि = महिमा में, सीतो = सिया हुआ अर्थात् लगाया हुआ है। ताके =ईश्वर की महिमा में चित्त लगाने वाले उपासकों के, रूप =दिव्य स्वरूप एवं श्रेष्ठ गुण, न कथने जाहि = कथन नहीं किए जा सकते।

ना ओहि मरहि न ठागे जाहि। जिनकै रामु वसै मन माहि॥

जिनकै =जिन भक्तों के, मनमाहि =मनमें, रामुवसै =परिपूर्ण राम निवास करता है, ओहि =वे ईश्वर उपासक, ना मरहि =नहीं मरते अर्थात् उनकी कीर्ति सर्वदा बनी रहती है। तथा न ठागे जाहि =वे काम क्रोधादि विषयों से और मानापमान एवं दुर्जनों से ठगे नहीं जाते।

तिथै भगत वसहि केलोअ। करहि अनंदु सचा मनि सोइ॥

तिथै =वहा पर, केलोअ =कितने ही लोकों के, भगत =भक्त लोग, वसहि = निवास करते हैं। उन भक्तों के, मनि =मन में, सोइ =वह सच्चा परमेश्वर निवास करता है। इसलिये वे भक्त जन, करहि अनंदु =सर्वदा आनन्द का अनुभव करते हैं, अर्थात् आध्यात्मिक आधिभौतिक दुःख भक्तों के समीप फटकने नहीं पाते। ईश्वर कृपा से उपासक लोग अहोरात्र प्रसन्न रहते हैं।

प्रश्न— जिस परमेश्वर की भक्त लोग उपासना करते हैं वह ईश्वर कहां निवास करता है?

समाधान— सचखंडि वसै निरंकारु। करि करि वेखै नदरि निहाल॥

वह परमात्मा, निरंकारु =निराकार रूप से, सच खंड =सत्य को धारण करने वाले भक्त के हृदय में, वसैं =निवास करता है, अर्थात् सर्वत्र परिपूर्ण होने पर भी भक्तों के शुद्ध हृदय में विशेष रूप से प्रकट होता है। अथवा निरंकारु = निर्गुण परमात्मा सगुण स्वरूप होकर, सचखंड वसै =वैकुण्ठ धाम सत्य लोक में निवास करता है, और भूत भौतिक सृष्टि को, करि करि =रच करके, वेखै =देखता है, अर्थात् उत्पत्ति पालन संहार करता है और प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों को देख कर जिन्हों पर, नदरि =कृपादृष्टि करता है वे भक्त, निहाल =कृतार्थ हो जाते हैं।

तिथै खंड मंडल वरभंड। जे को कथै त अंत न अंत॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तिथै =वैकुण्ठवासी सगुण परमेश्वर में; खंड =नवखंड, मंडल =सप्तद्वीप, और वरभंड =ब्रह्माण्ड सूक्ष्म रूप से निवास करते हैं अर्थात् चराचरात्मक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड शक्तिशाली ईश्वर के संकल्प में स्थित है। जे को =यदि कोई ईश्वर के अन्त को, कथै =कथन करना चाहे, त अंत न अंत =तो अन्त से रहित उस ईश्वर का अन्त नहीं आसकता। क्योंकि ईश्वर देश काल वस्तु के परिच्छेद से रहित है।

तिथै लोअ लोअ आकार। जिव जिव हुकमु तिवै तिवकार ॥

तिथै =उस परमेश्वर में, लोअ लोअ आकार =सभी लोकों के आकार प्रकार स्वरूप विद्यमान हैं। जिव जिव =जिस, जिस प्रकार ईश्वर की, हुकमु =आज्ञा होती है, तिवै तिव =उसी प्रकार सभी जीव, कार =कार्य करते हैं।

वेखै विगसै करि वीचारु। वह परमेश्वर अपनी बनाई सृष्टि को, वेखै =देख करके और प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों को, करि वीचारु = विचार करके, विगसै =प्रसन्न होता है।

नानक कथना करड़ा सारु ॥ श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि परमेश्वर के, सारु= तत्त्व का, कथना=प्रतिपादन करना, करड़ा=अत्यन्त कठिन है। अर्थात् परमेश्वर के रहस्य का साङ्गो-पाङ्ग निरूपण करना बहुत कठिन है। अथवा त्रिगुणातीत वाङ्मनसागोचर ईश्वर के तत्त्व का प्रतिपादन करना, सारु =लोहे के समान, करड़ा =महान कठिन है।

भावार्थ— उपासना काण्ड के प्रकार को दिखा कर ईश्वर की कृपादृष्टिवाले उपासकों की महिमा का गुरुदेव जी वर्णन करते हैं। परमेश्वर की अनुकम्पा वाले उपासकों की वाणी बिछुड़े हुए जीवों को ईश्वर के साथ मिलाने वाली होती है। उपासक लोग जिस श्रद्धालु को धर्मलाभ का आशीर्वाद देते हैं वह धर्मात्मा हो जाता है, और जिस पुरुष पर वे कुपित होते हैं वह दुःख का भागी होता है। उन कृपादृष्टि वाले उपासकों के बल को कोई मनुष्य रोक नहीं सकता, अर्थात् संसार में उनके सदृश कोई बलवान् नहीं जो उन्हें अपमानित एवं पराजित कर सके। ईश्वर की कृपादृष्टि वाले उपासकों में शीतोष्ण, सुख, दुःख, भूख प्यासादि द्वन्द्वों को सहन करने वाले योद्धा हैं, और कर्मेन्द्रिय एवम् ज्ञानेन्द्रियों को दमन करने वाले बलवान् महारथी हैं। एवं मनको वशीभूत करने वाले अतिरथी और शूरवीर हैं। कृपादृष्टि वाले उपासकों में रमणशील व्यापक राम परिपूर्ण हो रहा है। उपासकों का मन जहां पर भी जाता है वे सर्वत्र अपने प्रियतम राम को ही देखते हैं। जहां ईश्वर की महिमारूप चन्द्रमा है वहांपर चारों ओर शीतलता का ही अनुभव होता है। ईश्वर की महिमा में चित्त लगाने वाले उपासकों के दिव्यरूप और श्रेष्ठ गुणों को कथन नहीं कर सकते। जिन प्रेमियों के मन में परिपूर्ण राम निवास करता है वे उपासक जन्म मरण के चक्र में नहीं आते।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वे अपनी उज्वल कीर्ति से संसार में अजर अमर बने रहते हैं। काम क्रोधादि विषयों से तथा माना-पमान एवं दुर्जनों से वे कदापि ठगे नहीं जाते। जहां पर प्रभु के प्रेमी निवास करते हैं, उनके समीप कितने ही भक्त लोग धर्मलाभ के लिये रहना अपना सौभाग्य समझते हैं। उपासकों के मन में अवि-नाशी परमेश्वर सर्वदा निवास करता है। इसलिये भक्त जन सर्वदा आनन्द का अनुभव करते हैं। आध्या-त्मिक, आधिभौतिकादि दुःख भक्तों के समीप टिक नहीं सकते। ईश्वर के अनुग्रह से भक्त जन निर-न्तर कुशल और प्रसन्न रहते हैं। परमपिता परमात्मा निराकार रूप से भक्तों के सरल और पवित्र हृदय में निवास करता है। तथा सगुण स्वरूप होकर दिव्य धाम सत्यलोक में रहता है। भूत भौतिक सृष्टि को बना कर उसका पालन पोषण एवं देख भाल करता है। प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों को देखकर जिन पर कृपादृष्टि करता है वे भक्त लोग सफल मनोरथ होते हैं।

सगुण परमेश्वर में नवखण्ड, सप्त द्वीप और ब्रह्माण्ड सूक्ष्म रूप से स्थित हैं। यदि कोई दार्शनिक वा पौराणिक ईश्वर और उसकी रचना का अन्त कहना चाहे तो अन्त से रहित उस परमेश्वर का एवं ईश्वरीय रचना का अन्त नहीं पा सकता, क्योंकि त्रिगुणातीत जगदीश्वर देश, काल, वस्तु के परि-च्छेद से रहित है। उस जगत्पिता परमात्मा में सूक्ष्म रूप से सभी लोकों के आकार प्रकार विद्यमान हैं। जिस प्रकार ईश्वर की आज्ञा होती है उसी प्रकार सभी जीव कार्यों को करते हैं। वह परमेश्वर अपनी बनाई सृष्टि को देख कर और समस्त प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों को विचार कर प्रसन्न होता है।

श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि त्रिगुणातीत वाङ्मनसागोचर परमेश्वर के तत्त्व का प्रतिपादन करना अत्यन्त कठिन है।

विशेष व्याख्या— उत्तर काण्ड में प्रतिपादित संक्षिप्त अर्थ को कह कर वेद के पूर्व काण्ड में निरूपित अर्थ को परम्परा से ज्ञान की साधनता बताने के लिये गुरुदेव जी निर्णय करते हैं।

करम खंड की बाणी जोरु। करमखंड =सकाम कर्मों की बोधक, 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादि **वाणी** =वचनों का ही वेद के पूर्व काण्ड में, **जोरु** =बल है अर्थात् अनेक प्रकार के यज्ञों तथा उनसे प्राप्त होनेवाले फलों का पूर्वकाण्ड में निरूपण किया है।

प्रश्न— वेद के पूर्वकाण्ड में यज्ञादि कर्म के अतिरिक्त किसी और बात का भी निर्णय किया है?

तिथै होरु न कोई होरु। **तिथै** =कर्मकाण्ड में, **होरु न कोई** =और कोई तत् त्वम् पदों के लक्ष्यार्थ का निर्णय नहीं किया। **होरु** =और जीव ईश्वर के एकता बोधक वाक्यों के अर्थ का भी निर्णय नहीं किया।

तिथै जोध महाबल सूर॥ **तिथै** =पूर्व काण्ड में, **जोध** =धर्म युद्ध करने वाले, और **महाबल** =महान् बल से लड़ने वाले, **सूर** =शूरवीर क्षत्रियों के राजसूययज्ञ दानादि कर्मों का विधान किया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न— धर्म युद्ध में मरने वालों को किस फल की प्राप्ति होती है?

समाधान— तिन महि राम रहिआ भरपूर ॥ तिन महि=युद्ध में वीर गति प्राप्त करने वालों को, राम रहिआ भरपूर=परिपूर्ण राम ही प्राप्त करने योग्य फल है, इसी भाव से धर्मयोद्धा की प्रशंसा श्री गुरुदेव जी ने की है।

धन जीओ तिह को जग मैं मुख ते हरि चित्त मैं जुध विचारै ॥

प्रश्न — गुरुदेव! वेद के पूर्व काण्ड में और क्या प्रतिपादन किया है?

समाधान —तिथै सीतो सीता महिमा माहि। तिथै=वेद में, सीतो=पतिव्रता स्त्रियों को, महिमा माहि=प्रभाव में, सीता=सीता के तुल्य कथन किया है।

प्रश्न— क्या पतिव्रताओं के लक्षण भी प्रतिपादन किये हैं?

समाधान— ताके रूप न कथने जाहि। ताके=पतिव्रतास्त्रियों के, रूप=भिन्न भिन्न लक्षण, न कथने जाहि=प्रतिपादन नहीं किए जा सकते, क्योंकि वे लक्षण अनन्त हैं। अब आगे पातिव्रत्य धर्म का फल बतलाते हैं।

ना ओहि मरहि न ठागे जाहि। ना ओहि मरहि=वे पतिव्रतायें पातिव्रत्य धर्म के प्रभाव से अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा ज्ञान को प्राप्त होकर जन्म मरण को प्राप्त नहीं होतीं। तथा न ठागे जाहि=अज्ञानी जीवों को ठगने वाले विषयों से पतिव्रतायें वञ्चकता को प्राप्त नहीं होतीं।

जिनके रामु वसै मन माहि। जिनके=जिन पतिव्रताओं के, मन माहि=अन्तःकरण में सच्चिदानन्द ब्रह्म निवास करता है।

यद्यपि ब्रह्म का मन में निवास कहने से कर्म के प्रकरण में उपासना की बात कहनी युक्ति संगत नहीं प्रतीत होती, तथापि शारीरिक और मानसिक भेद से कर्म दो प्रकार के हैं। यज्ञ, दान, व्रतादि शारीरिक कर्म हैं। चित्तवृत्ति को एकाग्र करके ध्येय वस्तु का ध्यान करना मानसिक कर्म है, इसलिये शारीरिक क्रियाओं के समान मानसिक क्रिया भी कर्म ही है। इसी भाव से गुरु जी आगे कहते हैं।

तिथै भगत वसहि के लोअ। तिथै=वेद में, भगत=भक्तजन, लोअ=साधनों के प्रकाश से, वसहि=निवास करते हैं। भाव यह है पूर्व काण्ड में यज्ञादि का प्रतिपादन किया है। द्वितीय काण्ड में उपासना तथा उसके साधनों और उपासकों का निरूपण किया है, इसलिये वेद से प्रतिपाद्य होने के कारण उपासक अपने प्रतिपादक वेद में निवास करते हैं। प्रतिपादक में प्रतिपाद्य का रहना युक्ति संगत है। इस बात को वराह पुराण में भगवान् श्रीकृष्ण जी ने प्रतिपादन किया है।

गीताश्रयोऽहं तिष्ठामि गीता मे चोत्तमं गृहम्।
गीताज्ञानमुपाश्रित्य त्रींल्लोकान् पालय ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मैं गीता के आश्रय रहता हूं, गीता मेरा श्रेष्ठ घर है। गीता के ज्ञानका सहारा लेकर मैं तीनों लोकों का पालन करता हूँ।

करहि अनंदु सचा मनि सोइ। करहि अनंदु=भक्तजन शुद्धचित्त में उपासना वृत्ति से भजनानन्द रूप प्रतिबिम्ब का प्रकाश करते हैं।

प्रश्न— साकार जल में सूर्यादि का प्रतिबिम्ब देखने में आता है परन्तु उपासनावृत्ति में निराकार आनन्द के प्रतिबिम्ब का प्रकाश नहीं हो सकता ? उत्तर में गुरु जी कहते हैं। सचा मनि सोइ=जैसे ज्ञानरूप वृत्ति में सत्यस्वरूप निराकार आनन्द प्रतिबिम्बित होता है वैसे निराकार आनन्द भक्ति रूप वृत्ति में भी प्रकाशित होता है।

प्रश्न— ज्ञान रूप वृत्ति में आनन्द के प्रतिबिम्बित होने में हमको सन्देह है ?

समाधान— सच खंड वसै निरंकारु। सच खंड=शुद्धचित्त की वृत्ति विशेष में निराकार भी आनन्द प्रतिबिम्बित होता है। अर्थात् जल में निराकार आकाश के प्रतिबिम्ब के समान शुद्ध चित्त की वृत्ति में निराकार आनन्द प्रतिबिम्ब भाव को प्राप्त होता है। भक्तिवृत्ति में प्रतिबिम्बभाव को प्राप्त हुए आनन्द का नाम भजनानन्द है, और ज्ञानवृत्ति में प्रकाशित हुए आनन्द को ब्रह्मानन्द कहते हैं। आनन्द वस्तु एक है, परन्तु उपाधि के भेद से नाम भिन्न २ हैं।

करि करि वेखै नदरि निहाल। मन्दमति वाला जिज्ञासु, करि=गुरु से उपदेश श्रवण करके उसके पश्चात्, करि=मैं शुद्ध बुद्ध सच्चिदानन्द हूँ ऐसी उपासना करके अपने आपको यथार्थ वृत्ति से, वेखै=अपरोक्ष देखे। जिस देखने से निहाल=शुद्ध ब्रह्म भाव को प्राप्त होता है।

प्रश्न— शुद्ध ब्रह्मज्ञान को प्राप्त होता है ऐसा कहने से मुक्त पुरुष को ब्रह्मभाव की प्राप्ति बताई गई है, परन्तु जितने स्थान में माया उपाधि वाला ईश्वर है उतने स्थान में शुद्धभाव की प्राप्ति नहीं बन सकती, उपाधि को कल्पित मान कर उसे शुद्ध मानें, तब एक काल में उपाधि और और उसका अभाव ये दो विरोधी धर्म कैसे रह सकते हैं ? इसलिए ज्ञानी पुरुष को शुद्ध ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती, यद्यपि यह सत्य है तथापि तुल्य सत्ता वाले दो पदार्थों का ही परस्पर विरोध होता है, भिन्न सत्तावाले पदार्थों का विरोध नहीं होता। यहां पर उपाधि का अभाव अधिष्ठान रूप है, और अधिष्ठान की पारमार्थिक सत्ता है। व्यावहारिक या प्रातिभासिक उपाधि मिथ्या है। ईश्वर वास्तव में शुद्ध ब्रह्म है। माया का सम्बन्ध होने से उसका अधिष्ठान है। इसलिये ज्ञानी को ब्रह्मभाव की प्राप्ति हो सकती है। आगे इस बात को गुरुदेव स्वयं प्रकट करते हैं।

तिथै खंड मंडल वरभंड। तिथै=ब्रह्म में, खंड=पृथिवी के नवखण्ड और उनके अन्तर्गत मंडल=आर्यावर्तादि देश तथा चतुर्दश भुवनरूप, वरभंड=ब्रह्माण्ड मरुभूमि में दिखाई देने वाले

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जल के समान कल्पित हैं। प्रश्न— कितना संसार ब्रह्म में कल्पित है ?

समाधान— जे को कथै त अंत न अंत। जेको =यदि कोई जगत् के, अन्त =अवधि को, कथै =कहता है, तब उसके कहने मात्र से जगत् की अवधि प्राप्त नहीं हो सकती। जिसकी सीमा का ज्ञान नहीं उसके विषय में विशेष कहना कठिन होता है।

प्रश्न— इस जगत् की अवधि का ज्ञान क्यों नहीं होता ?

समाधान— न अंत, यदि जगत् की अवधि होती तब उस अवधि से जगत् को जानलेते कि इतने विस्तार वाला है, परन्तु मरुभूमि के जल तरङ्गों के समान जगत का कोई अन्त नहीं आता, इसलिये कोई मनुष्य जगत् की इयत्ता को नहीं जान सकता।

तिथै लोअ लोअ आकार। तिथै =उस ब्रह्मरूप अधिष्ठान में, रज्जु में प्रतीत होने वाले सर्प के समान, लोअ =चौदह लोकों के, और, लोअ =चतुर्दश भुवनों के ज्ञानों के जो कल्पित आकार हैं वे सभी अधिष्ठान स्वरूप हैं। अधिष्ठान ब्रह्म के अतिरिक्त किसी की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं।

प्रश्न— जीव सर्वदा कर्म क्यों करता है ? मुक्ति के लिये गुरु से उपदेश लेकर सर्व प्रपञ्च को ब्रह्म में कल्पित क्यों नहीं जानता ?

समाधान— जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार। जिव जिव हुकमु =अधिकारी को जिस जिस प्रकार गुरुवाणी और वेद की आज्ञा होती है, तिवै तिव कार =वैसे २ अपने अधिकार के अनुसार कर्मों को करते हैं। इस जन्म वा जन्मान्तर में ब्रह्मज्ञान की इच्छा से निष्काम कर्मों को करते हुए अनेक अधिकारी गुरु से उपदेश लेकर सर्व प्रपञ्च को कल्पित जानते हैं। अन्य लोग अपनी कामना के अनुसार किये कर्मों के फल को प्राप्त करते हैं। जिज्ञासु सर्वदा शुभ कर्मों का अनुष्ठान ज्ञान की उत्पत्ति में प्रतिबन्धक पापों की निवृत्ति के लिये करने हैं। ज्ञान होने पर सभी सञ्चित कर्मों का नाश हो जाता है। वर्तमान काल में लोगों की शिक्षा के लिये ज्ञानी शुभ कर्मानुष्ठान करता है।

प्रश्न— उपदेश लिये बिना ही उपासना के प्रभाव से आत्मज्ञान की प्राप्ति हो जायेगी, गुरु के समीप उपदेश श्रवण करके उसे मनन करने का कोई प्रयोजन नहीं दिखाई देता ?

समाधान— वेखै विगसै करि वीचारु। उपासना यथार्थ ज्ञान की जनक नहीं इसलिये उपासना से अज्ञान को नाश करने वाला ज्ञान उत्पन्न नहीं होता, किन्तु, करि वीचारु =महावाक्यों का विचार करने से ज्ञान उत्पन्न होता है। उस ज्ञान से अधिकारी पुरुष अज्ञान पटल को दूर करके वेखै =अपने ब्रह्मस्वरूप को देखता है, और उस विमल स्वरूप को देख कर, विगसै =सर्व अनर्थों को दूर करके कृतकृत्य होकर प्रसन्न होता है।

प्रश्न— वह अधिकारी उस ब्रह्मानन्द रस को किसी के प्रति कहता है या नहीं ? रस के प्रतिपादन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की कठिनता को कहते हुए प्रकरण की समाप्ति करते हैं। 'नानक कथना करड़ा सारु'

श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं उस ब्रह्मस्वरूप आनन्द का कथना =वाणी से कथन करना दांतों से लौहे के चने चबाने के समान, करड़ा =अत्यन्त कठिन है। अथवा लौह की शलाका से जैसे हीरे का वेधन करना कठिन है, वैसे जाति गुण क्रिया हीन ब्रह्म का शक्ति वृत्ति से प्रतिपादन करना कठिन है।

॥ सप्तत्रिंशंमन्त्रंसमाप्तम् ॥

——):※:(——

सुवर्णकार की टकसाल के रूपक से शब्द घड़ने की शैली का आगे गुरुदेव जी निरूपण करते हैं।

मूल— जतु पाहारा धीरजु सुनिआरु। अहरणि मति वेदु हथीआरु।
भउ खला अगनि तप ताउ। भांडा भाउ अंम्रितु तितु ढालि॥
घड़ीऐ सबदु सची टकसाल। जिन कउ नदरि करमु तिन कार॥
नानक नदरी नदरि निहाल॥३८॥

शब्दार्थ— सर्व वासनाओं का त्याग करके सभी इन्द्रियों को विषयों की ओर से हटा कर, जतु= ब्रह्मचर्य का धारण करना ही पाहारा=सुवर्णकार की भट्ठी है। रसनेन्द्रिय एवम् उपस्थेन्द्रिय की चंचलता से रहित भक्तों का, धीरजु =धैर्य ही, सुनिआरु =स्वर्णकार है। मति =निश्चयात्मिका बुद्धि ही, अहरणि =लौह पिण्ड (अहरन) है। वेद =अभेद बोधक वेद वाक्य ही, हथीआरु =हथौड़ा है, अशुभ कर्मों से बचने के लिये अकाल पुरुष परमात्मा का, भउ =मन में भय रखना ही, खला = धौकनी है। कायिक, वाचिक, मानसिक, तप =तपश्चर्या ही, अगनि =अग्नि का, ताउ =ताप (तपाना) है, भउ =प्रेम वाला हृदय ही, भांडा =कुठाली अर्थात् स्वर्ण पिघलाने का पात्र है। तितु = उस प्रेमयुक्त हृदयमें सेवक गुरुउपदेश रूप,अंम्रितु =स्वर्ण को, ढालि =पिघलाए अर्थात् हृदय में जब धारण करे तब, सची टकसाल =सत्संगति रूप सची निर्माणशाला में जीव ही, सबदु=ब्रह्मरूप घड़ीऐ= बन जाता है। जिन पुरुषों पर पूर्ण गुरुओं की, करमु =कृपा, नदरि =दृष्टि होती है, तिन =उन लोगों को पूर्वोक्त धैर्यादि धारण करने का, कार =निश्चय प्राप्त होता है। नानक=श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि नदरी =परमेश्वर की, नदरि =कृपादृष्टि से वे पुरुष, निहाल =कृतकृत्य हो जाते हैं, अर्थात् जन्म मरण के दुःख से रहित होकर सर्वदा के लिये संसार बन्धनों से छूट जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भावार्थ— त्रिगुणातीत वाङ्मनसागोचर परमेश्वर के तत्त्व का प्रतिपादन करना अत्यन्त कठिन है। ऐसा बता कर अब टकसाल के रूपक से श्री गुरुदेव जी कल्याणकारी उपदेश करते हैं। सर्व वासनाओं का त्याग करके सभी इन्द्रियों को विषयों की ओर से हटा कर ब्रह्मचर्य का पालन करना ही स्वर्णकार की भट्ठी है। जितेन्द्रिय उपासकों का धैर्य ही स्वर्णकार है। निश्चयात्मिका बुद्धि ही अहरन है। अभेद बोधक वेद वाक्य ही हथौड़ा है। अशुभ कर्मों से बचने के लिये परमात्मा का मन में भय रखना ही धौंकनी है। कायिक, वाचिक, मानसिक तपश्चर्या ही अग्नि का तपाना है। प्रेम वाला हृदय ही सुवर्ण पिघलाने का पात्र कुठाली है। उस प्रेमयुक्त हृदय में गुरु के उपदेश रूप सुवर्ण को पिघलाना (धारण करना चाहिये। तब सत्संगतिरूप सच्ची निर्माणशाला में जीव ही ब्रह्म स्वरूप बन जाता है। जिन श्रद्धालु पुरुषों पर ब्रह्मदर्शी गुरु की कृपादृष्टि होती है, उन लोगों को धैर्यादि दैवी गुण धारण करने का तथा काम, क्रोधादि दुर्गुणों को त्यागने का मन में दृढ़ निश्चय होता है। श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि परमेश्वर की कृपादृष्टि से वे पुण्यात्मा श्रद्धालु पुरुष जन्म मरण के दुःख से रहित होकर सर्वदा के लिये संसार बन्धनों से छूट जाते हैं।

विशेष व्याख्या— पूर्व में आदि सचु से लेकर निरूपणीय अर्थ को कह कर अन्त में आत्मतत्त्व के प्रतिपादन की कठिनता का निरूपण किया। जिसे सुनकर जिज्ञासु बहुत प्रसन्न हुआ। गुरुवाणी भी जिस तत्त्व के प्रतिपादन की कठिनता का निरूपण करती है, उस ब्रह्म तत्त्व को गुरु जी ने कृपा करके मुझे सुनाया, इसलिये मैं बड़ा भाग्यवान हूं।

शिष्य की प्रसन्नता को देख कर संक्षेप से पूर्व प्रतिपादित तत्त्वज्ञान की उत्पत्ति का क्रम एवं जीवन मुक्ति का क्रम ज्ञान की दृढ़ता के लिये पुनः रूपक से कहते हैं।

"जतु पाहारा धीरजु सुनिआरु"

मैथुन के त्याग का वाचक जतु शब्द है। परन्तु यहां पर जतु शब्द से संन्यास का ग्रहण है। विवेक वैराग्यादि सम्पन्न होकर शास्त्र रीति से कर्मों के त्याग का नाम संन्यास है। कर्मों का पूर्ण त्याग वैराग्य से होता है। पर अपर भेद से वैराग्य दो प्रकार का है। अपर वैराग्य यतमान, व्यतिरेक, एकेन्द्रिय, वशीकार भेद से चार प्रकार का है। संसार में यह सार है और यह असार है, इस प्रकार के विचार को यतमान कहते हैं। अपने चित्त के दोषों में से इतने दूर हो गये और इतने शेष हैं, इस प्रकार देख कर शेष दोषों को दूर करने का यत्न करना व्यतिरेक वैराग्य है। मन में विषयों की इच्छा होने पर भी इन्द्रियों का निरोध करना एकेन्द्रिय वैराग्य है। लोक परलोक के विषयों के त्याग की इच्छा का नाम वशीकार वैराग्य है। वशीकार वैराग्य भी तीव्र, तीव्रतर, मन्द भेद से तीन प्रकार का है। धन, पुत्र, स्त्री के विनाश होने पर संसार को धिक्कारने का नाम मन्द वैराग्य है। इस लोक के धन पुत्रादि पदार्थ मुझे प्राप्त न हों ऐसी स्थिर बुद्धिका नाम तीव्र वैराग्य है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुण्य के क्षीण होने पर जिन स्वर्गादि लोकों से पुनः लौटना पड़ता है। वे स्वर्गादि मुझे मत प्राप्त हों ऐसी दृढ़ बुद्धि का होना तीव्रतर वैराग्य है। मन्द वैराग्य वाले को संन्यास लेने का निषेध है। तीव्र वैराग्य वाला कुटीचक तथा बहूदक संन्यास को तथा तीव्रतर वैराग्य वाला हंस एवम् परमहंस संन्यास को ले सकता है। विविदिषा और विद्वद् भेद से परमहंस संन्यास दो प्रकार का है। ज्ञान की इच्छा से निखिल कर्मों के त्याग का नाम विविदिषा संन्यास है। वैराग्य से कर्मों का त्याग करके ज्ञान के साधनों में प्रवृत्त होकर मनुष्य मात्र विविदिषा संन्यास का अधिकारी है। ज्ञान के पश्चात् जीवन्मुक्ति के सुख के लिये प्रवृत्ति को त्याग करने का नाम विद्वत् संन्यास है।

मूल में 'धीरजु' शब्द शम, दम, संतोषादि ज्ञान सामग्री का बोधक है। इसलिये ज्ञान के साधनों वाला विविदिषा संन्यासी गौणी वृत्ति से यहाँ पर, 'सुनिआरु' शब्द से बोधन किया है। जैसे स्वर्णकार स्वच्छ भूषणों को अपने यन्त्रों से बनाता है, वैसे विविदिषा संन्यासी ज्ञानरूप भूषणों को अपने साधनों से बनाता है। इसलिये विविदिषा संन्यासी गौणीवृत्ति से स्वर्णकार है। स्वर्णकार भूषण बनाने के यन्त्र जहां रखता है, उस स्थान का नाम पाहारा है। इस प्रकार विविदिषा संन्यासी का, 'जतु' सर्व विषयों का त्यागरूप विविदिषा संन्यास ही, 'पाहारा' ज्ञान के बहिरङ्ग साधन शम दमादि और अन्तरङ्ग साधन श्रवणादि के रखने का एक स्थान विशेष है। इसलिये विविदिषा संन्यास ही ज्ञान के साधनों का स्थान है। वन्दनीय श्री गुरु गोविन्दसिंह जी ने ऐसे संन्यास का सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है।

रे मन ऐसो करि संनिआसा।
बन से सदन सबै करि समझहु मनही माहि उदासा ॥ रहाउ।
जत की जटा जोग को मजन नेम के नखन बढ़ाओ।
गिआन गुरु आतम उपदेसहु नाम बिभूत लगाओ ॥
अलप अहार सुलपसी निंद्रा दइआ छिमा तन प्रीति।
सील संतोख सदा निरबाहिवो ह्वैबो त्रिगुण अतीति ॥
काम क्रोध हंकार लोभ हठ मोह न मनसिउ लिआवै।
तब ही आतम तत को दरसै परम पुरख कह पावै ॥

"अहरणि मतिवेदु हथीआरु" स्वर्णकार जिस वस्तु पर स्वर्ण को रख कर भूषणों को बनाता है, उसे अहरण कहते हैं। जैसे हथौड़े की अनेक चोटों से वह चलायमान नहीं होता, किन्तु एक स्थान पर ही अचल रहता है, वैसे ही विविदिषा संन्यासी की बुद्धि देहादि को आत्मा कहने वाले चार्वाक तथा जीव ईश्वर का भेद प्रतिपादन करनेवाले भेदवादियों की युक्तियोंसे चलायमान नहीं होती,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बुद्धि का संशययुक्त होना ही चलायमान होना है। प्रमाण एवं प्रमेय भेद से संशय दो प्रकार का है। वेद और गुरुवचन दोनों एक ब्रह्म के प्रतिपादक हैं वा जीव ब्रह्म के भेद बोधक ? यह प्रमाण में संशय है । आत्म अनात्म भेद से प्रमेय दो प्रकार का है। प्रमेयगत संशय भी दो प्रकार का है। यह स्थाणु है वा पुरुष, यह अनात्म प्रमेयगत संशय है । आत्मगत संशय अनेक प्रकार के हैं।

आत्मपद से जीवात्मा और परमात्मा का ग्रहण है। परमात्मगत संशय ये हैं। ईश्वर अद्वितीय है अथवा सद्वितीय ? अद्वितीय होकर भी आनन्दादि गुणवान् है अथवा आनन्द स्वरूप है ?

आत्मगत संशय ये हैं—आत्मा देहादि से भिन्न है वा अभिन्न ? भिन्न हुआ भी कर्ता है वा अकर्ता ? अकर्ता हुआ भी चेतन है वा अचेतन ? चेतन हुआ भी आनन्द गुण वाला है अथवा आनन्द रूप है ?

दोनों की एकता में ये संशय हैं। जीव को सच्चिदानन्द होने पर भी परमात्मा के साथ उसकी एकता बन सकती है वा नहीं ? एकता होने पर भी उस एकता का ज्ञान मुक्ति का साधन है वा नहीं ? मुक्ति का साधन होने पर भी वह ज्ञान केवल मुक्ति का साधन है वा कर्म उपासना के साथ मिल कर मुक्ति का साधन है ? इत्यादि भेदवादियों की तर्कों को सुन कर मति चलायमान हो सकती है। वेद यथार्थ ज्ञान का साधन है, जैसे स्वर्णकार भूषणों को हथौड़े से अहरन पर बनाता है, वैसे ही विविदिषा संन्यासी मति में गुरु के उपदेश किये, वेदवचनों से यथार्थ ज्ञान को बनाता है। इसी भाव से वेद को हथियार कहा है ।

"भउ खला अगनि तप ताउ"

तप शब्द अवान्तर वाक्यजन्य ज्ञान का बोधक है। खला= स्वर्णकार के यहां अग्नि प्रज्वलित करने का एक साधन है। परन्तु यहां पर खला शब्द से जन्म मरणादि दुःखों के हेतु अज्ञान तत्कार्यरूप संसार से भय करने का ग्रहण है।

खला=जैसे धौंकनी से निकले हुये वायु से स्वर्ण को शुद्ध करने वाला अग्नि ताउ= अत्यन्त दीप्ति वाला होता है, वैसे ईश्वर की प्रसन्नता के हेतु निष्काम कर्मों के सहित संसार के भयरूप धौंकनी से वैराग्य और अभ्यासरूपवायु से तप=अवान्तर वाक्यजन्यज्ञान अपरोक्षतारूप तीव्र दीप्तिवाला है। जैसे अग्नि का तेज धौंकनी की वायु से तीव्र होकर स्वर्ण की मलिनता को स्वर्ण से अलग कर देता है वैसे ही तप शब्द का वाच्यार्थ ज्ञान, संसार के भय रूप धौंकनी की अभ्यास वैराग्य रूप वायु से तीव्र होकर देहादि अनात्म वर्ग से आत्मा को पृथक् करता है। इसी भाव से संसार भय को धौंकनी कहा है। पूर्व में अवान्तर वाक्यजन्य ज्ञान को कह कर अब महावाक्यजन्य अभेद ज्ञान की रीति प्रकट करने के लिये पदार्थों का अभेद निरूपण करते हैं।

"भांडा भाउ अंम्रितु तितु ढालि"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भांडा=कुठाली का नाम है। यहां पर भांडा शब्द से जीव के लक्ष्यार्थ का ग्रहण है। अंम्रितु= शब्द से ईश्वर के लक्ष्यार्थ का ग्रहण है। अर्थ इस प्रकार है, भाउ=देहादि विवेक द्वारा पृथक् किये त्वम् पद के लक्ष्यार्थ प्रत्यक्, बोधरूप, भांडा=कुठाली में, अंम्रितु=मृत्यु से रहित अविनाशी तत्पद का लक्ष्य अद्वयानन्द ढालि=ढाला जाता है, अर्थात् तू ब्रह्म हैं ऐसे उपदेश द्वारा एक रूपता का बोधन किया जाता है। इस भाव को गुरु जी ने अनेक वचनों से प्रतिपादन किया है।

"ततु निरंजनु जोति सबाइ सोहं भेदु न कोई जीउ" गु० ग्र० पृ० ५६६

प्रश्न— जैसे स्वर्णकार आभूषणों को बनाता है, वैसे विविदिषा संन्यासी कौन से भूषणों को बनाता है ?

समाधान— घड़ीऐ सबदु सची टकसाल। 'दशमस्त्वमसि' अर्थात् दशम (दसवां तुम हो इस वाक्य के समान शब्दजन्य अपरोक्षज्ञानरूप भूषणों को विविदिषा संन्यासी अपनी बुद्धि में घड़ीऐ=बनाता है।

प्रश्न—स्वर्णकार अपने हथियारों से जैसे सच्चे और झूठे दोनों प्रकार के भूषणों को बनाता है, वैसे गुरु के उपदेश से भी क्या मिथ्या और सच्चा ज्ञान होता है ?

समाधान— सची टकसाल। टकसाल दो प्रकार की होती है, एक सच्ची और दूसरी झूठी। मिलावट किये बिना जिसमें शुद्ध धातु के रुपया गिन्नी आदि सिक्के बनाये जाते हैं वह सच्ची टकसाल है। जिसमें मिलावट के सिक्के तैयार होते हैं वह झूठी, जैसे सच्ची टकसाल में सच्ची वस्तु बनती हैं, वैसे ब्रह्मज्ञानियों की सच्ची शाला में सच्चे उपदेश से यथार्थ ज्ञान होता है। भेदवादियों की झूठी शाला में भ्रमात्मक ज्ञान होता है। इस प्रकार ज्ञान की सिद्धि को रूपक से कह कर अब ज्ञान सिद्धि के परममूल निष्काम कर्म की प्रशंसा करते हैं।

जिन कउ नदरि करमु तिन कार।

जिन कउ=जिन शुभ कर्म करने वाले पुरुषों को, नदरि=ब्रह्मज्ञान का परम मूल करमु= निष्काम कर्म करना प्राप्त होता है। उन ईश्वर की कृपा वाले पुरुषों को ही पूर्वोक्त रीति से, कार= ज्ञान की सिद्धि का प्रकार प्राप्त होता है।

निष्काम कर्मों की स्तुति करके अब तत्त्वज्ञान से होने वाली जीवनमुक्ति और कैवल्य मुक्ति को को सूचित करते हुए श्री गुरुदेव जी वेदान्त शिरोमणि इस ग्रन्थ की समाप्ति करते हैं।

"नानक नदरी नदरि निहाल"

ईश्वर कृपा से साधनों को प्राप्त होकर अपरोक्ष ज्ञानयुक्त जब अधिकारी पुरुष होता है, तब नदरी=अपरोक्ष दृष्टि से अविद्या काम्य कर्मादि सर्व बन्धनों को दूर करके निहाल=जीवनमुक्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्राचीन आचार्यों ने अविद्या ग्रन्थि, कर्म ग्रन्थि, हृदय ग्रन्थि इत्यादि को बन्धन शब्द से प्रतिपादन किया है। प्रमाण प्रमेय के संशय का नाम हृदय ग्रन्थि है। कर्मों की कामना को कर्मग्रन्थि कहते हैं। इन ग्रन्थियों का नाश ही जीवन मुक्ति है। तीनों ग्रन्थियों का नाश अपरोक्ष ज्ञान से होता है। इस बात को गुरु जी ने अनेक शब्दों द्वारा व्यक्त किया है।

"जन नानक बिन आपा चीने मिटै न भ्रम की काई"

इसलिये जीवन मुक्ति और विदेह मुक्ति का कारण अपरोक्ष ज्ञान है। तत्त्वज्ञान के प्रभाव से कर्तृत्त्व भोक्तृत्त्व की निवृत्ति ही जीवन मुक्ति है।

ज्ञान के प्रताप से भविष्य में शरीर की प्राप्ति न होना विदेह मुक्ति है। जिस काल में अपरोक्ष ज्ञान होता है, उसी समय ज्ञानी को मुक्ति प्राप्त हो जाती है। विदेह मुक्ति की यह रीति है। सभी मनुष्यों के कर्म तीन प्रकार के होते हैं।। सञ्चित, क्रियमाण और प्रारब्ध। अनेक जन्मों के एकत्रित कर्मों का नाम सञ्चित है। वर्तमान में जो किये जाते हैं उन्हें क्रियमाण कहते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त वर्तमान शरीर में फल देने वाले कर्मों का नाम प्रारब्ध है। सञ्चित कर्मों का ज्ञान द्वारा नाश होता है। क्रियमाण कर्मों का ज्ञान के प्रभाव से अनासक्ति होने के कारण कोई फल नहीं होता, और प्रारब्ध कर्म भोगने से नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण कर्मों का नाश हो जाने से ज्ञानी विदेह मुक्त हो जाता है।

❀ अष्टात्रिंशं मन्त्र समाप्तम ❀

——):o:(——

जगत् का गुरु और माता एवं पिता कौन है? इसके उत्तर में गुरु जी कहते हैं।

'सलोकु'

पवणु गुरू पाणी पिता माता धरति महतु।
दिवसु राति दुइ दाई दाइआ खेलै सगल जगतु।
चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै धरमु हदूरि।
करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि॥
जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि।
नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि॥१॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पवणु गुरू पाणी पिता माता धरति महतु ।

शब्दार्थ — सर्व को पवित्र करने वाला, पवणु=वायु, गुरू=सम्पूर्ण जगत का गुरु है, क्योंकि शरीर इन्द्रियादि सभी पवन के सहारे स्थित हैं। तथा वैखरी वाणी के द्वारा जितने शब्दों का उच्चारण लोक व्यवहार के लिये होता है, वे सभी वायु की सहायता से कण्ठ तालु दन्तादि के द्वारा मुख से उत्पन्न होते हैं। इसलिये सर्व संसार का संचालक होने के कारण वायु जगत् का गुरु है। जल से सर्व की उत्पत्ति होती है, इसलिये पाणी=जल, जगत् का, पिता=जनक है। सर्व को धारण करने वाली, धरति=पृथिवी, महतु=बड़ी, माता=पूजनीय जननी है। जैसे माता बालक को गोद में उठाती और उसका पालन पोषण करती है, वैसे पृथिवी बालक की भाँति समस्त प्रजा को धारण कर अन्न फलादि के द्वारा पालन पोषण करती है।

दिवसु राति दुइ दाई दाइआ खेलै सगल जगतु ॥

दिवसु=दिन और, राति=रात्रि, दुइ=ये दोनों, दाई=धाय, दाइआ=बालक को खेलाने वाला, इन दोनों की गोदी में, सगल जगतु=चराचर सम्पूर्ण जगत् बालक की भांति खेलै=खेल रहा है। जैसे बालक की सर्व चेष्टायें दाई और दाया से गुप्त नहीं रहतीं। वैसे ही जगद्रूप बालक की सभी शुभाशुभ क्रियाएं दिन और रात के अभिमानी देवताओं से छिपी नहीं रहतीं।

चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै धरमु हदूरि ॥

चंगिआईआ=शुभकर्म, बुरिआईआ=अशुभकर्म धरमु हदूरी=धर्मराज के सम्मुख दिन रात को साक्षी बना कर चित्रगुप्त, वाचै=वाच कर सुनाते हैं।

करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि ।

के नेड़ै=क्या समीप और, के दूरि=क्या दूर अर्थात् किसी भी योनी में दूर वा समीप जीव हो, उसे आपो आपणी=अपने अपने शुभाशुभ, करमी=कर्मों के अनुसार फल मिलता है।

जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि ।

जिनी=जिन पुरुषों ने, नामु धिआइआ=परमेश्वर के नाम का स्मरण किया है, और जप तप दानादि, मसकति=परिश्रम को, घालि=कर गए हैं।

नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि ॥

नानक=श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं, ते मुख उजले=वे पुरुष उज्वल मुख वाले हैं, अर्थात् लोक और परलोक में वे शोभा वाले हैं। केती छुटी नालि=और उनके, नालि=साथ, केती=कितने जिज्ञासु पुरुष जन्म मरण के चक्र से, छुटी=छूट गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भावार्थ— माननीय गुरुदेव ! जगत् का गुरु और माता पिता कौन है ? ऐसी जिज्ञासा को देख कर प्रकरण का उपसंहार करते हुए श्री गुरुदेव जी कहते हैं कि सर्व को पवित्र करने वाला वायु समस्त संसार का गुरु है, क्योंकि शरीर इन्द्रियादि सभी वायु की सहायता से अपना २ कार्य करते हैं। वैखरी वाणी के द्वारा जितने शब्दों का उच्चारण लोक व्यवहार को चलाने के लिये होता है वह सभी वायु की सहायता से कण्ठ तालु, दन्तादि के द्वारा मुख से उत्पन्न होता है। इसलिये सर्व संसार का संचालक होने के कारण वायु जगत् का गुरु है।

जल से सर्व की उत्पत्ति होती है इसलिये पानी जगत् का जनक है। सर्व को धारण करने वाली पृथिवी पूजनीय बड़ी जननी है। जैसे माता बालक को अपनी गोद में उठाती एवं उसका पलान पोषण करती है वैसे ही पृथिवी भी बालक की भांति समस्त प्रजा को धारण करके अन्न फलादि के द्वारा पालन पोषण करती है। दिन और रात्रि धाई धाया के समान बालक को खिलाने वाले हैं। इन दोनों की गोदी में चराचरात्मक सम्पूर्ण जगत् बालक की भांति खेल रहा है। जैसे बालक की समस्त चेष्टाएं धाइ और धाया से गुप्त नहीं रहतीं वैसे ही जगद्रूप बालक की शुभाशुभ सभी क्रियाएं दिन रात के अभिमानी देवता से छिपी नहीं रहतीं

प्राणियों के शुभाशुभ कर्म धर्मराज के सम्मुख दिन रात को साक्षी बना कर चित्रगुप्त पढ़कर सुनाते हैं। किसी भी योनि में जीव दूर वा समीप क्यों न हो उसे अपने अपने कर्मों के अनुसार शुभाशुभ फल अवश्य मिलता है। जिन पुरुषों ने परमेश्वर के नाम का स्मरण किया है और जप, तप, दानादि को श्रद्धा भक्ति से परिश्रम पूर्वक कर गए हैं, श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि वे पुरुष लोक परलोक में उज्वल मुख वाले हैं, और उनके साथ कितने ही अन्य जिज्ञासु पुरुष जन्म मरण के चक्र से छूट जाते हैं।

विशेष व्याख्या— पूर्व प्रतिपादित सारगर्भित उपदेश को सुन कर श्री गुरु अङ्गददेव जी प्रातःस्मरणीय श्री गुरु नानकदेव जी की स्तुति करते हैं।

पवणु गुरु पाणी पिता माता धरती महतु।

यह श्लोक माझ की वार में न्यून अधिक पाठ के भेद से आता है। जैसे जपजी रहिरास आसा राग में कुछ पाठ के भेद से सोदर का शब्द श्री गुरु नानकदेव जी का माना जाता है वैसे ही पाठ भेद होने पर भी 'पवणु गुरु पाणी पिता' इत्यादि श्लोक गुरु अङ्गददेव जी महाराज का है ऐसा कुछ विद्वानों का विचार है। परन्तु यह बात सर्व सम्मत नहीं।

यहां पर 'पवणु पाणी धरति इत्यादि शब्द सादृश्य के बोधक हैं। जैसे पवन अपने सम्बन्ध से दुर्गन्धि को दूर करता हुआ वस्तुओं को पवित्र करता है, वैसे ही हमारे गुरुदेव अज्ञानरूपी दुर्गन्धि को दूर करते हुए पवित्र करते हैं। इसलिये गुरु जी पवणु=वायु के सदृश हैं। जैसे जल शीतल करता,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है और प्यास को शान्त करता है, वैसे गुरुदेव भी ज्ञान देकर तीनों तापों को शान्त करके शीतलता प्रदान करते हैं, और शब्द स्पर्शादि विषयों की तृष्णा को दूर करते हैं। इसलिए गुरु जी, पाणी=जल के समान हैं। जैसे पिता स्थूल शरीर प्रदान करता है वैसे ही गुरुदेव ज्ञान द्वारा ब्रह्मस्वरूप देह प्रदान करते हैं। इसलिये गुरु जी, पिता=जनक के सदृश हैं। इसी भाव से भारद्वाजादि ऋषियों ने पिप्लाद मुनि से कहा है।

त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति ॥

भगवन् ! आप ही हमारे वास्तविक पिता हैं, जिन्होंने हम लोगों को संसार समुद्र से पार कर दिया। जैसे माता बालक के हित की इच्छा से उसके ऊपर दया करती है, वैसे ही जीवन मुक्त गुरुदेव शिष्यों का सर्वदा कल्याण चाहते हैं। इसलिये गुरु जी, माता=जननी के समान हैं।

जैसे पृथिवी लोगों के उपकार के लिये अपने उदर में अनेक प्रकार के उत्तम पदार्थों को धारण करती है, वैसे ब्रह्मवेत्ता गुरु भी शिष्यों के कल्याण के लिये अपने अन्तःकरण में श्रेष्ठ दैवी गुणों को सर्वदा धारण करते हैं। इसीलिए धरति=पृथिवी के समान क्षमाशील उदारात्मा गुरुदेव हैं। जैसे पांच महाभूतों में, महतु=महान् आकाश व्यापक है, तथा सर्व प्रकार की मलिनता से रहित है। वैसे ब्रह्मस्वरूप हमारे गुरु भी देश एवं काल तथा सर्ववस्तुओं में व्यापक हैं, और त्रिगुणात्मक मल से रहित हैं, इसलिये आकाश के समान हैं।

"दिवसु राति दुइ दाई दाइआ खेलै सगल जगतु"

जैसे दिन में पदार्थों के वास्तविक स्वरूप को आच्छादित करने वाला अन्धकार दूर हो जाता है, वैसे शुद्ध ब्रह्मस्वरूप से सर्व के अधिष्ठान गुरुदेव में अज्ञान अन्धकार नहीं रहता। इसलिये गुरुजी, दिवसु=दिन के समान प्रकाशवान् हैं। जैसे शुक्ल पक्ष की रात्रि सम्पूर्ण दिन की तप्त को दूर करके पुरुषों को शान्ति प्रदान करती है, तथा कृष्ण पक्ष की रात्रि पुरुषों की सर्व प्रवृत्ति को रोक कर एक स्थान में स्थिर कर देती है, वैसे गुरु भी अनेक जन्मों के आध्यात्मिकादि तापों को दूर करके पुरुषों को शान्ति प्रदान करते हैं। तथा उनकी बाह्य प्रवृत्तियों को दूर करके आत्मतत्त्व में स्थिर कर देते हैं। इसलिये गुरु जी राति दुइ=शुक्ल कृष्ण दोनों पक्ष की रात्रि के तुल्य हैं। जैसे धात्री सर्वदा बालक की रक्षा करती हुई उसको अनेक विचित्र पदार्थ दिखाकर आनन्दित करती है, वैसे मुमुक्षुओं की आसुरी सम्पत्ति से रक्षा करते हुए स्वस्वरूप को अपरोक्ष करा कर उन्हें आनन्दित करते हैं। इसलिये दाई=धात्री के सदृश गुरुदेव हैं। पुनः जैसे धाया 'धाता' बालक को अनेक प्रकार के उपवनों की सैर कराकर प्रसन्न करता है, वैसे अनेक प्रकार के दैवी गुणरूप उपवन तथा परब्रह्म रूपी महामन्दिर की सैर करा कर जिज्ञासुओं को प्रसन्न करते हैं। इसलिये गुरुदेव दाइआ=धाया के समान हैं।

प्रश्न— जिन गुरुओं की ऐसी प्रशंसा की है, वह क्या त्रिपुटी विहीन ब्रह्म में लीन रहते हैं?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अथवा त्रिपुटीवाले जगत् में लीला भी करते हैं ?

समाधान— **खेलै सगल जगतु** । ब्रह्मवेत्ता गुरु यद्यपि वास्तविक दृष्टि से उपदेष्टा, उपदेश, उपदेश्य, इत्यादि त्रिपुटी कल्पना से हीन निज ब्रह्मस्वरूप में ही लीन रहते हैं, तथापि व्यावहारिक दृष्टि से मरुमरीचिका तुल्य मिथ्या जगत् में आने को उपदेष्टा शिष्य को उपदेश्य जान कर उसके कल्याण के लिये उपदेशादि व्यवहारों में, **खेलै**=लीला करते हैं। वास्तव में ज्ञानी करता हुआ भी कुछ नहीं करता।

व्यावहारिक दृष्टि से ब्रह्मवेत्ता नेत्रादि करणों से देखता हुआ भी पारमार्थिक दृष्टि से दर्शन, दृश्य, द्रष्टा एवं श्रोता, श्रवण, श्रोतव्य, वक्ता, वचन, वक्तव्य इत्यादि त्रिपुटियों से सर्वथा अतीत है।

प्रश्न— वास्तविक दृष्टि त्रिपुटी विहीन होने पर भी लोगों की दृष्टि में अधिकतर गुरु क्या कार्य करते हैं ?

समाधान— **चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै धरमु हदूरि ।**

दुःखरूप संसार से पुरुषों को छुड़ाने के लिये अनुग्रह करके, **चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै**=शुभाशुभ कर्मों की विधि निषेध वचनों के द्वारा शिष्यों के प्रति कथन करते हैं, अर्थात् जो शुभ कर्म करेगा वह सुखी होगा और अशुभ कर्म करने वाला दुःखी होगा। इस प्रकार शिष्ट पुरुषों की मर्यादा के अनुसार लोक संग्रहार्थ शिष्यों को सन्मार्ग का उपदेश देते हैं।

प्रश्न— शिष्टों की रीति के अनुसार उपदेश देकर गुरु शिष्य का क्या प्रयोजन सिद्ध करना चाहते हैं ?

धरमु हदूरि । विधि निषेध वचनों के द्वारा लोगों को जो शुभ कर्मों का गुरु उपदेश करते हैं वह निषिद्ध कर्मों को छुड़ा कर **धरमु**=निष्काम धर्म के, **हदूरि**=समीप लाने के लिये है। जब काम्य और निषिद्ध कर्मों को त्याग कर जिज्ञासु निष्काम धर्म के निकट होता है, तब ईश्वर कृपा से तत्त्व का साक्षात्कार होकर सर्व बन्धनों से मुक्त हो जाता है। जिज्ञासु को निष्काम धर्म के समीप लाने का यही फल है।

प्रश्न—ऐसे परम हितकारी ब्रह्मवेत्ता शिष्य को किस प्रकार प्राप्त होते हैं ? ऐसी शङ्का को सुन कर गुरु जी उत्तर में निष्काम कर्मों के द्वारा प्राप्ति बताते हैं।

करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि ।

सकाम और निष्काम भेद से कर्म दो प्रकार के हैं, अन्तःकरण की शुद्धि एवं ईश्वर प्रसन्नता के लिये अधिकारी निष्काम कर्मों को करता है। सांसारिक पदार्थों की इच्छा के लिये अनधिकारी सकाम कर्मों को करता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करमी आपो आपणी =अपने अपने निष्काम और सकाम कर्मों के अनुसार, के नेड़ै के दूरि =निष्कामी किसी अधिकारी पुरुष को गुरु समीप प्रतीत होते हैं, और अनधिकारी सकामी पुरुष को गुरु अत्यन्त दूर दिखाई देते हैं।

प्रश्न— जो उत्तम अधिकारी गुरु के समीप रहता है, उसे किस फल की प्राप्ति होती है ?

समाधान— "जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि"

मसकति शब्द प्रयत्न का वाचक है। यहां पर विवेक वैराग्यादि साधनों का प्रयत्न अपेक्षित है। मसकति =विवेकादि साधनों के यत्न को, घालि =करके जिन जिन अधिकारी पुरुषों ने गुरु के समीप जाकर, धिआइआ =श्रवण, मनन करने के बाद निदिध्यासन किया है, वे अधिकारी पुरुष निदिध्यासन करने के अनन्तर अपरोक्ष ज्ञान को प्राप्त होकर, गए स्वस्वरूप ब्रह्म में ही लीन हो गये हैं। इस भाव को श्री गुरु अर्जुनदेव जी ने भी व्यक्त किया है ।

जिउ जल महि जलु आइ खटाना। तिउ जोति संगि जोति समाना ॥

गु० ग्र० पृ० २७८ ।

जो अधिकारी गुरु के समीप गये हैं, वे केवल ज्ञान से मुक्ति को प्राप्त करते हैं । कर्म एवम् उपासना संयुक्त ज्ञान से नहीं। समुच्चयवाद का अभाव और सम्प्रदाय परम्परा की प्रवृत्ति दिखाते हुए श्लोक की समाप्ति करते हैं।

नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि"

विवेक वैराग्यादि साधनों से युक्त होकर जो गुरु के समीप प्राप्त हुए हैं, ते =वे ही अधिकारी श्रवणादि साधनों से मुक्ति के हेतु मुख =मुख्य (प्रधान) अभेद ज्ञान को प्राप्त होकर, उजले = अज्ञानतत्कार्य से विहीन शुद्ध ब्रह्म भाव को प्राप्त होते हैं । कर्म एवं उपासना के सहित ज्ञान से ब्रह्म भाव को प्राप्त नहीं होते इसमें यह हेतु है।

जन नानक बिनु आपा चीनै मिटै न भ्रम की काई। गु० ग्र० पृ० ६८४।

अर्थात् स्वस्वरूप के ज्ञान के बिना कर्म और उपासनारूप उपाय से संशय विपर्यय रूप हृदय की मलिनता दूर नहीं हो सकती। इसलिये परमानन्द की प्राप्ति में और अज्ञान की निवृत्ति में केवल ज्ञान ही कारण है ।

"आतम ब्रह्मु चीनि सुख पाइआ"। गु० ग्रं० पृ० ६०७।

तथा- गिआन अंजनु गुरि दीआ अगिआन अंधेर बिनासु ॥ गु० ग्रं० पृ० २९३।

इत्यादि अनेक गुरु वचन तथा वेद मन्त्र पूर्वोक्त भाव की ही पुष्टि करते हैं।

ज्ञानादेव तु कैवल्यं नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय। युक्ति द्वारा भी मुक्ति ज्ञान से ही सिद्ध होती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रज्जु में सर्प की भ्रान्ति वाला पुरुष जब हाथ में दीपक लेकर नेत्रों से रज्जु को देखता है, तभी रज्जु के अज्ञान सहित सर्प की भ्रान्ति दूर होती है। भ्रान्ति निवृत्ति के बाद उपासना से एवं दान स्नानादि शुभ कर्मों से सर्प को दूर करने की उसे इच्छा नहीं रहती। वैसे यहां भी मुक्ति के लिये आत्म-साक्षात्कार होने के बाद ज्ञानवान् को कर्म एवम् उपासना की इच्छा नहीं रहती।

गिआनै कारन करम अभिआसु। गिआनु भइआ तहि करमह नासु॥

गु० ग्र० पृ० ११६७

यद्यपि ज्ञानी निष्कर्त्तव्य निष्प्रयोजन है, तथापि शिष्यों की शिक्षा के लिये शुभकर्मानुष्ठान करता है। क्योंकि माननीय पुरुष जैसा आचरण करते हैं, उनके अनुयायी भी वैसा ही अनुकरण करने की चेष्टा करते हैं।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्तते॥

प्रश्न— जैसे साधन सम्पन्न अधिकारी ब्रह्मवेत्ता की शरण में आकर जीवन मुक्ति का लाभ प्राप्त करता है, वैसे अन्य अधिकारी उस जीवन मुक्त की संगति से लाभान्वित होता है या नहीं? उत्तर में श्री गुरु नानकदेव जी लाभ की प्राप्ति का कथन करते हैं।

"केती छुटी नालि। श्री गुरुदेव जी कहते हैं कि ब्रह्मनिष्ठ गुरु के शिष्य ब्रह्मवेत्ता की नालि=संगति से अधिकारी पुरुष ज्ञानरूप प्रकाश के द्वारा अज्ञान तत्कार्य को नाश करते हुए, केती=अनेकों जिज्ञासु, छुटी=मुक्त हो जाते हैं। इस बात को गुरुदेव ने अन्य वचनों में भी प्रतिपादन किया है।

गुरमुखि कोटि उधारदा भाई दे नावै एक कणी॥ गु० ग्र० पृ० ६०८

एवम्— आपि मुकतु मुकतु करै संसारु। नानक तिसु जनकउ सदा नमसकारु॥

गु० ग्र० पृ० २९५

❀ श्री जपजी, उत्तरार्द्ध प्रेम प्रबोधिनी विशेष व्याख्या समाप्त ❀

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रहरासि

प्रातः स्मरणीय श्री गुरु अर्जुनदेव जी ने सायंकाल की प्रार्थना करने के लिये इस वाणी का संकलन किया है। रहिरास शब्द का अर्थ प्रार्थना है।

यथा— "तिसु आगे रहरासि हमारी साचा अपर अपारो"

श्री गुरुग्रन्थ में रहिरास का प्रथम शब्द सोदरु के शीर्षक से लिखा है। जैसे—

"सो पुरखु निरंजनु हरि पुरखु निरंजनु"

पाठ से इस शब्द का शिरोलेख 'सो पुरखु है' वैसे यहां पर भी 'सोदरु तेरा केहा सो घरु केहा' इस मन्त्र में सोदरु शब्द का उच्चारण होने से इसका शीर्षक सोदरु दिया है। यह सोदर का शब्द जपजी रहिरास तथा आसा रागमें मिलता है। तीनों स्थानों में पाठ का थोड़ा बहुत अन्तर अवश्य है परन्तु अर्थ में कोई विशेष भेद नहीं। जपजी का सोदरु सिद्ध मण्डली के प्रश्नों का उत्तर है। रहिरास का सोदरु वैकुण्ठ से लौटने पर बहिन नानकी के प्रश्नों का उत्तर है, और आसा राग का सोदरु सगुण ब्रह्म के सम्मुख स्तुति में उच्चारण किया है। ऐसी व्यवस्था सत्पुरुष लगाते हैं।

सोदरु राग आसा महला ॥१॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥

सोदरु तेरा केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले ॥
वाजे तेरे नाद अनेक असंखा केते तेरे वावण हारे ॥
केते तेरे राग परिसिउ कहीअहि केते तेरे गावण हारे ॥
गावनि तुधनो पवणु पाणी बैसन्तरु गावै राजा धरमु दुआरे ॥
गावनि तुधनो चितु गुपतु लिखि जाणनि लिखि लिखि धरमु बीचारे ॥
गावनि तुधनो ईसरु ब्रह्मा देवी सोहनि तेरे सदा सवारे ॥
गावनि तुधनो इन्द्र इन्द्रासणि बैठे देवतिआ दरिनाले ॥
गावनि तुधनो सिध समाधी अंदरि गावनि तुधनो साध बीचारे ॥
गावनि तुधनो जती सती संतोखी गावनि तुधनो वीर करारे ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गावनि तुधनो पंडित पढ़नि रखीसर जुगुजुगु वेदा नाले ॥
गावनि तुधनो मोहणीआ मनु मोहनि सुरगु मछु पइआले ॥
गावनि तुधनो रतन उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले ॥
गावनि तुधनो जोध महाबल सूरा गावनि तुधनो खाणी चारे ॥
गावनि तुधनो खंड मंडल ब्रहमंडा करि करि रखे तेरे धारे ॥
सेई तुधनो गावनि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले ॥
होरि केते तुधनो गावनि से मै चिति न आवनि नानकु किआ बीचारे ॥
सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई ॥
है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई ॥
रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई ॥
करि करि देखै कीता आपणा जिउ तिसदी वडिआई ॥
जो तिसु भावै सोई करसी फिरि हुकमु न करणा जाई ॥
सो पातिसाहु साहापति साहिबु नानक रहणु रजाई ॥१॥

शब्दार्थ— सोदरु तेरा केहा । हे परमेश्वर ! तेरा=आपका, सोदरु=वह द्वार, केहा= कैसा है? जितु बहि सरब समाले । जितु बहि=जहां पर बैठ कर आप, सरब समाले=सम्पूर्ण संसार की देख भाल करते हैं। यद्यपि वास्तव में आपके द्वार और घर का निरूपण नहीं हो सकता तथापि जिज्ञासुओं के ध्यान के लिये आपके घर तथा द्वार का निरूपण करते हैं, अर्थात् समस्त संसार द्वार है, और वैकुण्ठ घर है। अथवा सत्संग द्वार है और स्वस्वरूप घर है।

वाजे तेरे नाद अनेक असंखा केते तेरे वावणहारे ॥

असंखा=हे संख्यातीत परमेश्वर ! तेरे=आपके द्वारपर, वाजे नाद अनेक=अनेक ही विचित्र शब्दों को उत्पन्न करने वाले बाजे हैं। अथवा अनेक ही बाजे हैं और अनन्त ही वर्णात्मक, और ध्वन्यात्मक आहत और अनाहत आदि शब्द हैं। तेरे=आपके द्वार में केते=कितने ही बाजों को वावण हारे=बजाने वाले हैं।

केते तेरे राग परिसिउ कहिअहि केते तेरे गावण हारे ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तेरे=आपके द्वार पर, केते=कितने ही, राग=वसन्त बिलावल आदि राग, परीसिउ कहीअहि=रागनियों के सहित कहे जाते हैं, और केते तेरे=कितने ही तेरे द्वार पर उन रागों के, गावरण हारे=गाने वाले गायक हैं। अब आगे श्री गुरुदेव जी गाने वालों का संक्षेप से निरूपण करते हैं।

गावनि तुधनो पवणु पाणी बैसन्तरु गावै राजा धरमु दुआरे।

तुधनो= आपको, पवणु= सर्व को पवित्र करने वाला वायु देवता, पाणी=वरुण देवता तथा, बैसंतरु=अग्नि देवता, गावनि=गायन करते हैं।

द्वारे=तेरे द्वार पर, राजा धरमु=धर्मराज भी आपके यश को, गावै=गायन करता है।

गावनि तुधनो चितुगुपतु लिखि जाणनि लिखि लिखि धरमु बीचारे॥

लिखि जाणनि=जीवों के शुभाशुभ कर्मों को लिखने वाले, चितु गुपतु=यम के दूत चित्र गुप्त भी, तुधनो=आपको, गावनि=गायन करते हैं, और प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों को, लिखि लिखि=लिख लिख करके, धरमु बीचारे=धर्म और अधर्म का विचार करते हैं। अथवा जो जीवों के कर्मों को लिखना जानते हैं, और जिनके लिखे हुए लेख को न्याय करने के लिये धर्मराज विचारता है; वे चित्रगुप्त भी आपके यश का गायन करते हैं।

गावनि तुधनो ईसरु ब्रह्मा देवी सोहनि तेरे सदा सवारे॥

तेरे सवारे= तेरे बनाये हुए, ईसरु =शिव जी, और ब्रह्मा =प्रजापति, अपनी अपनी, देवी =देवियों के सहित, सोहनि =सुशोभित होकर, सदा =सर्वदा, गावनि तुधनो =आपके यश को गायन करते हैं।

गावनि तुधनो इन्द्र इन्द्रासणि बैठे देवतिआ दरिनाले॥

इन्द्र =इन्द्र देवता,, इन्द्रासणि बैठे =अपने सिंहासन पर बैठ कर, देवतिआ =देवताओं के, दरिनाले =दल के सहित, गावनि तुधनो =आपके यश का गायन करता है।

गावनि तुधनो सिध समाधी अंदरि गावनि तुधनो साध बीचारे॥

हे भगवन् ! सिध =कपिलादि सिद्ध लोग, समाधी अंदरि =समाधि में स्थित होकर, गावनि तुधनो =आपके यश को गाते हैं। साध बीचारे =विचारवान् साधु भी, गावनि तुधनो= आपके यश का गायन करते हैं।

गावनि तुधनो जती सती संतोखी गावनि तुधनो वीर करारे॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जती=ब्रह्मचारी, तथा सती=सत्यवादी हरिश्चन्द्रादि, और संतोखी=यथा लाभ में सन्तुष्ट रहने वाले वीतराग महात्मा, गावनि तुधनो=आपका निरन्तर गायन करते हैं। वीर करारे= हठीले सुदृढ़ शूरवीर, गावनि तुधनो=आपके यश को गाते हैं।

गावनि तुधनो पंडित पढ़नि रखीसर जुगुजुगु वेदा नाले ॥

जुगुजुगु वेदानाले=प्रत्येक युग में वेद मन्त्रों के साथ, पंडित=विद्वान् लोग, तथा पढ़नि=पढ़ने वाले विद्यार्थी, और रखीसर=ऋषि लोग, गावनि तुधनो=आपकी महिमा का गायन करते हैं।

गावनि तुधनो मोहणीआ मनु मोहनि सुरगु मछु पइआले ॥

सुरगु=स्वर्ग में तथा, मछु=मृत्यु लोक और पाताल में रहने वाले लोगों के, मनु मोहनि= मन को मोहन करने वालियां, मोहणीआ=सुन्दर स्त्रियां, गावनि तुधनो=अपने पापों की निवृत्ति के लिये आपके पवित्र यश का गायन करती हैं।

गावनि तुधनो रतन उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले ॥

तेरे=आपके, रतन उपाए=उत्पन्न किये हुए चौदह रत्न और, अठसठि तीरथ नाले= अठसठ तीर्थों एवं नदी नालों के अभिमानी देवता, गावनि तुधनो=तेरे यश को गाते हैं।

गावनि तुधनो जोध महाबल सूरा। तुधनो=आपके यश को, जोध=योद्धा, तथा महाबल=महाबली एवम्; सूरा=शूरवीर महारथी, गावनि=गायन करते हैं।

"गावनि तुधनो खाणी चारे"। खाणी चारे=अण्डज, जरायुजादि चारों खानियों के जीव, गावनि तुधनो=तुम्हारे यश का गायन करते हैं।

गावनि तुधनो खंड मंडल ब्रहमंडा करि करि रखे तेरे धारे ॥

तुधनो=तुम्हारे यश को, खंड=भारतादि नवखंडों के तथा, मंडल=सप्त द्वीपों के और, ब्रहमंडा=सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में निवास करने वाले प्राणी, गावनि=गायन करते हैं, जिन्हें करि करि=उत्पन्न करके अपनी अलौकिक शक्ति से, तेरे=आपने, रखेधारे=स्वयं धारण कर रखा है।

सेई तुधनो गावनि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले ॥

जो तुधु भावनि=जो आपको अच्छे लगते हैं, सेई=वही भक्त जन, तुधनो=तुम्हें गावनि=गायन करते हैं, भगत रसाले=आनन्द के घर भक्तजन, रते तेरे=तेरे प्रेम में निर-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

न्तर रंगे हुए हैं। अथवा, रसाले=प्रेम के घर प्रेमी जन, तेरे=आपके भक्ति रङ्ग में, रते=रङ्गे हुए है, अर्थात् आत्मविभोर होकर तुम्हारे प्रेम में अहोरात्र निमग्न रहते हैं।

होरिकेते तुधनो गावनि से मै चिति न आवनि नानकु किआ बीचारे ॥

होरकेते=और भी कितने अनन्त जीव, तुधनो=आपको, गावनि=गायन करते हैं, से=वे असंख्य जीव, मै=मुझे, चिति=चित्त में, न आवनि=स्मरण में नहीं आरहे हैं। नानकु=श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं, किआ बीचारे=मैं उन प्रेमी भक्तों का और अधिक क्या विचार करूं अर्थात् युग भेद से आपके यश को गायन करने वाले अनन्त प्रेमी हैं, जिन का विचार करना अत्यन्त कठिन है।

प्रश्न— वह परमेश्वर कब था और कैसा है ?

समाधान— सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई।

है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई ॥

सोई=वह, सदा=अविनाशी, सचुसाहिबु=सच्चा परमेश्वर, है=वर्तमान काल में है, तथा सोई=वह, साचीनाई=सच्ची बड़ाई वाला, साचा=सत्यस्वरूप परमेश्वर, भी=भूतकाल में था, और रचना जिनि रचाई=सृष्टि को उत्पन्न करने वाला वह परमेश्वर, होसी=आगे भविष्य में भी होगा, जिनि रचाई=जिसने सृष्टि उत्पन्न की है, वह परमेश्वर, जाइ न=उत्पन्न नहीं होता, रचना जासी=भूत भौतिक सृष्टि की रचना चली जाएगी।

रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई ॥

रंगि रंगी=नील पीतादि अनेक रंगों की, तथा भाती=विशाल काय और लघु कायादि भांति २ की, जिनसी—पशु, देव, दानव, मानवादि अनेक भेद की माइआ=माया द्वारा, जिन=जिसने, उपाई=सृष्टि उत्पन्न की है।

करि करि देखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई ॥

कीता आपणा=अपने उत्पन्न किये प्रपञ्च को, करि करि=रच करके, जिउ=जिस प्रकार, तिसदी=उस शक्तिशाली परमेश्वर की, वडिआई=इच्छा होती है, वैसे वैसे, देखै=देखता है।

जो तिसु भावै सोई करसी फिर हुकमु न करणा जाई ॥

जो तिसु भावै=उस परमेश्वर को जो अच्छा लगता है, सोई करसी=सर्वदा वही होता है, उस शक्तिशाली परमेश्वर पर, हुकमु न करणा जाई=किसी की आज्ञा नहीं हो सकती। ऐसा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करो ऐसा न करो इस प्रकार का अनुशासन ईश्वर के ऊपर कोई नहीं कर सकता।

सो पातिसाहु साहापति साहिबु नानक रहणु रजाई ॥

सो=वह ईश्वर, पाति साहु=महाराजाओं का, साहापति साहिबु=अधिपति सम्राट् है। नानक=श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि उस परमेश्वर की, रजाई=आज्ञा में, रहणु=रहना ही सर्व प्राणियों को उचित है।

भावार्थ— बहिन नानकी ने श्री गुरु नानक देव जी से पूछा—परमप्रिय भ्राता जी! सर्वशक्तिमान् ऐश्वर्यशाली परमेश्वर का द्वार और घर कैसा है जहां पर बैठ कर सारे संसार की देखभाल करता है?

उत्तर में श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि संसार द्वार है और वैकुण्ठ घर है। सर्व प्रथम द्वार का ऐश्वर्य दिखाते हैं। उस परमात्मा के द्वार पर अनेक प्रकार की ध्वनि करने वाले बाजे हैं। तथा वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक असंख्य ही शब्द हो रहे हैं। वहां पर कितने ही गायक लोग बाजों को बजाने वाले हैं।

वहां पर श्रीराग वसन्त विलावल आदि कितने ही राग रागनियों के सहित्त कहे जाते हैं। और कितने ही स्वर ताल के साथ रागों को गाने वाले गन्धर्व और किन्नरादि गायक हैं। हे ईश्वर! आपके यश को वायु देवता, वरुण देवता और अग्नि देवता निरन्तर गायन करते हैं। आपके द्वार पर धर्मराज तथा धर्मात्माराजा लोग अनेक प्रकार के दिव्य स्तोत्रों से तुम्हारे यश का गायन करते हैं।

हे जगदीश्वर! जीवों के शुभाशुभ कर्मों को लिख कर जानने वाले चित्रगुप्त भी आपके यश का गायन करते हैं। जिसके लिखे हुए लेख को न्याय करने के लिये धर्मराज भी विचारता है।

आपके बनाये हुए शिवजी और प्रजापति अपनी अपनी पत्नियों के सहित प्रतिदिन तुम्हारे यश का गायन करते हैं। देवताओं के दल के सहित इन्द्र देवता अपने सिंहासन पर बैठ कर आपकी महिमा को गायन करता है।

कपिलादि सिद्ध समाधि में स्थित होकर आपके यश का गायन करते हैं। विचारवान् साधु महात्मा प्रतिदिन तुम्हारे यश का गायन करते हैं।

सत्यवादी, जितेन्द्रिय, यथा लाभ में सन्तुष्ट रहने वाले सन्तोषी निरन्तर आपकी कीर्ति का गायन करते हैं। शूरवीर हठीले सावधान होकर आपके यश को गाते हैं।

पण्डित लोग तथा विद्यार्थी एवम् वसिष्ठादि ऋषि युग युग में वेद मन्त्रों के द्वारा आपके यश का गायन करते हैं।

स्वर्ग और मृत्यु लोक तथा पाताल लोक में रहने वाली और लोगों के मन को मोहित करने वाली अप्सराएं आपके यश को गायन करती हैं।

तेरे उत्पन्न किये हुए चौदह रत्न तथा प्रयागादि प्रधान तीर्थों और नदी नालों के अभिमानी देवता आपके यश का गायन करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रथी महारथी, अतिरथी ये सभी शूरवीर योद्धा तुम्हारी कीर्ति का गायन करते हैं। अण्डज, जरायुज,स्वेदजादि चारों खानियों में उत्पन्न होने वाले जीव जन्तु आपके यश का गायन करते हैं।

भारतादि नवखण्डों के वासी आपके यश को गायन करते हैं। जिन्हें आपने उत्पन्न करके अपनी अलौकिक शक्ति से धारण कर रखा है। प्रेम के घर प्रेमी भक्त जन तेरे प्रेम के रङ्ग में रंगे हुए हैं। जो आपको अच्छे लगते हैं वे ही यथार्थ रूप से आपको गायन करते हैं। और भी कितने भक्त लोग आपको गायन करते हैं जिनका मुझे स्मरण नहीं आता।

श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि इस विषय पर मैं कहां तक विचार करूं क्योंकि ईश्वर का गायन करने वाले भक्तों की गणना करनी अत्यन्त कठिन है। वह अविनाशी परमेश्वर भूतकाल में था, वर्तमान में है और आगे भी होगा। यह भूत भौतिक रचना नष्ट होगी, परन्तु जिसने यह सृष्टि उत्पन्न की है वह अविनाशी परमेश्वर सर्वदा रहेगा।

जिस ईश्वर ने अपनी अनादि शक्ति माया के द्वारा श्वेत, नील, पीतादि अनेक रङ्गों की तथा सरूप कुरूपादि अनेक भाँति की देव, दानव, पशु, पक्षी, लता, वृक्षादि अनेक भेदों वाली सृष्टि उत्पन्न की है, उस अकाल पुरुष परमात्मा की जैसी इच्छा है, वैसे वह अपने उत्पन्न किये जगत को देखता है।

जो कुछ ईश्वर को अच्छा लगता है वही कार्य करता है, और आगे भी वैसे ही करेगा। ईश्वर को कोई आज्ञा नहीं दे सकता। श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि वह परमेश्वर राजा महाराजाओं का अधिपति सम्राट् है। इसलिये जिज्ञासुओं को ईश्वरीय आज्ञा में रहना लाभदायक है।

विशेष व्याख्या— **सोदरु तेरा केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले।**

परम कृपालु श्री गुरु अर्जुनदेव जी ने प्रातःकाल में पढ़ी जाने वाली वाणी जपजी के पश्चात सायंकाल में पठनीय परमेश्वर की प्रार्थना का उपदेश करने के लिये अपने से पूर्ववर्ती गुरुओं के तथा कुछ अपने शब्दों को एकत्रित किया है। इस वाणी का नाम रहिरास है। रहिरास शब्द फारसी का होने के कारण मर्यादा तथा प्रार्थना का वाचक है। यथा—

"हरि कीरति हमरी रहरासि" "तिसु आगै रहरासि हमारी, साचा अपर अपारो"

श्री गुरुग्रन्थ में सोदर के शीर्षक से इस वाणी का उल्लेख है। पहले श्रद्धालु लोग इस वाणी का सोदर के नाम से व्यवहार करते थे। भाई गुरुदास जी ने अपनी वाणी में सोदर शब्द का ही प्रयोग किया है। यथा— **"संझे सोदर गावणा"**

कुछ लोग इसका नाम सोदर रहिरास भी कहते हैं। इस वाणी में श्री गुरु अर्जुनदेव जी ने सर्व प्रथम आदरणीय श्री गुरु नानकदेव जी महाराज के शब्दों को स्थान दिया है। सोदर शब्द का पाठ,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जपजी, रहिरास, और आसा राग में आता है। इन तीनों ही शब्दों के पाठ में कुछ अन्तर है। ध्यान पूर्वक पाठ करने से परस्पर विभिन्नता सरलता से ज्ञात हो जाती है। जपजी में सोदर शब्द की व्याख्या प्रकरण के अनुसार की गई है, परन्तु यहां पर इतिहास के आधार पर व्याख्या करते हैं।

श्री गुरु नानकदेव जी महाराज वेईं नदी में डुबकी लगा कर सगुण ब्रह्म के दर्शन के लिये जब ब्रह्मलोक में गए थे, तब वहां जाकर ईश्वर की दिव्यविभूतियों का इस शब्द के द्वारा वर्णन किया। विभूतियों के रहने का स्थान दर और घर ही होता है। इसलिए,

"सोदरु तेरा केहा सो घरु केहा"

इत्यादि पाठ से दर और-घर का ही निरूपण किया है। सो शब्द परोक्ष वस्तु को कहता है। सगुण ब्रह्म के दर और घर को श्री गुरु नानकदेव जी अपनी आँखों से देख रहे थे, तब श्री गुरु जी को 'ये दर केहा ये घर केहा ऐसा कहना चाहिये था? "सो दरु केहा सो घरु केहा" कैसे कहा? तब यह शब्द के स्थान पर सो शब्द लिखने में गुरु जी का क्या भाव है? इस प्रश्न का उत्तर सत्पुरुष इस प्रकार कहते हैं। जो और सो शब्द का कोई नियत अर्थ नहीं है।

जैसे पुस्तक का नियत अर्थ ग्रन्थ है, वैसे सो शब्द का नियत अर्थ वही है जिसे वक्ता कहना चाहता है, यहां पर गुरु नानकदेव जी वक्ता हैं वह सम्मुख स्थित दर और घर को कहना चाहते हैं। इसलिये सो शब्द यहां पर यह के अर्थ में प्रयुक्त है।

'सो दरु तेरा केहा सो घरु केहा' इस शब्द में गुरु जी ने परमेश्वर से प्रश्न नहीं किये किन्तु स्वयं ही दर और घर में स्थित होकर परमेश्वर की विभूति को प्रकाशित करने के लिये 'दर कैसा है और घर कैसा है' यह कहा है। 'जितु बहि सरब समाले' इस पाठ का सम्बन्ध इस प्रकार जोड़ना 'सो दर केहा जितु बहि सरब समाले सो घर केहा' इत्यादि।

हे परमेश्वर! तेरा=आपका, सो=यह वैकुण्ठ का दर कैसा है? पुनः सो घर =यह वैकुण्ठ रूप घर कैसा है, जिस दर और घर में आप सगुण स्वरूप से बैठ कर सर्व प्रपञ्च की उत्पत्ति, स्थिति, विनाश को, समाले =देखते हैं।

वाजे तेरे नाद अनेक असंखा केते तेरे वावणहारे।

हे परमेश्वर! तेरे =आपके इस द्वार में तुरी, शंख, भेरी, नरसिंहे आदि अनेक बाजे हैं। जिनके असंख, नाद =ध्वनि रूप शब्द हैं। केते =अनेक ही आपके प्रेमी उन बाजों को, वावणहारे = बजाने वाले हैं, यह आपके दर का ऐश्वर्य है।

यद्यपि मूल में 'राजा धर्म दुआरे, एवम्, सिध समाधि अंदरि' ये सभी अपने अपने स्थानों में बैठ कर गायन करते हैं। ऐसा कहने से वैकुण्ठ घर का ऐश्वर्य सिद्ध नहीं होगा तथापि, अपने स्थान में बैठ कर ये सभी वैकुण्ठवासी का ही गायन करते हैं। इसलिये वह सारा ऐश्वर्य वैकुण्ठ का ही है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

केते तेरे राग परीसिउ कहीअहि केते तेरे गावणहारे ।

भगवन् ! तुम्हारे घर में अनेक भैरवादि षड्राग, परीसिउ =रागनियों के सहित, कही अहि =कहे जाते हैं । पुनः अनेक ही तुम्हारे घर में नारदादि ऋषि, स्वर ताल मूर्च्छना आदि से वीणा के द्वारा गायन करने वाले हैं ।

गावनि तुधनो पवणु पाणी बैसंतरु ।

भगवन् ! आपके यश को पवन पानी अग्नि के अभिमानी देवता भी गायन करते हैं । यहां पर पवन पानी शब्द से उनके अभिमानी देवता का ग्रहण है । जैसे मनुष्यादि शरीरों में जीव है, वैसे पवनादि तत्त्वों में भी जीव है । वही जीव ईश्वर का गायन करता है । पुराणों में पृथिवी को गो रूप से ब्रह्मलोकादि में अपने उद्धार के लिये विष्णु से पुकार करने का जो उल्लेख है, वह भी पृथिवी अभिमानी देवता में ही बन सकता है । यदि सम्पूर्ण पृथिवी ही गोरूप से ब्रह्म लोक जाये तब सब ही लोक नष्ट हो जायेंगे । इसलिये तत्त्वों का अभिमानी देवता मानना आवश्यक है वराह अवतार ने हिरण्याक्ष से पृथिवी के अभिमानी देवता को ही छुड़ाया था । ऐसे चन्द्र, सूर्य, अग्नि आदि के अभिमानी देवता ही रावण के बन्दी थे । यदि साक्षात् सूर्य चन्द्रादि को रावण का बन्दी माना जाए तब ज्योतिष के अनुसार अधिक विस्तार वाले चन्द्र सूर्यादि का लङ्का में बैठना ही असम्भव प्रतीत होता है ।

यद्यपि पूर्वोक्त रीति से हिरण्याक्ष और रावणादि का सूर्यादि देवता को बन्दी बनाना स्वीकार करने पर मृतक शरीर के समान पृथिवी, सूर्य चन्द्रादि निर्जीव होने के कारण उन्हें नीचे गिर जाना चाहिये था, तथापि जैसे भगवान् विष्णु अवतार धारण करके भी अपने स्थान में रहते हैं, वैसे ही सूर्य चन्द्रादि देवता रावण के बन्दी होने पर भी अपने २ स्थान में रह सकते हैं । मृतक होजाने से गिर जाने का कोई भय नहीं ।

"गावै राजा धरमु दुआरे" शुभाशुभ कर्मों के फल स्वर्ग नरकादि को देने वाले धर्मराज भी, दुआरे =अपने भवन में बैठ कर, गावै =आपके यश का गायन करता है ।

"गावनि तुधनो चितु गुपतु लिखि जाणनि लिखि लिखि धरमु बीचारे"

यम के दूत चित्रगुप्त भी अपने स्वामी धर्मराज के समान तुम्हारे यश का गायन करते हैं । यौगिक बल से प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों को चित्रगुप्त अच्छी प्रकार लिखना जानते हैं । लिखि-लिखि =बारम्बार लिख कर, धरमु बीचारे =धर्मराज के सम्मुख शुभाशुभ कर्मों का विचार करते हैं ।

गावनि तुधनो ईसरु ब्रह्मा देवी सोहनि तेरे सदा सवारे ।

तुधनो =आपको, ईसरु =महान् ऐश्वर्य वाले महादेव, ब्रह्मा =प्रजापति देवी =पार्वती और सावित्री

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सवारे=अपने अपने परिवार के सहित सर्वदा ही सभी देवताओं में प्रधान बनाये हुए सोहनि= शोभा को प्राप्त होकर गायन कर रहे हैं।

गावनि तुधनो इंद्र इंद्रासणि बैठे देवतिआ दरिनाले ॥

स्वर्गके सिंहासन पर बैठ कर देवराज इन्द्र तथा स्वर्गवासी सभी देवता सत्कारपूर्वक आपका गायन करते हैं।

"गावनि तुधनो सिध समाधी अंदरि गावनि तुधनो साध बीचारे ॥ सिध= कपिलादि सिद्ध, समाधी अंदरि=चित्तवृत्ति के निरोधरूप समाधि के भीतर, गावनि तुधनो= आपको गायन करते हैं। पुनः, साध बीचारे=साधनसम्पन्न विचारवान् जिज्ञासु आपका गायन करते हैं।

गावनि तुधनो जती सती संतोखी गावनि तुधनो वीर करारे ॥ जती=परम त्यागी तत्त्वज्ञानी, सती=सत्य की प्राप्ति वाले, संतोखी=विषयों की तृष्णा से रहित होकर यथालाभ में सन्तुष्ट रहने वाले आपको गायन करते हैं। अथवा समाधि में बैठ कर गोरक्षादि सिद्ध अन्य मतों वाले सभी वेषधारी साधु, लक्ष्मण, हनुमान भीष्मादि षड् यति सत्यवादी हरिश्चन्द्रादि सत्त्व गुण वाले सन्तोषी श्रेष्ठ पुरुष महात्मा पूर्वोक्त सभी मृदुल स्वभाव वाले आपका गायन करते हैं। भैरव वीरभद्रादि क्रूर स्वभाव वाले वीर भी आपका गायन करते हैं।

गावनि तुधनो पंडित पड़नि रखीसुर जुगुजुगु वेदानाले ॥

सारासार विवेचिनी बुद्धि वाले पण्डित जन पढ़ते पढ़ाते हुए भी तेरे यश का गायन करते हैं। चारों वेदों के साथ सभी युगों में पण्डित लोग और वेद मन्त्रों के द्रष्टा प्रधान प्रधान ऋषि भी आपके यश का गायन करते हैं।

गावनि तुधनो मोहणीआ मनु महनि सुरगु मछु पइआले ॥ सुरगु=स्वर्ग मछु=मर्त्य लोक और, पइआले=पाताल लोक में रहने वालों के मन को मोहित करनेवाली अप्सराएं देवताओं की प्रेरणा से तपस्वियों के तप को खण्डित करने से उत्पन्न हुए पाप को दूर करने के लिये आपके यश को गायन करती हैं।

गावनि तुधनो रतन उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले ॥

समुद्र मन्थन से निकाले हुए चौदह रत्न मुख्य तीर्थों के सहित आपका यश गायन करते हैं। अठसठ शब्द संख्या एवम् मुख्य तीर्थों का बोधक है। रत्न पद चतुर्दश रत्न तथा अपनी अपनी जाति में मुख्य वस्तु का वाचक है। यथा नररत्न, देशरत्न।

गावनि तुधनो जोध महाबल सूरा गावनि तुधनो खाणीचारे ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जोध=युद्ध करने वाला योद्धा, **महाबल**=महारथी, **सूरा**=अतिरथी शूरवीर अर्जुन, भीम, परशुरामादि आपके यश का गायन करते हैं। शस्त्र अस्त्र में निपुण दस हजार से युद्ध करने वाले को महारथी, अगणित सेना से लड़ने वाले को अतिरथी तथा अपने सदृश एक शूरवीर से लड़ने वाले को रथी कहते हैं, एवम् अपने से दुर्बल के साथ युद्ध करने वाले को अर्ध रथी कहते हैं।

गावनि तुधनो खाणीचारे=अण्डजादि चारों खाणी के जीव, पक्षी, लता, वृक्षादि भी आपका गायन करते हैं। यद्यपि परमेश्वर के यश का मुख से गायन हो सकता है, परन्तु चार खानियों में से केवल मनुष्य ही गायन कर सकता है। पक्षी सर्पादि एवम् लता वृक्षादि तथा यूका लिक्षादि से ईश्वर का गुण गायन असम्भव है तब 'गावनि खाणि चारे' यह गुरुदेव जी ने कैसे कहा, ऐसी शङ्का हो सकती है। तथापि यहाँ पर गायन मुख से ईश्वर के गुण कर्मादि का कथन मात्र ही नहीं किन्तु ईश्वर के भय को चित्त में रख कर उसकी आज्ञा में यथोचित चलना रूप भी है। आज्ञा के भीतर चलना तभी हो सकता है, जब आज्ञा का ज्ञान हो. ज्ञान के बिना आज्ञा का पालन सम्भव नहीं। अण्डज जरायुजादि के सभी जीवों में ज्ञान की प्रतीति होती है। केवल लता वृक्षादि में स्थूल दृष्टि से ज्ञान की प्रतीति नहीं होती। यदि सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया जाए तब लता वृक्ष आदि में भी ज्ञान की प्रतीति होती है। छोटे वृक्षों का बड़े वृक्षों से एक तरफ होकर ऊपर की ओर बढ़ना लता का अपने आश्रय की ओर गमन करना एवं जिस वस्तु का जो स्वभाव परमेश्वर ने बना दिया है उसके विपरीत न होना इत्यादि बातें किसी के भय के बिना नहीं हो सकतीं, और भय ज्ञान के बिना नहीं होता। उक्त रीति से लता वृक्षादि में भी ज्ञान की अनुभूति सिद्ध होती है। इसलिये ईश्वर की आज्ञा के भीतर रहना एवम् चलनारूप गायन लता वृक्षादि में भी सम्भव है। वास्तव में शब्द मात्र ओम् का स्वरूप है। कोई भी वस्तु ओम् रूप शब्द से भिन्न नहीं। ओम् शब्द ब्रह्म का मुख्य जाप है। इसलिये ओम् का विस्ताररूप पक्षी आदि के शब्दों से भी परमात्मा का जाप हो रहा है। इसी भाव से गुरु जी ने कहा है।

"जो बोलत है म्रिग मीन पंखेरु सो बिन हरि जापत है नहीं होर। गु० ग्र० पृ० १२६५

परमार्थ दृष्टि से नाम और नामीरूप जितनी रचना है, वे सब मृत्तिका से घटादि एवम् जल से फेन तरङ्गादि के समान अपने ब्रह्म रूप उपादान से उत्पन्न होने के कारण सर्वदा कारण की ओर सम्मुख है। इसलिये सर्व का गायन करना निर्विवाद है। यहां पर इतनी विशेषता है, घर में दबी हुई निधि को न जान कर केवल ऊपर घूमने वाले को जैसे आनन्द नहीं होता, किसी आप्त पुरुष के बताने पर निधि को निकाल कर व्यवहार को सिद्ध करने से आनन्द प्राप्त होता है। वैसे ही ईश्वर के गुण प्रभाव को जान कर मुक्ति के लिये भक्ति पूर्वक यश कीर्तन आदि गायन करने वाले पुरुष को आनन्द प्राप्त होता है, अज्ञानी पुरुषों को वास्तविक आनन्द प्राप्त नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इसी भाव से सामान्यतया नाम जपने वालों में से ज्ञान पूर्वक जपने वाले पुरुषों को विशेष फल की प्राप्ति कही है। पूर्वोक्त रीति से चारों खानी के जीव, हे परमेश्वर! आपके यश का गायन करते हैं। देवताओं के शरीर चार खानियों में नहीं उनकी पञ्चमी खानी दिव्योपपादक है। भूत, प्रेत, यज्ञ, गन्धर्व, गुह्य, सिद्ध, पिशाच, किन्नर ये सभी इसी खानी के हैं। इनके शरीरों में प्रकाश की अधिकता रहती है। अधिक प्रकाश वाली स्वच्छ वास्तु की काञ्च की तरह छाया नहीं होती। देवता सत्त्वगुण के प्रभाव से प्रकाशमय हैं। भूत प्रेतों के शरीर तेज तत्त्व की अधिकता से प्रकाशयुक्त हैं। वे सभी चार खानी के जीवों के समान ईश्वर का गायन करते हैं।

गावनि तुधनो खंड मंडल ब्रहमंडा करि करि रखे तेरे धारे ॥

हे भगवन्! **खंड** =द्वीपों के टुकड़े नवखंड और, **मण्डल** =उन खण्डों के आधारभूत सप्त द्वीप, **ब्रहमंडा** =चौदह लोकों के आधार ब्रह्माण्ड भी आपका गायन करते हैं।

करि करि रखें =कल्प कल्प में आप ने बना कर जहां जहां उचित प्रतीत होते हैं, वहां- **धारे** =अपनी दिव्य शक्ति से धारण किये हैं। किसी अन्य वस्तु के ऊपर स्थापित नहीं किये। जैसे लोगों में प्रसिद्ध है कि पृथिवी बैल पर स्थित है और बैल कच्छप पर एवं कच्छप जल पर स्थित है। जल किसके आश्रित है ऐसा पूछने पर निरुत्तर होना पड़ता है। इसलिये परमेश्वर की शक्ति के बिना अन्य कोई आधार निश्चित न होने से पूर्व धारणा भ्रान्ति मूलक है। जैसे पुरुष के द्वारा छोड़ा हुआ गुब्बारा आकाश में घूमता रहता है वैसे ही ईश्वर की प्रेरणा शक्ति से सूर्य चन्द्रादि बिना आधार के आकाश में भ्रमण करते हैं इसी से पृथिवी ईश्वर की शक्ति के आश्रित स्थित है। इसलिये ईश्वर ही सर्व कल्पों में रचना करके अपनी शक्ति से इन्हें धारण करता है। धारण करके वेद मर्यादा के अनुसार इनकी पालना करता है।

कल्प ब्रह्मा के एक दिन का नाम है, सत्ययुग, त्रेता, द्वापर आदि चारों युगों की हजार चौकड़ी व्यतीत होने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है। इतनी ही बड़ी ब्रह्मा की रात्रि है। दिन में सृष्टि उत्पन्न होती है और रात्रि में लीन हो जाती है।

सेई तुधनो गावनि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले ॥

जो भक्तजन मुक्ति का मार्ग दिखाने के लिये आपको अच्छे लगते हैं, **सेई**=वही भक्तजन **तुधनो**=आपको, **गावनि**=गायन करते हैं। तेरे को प्रिय प्रतीत होने से तुम्हारे प्रेम में, **रते**=रंगे हुए अर्थात् तुम्हें अपना स्वरूप मानते हुए भक्तजन, **रसाले**=आनन्द का घर हो रहे हैं। उन्हें कभी लेश मात्र भी दुःख प्रतीत नहीं होता। इसलिये आपकी कृपादृष्टि से ही भक्तों का स्तवन कीर्तनादि सम्भव है। ईश्वर में बुद्धि लगाने के लिये बहुतसी दिव्य विभूतियों को ईश्वर का गायक बता कर अब सर्व के चिन्तन की समाप्ति करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"होरि केते तुधनो गावनि से मै चिति न आवनि नानकु किआ बीचारे ॥

होरि केते=जो नाम पीछे लेकर बताये हैं, भगवन् ! वे ही केवल आपकी विभूति का वर्णन नहीं करते, किन्तु और भी जिन्हों के मैंने नाम नहीं लिये ऐसे अनेक आपका गायन करते हैं। आपकी विभूतियां अनन्त होने से वे सभी मेरे चिन्तन में नहीं आ सकतीं। इसलिये उनके चिन्तन में अधिक लाभ न देख कर, 'नानकु किआ बीचारे=श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं हम उन विभूतियों का अधिक विचार नहीं करते। इसलिये गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है।

"नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परं तप"

विभूतियों के अन्त पाने का कोई प्रयोजन भी नहीं क्योंकि परमेश्वर सम्पूर्ण जगत् को माया के एक अंश से धारण करके स्थित है। निर्गुण और सगुण दोनों ही आपके रूप हैं इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं। इसी बात को आगे गुरु जी निरूपण करते हैं।

सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई ॥

सोई=आपका अनन्त विभूति वाला जो सगुण रूप है, सोई=वही आपका सर्व विभूतिविहीन निर्गुण रूप है। तथा जो आपका, सदा=सर्वदा, सचु=नाश न होनेवाला निर्गुण रूप है। वही साहिबु=माया के सम्बन्ध से अनन्त विभूति वाला सगुण रूप है। इसलिये आपके सगुण निर्गुण रूप में किञ्चिन्मात्र भी भेद नहीं। भाव यह है कि सगुण स्वरूप में जो परमात्म भाग है वही शुद्ध सच्चिदानन्द रूप है जो निर्गुण अवस्था में था। केवल गुण भाग ही अधिक है। इसलिये वस्त्र धारण करने से जैसे पुरुष अन्य नहीं हो जाता, वैसे निर्गुण परमात्मा भी गुणों के सम्बन्ध से और नहीं हो जाता किन्तु पूर्ववत् ही अवस्थित रहता है। इसी भाव से श्री गुरु अर्जुनदेव जी सुखमनी साहब में लिखते हैं।

निरगुनु आपि सरगुन भी ओही ॥ कलाधारि जिनि सगली मोही ॥ सुखमनी।

निर्गुण वस्तु के साथ मिला हुआ गुण भाग अविनाशी नहीं किन्तु मिथ्या है। परमात्म भाग अविनाशी है। इस बात को आगे कहते हैं। साचा साची नाई =भगवन्! गुणों का आश्रय जो आपका शुद्ध भाग है, वह, साचा=सर्वदा अविनाशी है, और त्रिगुणात्मक मायाभाग, साची नाई= सत्य के तुल्य है। वास्तव में मिथ्या होने से सत्य नहीं, किन्तु अपने सम्पूर्ण महदादि कार्यों के सहित मिथ्या है, यही बात आगे गुरु जी स्पष्ट करते हैं।

है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई ॥

गुणों का आश्रय परमात्मा, है =वर्तमान काल में है तथा, भी =पूर्वकाल में था और, होसी= भविष्य में भी रहेगा। जाई न =किसी भी समय नाश को प्राप्त नहीं होता और त्रिगुणात्मक माया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का कोई कारण न देखने से और न श्रवण करने से तथा 'अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णाम्' इस श्रुति में माया को नित्य कहने से तथा सांख्य शास्त्र में अनादि मानने से माया उत्पन्न नहीं होती तो भी **जासी**=परमात्मा के ज्ञान से नाश को प्राप्त होती है, और भविष्य में भी नाश को प्राप्त होगी। **जिनि**=जिस मायाने ब्रह्माण्डमें महतत्त्व से लेकर चारखानी चतुर्दशभुवनों पर्यन्त सम्पूर्ण, **रचना**=उत्पत्ति अपने सम्बन्ध द्वारा परमेश्वर से, **रचाई**=कराई है। आपने जिस माया के सम्बन्ध से सम्पूर्ण रचना रची है; वह माया उत्पन्न नहीं हुई इसलिये उसे अनादि कहते हैं। इस बात को आगे गुरु जी स्पष्ट करते हैं।

रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई ॥

रंगी रंगी शब्द नाना का वाचक है। भाति शब्द प्रकार का वाचक है। जिनसी पद भूत भौतिक का वाचक है। जिनि शब्द निषेध का वाचक है। भगवन् ! आपने नाना प्रकार की भूत भौतिक रचना जिस माया के सम्बन्ध से की है, वह माया आपने उत्पन्न नहीं की, इसलिये अनादि है। ऐसा कहने से यह सिद्ध हुआ आपकी उत्पत्ति नहीं, इसलिये आप अनन्त अनादि हैं।

माया की उत्पत्ति नहीं परन्तु बोध होने से नष्ट होती है। इसीलिये वह सान्त अनादि है। महदादि कार्यों के उत्पत्ति विनाश दोनों होते हैं, इसलिये वे सादि सान्त हैं। उक्त रीति से अनादि सान्त माया तथा सादि सान्त महदादि कार्यों से अनादि अनन्त परमात्मा का महत्त्व बोधन करके आगे सर्व दृश्य कार्यों का दृष्टापन द्वितीय महत्त्व को गुरुदेव कहते हैं।

करि करि देखै कीता आपणा जिउ तिसदी वडिआई ॥

आप सगुण स्वरूप हुए, **करि करि**=लीला के लिये बारम्बार संसार को बना कर, **कीता आपणा**=स्वरचित संसार को, **देखै**=देखते हो, **जिउ**=जिस प्रकार के प्रकाशन से, **तिस दी**=आपकी, दृश्य से विलक्षण द्रष्टा रूप से महिमा सिद्धहोती है।

भाव यह है कि आप सम्पूर्ण कार्यों को माया शक्ति के सम्बन्ध से पुनः पुनः बना कर अपनी सत्ता से उन्हें सत्य करके उन दृश्य कार्यों को अपने स्वरूप चैतन्य से प्रकाशित करते हो। इस प्रकाशन से प्रकाश्य पदार्थों से विलक्षण द्रष्टा का महत्त्व सिद्ध होता हैं। जिस महत्त्व को देखकर जिज्ञासु जन दृश्यवर्ग से चित्तवृत्ति हटा कर आपकी ओर आकृष्ट होते हैं। जिस क्रम से जितनी रचना करनी आवश्यक है, उसके निर्माण में आप स्वतन्त्र हैं। किसी जीव का आपके ऊपर विधि निषेध का अंकुश नहीं। इस स्वतन्त्रता रूप महत्त्व को गुरु जी आगे कहते हैं।

जो तिसु भावै सोई करसी फिरि हुकमु न करणा जाई ॥

जो=मायिक कार्यों की जैसी रचना, **तिसु भावै**=आपके माया वृत्ति रूप ज्ञान में सम्यक्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रतीत होती है। सोई करसी =आकाशादि क्रम से पांच तत्त्वों की उत्पत्ति आपने की है। ऐसी रचना करने में किसी अल्पज्ञ जीव का आपके ऊपर, हुकमु न करणा जाई =शासन करना नहीं बन सकता, अर्थात् ईश्वर को पांच के स्थान पर छः तत्त्व करने चाहिये थे। अथवा आकाशादि क्रम क्रम के स्थान पर पृथिवी जल तेज इत्यादि विपरीत क्रम करना आवश्यक था। इस प्रकार की आज्ञा ईश्वर के ऊपर किसी जीव की नहीं चल सकती, क्योंकि ईश्वर स्वतन्त्र एवं सर्व शक्तिमान् है। ईश्वर की स्वाधीनता को गुरु जी ने अनेक शब्दों में प्रतिपादन किया है।

पंच ततु करि तुधु स्रिसटि सभ साजी कोई छेवा करिओ जे किछु कीता होवै ॥
गु० ग्र० पृ० ७३६

तथा--"बीओ पूछि न मसलति धरै। जो किछु करै सो आपेहि करै ॥"

इसलिये सर्वशक्तिमान् ईश्वर ने संसार को जिस प्रकार बनाया वह सर्वथा उचित है। भाव यह है कि निर्गुणावस्था में परमात्मा केवल ज्ञानरूप है, ज्ञान गुण वाला नहीं। सगुण अवस्था में ज्ञानरूप तथा ज्ञानवान है। ज्ञानरूप तो अपने स्वरूपभूत चैतन्य अंश से है, और ज्ञानवाला माया की वृत्ति रूप से है। माया की वृत्तिरूप ज्ञान से ईश्वर सर्व वस्तुओं के कारण का चिन्तन करके सर्व को उत्पन्न करता है, इसलिये सर्वज्ञ है। परमेश्वर का स्वरूपज्ञान किसी का शत्रु मित्र नहीं, और न ही किसी को सुख दुःख देवे वाला है, परन्तु सज्जनों के साथ उनकी मित्रता तथा दुर्जनों के साथ शत्रुता एवं भक्तों की रक्षा तथा दुष्टों का विनाश ईश्वर के ज्ञान में प्रसिद्ध है।

यथा--परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

तथा--हरनाखसु दुसटु हरि मारिआ प्रहलादु तराइआ ॥

इत्यादि वचन शत्रु मित्र भाव की पुष्टि करते हैं। शत्रु मित्रादि विकारों को ईश्वर के स्वरूपभूत ज्ञान में मानने पर वह विकारी हो जायगा। विकारी होने पर—

सुखु दुखु रहित सदा निरलेपी जाको कहत गुसाई ॥ गु० ग्र० पृ० ६३२।

तथा--निरविकार निरजुर निंद्रा विनु निरबिख नरक निवारी ॥

इत्यादि वचनों से प्रतिपादित निर्विकारता रूप प्रशंसा व्यर्थ हो जायेगी, इसलिये शत्रु मित्रादि भाव वाला मायावृत्ति रूप ज्ञान ईश्वर में मानना आवश्यक है। एवं परमेश्वर का मायावृत्तिरूप ज्ञान माया के समान अनादि है। एवं मायिक सभी पदार्थ अनादि हैं। स्वरूप तथा प्रवाह रूप से अनादिता दो प्रकार की है। चैतन्य, माया, माया के साथ चेतन का सम्बन्ध जीव, ईश्वर, जीव ईश्वर का परस्पर भेद ये छः पदार्थ स्वरूप से अनादि हैं और शेष सभी मायिक पदार्थ प्रवाह रूप से अनादि हैं। ऐसा कोई समय नहीं जब संसार किसी पदार्थ का प्रवाह छिन्न भिन्न हुआ हो। इसी भाव से मीमांसक संसार को अनादि मानता है। प्रवाह अनादि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में भी इतनी विशेषता है। कोई अल्पकाल स्थायी पदार्थों का प्रवाह होता है, जैसे दीपशिखा और नदी का जल, और कोई दीर्घकाल स्थायी पदार्थों का प्रवाह होता है, जैसे वेद और पांच महाभूत नैयायिक आकाशादि को तथा मीमांसक वेद को स्वरूप से अनादि मानते हैं। इन दोनों प्रकार के अनादि पदार्थों की रचना आपके मायावृत्तिरूप ज्ञान में जैसी अच्छी प्रतीत होती है वही सम्यक् है। रचना के विषय में आपको कोई आदेश नहीं दे सकता कि आप इस प्रकार अमुक शैली से भूत, भौतिक न्यूनाधिक सृष्टि की रचना करें। श्री गुरुदेव जी ईश्वर की विभूति का वर्णन करके शब्द की समाप्ति करते हैं।

सो पातिसाहु साहापति साहिबु नानक रहणु रजाई ॥

अर्थ इस प्रकार है, जिसकी दिव्य विभूतियों का पूर्व वर्णन किया है, सो=वह आप, साहापति=पृथिवी लोक के स्वामी से लेकर ब्रह्मलोक के स्वामी हिरण्यगर्भ पर्यन्त सर्व स्वामियों के, पति=स्वामी हैं, पुनः पातिसाहु=वैकुण्ठ के सिंहासन के भी आप स्वामी हैं। इसलिये आप, साहिबु=सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं, अर्थात् राजाधिराज जगत् सम्राट् परम ऐश्वर्यवान् हैं। श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि जिस कारण से सूर्य चन्द्रादि आपके भय से, रहणु रजाई=आज्ञा में रहते हैं, इसलिये आप सर्व के प्रेरक और सर्व के शासक हैं।

❀ प्रेमप्रबोधिनी व्याख्यायां प्रथमं मन्त्रं समाप्तम् ❀

—o—

एक समय श्री गुरु नानकदेव जी से पिता ने पूछा कि आप जिसकी उपासना करते हैं वह ईश्वर कितना बड़ा है ? तब गुरु जी ईश्वर के सम्मुख प्रार्थना करते हुए पिता जी को उत्तर देते हैं।

आसा महला ॥१॥

सुणि वडा आखै सभु कोइ ॥ केवडु वडा डीठा होइ ॥
कीमति पाइ न कहिआ जाइ ॥ कहणै वाले तेरे रहे समाइ ॥१॥
वडे मेरे साहिबा गहिर गंभीरा गुणी गहीरा ।
कोइ न जाणै तेरा कीता केवडु चीरा ॥१॥ रहाउ ॥
सभि सुरती मिलि सुरति कमाई ॥ सभ कीमति मिलि कीमति पाई ॥
गिआनी धिआनी गुर गुरहाई ॥ कहणु न जाई तेरी तिलु वडिआई ॥२॥
सभि सत सभि तप सभि चंगिआईआ ॥ सिधा पुरखा कीआ वडिआईआ ॥
तुधु विणु सिधी किनै न पाईआ ॥ करमि मिलै नाही ठाकि रहाईआ ॥३॥
आखण वाला किआ वेचारा ॥ सिफती भरे तेरे भंडारा ॥
जिसु तू देहि तिसै किआचारा ॥ नानक सचु सवारणहारा ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्दार्थ— सुणि वडा आखै सभु कोइ ॥ केवडु वडा डीठा होइ ॥

सुणि=अनेक शास्त्रों से श्रवण करके, सभु कोइ= सभी लोग ईश्वर को, वडा आखै= बड़ा कहते हैं, परन्तु वह केवड वडा =कितना बड़ा महान् है, इस बात को तभी कोई कह सकता है, जब किसी ने अपनी आँखों से, डीठा होइ=देखा हो कि ईश्वर कितना बड़ा है।

कीमति पाए न कहिआ जाइ। कहणै वाले तेरे रहे समाइ॥

हे भगवन्! आपका, न कीमति पाए=न तो मूल्य पाया जाता है, और न ही अकथनीय होने के कारण वाणी के द्वारा, कहिआ जाइ=आपका अन्त कहा जा सकता है। अथवा जिन ज्ञानी पुरुषों ने आपकी, कीमति पाए=मर्यादा अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप को जाना है उन सत्पुरुषों के आप अनुभवगम्य हैं। आपके महत्त्व को केवल वाणी के द्वारा निश्चित रूप से कहा नहीं जाता। जो सत्पुरुष महात्मा, कहणै वाले =कहनेवाले हैं, तेरे रहे समाइ =वे तेरे में अभेद हो रहे हैं।

वडे मेरे साहिबा गहिर गम्भीरा गुणी गहीरा॥

वडे मेरे साहिबा =हे मेरे महाप्रभो! गहिर गम्भीरा =अगाध तथा निश्चल! एवम्, गुणी गहीरा =गुणों के समुद्र।

कोइ न जाणै तेरा कीता केवडु चीरा ॥ कोइ न जाणै =इस गुप्त रहस्य को कोई नहीं जानता, तेरा केता केवडु =जो आपका कितना बड़ा, चीरा =दफ्तर (कार्यालय है। रहाउ = रहाउ शब्द का अर्थ विश्राम (टेक है।

सभि सुरती मिलि सुरति कमाई। सभ की मति मिलि कीमति पाई॥

सभि सुरती =वेदों की सभी श्रुतियों ने एवम वेद पाठी पण्डितों ने, मिलि =मिल करके, सुरती =चित्तवृत्ति को, कमाई =लगाया है, तथा, सभ की मति =विचारवान सभी जौहरियों ने, मिलि =मिल करके, कीमति पाई =आपका मूल्य लगाया, परन्तु उन्होंने भी अन्त नहीं प्राप्त किया।

गिआनी धिआनी गुर गुरहाई। कहणु न जाई तेरी तिलु वडिआई॥

गिआनी =शास्त्रवेत्ता और, धिआनी =ध्यान करने वाले योगी तथा, गुर गुरहाई= गुरुओं के भी गुरु, अर्थात् महान् से महान् लोगों से, तेरी तिलु वडिआई =आपकी तिलमात्र भी बड़ाई (गुण गरिमा, कहणु न जाई =कही नहीं जाती।

सभि सत सभि तप सभि चंगिआईआ। सिधा पुरखा किआ वडिआईआ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सभि सत=सत्यवादियों के सभी प्रकार के श्रेष्ठ गुण तथा, सभि तप=कायिक, वाचिक, मानसिक सभी प्रकार के तप और, सभि चंगिआईआ=सभी प्रकार की अच्छाइयां, तथा सिधा पुरखा कीआ वडिआईआ=कपिलादि सिद्धपुरुषों की सिद्धिरूप बड़ाइयां।

तुधु विणु सिधी किनै न पाईआ। करमि मिलै नाही ठाकि रहाईआ॥

तुधु विणु=आपकी कृपा के बिना, सिधि किनै न पाईआ=किसी को सिद्धि प्राप्त नहीं होती। करमि मिलै=जिनको आपकी कृपासे अणिमादि सिद्धियां मिलती हैं, उनको किसीकी, नाही ठाकि रहाईआ=रोकी हुई रुकती नहीं है, अथवा करमि मिलै=आपकी कृपा दृष्टि से सभी कुछ मिलता है, कृपा के बिना नाही=नहीं तो सभी कुछ, ठाकि रहाईआ=रुका ही रहता है।

आखण वाला किआ वेचारा। सिफती भरे तेरे भंडारा॥

आखण वाला=आपकी महिमा को कहने वाला, किआ बेचारा=यह अल्पज्ञ जीव वेचारा क्या है, जो आपकी महिमा को अच्छी प्रकार कह सके। क्योंकि, सिफती=आपकी स्तुतियों के, भंडारा=वेद शास्त्र रूप भण्डार, अथवा सत्पुरुषों के हृदय रूप भण्डार, भरे=भरे हुए हैं।

जिसु तू देहि तिसै किआचारा। नानक सचु सवारणहारा॥

जिसु तू देहि=जिसको आप अपनी स्तुति करने की शक्ति प्रदान करते हैं, तिसै=उसके साथ किसी का, किआचारा=क्या बल है, अर्थात् उसके साथ किसी की स्पर्धा नहीं हो सकती। नानक=श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं, सचु=हे सत्य स्वरूप परमात्मन्! आप सभी को, सवारणहारा=बनाने वाले हैं अर्थात् आप जो चाहते हो वही होता है। आपके ऊपर कोई शासन नहीं है।

भावार्थ— श्री गुरु नानकदेव जी से पिता ने एक दिन पूछा कि आप जिसकी प्रति दिन उपासना करते हैं वह ईश्वर कितना बड़ा है? पिता जी की जिज्ञासा को देख कर गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि अनेक शास्त्रों को श्रवण करके सभी लोग ईश्वर को बड़े से बड़ा कहते हैं, परन्तु वह कितना बड़ा है यह तभी निश्चित कह सकते हैं, यदि उसे आंखों से देखा हो कि ईश्वर इतने बड़े आकार वाला है। न तो ईश्वर का मूल्य कहा जा सकता है, और न ही उसका अन्त कहा जा सकता है। जिन ज्ञानी पुरुषों ने ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को जाना है उन्हीं सत्पुरुषों के वह अनुभवगम्य है। केवल वाणी के द्वारा ईश्वर के महत्त्व का प्रतिपादन नहीं हो सकता। जो साधु महात्मा तेरे यश का प्रतिपादन करने वाले हैं वे आप से अभिन्न हो जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे मेरे परमात्मन् ! आप अगाध तथा निश्चल एवं गुणों के समुद्र हैं । इस गुप्त रहस्य को कोई नही जानता जो आपका कितना महान् कार्यालय है । वेदपाठी पण्डितोंने मिलकरके चित्तवृत्ति को लगाया, तथा विचारवान् सभी जौहरियों ने मिलकर आपका मूल्याङ्कन किया, परन्तु अन्त किसी को प्राप्त नहीं हुआ। शास्त्रवेत्ता और योगी तथा महान् से महान् पुरुष भी आपकी तिलमात्र भी बड़ाई को कह नहीं सकते। सत्यवादियों के सभी प्रकार के श्रेष्ठगुण तथा कायिक, वाचिक, मानसिक सभी प्रकार के तप और सभी प्रकार की लौकिक अच्छाइयां तथा सिद्ध पुरुषों की वड़ाइयां आपकी कृपादृष्टि के बिना किसी को प्राप्त नहीं होतीं। जिन श्रद्धालु पुरुषों को आपकी कृपा से सिद्धि प्राप्त होती है उनको किसी के रोकने से वह सिद्धि रुक नहीं सकती अर्थात् आपकी कृपा से प्राणियों को सभी कुछ मिलता है, कृपा के बिना प्राप्त हुआ भी सभी कुछ व्यर्थ हो जाता है। आपकी महिमा कहने वाला यह अल्पज्ञ जीव क्या है, जो आपकी समग्र स्तुति कह सके, क्योंकि आपकी स्तुतियों के वेद शास्त्ररूपी अनेक भण्डार भरे पड़े हैं। जिसे आप अपनी स्तुति करने की बुद्धि प्रदान करते हैं उसके साथ किसी अन्य व्यक्ति का क्या बल चल सकता है । कोई भी बलवान् से बलवान् व्यक्ति उसके साथ स्पर्धा नहीं कर सकता।

श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं कि हे सत्यस्वरूपपरमेश्वर ! आप सभी को उत्पन्न करने वाले हैं, जो आप चाहते हैं वही होता है। आपके ऊपर कोई शासन करने वाला नहीं, आप सर्वथा स्वतन्त्र हैं।

विशेष व्याख्या— पूर्व शब्द में ईश्वर को राजाधिराज कह कर वह सभी को प्रत्यक्ष नहीं होता अब इस बात को कहते हैं। **सुणि वडा आखै सभु कोई ।**

सभु कोइ=सभी सम्प्रदाय वाले अपने २ आचार्यों से ईश्वर के स्वरूप को, **सुणि**=श्रवण, करके, **वडा आखै**=ईश्वर को सब से बड़ा कहते हैं। **केवड वडा डीठा होइ ॥**

केवड वडा=परब्रह्म परमात्मा कितना बड़ा है। यह ज्ञान, **डीठा होइ**=अभिन्न रूप से साक्षात्कार किये बिना ईश्वर के महत्त्व का निश्चय नहीं होता, इसलिये अपरोक्ष के बिना अनुमानादि से निश्चय करनेवाले वादी इतना महान् ईश्वर इतने मूल्य से मिलता है, ऐसे उसकी **'कीमति पाइ'** प्राप्ति के लिये मूल्य नहीं आंक सकते, अर्थात् मूल्य से ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकते। मूल्य से उसकी प्राप्ति का निषेध भी गुरु जी करते हैं। **'कंचनसिउ पाईऐ नही तोल'** स्वरूप की अपरोक्षानुभूति के बिना, **न कहिआ जाइ** अनन्त महत्त्ववाला परमेश्वर इस प्रकार का है ऐसा उन लोगों से कहा भी नहीं जा सकता।

प्रश्न— जो लोग ईश्वर को अपरोक्ष जान कर निरूपण करते हैं उन्हें किस फल की प्राप्ति होती है ? ऐसी शङ्का होने पर गुरु जी उत्तर देते हैं, **कहणै वाले तेरे रहे समाइ ।**

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जो श्रेष्ठ पुरुष अपरोक्ष करके अध्यारोप और अपवाद की रीति से जिज्ञासुओं के प्रति परमेश्वर के महत्त्व को कथन करनेवाले हैं वे समुद्र की गम्भीरता को जानने के लिये गई हुई लवण की डली के समान तेरे स्वरूपमें लीन हो जाते हैं। इस रीति से सम्यक् जान कर कहने वालों को ईश्वर में लीन होना बता कर ईश्वर के महत्त्व को जानना कठिन है। इस बात को पुनः कहते हैं।

वडे मेरे साहिबा गहिर गंभीरा गुणी गहीरा।

गहिर पद गम्भीर का वाचक है। यदि संस्कृत के गहर शब्द को मूल मानें तब गुफा, कुञ्ज, दुःख, वन आदि का वाचक है। गहीरा पद गम्भीर से बना है। **वड़े मेरे साहिबा**=सर्व की अपेक्षासे महान् मेरे स्वामिन्! **गहिर**=सर्व के निवास के लिये गुफारूप परमेश्वर! वा सर्व के अमरण करने के लिये कुञ्जरूप परमेश्वर! **गंभीरा**=देश काल से अगाध परमेश्वर! वा इन्द्रादि सर्व से गम्भीर हिरण्यगर्भ उसको भी शक्ति देने वाले अति गम्भीर ईश्वर! **गुणी**=सत्य संकल्पादि गुणों वाले, **गहीरा**=भक्तों के दुःखरूप घाम को हरने वाले महावनरूप ईश्वर! आपके महत्त्व का क्या कहना है। **कोइ न जाणै तेरा केता के वडु चीरा।**

कोइ न जाणै=कोई भी वादी नहीं जानसकता जो तेरा, **के वडु चीरा**=तेरा मायारूप सूत्र से बनाया हुआ सूक्ष्म स्थूलरूप जो वस्त्र है वह कितने महत्त्व वाला है। यदि उसके महत्त्व को जान लेते तब सृष्टिरचना और उसके परिमाण में एवम् उपादान में कोई विवाद न करता। परन्तु शास्त्रों में अनेक वाद दिखाई देते हैं। कोई माया से तथा कोई परमाणुओं से सृष्टि की उत्पत्ति मानता है। कोई ईश्वर को निमित्त कारण, कोई उपादान कारण, कोई अभिन्न निमित्तोपादानकारण कहता है। और क्या कहें ज्योतिषी लोग पृथिवी को चल और अचल एवम् गोल और चपटी होने में विवाद करते हैं। इसलिये आपके महत्त्व को जानना तो अति दूर की बात है। पूर्वोक्त बात को आगे विस्तार से कहते हैं। **सभि सुरती मिलि सुरती कमाई।**

सभि सुरती=सम्पूर्ण नैयायिक वैशेषिकों ने, **मिलि**=मिल कर द्रव्यादि पदार्थों का संशोधन करके, **सुरति कमाई**=तीक्ष्ण बुद्धि उत्पन्न की। जिस बुद्धि के द्वारा आपका यथार्थ महत्त्व प्रतीत हो सके। **सभ कीमति मिलि कीमति पाई।**

सभ=सर्व मीमांसकों ने अमुक यज्ञ रूप, **कीमति**=मूल्य से पुत्र प्राप्त होता है, ऐसे यज्ञ से सुख प्राप्त होता है। इस प्रकार, **मिलि**=विचार गोष्ठी में मिल कर, **कीमति पाई**=तेरा कर्मरूप मूल्य अङ्कित किया है। मीमांसक कर्म को ईश्वर मानते हैं। कर्म के महत्त्व को प्रकट करना ईश्वर के महत्त्व को बताना है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गिआनी धिआनी गुर गुरहाई । गिआनी=प्रकृति पुरुष के ज्ञान से सांख्य शास्त्र वाले आपके महत्त्व को खोजते हैं। धिआनी=चित्त की एकाग्रतारूप ध्यान से योगीजन आपका स्मरण करते हैं । पशु, पक्षी, तिर्यग्, मनुष्यों की अपेक्षा, गुर=बड़े देवता भी आपको खोजते हैं। गुरहाई=देवताओं को हनन करने वाले रावणादि राक्षसभाव से परमात्मा को खोजते हैं। सनकादि ऋषियों ने जय विजय को शाप देकर कहा कि तुम्हें राक्षस शरीर में वैर करनेसे शीघ्र भगवत्प्राप्ति होगी।

कहणु न जाई तेरी तिलु वडिआई । पूर्वोक्त रीति से तेरे महत्त्व को जानने के लिये जिन लोगों ने यत्न किये उन सर्व से, तेरी वडिआई=आपकी महिमा, तिलु कहणु न जाई= अणुमात्र भी कथन नहीं की जा सकी । जिन साधनों से तेरे महत्त्व को प्रतिपादन करने का पुरुष अपने को अधिकारी समझता है, वे साधन भी तेरी कृपा से ही प्राप्त होते हैं । इस भाव को आगे निरूपण करते हैं। सभि सत सभि तप सभि चंगिआईआ।

सभि सत=वाचिक, मानसिक इत्यादि सभी प्रकार के सत्य, सभि तप=कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रत एवं वर्णाश्रमों के धर्मरूप सभी तप, सभि चंगिआईआ=श्रेष्ठ पुरुषों की दैवी गुणरूप अच्छाइयां, सिधा पुरुखा कीआ वडिआईआ । सिधा पुरुखा=सिद्ध पुरुषों की अणिमा महिहिमादि वडिआईआ=जो बड़ाइयां हैं, वे तुधु विणु सिधि किनै न पाईआ । तुधुविणु= तेरी कृपा के बिना पूर्वोक्त अणिमादि सिद्धि और श्रेष्ठ दैवीगुणोंकी प्राप्ति, किनै न पाईआ=किसी ने प्राप्त नही की । अथवा सत्यवादियों ने सत्यभाषण एवम् तपस्वियों ने श्रेष्ठ तप और मुमुक्षुओं ने दैवीगुण आपकी कृपा से ही प्राप्त किये हैं। इस बात को आगे स्पष्ट करते हैं।

करमि मिलै नाही ठाकि रहाईआ । करमि मिलै=हे ईश्वर! जिन्होंको तेरी कृपा से अणिमादि सिद्धियाँ और दैवी गुण मिलते हैं उन्हें किसी प्रतिबन्धक वश नाही ठाकि रहाईआ= निरुद्ध होने पर भी नहीं रुकते, अर्थात् तेरी कृपा से जिज्ञासुओं को सभी दैवी गुण अवश्य प्राप्त हो जाते हैं। संसार की बड़ी से बड़ी विघ्न बाधा सद्गुणों की प्राप्ति में रुकावट नहीं डाल सकती। अथवा करमि मिलै=जिन्हों को सत्यादि श्रेष्ठ गुण मिलते हैं, वे तेरी ही कृपा से मिलते हैं। नाही= नहीं तो, ठाकि रहाईआ=रुके ही रहते हैं, तेरी कृपा से प्राप्त साधनों के द्वारा अति निपुण होकर भी वेद रूप खजाने में प्रतिपादित सत्य संकल्पादि अनन्त गुणों से अधिक यह जीव आपका और क्या निरूपण कर सकता है । इसी बात को गुरु जी कहते हैं।

आखणि वाला किआ वेचारा । आखणि वाला=प्रशंसा करनेवाला, किआ-वेचारा=अल्पज्ञ जीव क्या शक्ति रखता है। आपके जिन गुणों का शक्तिशाली देवता भी अन्त नहीं पा सकते उन्हें यह तुच्छ जीव कैसे निरूपण कर सकता है, क्योंकि जीव की शक्ति से बाहर की बात है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सिफती भरे तेरे भंडारा । आपके दिव्य गुणों के वेदरूप भंडार पहले ही भरे हुए हैं। वेदों से अधिक दिव्यगुणों का जीव क्या वर्णन कर सकता है। जिन लोगों को कथन करने की शक्ति तुम नहीं देते वे तेरे गुणों को कथन नहीं कर सकते, परन्तु कृपा दृष्टि से जिनको तूं शक्ति प्रदान करता हैं वे सर्वदा तेरे गुणों को कथन करते हैं। उनकी कोई स्पर्धा नहीं कर सकता।

जिस तू देहि तिसै किआ चारा । जिस तू देहि=जिस पुरुष को कल्याण की इच्छा से अपने गुणों को कथन करने की शक्ति देते हो, तब तिसै=उसके साथ दूसरे जीवों का किआ-चारा=उसकी शक्ति को नष्ट करने का क्या बल है। अर्थात् जिसका आप कल्याण करना चाहते हैं उसके मार्ग में कठिनाई कौन उत्पन्न कर सकता है, ऐसा कह कर गुरुदेव जी शब्द की समाप्ति करते हैं। नानक सचु सवारणहारा । नानक=श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं, सचु=हे सत्यस्वरूप परमेश्वर ! संसाररूप दुर्गम स्थान में, पामर, विषयी, पतित जीवों को जिज्ञासा देकर, सवारणहारा=तुम सुधारने वाले हो।

❀ प्रेम प्रबोधिनी व्याख्यायां द्वितीयं मन्त्रं समाप्तम ❀

—❀❀—

गुरु नानकदेव जी को एक दिन माता ने कहा कि पुत्र ! तुम किसी एक समय ईश्वर का चिन्तन किया करो, दिन भर चिन्तन क्यों करते हो ? उत्तर में गुरुदेव जी माता से कहते हैं।

आसा महला १ ॥

आखा जीवा विसरै मरिजाउ । आखणि अउखा साचा नाउ ॥
साचे नाम की लागै भूख । उतु भूखै खाइ चली अहि दूख ॥१॥
सो किउ विसरै मेरी माइ साचा साहिबु साचै नाइ ॥१॥ रहाउ ॥
साचे नाम की तिलु वडिआई । आखि थके कीमति नही पाई ॥
जे सभि मिलि कै आखण पाहि । वडा न होवै घाटि न जाइ ॥२॥
ना ओहु मरै न होवै सोगु । देदा रहै न चूकै भोगु ॥
गुणु एहो होरु नाही कोइ । न को होआ ना को होइ ॥३॥
जेवडु आपि तेवड तेरी दाति । जिनि दिनु करि कै कीती राति ॥
खसमु विसारहि ते कम जाति । नानकु नावै वाझु सनाति ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्दार्थ— आखा जीवा बिसरै मरि जाउ। आखणि अउखा साचा नाउ ॥

हे माता ! जब तक मैं, आखा=भगवन्नाम को कहता हूँ, अर्थात् ईश्वर का नाम जपता हूं, तभी तक मैं, जीवा=जीता हूं, अपने को जीवित समझता हूं । जब मेरे को, विसरै=परमेश्वर का नाम भूल जाता है तब मैं, मरिजाउ=मर जाता हूं, मृतक के तुल्य हो जाता हूँ, अर्थात् अत्यन्त दुःखी होता हूं। परन्तु यह ईश्वर का, सचा नाउ=सच्चानाम, आखणि अउखा=कहना बड़ा कठिन है।

साचे नाम की लागै भूख। उतु भूखै खाइ चली अहि दूख ॥

यदि परमेश्वर के, साचे नाम की=सच्चेनाम की, लागै भूख=भूख लगे अर्थात् श्रद्धा-भक्ति पूर्वक नाम जपने की इच्छा उत्पन्न हो जाए तब, उतु भूखै=उस तीव्र भूख से, खाइ चली अहि दूख=दुःखों को खाकर अर्थात् आध्यात्मिकादि दुःखों को नाश करके यह जीव परलोक में सुखपूर्वक जाता है । सो किउ विसरै मेरी माइ । साचा साहिबु साचै नाइ ॥

मेरी माइ=हे माता ! साचा साहिबु=अविनाशी परमेश्वर और साचै नाइ=उसका साचा नाम, सो किउ विसरै=मुझे विस्मृत क्यों हो, अर्थात् ईश्वर और उसका पवित्र नाम मुझे कदापि न भूले। साचे नाम की तिलु वडिआई । आखि थके कीमति नही पाई ॥

साचे नाम की=परमेश्वर के स्वरूपबोधक सच्चे नाम की, तिलु=अणु मात्र भी, वडिआई=शोभा को शेष, शारदा, व्यासादि, आखि=कह करके, थके=थक गए हैं, परन्तु किसी ने, कीमति=मूल्य, नही पाई=नहीं पाया। नाम के महत्त्व को कह कर अब नामी के महत्त्व को कहते हैं। जे सभि मिलि कै आखण पाहि । वडा न होवै घटि न जाइ ॥

जे सभि=यदि संसार के सभी विद्वानलोग, मिलिकै=मिल करके, आखणपाहि=ईश्वर की स्तुति करने लगें तब, लोगों के द्वारा स्तुति करने से वडा न होवै=परमेश्वर बड़ा नहीं हो जाता और नास्तिक लोगों द्वारा निन्दा करने से, घटि न जाइ=घटता नहीं है, अर्थात् साधारण लोगों के समान अपनी निन्दा और स्तुति को सुन कर ईश्वर दुःखी और सुखी नहीं होता।

ना ओहु मरै न होवै सोगु। देदा रहै न चूकै भोगु ॥

ना ओह मरै=सत्य होने के कारण वह परमेश्वर कभी मरता नहीं, इसलिये उसके भक्तों को वियोग का, न होवै सोगु=कभी भी शोक नहीं होता। सारे संसार को परमेश्वर, भोगु=खाने पीने के पदार्थों को, देदा रहै=इस प्रकार निरन्तर सावधान होकर दे रहा है। जो कभी भी न चूकै=भूलता नहीं है, सभी को स्मरण करके देता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुणु एहो होरु नाही कोइ । नाको होआ नाको होइ ॥

गुणु एहो=ऐसा सर्वोत्तम गुण केवल परमेश्वर में ही है, होरु नाही कोइ=पक्षपात के विना सर्व को समान दृष्टिसे देखने का गुण और किसी जीव में नहीं हैं। इसलिये, नाको होआ= ईश्वर जैसा परमदयालु न पहले कभी कोई हुआ है, नाको होइ=और न कोई आगे को होगा।

जेवडु आपि ते वड तेरी दाति। जिनु दिनु करिकै कीती राति ॥

जे वडु आपि=हे परमदयालु परमेश्वर ! जितने बड़े आप हैं, ते वड तेरी दाति= उतनी ही बड़ी आपकी दात (बख्शश है। जिनि दिनु=हे परमेश्वर ! आपने कार्य करने के लिये पहले दिन बनाकर फिर लोगों के विश्राम करने के लिए, कीति राति=रात्रि को बनाया है। यदि आप रात्रि को न बनाते तब लोग संसार के कार्यों में व्याकुल होकर ही मर जाते, इसलिये रात्रि का बनाना भी ईश्वर की दात (देन) है।

खसमु विसारहि ते कम जाति । नानक नावै बाझु सनाति ॥

हे परमेश्वर ! सर्वहितैषी परमकृपालु आप, खसमु=स्वामी को, जो विसारहि=भुला देते हैं वे लोग, कम जाति=कमीने (नीच हैं। नानक=श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं, नावैबाझु= नाम के बिना यह जीव, सनाति=प्रेत के तुल्य है, अर्थात् ईश्वर चिन्तन के बिना मानव जीवन सर्वथा निष्फल है।

भावार्थ— श्री गुरु नानकदेव जी से माता ने कहा कि तुम दिन भर मग्न क्यों रहते हो ? आत्म शान्ति के लिये दिन में एक बार ईश्वर चिन्तन करना पर्याप्त है । ऐसी शङ्का को सुनकर गुरुदेव जी कहते हैं । माता जी ! जब मैं ईश्वर का चिन्तन करता हूं तभी मैं अपने को जीवित समझता हूं । जब मैं ईश्वर का नाम भूल जाता हूं, तब मैं अपने को मृतक तुल्य समझ कर अत्यन्त दुःखी होता हूं । परन्तु ईश्वर का सच्चा नाम अहोरात्र जपना अत्यन्त कठिन है। यदि परमेश्वर के सच्चे नाम की भूख लगे, और यह जीव श्रद्धाभक्ति पूर्वक नाम जपने लग जाए तो उस भूख से आध्यात्मिकादि सभी दुःखों को नाश करके परलोक में सुख पूर्वक निवास करता है । इसलिये अविनाशी परमेश्वर और उसका सच्चा पवित्र नाम मुझे कदापि विस्मृत न हो। ईश्वर के सच्चे नाम की अणुमात्र महिमा को शेष, शारदा, व्यासादि कह कर थक गए हैं परन्तु आज तक किसी ने मूल्य नहीं पाया।

यदि संसार के सभी दार्शनिक मिल करके ईश्वर की स्तुति करने लगें तब उन लोगों द्वारा स्तुति करने से परमेश्वर बड़ा नहीं हो जाता, और नास्तिक लोगों द्वारा निन्दा करने से उसका महत्त्व घट नहीं सकता। साधारण लोगों के समान निन्दा और स्तुति को सुन कर दुःखी तथा सुखी नहीं होता। नित्य शाश्वत विभु होने के कारण परमेश्वर कभी मरता नहीं, इसलिये उसके भक्त वियोग के दुःख से संतप्त नहीं होते। सारे संसार को परमेश्वर खाने पीने के पदार्थों को इस प्रकार सावधान होकर देता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है जो कभी किसी को भूलता नहीं। पक्षपात के बिना सभी को समान दृष्टि से देने का सर्वोत्तम गुण केवल ईश्वर में ही है, और किसी अन्य जीव में नहीं। इसलिये ईश्वर जैसा दयालु न पहले कभी कोई हुआ है और न कोई आगे को होगा।

हे परमेश्वर! जितने बड़े आप हैं उतनी ही बड़ी आपकी दात है। आपने पहले दिन बना कर फिर रात्रि को बनाया है। यदि आप विश्राम के लिये रात्रि को न बनाते तब लोग संसार के कार्यों में व्याकुल होकर ही मर जाते, इसलिये रात्रि का बनाना आपकी दी हुई महानवस्तु है। ऐसे परम कृपालु आपको जो भुला देते हैं, वे लोग अत्यन्त तुच्छ एवं नीच हैं। श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि ईश्वर चिन्तन के बिना यह जीव प्रेत के तुल्य है। इस असार संसार में भगवन्नाम के बिना मानव जीवन व्यर्थ है।

विशेष व्याख्या— पूर्व शब्द में ईश्वर के गुणों को कहने की असमर्थता सूचित की तो भी, **जिसु तू देहि तिसै किआ चारा** ॥ इत्यादि पाठ से गुणानुवाद करने का सामर्थ्य सूचित किया है। इसलिये अपनी बुद्धि के अनुसार गुण प्रतिपादन ही मनुष्यों का जीवन है, अन्यथा लोहार की धौंकनी के समान श्वास लेता हुआ भी मृतक के तुल्य है। इसी बात को गुरु जी आगे निरूपण करते हैं। **आखा जीवा विसरै मरिजाउ** ॥

किसी पुण्य विशेष से दैवी गुणों को धारण करके जब मैं ईश्वर के नाम का कथन करता हूं तब ही, **जीवा**=अपने को सफल जीवन वाला मानता हूं। यदि, **विसरै**=मुझे ईश्वर का नाम भूल जाए तब धौंकनी के समान निष्फल श्वास लेता हुआ भी, **मरिजाउ**=मृतक के तुल्य हो जाता हूं। अथवा श्रेष्ठ पुरुषों की निन्दा, शास्त्र और गुरु में अश्रद्धा आदि दश अपराधों को त्याग कर ईश्वर का नाम उच्चारण करना यद्यपि अति कठिन है, तथापि अनिच्छा पूर्वक उच्चारण किया ईश्वर का नाम पापों को दग्ध करता है। ऐसा नाम का माहात्म्य सुन कर जब मैं परमात्माका नाम उच्चारण करता हूं तब अपने को जीवित समझता हूं। अब आगे नाम का फल बतलाते हैं। **साचे नाम की लागै भूख।**

भगवन्नाम के उच्चारणसे दोष दूर होते हैं इस बात का तो कहना ही क्या है। यदि इस जीव को सच्चे नाम के कथन की, **लागै भूख**=मैं ईश्वर के नाम का जप करूं, ऐसी इच्छा भी चित्त में उत्पन्न हो जाए तब, **उतु भूखै खाइ चली अहि दूख।** **उतु भूखै**=उस इच्छामात्र से सम्पूर्ण दोषों को, **खाइ**=निवृत्त करके, **चली अहि**=भक्त हरिके समीप पहुंच जाता है। जब नाम जपने की इच्छा मात्र से भक्त वैकुण्ठ धाम में चला जाता है, तब नाम जपने से वहां जायेगा इस बात का तो कहना ही क्या है इसलिये पूर्वोक्त महान् फलवाला ईश्वर का नाम-नामी के सहित मुझे कदापि विस्मृत न हो ऐसी प्रार्थना गुरु जी करते हैं। **सो किउ विसरै मेरी माइ।** मेरे गुरुदेव! **सो**=जिस नाम जप

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की इच्छामात्र से महान् फल होता है, वह ईश्वर का नाम **किउ विसरै**=क्यों विस्मृत हो, अर्थात मुझे कदापि विस्मृत न हो, **साचा साहिबु साचै नाइ ॥**

साचा साहबु=सत्यस्वरूप स्वामी परमेश्वर, **साचै नाइ**=अपने वाचक सत्यनाम के सहित कदापि विस्मृत न हो, अर्थात् नामी सहित नाम मेरे हृदय से कदापि विस्मृत न हो। जब यह अल्पज्ञ जीव परमेश्वर की स्तुति करने में असमर्थ है तब आप ईश्वर की महिमा कहने का क्यों प्रयत्न करते हैं ? ऐसी शङ्का सुन कर श्रीमद्भागवत में निरूपित ग्यारह भूमियों में से ग्यारहवीं भूमि की दशा को गुरु जी निरूपण करते हैं। **आखा जीवा विसरै मरिजाउ ॥**

यदि मैं मुख से परमेश्वर का नाम उच्चारण करता हूँ, तभी प्रेम की परमावधि भूमिको प्राप्त होकर, **जीवा**=जीवन धारण करता हूं; **विसरै**=जब मैं परमेश्वर के नाम को भूल जाता हूँ; तब अपने आपको, **मरिजाउ**=मृतक के तुल्य समझता हूं। इसी भाव से गुरु जी ने कहा है।

खिनु पलु घड़ी न जीवउ बिनु देखे मरां माइ ॥ गु० ग्रं० पृ० १२४८।

प्रश्न— जिस नाम के विस्मरण से आप मर जाना कहते हैं, उस परमप्रिय नाम को मुक्ति का हेतु जानकर सभी जीव उसे क्यों नहीं जपते ?

समाधान— **आखणि अउखा साचा नाउ।** सत्पुरुषों की सेवा तथा उनकी कृपा का पात्र होना एवम् श्रेष्ठ धर्मों में श्रद्धा, हरि गुणों का श्रवणादि साधनों के बिना चित्त में परमेश्वर के नामोच्चारण की प्रीतिरूप अंकुर उत्पन्न हुए बिना सच्चा नामोच्चारण करना अति कठिन है।

प्रश्न— सत्पुरुषों की सेवा आदि साधनों के बिना परमेश्वर के नाम का कथन करना जब अति कठिन है तब उसके कहनेमें कौन प्रवृत्त होगा? ऐसी जिज्ञासाको देखकर गुरुजी कहते हैं। जिस जिज्ञासु को साधनों की प्राप्ति से प्रीति के अंकुर की उत्पत्ति द्वारा कहने की भूख उत्पन्न हुई है, वह परमेश्वर के नाम को कथन करता है। **साचे नाम की लागै भूख।** जिस पुरुष को सत्पुरुषों की सेवा, श्रेष्ठ धर्मों में श्रद्धा आदि साधनोंसे चित्त में ईश्वर के प्रेम का अंकुर उत्पन्न होकर मैं करुणानिधि भगवान् के नाम का उच्चारण करूं, ऐसी इच्छा जिसके अन्तःकरण में उत्पन्न हुई है वही नाम जपता है। जिन को पूर्व साधनों के बिना नामोच्चारण की इच्छा उत्पन्न नहीं हुई वे लोग परमेश्वर का नाम उच्चारण नहीं कर सकते। जिस तीव्र इच्छा से प्रेमी भगवन्नाम का जप करता है, उसी इच्छा से ही भक्त सभी दोषों को दूर करके स्वरूपाधिगति से सभी भूमियों को प्राप्त करके परमधाम को प्राप्त होता है। इसी बात को गुरु जी कहते हैं। **उतु भूखै खाइ चलीअहि दूखु ॥**

उतुभूखै=ब्रह्मधाम की प्राप्ति रूप फल देने वाली सच्चे नाम को जपने की इच्छा मात्र से ही **खाइ चलीअहि दूख**=संसार प्राप्ति के कारण कामादि दुःखों को भक्त जन निवृत्त करके निजधाम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को प्राप्त हो जाता है। कामादि दोषों को नरक प्राप्ति का हेतु गुरुवाणी में प्रतिपादन किया है।

हे कामं नरक बिसरामं बहु जोनी भ्रमावणह ॥ गु० ग्र० पृ० १३५८

प्रश्न— यदि सच्चे नाम को जपने की इच्छा मात्र से ही सम्पूर्ण दोषों को निवृत्त करके भक्त हरि के धाम में पहुँच जाता है, तब धन की इच्छा मात्र से निर्धन धनवान् क्यों नहीं हो जाता ? ऐसी आशंका किसी के मन में हो सकती है।

समाधान— सफला और निष्फला भेद से इच्छा दो प्रकार की है। पुरुष को नाम जपने की इच्छा बड़े पुण्य के प्रभाव से उदय होती है। इस जन्म वा जन्मान्तर में नाम के अनुष्ठान द्वारा वह इच्छा ईश्वर के समीप जिज्ञासु को पहुँचा देती है। इसलिये वह इच्छा सफला है। धनादि पदार्थों की इच्छा लोभादि दोषों से उत्पन्न होती है। धन प्राप्ति पुण्य के बिना नहीं होती, इसलिये सांसारिक पदार्थों की इच्छा निष्फला है। निष्फला इच्छा करनी व्यर्थ है और सफला इच्छा करनी सार्थक है। जिस नाम के जपने की इच्छा का माहात्म्य पूर्व प्रतिपादन किया है, उस नाम में प्रेम की परमवृद्धिरूप सप्तमी भूमिका को गुरुजी कहते हैं। सो किउ विसरै मेरी माइ।

सर्व के उपदेष्टा परमगुरु परमेश्वर ! वह आपका परमप्रिय नाम मुझे किसी भी प्रकार से विस्मृत न हो। सर्वदा उसी के प्रेम में निमग्न रहूँ। जिन साधनों का सद्ग्रन्थों में निरूपण किया है, संक्षेप से उनका निरूपण करते हैं। (महत्सेवा) वृद्ध पुरुषों की तथा भगवत् सेवा भेद से यह दो प्रकार की है। शरीर मनादि अर्पण करके शरणको प्राप्त होना यह गुरु सेवा है। सभी धर्मों का आश्रय छोड़ कर परमेश्वर की शरण को प्राप्त होना भगवत्सेवा है। अपने में उत्तम गुणों का सम्पादन करना, महात्माओं की दया का पात्र होना है। हाथों से सेवा, नेत्रों से दर्शन, कानों से हरिकीर्तन एवं कथाका श्रवण करने से मैं अवश्य कृतार्थ हो जाऊंगा, ऐसी रुचि होने का नाम श्रद्धा है। जप, तप, ध्यान, पूजादि सर्व का ज्ञान श्रवणसे होता है, इसलिये श्रवण स्मरणादिसे लेकर आत्मनिवेदन पर्यन्त नवधा भक्ति करनी हरिगुणों का श्रवण है। सत्पुरुषों की सेवा से चित्त में प्रीतिरूप अंकुर की उत्पत्ति होना ही प्रेमाभक्ति है। प्रीति के प्रभाव से प्रेमी अपने आपको तीनों शरीरों से पृथक् जानता है, इसे स्वरूपाधिगति कहते हैं।

मन तूं जोति सरूपु है आपणा मूलु पछाणु ॥ गु० ग्रं० पृ० ४७३।

इत्यादि वचनों के द्वारा स्वरूपाधिगति का निरूपण किया है। यहां पर मन शब्द आत्मा का बोधक है। हे जीव ! तीनों शरीरों से भिन्न अपने स्वरूप को पहिचान। जब तूं देहादि से भिन्न अपने स्वरूप को जान लेगा तब देहादि के स्नेह को छोड़ कर अपने मूलभूत परमात्मा के प्रेम में निमग्न हो जाएगा। इस दशा को गुरु जी ने निम्न लिखित वचनों में निरूपण किया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

रंगि हसहि रंगि रोवहि चुप भी करि जाहि ॥ परवाह नाही किसैकेरी बाझु सचे नाह ॥

गु० ग्रं० पृ० ४७३ ।

प्रेम की वृद्धि से भगवान् का साक्षात्कार होना आठवीं भूमि है । इस अवस्थावाला भक्त भगवान् से बातें करता है ।

यथा—हले यारां हले यारां खुसि खबरी । तथा—तू कुनु रे मै जी नामा हो जी ॥

गु० ग्रं० पृ० ६६२

भगवद् धर्मनिष्ठा नवमी अवस्था है। इस अवस्था में साधक प्रत्येक इन्द्रिय को शुभ मार्ग में लगाने की चेष्टा करता है। जैसे—ए नेत्रहु मेरिहो हरि तुम महि जोति धरी हरि बिनु अवरु न देखहु कोई । इसके पश्चात् भक्त की वाणी में वर शाप देने की शक्ति हो जाती है।

यथा—भगत मुखै ते बोलदे से वचन होवंदे ॥ गु० ग्रं० पृ० ३०६

प्रेम की परमावधि रूप ग्यारहवीं अवस्था है। इसके स्वरूप को, "आखा जीवा विसरै मरिजाउ" इस वचन के द्वारा निरूपण किया है । साचे नाम की= परमेश्वर के स्वरूप वाचक सत्य नाम की, तिलु वडिआई=अणुमात्र महिमा को सभी ऋषि मुनि अपनी अपनी शक्ति के अनु- सार, आखिथके=कह कर थक गये हैं, कीमति नही पाई=परन्तु किसी ने नाम के महत्त्व का मूल्य अङ्कित नहीं किया; क्योंकि किसी की वाणी में शक्ति नहीं जो नाम के मूल्य का साङ्गोपांग वर्णन कर सके। इस प्रकार नाम को अमूल्य कहकर अब मूल्य कहनेवालों की प्रशंसा और अप्रशंसा से वह न्यूनाधिक नहीं होता । जे सभि मिलि कै आखण पाहि= यदि सभी ऋषि मुनि मिलकर ऐसा कहें कि ईश्वर का नाम बड़ा पतितपावन है। जिसने अजामल, गज, गणिकादि पापियों का उद्धार किया, ऐसी प्रशंसा करने से, वडा न होवै=वह नाम कुछ बड़ा नहीं होता और नास्तिकों द्वारा निन्दा करने से, घाटि न जाइ=न्यून नहीं होता।

ना ओहु मरै न होवै सोगु=ईश्वर का सच्चा नाम कभी नाश को प्राप्त नहीं होता, इसलिये भक्तों को नाम के नाश का कभी शोक नहीं होता। देदा रहै न चूकै भोग=यह नाम भक्तों को इच्छा के अनुसार भोग्य पदार्थों को देता ही रहता है, देने से कभी चूकता नहीं। अर्थात् आर्त जिज्ञासु आदि चार प्रकार के भक्तों को फल देनेसे कभी निवृत्त नहीं होता यह ईश्वर के नाम में विशेष गुण है। प्रश्न— भक्तों को इच्छित भोग्य पदार्थ देना ही क्या ईश्वर के नाम में गुण है वा कोई और भी है ? यज्ञादि नित्य कर्म नाम के समान फलदायक नहीं इस बात को आगे कहते हैं।

गुणु एहो होरु नाही कोइ । ना को होआ ना को होइ =परमात्मा के नाम में सबसे बड़ा गुण यही है कि संसारमें उसके समान कोई वस्तु नहीं। नाम के समान न कोई यज्ञ, दान

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तपादि आज तक फल देनेवाला हुआ है, और न कोई भविष्य में होगा। अथवा काकूक्ति से अर्थ इस प्रकार है। क्या उस नाम में इच्छित पदार्थों को देने के अतिरिक्त और कोई गुण नहीं ? ऐसी बात नहीं, किन्तु उस नाम में धर्म एवं मुक्ति प्रदान करना आदि अनेक गुण हैं। जिन गुणों के प्रभाव से न कोई यज्ञ दानादि कर्म नाम के तुल्य आज तक हुआ और न कोई अश्वमेधादि आगे नाम के सदृश होगा। इस प्रकार नाम का महत्त्व कह कर अब नामी का माहात्म्य कहते हैं।

जेवडु आपि ते वडु तेरी दाति=हे परमेश्वर ! जितने बड़े तुम स्वयं हो उतनी ही बड़ी जीवों को दी हुई जल, वायु, तेजादि एवं धन, पुत्र कलत्रादि तेरी दात (वस्तुएं हैं। **जिनि दिनु करिकै कीती राति**=हे शक्तिशाली परमेश्वर ! आपने जीवों की भलाई के लिये दिन को बना कर शयन करने के लिये रात्रि को बनाया है। पूर्वोक्त रीति से ईश्वर के महत्त्व को बता कर अब उसकी विस्मृति वाले जीवों की अधमता को कहते हैं। **खसमु विसारहि ते कम जाति**=जो लोग अपने स्वामी परमेश्वर को भूल जाते हैं, वे नीच जाति वाले हैं। **नानक नावै बाझु सनाति**= श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि जो पुरुष परमेश्वर के नाम से रहित हैं वे लोग नीच (वर्णसंकर हैं।

॥ प्रेम प्रबोधिनी व्याख्यायां तृतीयं मन्त्रं समाप्तम् ॥३॥

—⊛—

श्री गुरु अमरदेव जी ने अपनी प्रिय पुत्री श्री भानी जी की शादी के पश्चात् अपने दामाद से प्रसन्न होकर कहा कि परमप्रिय ! आप जो कुछ भी मांगना चाहें इच्छानुसार हम से मांग सकते हैं। वही अभीष्ट वस्तु आपको दी जायगी। उत्तर में श्री गुरु रामदास जी वन्दनीय श्री गुरु अमरदेव जी से सनम्र प्रार्थना करते हैं। रागु गूजरी महला ४।

हरि के जन सतिगुर सत पुरखा बिनउ करउ गुर पासि ॥
हम कीरे किरम सतिगुर सरणाई करि दइआ नामु परगासि ॥१॥
मेरे मीत गुरुदेव मोकउ राम नामु परगासि ॥
गुरुमति नामु मेरा प्रान सखाई हरि कीरति हमरी रहरासि ॥१॥ रहाउ ॥
हरि जन के वडभाग वडेरे जिन हरि हरि सरधा हरि पिआस ॥
हरि हरि नामु मिलै त्रिपतासहि मिलि संगति गुण परगासि ॥२॥
जिन हरि हरि हरिरसु नामु न पाइआ ते भागहीण जमपासि ॥
जो सति गुरु सरणि संगति नही आए ध्रिगु जीवे ध्रिगु जीवासि ॥३॥
जिन हरि जन सतिगुर संगति पाई तिन धुरि मसतकि लिखिआ लिखासि ॥
धनु धंनु सत संगति जितु हरिरसु पाइआ मिलि जन नानक नामु परगासि ॥४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्दार्थ— हरि के जन सतिगुर सतपुरखा बिनउ करउ गुरपासि । सतिगुर= हे सद् गुरुदेव ! सत पुरखा=माननीय सत्पुरुष !, हरि के जन=हे पूज्य हरि के भक्त ! मैं आपके पास बिनउ करउ=एक प्रार्थना करता हूं, हम कीरे किरम सतिगुर सरणाई कर दइआ नामु परगासु ॥ हम कीरे किरम=हम छोटे से छोटे जीव हैं, सतिगुर सरणाई=हे सद्गुरुदेव ! हम आपकी शरण में आए हैं, करिदइआ=कृपा करके, नामु परगासु=हरि नाम का मेरे अन्तःकरण में प्रकाश करो ।

मेरे मीत गुरुदेव मो कउ राम नाम परगासि । मेरे मीत गुरुदेव =हे मेरे मित्र गुरुदेव जी ! यदि आप मेरे पर प्रसन्न हैं तब कृपा करके, मो कउ =मेरे अन्तःकरण में, राम नामु परगासि =राम नाम का प्रकाश करें ।

गुरमति नामु मेरा प्रान सखाई । हरि कीरति हमरी रहरासि । गुरमति नामु = गुरु की शिक्षा से जपा हुआ नाम, मेरा प्रान सखाई =मेरे प्राणों का सहायक होगा । श्री गुरु रामदास जी की प्रार्थना को सुन कर गुरु अमरदेव जी ने कहा, परमप्रिय ! हम आपको नाम दान देंगे परन्तु और भी कुछ लौकिक पदार्थ माँगलें, इसके उत्तर में गुरु रामदास जी पुनः प्रार्थना; करते हैं कि हे कृपासिन्धो ! हमरी =हमारी तो, रहरासि =यही कुल रीति या प्रार्थना है कि गुरुदेव से, हरि कीरति =हरियश ही माँगना चाहिये ।

हरि जन के वड भाग वडेरे जिन हरि हरि सरधा हरि पिआस ।

पूज्य गुरुदेव जी ! मैं आपकी कृपा से जानता हूं कि, जिन =जिन पुरुषों की, हरि हरि सरधा =पापों को नष्ट करने वाले हरि नाम में श्रद्धा विश्वास है, तथा हरि पिआस =हरि नाम को जपने की प्यास है, हरिजन के =उन हरिभक्तों के, वडभाग वडेरे =बड़े से बड़े श्रेष्ठ भाग्य हैं ।

हरि हरि नामु मिलै त्रिपतासहि मिलि संगति गुण परगासि ।

हरि हरि नामु मिलै =हरि नाम के मिलने से वे भक्त, त्रिपतासहि =अपनी तृप्ति मानते हैं; और मिलि संगति =सत्पुरुषों की संगति में मिल कर, गुण परगासि =हरि के गुणों का प्रकाश होता है । जिन हरि हरि हरिरसु नामु न पाइआ ते भाग हीण जम पासि ॥

जिन =जिन पुरुषों ने, हरि हरि =परमेश्वर के, हरिरसु नामु =सारभूत हरि के नाम रस को, न पाइआ =प्राप्त नहीं किया, ते भागहीण =वे भाग्यहीन मन्दमति अज्ञानी पुरुष, जम-पासि =यम के पास जाते हैं । अथवा धर्मराज की पाश में पड़ कर पुनः पुनः जन्म मरण के महान दुःख को भोगते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जो सति गुर सरणि संगति नही आए ध्रिगु जीवे ध्रिगु जीवासि ॥

जो सति गुर सरणि=जो ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण के द्वारा, **संगति नही आए**=सत् संगति में नहीं आए, उन मन्दभागी पुरुषों के, **जीवे**=पिछले जीवन पर, **ध्रिगु**=धिक्कार है, तथा उनके **जीवासि**=आगे के जीवन पर, **ध्रिगु**=धिक्कार है; तथा उन अभागे पुरुषों के वर्तमान जीवन पर तथा भविष्य में जीने की इच्छा पर धिक्कार है।

जिन हरिजन सति गुर संगति पाई तिन धुरि मसतकि लिखिआ लिखासि ॥

जिन हरिजन=जिन हरि के प्रेमियों ने, **सतिगुर**=ब्रह्मदर्शी गुरु की, **संगति पाई**=श्रेष्ठ संगति प्राप्त की है, **तिन**=उनके, **मसतकि**=माथे पर, **धुरि**=आदि काल से, **लिखासि**=कृपा का लेख, **लिखिआ**=लिखा हुआ है।

धनु धंनु सत संगति जितु हरि रसु पाइआ मिलि जन नानक नामु परगासि ॥

नानक=श्री गुरु रामदास जी कहते हैं, पूज्य गुरुदेव! आपकी, **सत संगति**=श्रेष्ठ संगति **धनु धंनु**=धन्य है, धन्य है, अर्थात् भाग्य को उदय करने वाली है। **जितु**=जिसके द्वारा, **हरि रसु पाइआ**=मुझे हरि नाम रस प्राप्त हुआ है, **मिलि जन**=हरि के सेवकों से मिलकर, **नामु परगासि**=भक्तों को हरि के नाम का प्रकाश होता है।

भावार्थ— अपनी प्रिय पुत्री श्री भानी के विवाह काल में श्री गुरु अमरदेव जी ने अपने योग्य विनम्र आज्ञाकारी दामाद गुरु रामदास जी से कहा कि आप इस समय कुल रीति के अनुसार जो भी मांगना चाहें इच्छा के अनुसार स्वाधीनता पूर्वक मांग सकते हैं, वही इच्छित वस्तु आपको मिलेगी। उत्तर में गुरु रामदास जी अपने वन्दनीय गुरुदेव से पवित्र हरिनाम लेने की प्रार्थना करते हैं।

पूज्य सद्गुरुदेव! मेरी आपके पास सनम्र एक प्रार्थना है कि हम आपके सामने छोटे से छोटे अति तुच्छ जीव हैं। हे सद्गुरुदेव जी मैं आपकी शरण में आया हूं, कृपा करके मेरे अन्तःकरण में हरि नाम का प्रकाश करो। परम हितैषी मेरे मित्र गुरुदेव! यदि आप मेरे पर प्रसन्न हैं, तब कृपा करके मेरे मन में राम नाम का प्रकाश करें। आप की शिक्षा के द्वारा जपा हुआ ईश्वर का नाम सर्वदा मेरे प्राणों का सहायक होगा। गुरु रामदास जी की प्रार्थना को सुन कर गुरु अमरदेव जी ने कहा कि हम आपको ईश्वर के नाम का दान अवश्य देंगे, पर इसके साथ कुछ और भी अभीष्ट पदार्थ आप मांग सकते हैं। उत्तर में गुरु रामदास जी प्रार्थना करते हैं, कृपासिन्धो! हमारी तो यही कुल रीति है कि गुरुदेव से हरि यश ही मांगना चाहिये। पूज्य गुरुदेव! मैं आपकी कृपा से जानता हूं कि जिन पुरुषों के मन में हरि नाम की श्रद्धा तथा हरि नाम जपने की प्यास है, उन हरि सेवकों के उत्तम से उत्तम भाग्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हैं, क्योंकि वे हरि नाम के मिलने से अपनी तृप्ति मानते हैं। सत्पुरुषों की संगति में मिल कर भक्तों के हृदय में हरि के गुणों का प्रकाश होता है। जिन्होंने हरि के नामरस को अपने जीवन में प्राप्त नहीं किया वे अभागे मन्दमति धर्मराज की पाश में पुनः पुनः पड़कर अनेक प्रकार के दुःखों को भोगते हैं। जो ब्रह्मदर्शी गुरु की शरण के द्वारा सत्संगति में नहीं आए उन मन्दभागी पुरुषों के व्यतीत हुए जीवन पर धिक्कार है। तथा उनके आगामी जीवन पर भी धिक्कार है। जिन हरि प्रेमियों ने तत्त्वदर्शी गुरु की संगति प्राप्त की है उनके माथे पर आदि काल से कृपादृष्टि का लेख लिखा हुआ है। श्री गुरु रामदास जी कहते हैं, पूज्य गुरुदेव! आपकी संगति धन्य है, जिसके द्वारा मुझे अलौकिक हरिरस प्राप्त हुआ है। हरि के सेवकोंसे मिलकर प्रेमियों के हृदय में हरिनाम का प्रकाश अवश्य होता है।

विशेष व्याख्या— हरि के जन सतिगुर सत पुरखा बिनउ करउ गुर पासि ॥

हरि के जन=सम्पूर्ण पापों के नाशक हरि के जनो! सति गुर=सत्पुरुष को जानने वाले गुरुदेव! सत पुरखा=ईश्वर स्वरूप गुरुदेव! मैं आपके पास दुःखों को दूर करनेके लिये, बिनउ करउ=सप्रेम प्रार्थना करता हूं, आप ध्यान पूर्वक सुनने की कृपा करें।

हम कीरे किरम सतिगुर सरणाई करिदइआ नामु परगासि ॥

अण्डे से उत्पन्न जीव को कीट कहते हैं, किसी बिगड़ी हुई वस्तु से उत्पन्न हुए जीव को कृमि कहते हैं। गुरुदेव! हम कीट के समान अति तुच्छ तथा कृमि के समान अति अधम आपकी शरण में आये हैं। दुःखी के वचनोंको सुन कर गुरु जी पूछते हैं, तुम क्या चाहते हो? गुरु की आज्ञा पाकर शिष्य अपने भाव को प्रकट करता है। करि दइआ नामु परगासि=दया करके मुझे हरि के नाम का उपदेश करो। तुम्हें कौनसे नाम का उपदेश करें?

मेरे मीत गुरदेव मो कउ रामनामु परगासि ॥ संसार दुःख को दूर करने में मित्रवत् सहायक गुरुदेव! आप कृपा करके मुझे राम नाम का उपदेश करें। परमेश्वर का नाम मुझे कितना प्रिय है? गुरमति नामु मेरा प्रान सखाई हरि कीरति हमरी रहरासि ॥

गुरुद्वारा उपदेश किया हुआ नाम मुक्ति का साधन होने से प्राणों के तुल्य मेरा सखा है। इसलिये हरि नाम को कथन करने के लिये गुरुदेव! आपके पास हमारी, रहरासि=प्रार्थना है। नाम में श्रद्धाभक्ति रखने वाले पुरुष को भाग्यशाली बतलाते हैं। हरि जन के वड भाग वडेरे=परमेश्वर के भक्तों के अत्युत्तम भाग्य हैं। जिन हरि हरि सरधा हरि पिआस=जिनको बारम्बार ईश्वर के नाम उच्चारण करने में विश्वास है, तथा हरि के नाम को जपने की प्यास है।

हरि हरि नामु मिलै त्रिपतासहि मिलि संगति गुण परगासि ॥

जो बारम्बार हरि नाम की प्राप्ति से ही तृप्ति को प्राप्त होते हैं, तथा सत्संगति में मिलकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ईश्वर के सत्यसङ्कल्पादि एवं पतित पावनादि गुणों को प्रकाशित करते हैं। पूर्वोक्त रीति से भक्तों को भाग्यवान् कहकर नाम से विमुख पुरुषों को भाग्यहीन नरकगामी बतलाते हैं।

जिन हरि हरि हरिरसु नामु न पाइआ ते भागहीण जम पासि ॥

जिन अज्ञानियों ने हरि नाम के जपने से आनन्द को प्राप्त नहीं किया वे भाग्यहीन यम की पाश से जकड़े हुए नरक में जाते हैं।

जो सतिगुर सरणि संगति नही आए ध्रिगु जीवे ध्रिगु जीवासि ॥

गुरु की शरण होकर सद्विचार के लिए जो पुरुष सत्संगति में नहीं आए उनके पहले जीवन को धिक्कार है, तथा मृत्यु काल में उनके जीने की इच्छा को भी धिक्कार है।

प्रश्न— लाभ का हेतु गुरु की शरण किन लोगों को प्राप्त है और किन्हें प्राप्त नहीं ?

जिन हरि जन सति गुर संगति पाई=जिन हरि के प्रेमियों ने सद्गुरु की संगति प्राप्त की है, तिन धुरि मसतकि लिखिआ लिखासि=उनके मस्तक में ईश्वर ने विधाता के रूप में कल्याण के लिये स्वयं ही लेख लिखा है। भाव यह है, जो पुरुष श्रेष्ठ कर्म करते हैं उनकी भलाई के लिये ईश्वर स्वयं ही उनसे श्रेष्ठ कर्म करवाता है।

आपे उझड़ पाइदा पिआरा आपि विखाले राहु ॥ गु० ग्रं० पृ० ६०४।

जिस सत्संगति से जीव को लाभ होता है अब उसकी प्रशंसा करते हैं।

धनु धंनु सत संगति जितु हरि रसु पाइआ मिलि जन नानक नामु परगासि ॥

श्री गुरु रामदास जी कहते हैं जिस सत्संगति में मिल कर भक्तों का नाम प्रकाशित होता है, वह श्रेष्ठ पुरुषों की संगति धन्य है जिसके द्वारा आनन्दस्वरूप हरि को मैंने प्राप्त किया है।

❀ प्रेमप्रबोधिनी व्याख्यायां चतुर्थं मन्त्रं समाप्तम ४ ॥❀

—○—

वन्दनीय श्री गुरु अर्जुनदेव जी जिस समय गुरु गादी पर बैठे उस समय पृथिवीचन्द्र के विरोध से लंगर का प्रबन्ध अस्तव्यस्त हो गया था, क्योंकि शिष्य लोगों से पूजा भेटा पृथिवीचन्द्र ले लेता था। भण्डार की व्यवस्था को देखकर भाई गुरुदास को बड़ा दुःख हुआ। लंगर की उचित व्यवस्था करने के लिये भाई गुरुदास ने श्री गुरु अर्जुनदेव जी से प्रार्थना की। उत्तर में श्री गुरु जी अपने मन के व्याज से सर्व को उपदेश करते हैं।

राग गूजरी महला ५ ॥

काहे रे मन चितवहि उदमु जा आहरि हरि जीउ परिआ ॥
सैल पथर महि जंत उपाए ताका रिजकु आगै करि धरिआ ॥१॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरे माधउ जी सत संगति मिले सुतरिआ ॥
गुर परसादि परमपदु पाइआ सूके कासट हरिआ ॥१॥ रहाउ ॥
जननि पिता लोक सुत बनिता कोइ न किसकी धरिआ ॥
सिरि सिरि रिजकु संबाहे ठाकुरु काहे मन भउ करिआ ॥२॥
ऊडे ऊडि आवै सै कोसा तिसु पाछै बचरे छरिआ ॥
तिन कवणु खलावै कवणु चुगावै मनमहि सिमरनु करिआ ॥३॥
सभि निधान दस असट सिधान ठाकुर करतल धरिआ ॥
जन नानक बलि बलि सद बलि जाईऐ तेरा अंतु न पारावरिआ ॥४॥ ५ ॥

शब्दार्थ— काहे रे मन चितवहि उदमु जा आहरि हरिजीउ परिआ ॥

रे मन=हे मेरे मन ! तू अपने आहार व्यवहार को प्राप्त करने के लिए, उदमु=उद्योग करने का, काहे चितवहि=चिन्तन क्यों करता है जब कि सभी के पालन पोषण के आहरि=उद्योग में, हरि जीउ=हरि परमेश्वर स्वयं, परिआ=पड़ा हुआ (लगा हुआ) अर्थात् तत्पर है । इसमें दृष्टान्त कहते हैं ।

सैल पथर महि जंत उपाए ताका रिजकु आगै करि धरिआ ॥

सैल=चट्टानों में तथा, पथर=पत्थरों में, जंत उपाए=जो जीव उत्पन्न किये हैं, ताका= उनका, रिजकु=भोजन, आगै करि धरिआ =परमेश्वर ने बना कर पहले ही धरा हुआ है ।

मेरे माधउ जी सत संगति मिले सुतरिआ ॥

मेरे =हे मेरे मन ! माधउ जी =परमेश्वर की, सत संगति मिले =सत्संगति में जो मिला है, सुतरिआ =वह संसार समुद्र से तर गया है ।

गुर परसादि परम पदु पाइआ सूके कासट हरिआ ॥ गुर परसादि =गुरु की कृपा से, परमपदु पाइआ =मोक्ष प्राप्त हुआ है, जिस सत्संगति ने, सूके कासट =सूखे काष्ट के समान जड़ हृदय को, हरिआ =हरा भरा कर दिया है ।

जननि पिता लोक सुत बनिता कोइ न किसकी धरिआ ॥

जननि पिता =माता और पिता, सुत बनिता =पुत्र तथा स्त्री, लोक =एवम सम्बन्धी लोग, कोइ न किसकी =कोई भी किसी का, धरिआ =सर्व ओर से, धरि =आश्रय नहीं है, इसलिये

सिरि सिरि रिजकु संबाहे ठाकुरु काहे मन भउ करिआ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सिरिसिरि=जीवों को उत्पन्न करके, ठाकुरु=परमकृपालु परमेश्वर सभी जीवों को, रिजक=यथोचित भोजन वस्त्रादि, संबाहे=पहुँचाता है, अर्थात् जो भी जीव जहांपर उत्पन्न हुआ है उसके खाने पीने का प्रबन्ध परमेश्वर ने वहीं पर कर दिया है। काहे मन भउ करिआ=तब हे मेरे मन ! तूं अपने खाने पीने का व्यर्थ भय क्यों करता है ?

ऊडे ऊडि आवै सै कोसा तिसु पाछै बचरे छरिआ ॥ सै कोसा=सैकड़ों कोस कूंजों का दल कार्तिक के महीने में हिमालय से ऊडे ऊडि आवै=उड़उड़ कर नीचे की ओर आ जाता है और अपने, बचरे=छोटे बच्चों को, पाछै=पीछे हिमालय में, छरिआ=निश्चिन्त होकर छोड़ आता है। तिन कवणु खलावै कवणु चुगावै मन महि सिमरनु करिआ ॥

तिन कवणु=उनके बच्चों को पीछे कौन, खलावै=खिलाता है, अर्थात् चिड़ियों के समान बाहरसे लाकर बच्चोंको कौन खिलाता है, तथा कवणु चुगावै=उन्हें कौन चुगाता है ? अर्थात् मुर्गी के समान पैरों से दाने खोद कर बच्चों को कौन चुगाता है ? उन्हें पीछे न कोई खिलाने वाला है और न कोई चोग चुगाने वाला है। किन्तु हरएक कूंज अपने अपने बच्चे को, मनमहि=मन में, सिमरनु करिआ=स्मरण करती है, कूंज के स्मरण करने मात्र से बच्चे की पालना होती है। जब साधारण पक्षियों की ऐसी बात है तब हे मेरे मन ! तुझे चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है ? जब तेरे लालन पालन की चिन्ता में परमेश्वर स्वयं तत्पर है।

सभि निधान दस असट सिधान ठाकुर करतल धरिआ ॥

सभि निधान=सर्व प्रकार की पद्मादि निधियां और, दस असट सिधान=अठारह प्रकार की सिद्धियां, ठाकुर=परमेश्वर ने, करतल=हथेली पर, धरिआ=धारण की हुई हैं, अर्थात् ईश्वर अपने प्रेमी भक्तों को निधि और सिद्धि देने में विलम्ब नहीं करता।

जन नानक बलि बलि सद बलि जाईऐ तेरा अंतु न पारावरिआ ॥

जन नानक=श्री गुरु अर्जुनदेव जी कहते हैं, ऐसे परम कृपालु परमेश्वरके ऊपर, बलि बलि सद बलि जाईऐ=प्रतिदिन बारम्बार बलिहार जाना चाहिये, और इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये कि हे जगन्नाथ परमपिता परमेश्वर ! तेरा अंतु=आपके अन्त का, न पारावरिआ=कोई पारावर (सीमा नहीं है अर्थात् आप अविनाशी अगम अगोचर त्रिगुणातीत हैं।

भावार्थ— प्रातः स्मरणीय श्री गुरु अर्जुनदेव जी के समय पृथिवीचन्द्रके विद्वेष से भोजनालय में कुछ समय के लिये अव्यवस्था हो गई थी, क्योंकि शिष्य मण्डली से पूजा भेटा पृथिवीचन्द्र ले लेता था। लङ्गर की अव्यवस्था को देख कर भाई गुरुदास जी को बड़ा दुःख हुआ। भण्डार की उचित व्यवस्था करने के लिए भाई गुरुदास जी ने श्री गुरु अर्जुनदेव जी से प्रार्थना की। उत्तर में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुरु जी अपने मन को समझाते हुए सर्व की शिक्षा के लिए सुखप्रद उपदेश करते हैं। हे मेरे मन ! तूं अपने आहार व्यवहार को चलाने के लिये उद्योग करने की इतनी अधिक चिन्ता क्यों करता हैं, जब कि सर्व प्रतिपालक परम पिता परमात्मा सर्व जीवों के पालन पोषण की चिन्ता में स्वयं लगा हुआ है। चट्टानों तथा पत्थरों में जो जीव उत्पन्न हुए हैं, उनका भोजन पहले ही परमेश्वर ने बना कर धरा हुआ है। हे मेरे मन ! जो लोग परमेश्वर के भक्तों की संगति में मिले हैं, वे संसार समुद्र से तर गये हैं। ब्रह्मवेत्ता गुरुकी कृपा से मुझे मोक्ष पद प्राप्त हुआ है। जिस सत्संगतिने सूखे काष्ठके समान शून्य हृदय को हरा भरा कर दिया है। माता, पिता, पुत्र, स्त्री कोई भी किसी के पालन पोषण का कारण नहीं, जीव को उत्पन्न करके परमेश्वर सर्व प्राणियों के भोजन की व्यवस्था स्वयमेव करता है। जो जीव जहां पर उत्पन्न हुआ है उसके खाने पीने का प्रबन्ध परमेश्वर ने स्वयं कर दिया है। जब ऐसी परिस्थिति है तब हे मेरे मन ! तूं भय क्यों करता है कि मुझे खाने पीने को कहां से मिलेगा।

हिमालय से सैकड़ों मील दूर कूंजों का दल उड़-उड़ कर नीचे की ओर आता है और अपने बच्चों को पीछे हिमालय में छोड़ आता है। उन बच्चों को पीछे चिड़ियों के समान बाहर से लाकर कौन खिलाता है, और मुर्गी के समान पैरों से खोद कर बच्चों को कौन चुगाता है ? उन्हें पीछे न कोई खिलाता है और न कोई चुगाता है, किन्तु हरएक कूंज अपने बच्चे का मन में स्मरण करती है। स्मरण करने मात्र से बच्चे की पालना होती है। जब साधारण पक्षियों में ऐसी बात है, तब हे मेरे मन ! तुझे चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है, जब कि तेरे लालन पालन की चिन्ता में परमेश्वर स्वयं ही तत्पर है। सर्व प्रकार की निधियां और अठारह प्रकार की सिद्धियां अपने प्रेमीभक्तों को देने के लिये ईश्वर ने अपनी हथेली पर रखी हुई हैं। श्री गुरु अर्जुनदेव जी कहते हैं कि ऐसे परम कृपालु परमेश्वर के ऊपर प्रतिदिन बारम्बार बलिहार जाना चाहिये और ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि हे परमपिता परमात्मन् ! आप अविनाशी अगम अगोचर होने के कारण अनन्त हैं। आपके अन्त का पारावार कोई भी ऋषि मुनि नहीं जानता।

विशेष व्याख्या— पूर्व शब्द में सत्संग का माहात्म्य कह कर अब कामज कोपज दोषों से रहित सत्संगति में रुचि वाले धनी मानी पुरुषों को हरि भक्ति करनी चाहिये, तथा अपने आहारादि और अन्य सम्बन्धियों के पालन की चिन्ता छोड़कर निर्धन पुरुष भी भक्ति करें इस बात को आगे कहते हैं।

काहे रे मन चितवहि उदमु जा आहरि हरि जीउ परिआ ॥

हे सत्संग की इच्छा वाले पुरुष ! तू मन में आहारादि के उद्यम का चिन्तन किसलिये करता है ? जब कि तुम्हारे, आहरि=आहारादि का उद्योग परमेश्वर स्वयमेव ही कर रहा है। दृष्टान्त देकर ईश्वर का उद्योग करना बतलाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सैल पथरमहि जंत उपाए ताका रिजकु आगै करि धरिआ ॥

सैल=बड़े पर्वतों की चट्टानों में, **पथरमहि**=छोटे पत्थरों के छिद्रों में, **जंत उपाए**=अजगरादि अनेक छोटे मोटे जीव जन्तु ईश्वर ने उत्पन्न किये हैं। **ताका रिजकु**=उन जीवों का आहार मृत्तिका पाषाणादि, **आगै करि धरिआ**=उनकी उत्पत्ति से पहले बना कर रख दिया है, ता कि उन्हें खाने पीने में कोई कठिनाई न हो। आहारादि की चिन्ता दूर कर सत्संग करने का उपदेश करते हैं। **मेरे माधउ जी**=मेरेस्वामी परमेश्वर के भक्तों की, **सतसंगति मिले सो तरिआ**=श्रेष्ठ संगति में गज गणिकादि दुराचारी भी आकर मिले तो वे भी तर गए। **गुर परसादि**=गुरु की प्रसन्नता से जिन पुरुषों ने, **परमपदु पाइआ**=परमपद प्राप्त किया है, **सूके कासट हरिआ**=वे सूखे काष्ट से हरेपन को प्राप्त हो गए हैं। अर्थात् शुष्क काष्ठ तुल्य नीरस जीवन को त्याग कर सरस ब्रह्मानन्द का अनुभवरूप हरापन प्राप्त करते हैं। सम्बन्धियों के पालन का अभिमान करने वाले पुरुषों के अहङ्कार का गुरु जी आगे खण्डन करते हैं।

जननि पिता लोक सुत बनिता कोइ न किसकी धरिआ ॥

माता, पिता, पुत्र, स्त्री किसी को किसी की आजीविका में ईश्वर ने आश्रय नहीं बनाया, अर्थात् पिता, माता, पुत्र की आजीविका में और पुत्र, पिता-माता की आजीविका में, एवं पति, स्त्री की तथा एक भाई दूसरे भाई की आजीविका में ईश्वर ने कारण नहीं बनाया; किन्तु परमेश्वर स्वयं ही सर्व का पालन पोषण करता है। **"ददा दाता एक है सबको देवणहार"**

यहां पर गुरुदेव जी का यह भाव है कि मुक्ति का द्वार मनुष्य शरीर जीव को बारम्बार नहीं मिलता। मानव जीवन प्राप्ति का परमलाभ यही है कि संसार के दुःखों से किसी प्रकार छुटकारा मिल सके। संसार के दुःखों से छूटना उपाय के अधीन है, उपाय का लाभ उपाय प्राप्ति की इच्छा के अधीन है। और उपाय प्राप्ति की इच्छा तब होती है जब धनवान पुरुष कामज कोपज दोषों को त्यागदें और निर्धन पुरुष अपने शरीर तथा सम्बन्धियों के पालन की चिन्ता का परित्याग करे। जबतक ऐसा नहीं होता तबतक उपाय प्राप्ति की इच्छा का होना दुर्घट है।

कामज दोष निम्न लिखित हैं—मृगया, (शिकार) द्यूत, (जूआ) दिन में शयन करना, निन्दा, निषिद्ध मैथुन, मद्यपान, नृत्य, गीत, वाद्य, इनको देखने सुनने वाले सर्वदा वेश्या भाण्डादि के दास बने रहते हैं, इसलिये ये उपेक्षणीय हैं। देश देशान्तरों में निष्प्रयोजन भ्रमण करनेसे समय का अपव्यय होता है, इसलिये व्यर्थ भ्रमण भी कामज दोष है। यहां पर सुख की इच्छा का नाम काम है, उससे उत्पन्न होने वाले को कामज कहते हैं। ये कामज दोष पुरुष के धर्म और अर्थ को नाश करते हैं, सत्संग और ईश्वर चिन्तन के विरोधी हैं। इसलिए मुमुक्षु को इनका परित्याग करना आवश्यक है।

कोपज दोष आठ प्रकार के हैं—पिशुनता, दुःसाहस, द्रोह, ईर्ष्या, (दूसरे की प्रतिष्ठा को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सहन न करना) असूया (दूसरे के गुणों में दोष निकालना, अर्थ दूषण (अन्याय से दूसरे के धन को लेना और योग्य स्थान में खर्च न करना । वाक्पारुष्य (कड़वा बोलना) दण्ड पारुष्य, (कठोर दण्ड देना, एक रुपया दण्ड देने की शक्ति वाले को पचास रुपए दण्ड लगाना, ये कोपज दोष भी परमार्थ के विरोधी हैं, इन दोषों का मूल कारण लोभ है । लोभ के बिना इच्छा नहीं होती, और इच्छा के बिना इच्छित वस्तु को नष्ट करने वाले पर क्रोध नहीं आता, इसलिये कामज कोपज दोषों का मूल कारण लोभ है । जो धनी पुरुष पूर्वोक्त दोषों में फँसे हैं और निर्धन पुरुष अपने शरीर और सम्बन्धियों की चिन्ता में व्यग्र हैं, उन्हें मुक्ति के साधनों की इच्छा का होना कठिन है । इस प्रकरण का सार यह है कि धनी लोग सभी दोषोंको त्यागकर श्रेष्ठ पुरुषों की संगति में जाकर ईश्वर का चिन्तन करें । तथा निर्धन पुरुष पालन पोषण की चिन्ता छोड़ कर ईश्वर की भक्ति करें, मानव जीवन का यही लाभ है । सभी जीवों का पालन पोषण ईश्वर स्वयं करता है, इस बात को गुरु जी आगे स्पष्ट करते हैं ।

सिरि सिरि रिजकु संबाहे ठाकुरु ॥ ठाकुरु=परमेश्वर स्वयं ही, **सिरिसिरि**=प्रत्येक शरीर के प्रति, **रिजकु**=आजीविका, **संबाहे**=अच्छी प्रकार देता है । **काहे मन भउ करिआ**= तू किसलिए सम्बन्धियों के पालन का भय मन में करता है । पालन पोषण की चिन्ता को त्यागने में कूंज पक्षी का दृष्टान्त कहते हैं । **ऊडे ऊडि आवै सै कोसा तिसु पाछै बचरे छरिआ ॥**

कूंज पक्षी अपने बच्चों को पीछे घोंसले में छोड़ कर सैकड़ों मील नीचे आ जाते हैं ।

तिनु कवणु खलावै कवणु चुगावै मन महि सिमरनु करिआ ॥

उन छोटे बच्चों को कौन खिलाता है और कौन चुगाता है, अर्थात् बच्चों के पास कोई खिलाने चुगाने वाला नहीं, किन्तु माता पिता उनका मन में केवल स्मरणमात्र ही करते हैं । किसी प्रकार की सहायता नहीं कर सकते, उस अकिञ्चित्कर स्मरणमात्र से बच्चों का पालन पोषण नहीं हो सकता । जैसे माता पिता के बिना वहां पर बच्चों का पालन पोषण ईश्वर करता है, वैसे ही सभी प्राणियों का पालन परमेश्वर स्वयं ही करता है, इसलिये चिन्ता करनी व्यर्थ है । सम्बन्धियों के सहयोग के बिना ईश्वर किस प्रकार जीवित रखता है ? ऐसी शङ्का के उत्तर में गुरु जी कहते हैं ।

सभि निधान दस असट सिधान ठाकुर करतल धरिआ ॥

नव निधियाँ तथा अठारह सिद्धियाँ जिस ईश्वर ने अपने हाथ के ऊपर धारण की हैं, उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को जीवों का लालन पालन करना कौन कठिन कार्य है । आहारादि की चिन्ता छोड़ कर ईश्वर की प्रसन्नता कैसे प्राप्त करें ? इसके उत्तर में गुरु जी सभी कुछ समर्पण करके प्रार्थना करने की आज्ञा करते हैं ।

जन नानक बलि बलि सद बलि जाईऐ तेरा अंतु न पारावरिआ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्री गुरु अर्जुनदेव जी कहते हैं कि मैं तन, मन, धन से अनेक बार सर्वदा बलिहार जाता हूं। हे परमेश्वर ! देश कालादि से तेरा किसी को अन्त नहीं प्राप्त होता। अथवा पारावरिआ=समुद्रवत् शान्त और गम्भीर ईश्वर ! आपका अन्त किसी को नहीं मिलता।

❀ प्रेम प्रबोधिनी व्याख्यायां पञ्चमं मन्त्रं समाप्तम् ॥ ५ ॥ ❀

राग आसा महला ४ सो पुरुखु। १ ओं सतगुरु प्रसादि।

सो पुरखु निरंजनु हरि पुरुखु निरंजनु हरि अगमा अगम अपारा।
सभि धिआवहि सभि धिआवहि तुधु जी हरि सचे सिरजणहारा॥
सभि जीअ तुमारे जी तूं जीआ का दातारा।
हरि धिआवहु संतहु जी सभि दूख बिसारणहारा॥
हरि आपे ठाकुरु हरि आपे सेवकु जी किआ नानक जंत विचारा॥१॥

शब्दार्थ— सो पुरुखु निरंजनु हरि पुरखु निरंजनु हरि अगमा अगम अपारा॥

सो पुरखु निरंजनु=माया मल से रहित वह परिपूर्णपुरुष भूत काल में, अगमा=मन वाणी से परे अगम्य था, तथा हरि पुरखु निरंजनु=वह निरञ्जन व्यापक पुरुष वर्तमान काल में भी, अगम=अगम्य है, और पाप विनाशक परिपूर्ण निरञ्जन पुरुष भविष्यत् काल में भी, अपारा=मन, वाणी से अतीत अगम्य ही रहेगा।

सभि धिआवहि सभि धिआवहि तुधु जी हरि सचे सिरजणहारा॥

हरि सचे सिरजणहारा=हे जगत् स्रष्टा सच्चे हरि ! तुधुजी=आपको ही, सभिधिआवहि=सभी जीव पहले पूजते थे तथा वर्तमान काल में भी, सभिधिआवहि=सर्व जीव मन, वाणी, शरीर से पूजते हैं और आगे भी पूजेंगे।

सभि जीअ तुमारे जी तूं जीआ का दातारा॥ सभि जीअ तुमारे जी=हे परमेश्वर ! सभी जीव तुम्हारे उत्पन्न किए हुए हैं, तूं जीआ का=और आप ही सब जीवों को भोग्य एवं मोक्ष के, दातारा=देने वाले दाता हैं।

हरि धिआवहु संतहु जी सभि दूख विसारण हारा॥

संतहु जी=हे सन्तो ! सभि दूख=सर्व दुःखों को, विसारणहारा=नष्ट करके सुख देने वाले हरि का, धिआवहु=ध्यान करो।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हरि आपे ठाकुरु हरि आपे सेवकु जी किआ नानक जंत विचारा ॥

हरि आपे ठाकुरु =परमात्मा आप ही स्वामी है और आप ही सेवक है, नानक =श्री गुरु रामदास जी कहते हैं कि, किआ जंत विचारा =मैं बेचारा असमर्थ जीव क्या हूँ जो ईश्वर के यश का वर्णन कर सकूं।

मूल– तूं घट घट अंतरि सरब निरंतरि जी हरि एको पुरखु समाणा।
इकि दाते इकि भेखारी जी सभ तेरे चोज विडाणा ॥
तूं आपे दाता आपे भुगता जी हउ तुधु बिनु अवरु न जाणा।
तूं पारब्रहमु बेअंतु बेअंतु जी तेरे किआ गुण आखि वखाणा ॥
जो सेवहि जो सेवहि तुधु जी जनु नानकु तिन कुरबाणा ॥२॥

शब्दार्थ– तू घट घट अंतरि सरब=हे हरि पुरुषोत्तम ! सर्व घटों के अन्तर, निरंतरि जी हरि एको पुरखु समाणा =निरन्तर एकरस आप ही समारहे हैं। इकिदाते इकि भेखारीजी=हे परमेश्वर ! संसार में कुछ पुरुष दाते और कुछ भिखारी बने हुए दिखाई देते हैं यह सब, विडाणा=आश्चर्यमय, तेरे =आपके,चोज =तमाशे हैं। तूं आपे दाता =तूं आप ही दाता हैं, आपे भुगता जी =और आप ही भोक्ता हैं; हउ तुधु बिनु =मैं तो तेरे बिना, अवरु न जाणा =और किसीको नहीं जानता। तूं पारब्रहमु बेअंतु बेअंतु जी तेरे किआ गुण आखि बखाणा ॥

तूं पार ब्रहमु =हे परब्रह्म परमेश्वर ! बेअंतु बेअंतु जी =आप तीनों कालों में अन्त से रहित हैं। तेरे किआ गुण आखि बखाणा =मैं आपके अपरिमित गुणोंको मुखसे क्या वर्णन करूं।

जो सेवहि जो सेवहि तुधु जी जनु नानकु तिन कुरबाणा ॥

नानकु =श्री गुरु रामदास जी कहते हैं कि, जो सेवहि जो सेवहि तुधु जी =जो सेवक आपका मन करके सेवन करते हैं, मैं तिन कुरबाणा =उनके ऊपर बलिहार जाता हूं।

मूल—हरि धिआवहि हरि धिआवहि तुधु जी से जन जुगमहि सुखवासी।
से मुकतु से मुकतु भए जिन हरि धिआइआ जी तिन तूटी जम की फासी ॥
जिन निरभउ जिन हरि निरभउ धिआइआ जी तिनका भउ सभु गवासी।
जिन सेविआ जिन सेविआ मेरा हरि जी ते हरि हरि रूप समासी ॥
से धंनु से धंनु जिन हरि धिआइआ जी जनु नानकु तिन बलिजासी ॥३॥

शब्दार्थ—हरि धिआवहि तुधु जी =हे हरे ! आपका मन और वाणी से जो ध्यान और पूजन करते हैं, से जन =वे सेवक, जुगमहि =युग युग में, सुखवासी =सुख पूर्वक निवास करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से मुकतु से मुकतु भए जिन हरि धिआइआ जी तिन तूटी जम की फासी ।

जिन हरि धिआइआ जी =जिन्होंने हरि का ध्यान किया है, से मुकतु =वे संसार से मुक्त हो गए हैं, तथा से मुकतु भए =मुक्ति की इच्छा से भी मुक्त हो गए हैं, तिन तूटी जम की फासी =और जन्ममरणरूप यम की फांसी भी उन्हों की टूट गई है।

जिन निरभउ जिन हरि निरभउ धिआइआ जी तिन का भउ सभु गवासी।

हरि निरभउ =भयादि से अतीत हे हरे ! जिन निरभउ =जिन्होंने संसार से निर्भय होकर निर्भय होने के लिये, धिआइआ जी =आपका ध्यान किया है, तिनका =उन्होंके, भउ सभु=सर्व प्रकारके भय को, गवासी =आप दूर कर देते हैं, और आगे भी आप दूर करेंगे।

जिन सेविआ जिन सेविआ मेरा हरिजी ते हरि हरि रूप समासी।

हे मेरे स्वामी हरि जी ! जिन सेविआ जिन सेविआ =जिन्होंने आपका मन और वाणी करके सेवन किया है, ते =वे, हरि हरि रूप =दुःखनाशक तेरे स्वरूप में, समासी =समा गए हैं।

से धंनु से धंनु जिन हरि धिआइआ जी जनु नानकु तिन बलि जासी ।

जिन =जिन्होंने, हरि धिआइआ जी =हे हरे ! आपका ध्यान किया है, से धंनु सेधंनु = वे पुरुष धन्य हैं, वे पुरुष धन्य हैं, जनु नानकु =श्री गुरु रामदास जी कहते हैं कि मैं, तिन = उन सेवकों पर, बलिजासी =बलिहार जाता हूं।

मूल—तेरी भगति तेरी भगति भंडार जी भरे बिअंत बेअंता।

तेरे भगत तेरे भगत सलाहनि तुधु जी हरि अनिक अनेक अनंता।

तेरी अनिक तेरी अनिक करहि हरि पूजा जी तपु तापहि जपहि बेअंता।

तेरे अनेक तेरे अनेक पड़हि बहु सिम्रिति सासतजी करि किरिआखट करम करंता॥

से भगत से भगत भले जन नानक जी जो भावहि मेरे हरि भगवंता॥४॥

शब्दार्थ— तेरी भगति तेरी भगति भंडार जी भरे बिअंत बेअंता।

बे अंता =हे अनन्त परमेश्वर ! तेरी भगति तेरी भगति भंडार जी =तेरी भक्ति के भण्डार भक्तों के हृदय, भरे बिअंत =तीनों कालमें अत्यन्त भरे हुए हैं।

तेरे भगत तेरे भगत सलाहनि तुधु जी हरि अनिक अनेक अनंता।

अनंता =हे अनन्त ! जगदीश्वर, तेरे भगत तेरे भगत =तेरे अनेक पुजारी सेवक, तीनों काल में, तुधु जी= आपकी, सलाहनि स्तुति करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तेरी अनिक तेरी अनिक करहि हरि पूजा जी तपु तापहि जपहि बेअंता ॥

बेअंता =हे अनन्त हरि जी ! तेरी अनिक तेरी अनिक करहि हरि पूजा जी =तेरी अनेक प्रकार की पूजा है, और आपकी प्राप्ति के लिये अनेक पुजारी पूजा करते हैं, तपु तापहि = अनेक तपस्वी, सात्त्विक, राजस, तामस कठिन तपों को करते हैं। जपहि बेअंता =अनेक ही पुरुष अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिये तेरा जप करते हैं।

तेरे अनेक तेरे अनेक पड़हि बहु सिम्रिति सासत जी करि किरिआ खटु करम करंता।

हे परमेश्वर ! तेरे अनेक तेरे अनेक =तेरे स्वरूप का प्रतिपादन करनेवाले अनेक, सासत जी =वेदान्त, न्याय, मीमांसा, वैशेषिकादि शास्त्र हैं, और अनेक ही धर्म के स्वरूप को बताने वाली सिम्रिति =मनु, वसिष्ठ, गौतम, पराशर, याज्ञवल्क्यादि स्मृतियां हैं, तथा अनेक ही जिज्ञासु जन, पड़हि =शास्त्रों और स्मृतियों को पढ़ने वाले हैं, और अनेक पुरुष, करि किरिआ =यज्ञादि कर्मों को करते हैं। तथा अनन्त ही, खटु करम करंता =यजन, याजन, अध्ययनाध्यापनादि षट् कर्मों को करते हैं। से भगत से भगत भले जन नानक जी जो भावहि मेरे हरि भगवंता।

जन नानक =श्री गुरुदेव जी कहते हैं हे मेरे भगवन् हरि जी ! जो भावहि =जो आपको अच्छे लगते हैं, से भगत से भगत =वे भक्त सर्वदा काल, भले =श्रेष्ठ हैं।

मूल---तूं आदि पुरखु अपरंपरु करता जी तुधु जेवडु अवरु न कोई।
तूं जुगु जुगु एको सदा सदा तूं एको जी तूं निहचलु करता सोई।
तुधु आपे भावै सोई वरतै जी तूं आपे करहि सु होई।
तुधु आपे स्रिसटि सभ उपाई जी तुधु आपे सिरजि सभ गोई।
जनु नानकु गुण गावै करते के जी जो सभसै का जाणोई ॥ ५ ॥ १ ॥

शब्दार्थ— तूं आदि पुरखु अपरंपरु करता जी तुधु जेवडु अवरु न कोई।

तूं अदि पुरखु =हे पूर्णपुरुष तूं ! सर्व का आदि कारण है, और अपरंपरु करता जी = चींटी से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त सर्व का कर्ता हैं। इसलिये तुधु जेवडु अवरु न कोई =तेरे जैसा महान् कोई और दूसरा नहीं है।

तूं जुगु जुगु एको सदा सदा तूं एको जी तूं निहचलु करता सोई ॥

तूं जुगुजुगु एको =तूं प्रत्येक युग में एक हैं। सदा सदा तूं एको जी =पुनः सर्वदा एक अद्वितीयस्वरूप हैं। सोई तूं वही तूं, निहचलु =कूटस्थ (अविकारी, करता =कर्ता पुरुष हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुधु आपे भाव सोई वरतै जी तूं आपे करहि सु होई ॥

तुधु आपे=हे परमेश्वर ! जो आपको, भावै=अच्छा लगता है, सोई वरतै जी=वही होता है, तू आपे करहि=जो तुम करते हो, सुहोई=वही बात होती है।

तुधु आपे स्रिसटि सभ उपाई जी तुधु आपे सिरजि सभ गोई ।

तुधु आपे स्रिसटि सभ=तुमने आप ही सम्पूर्ण सृष्टि, उपाई जी=उत्पन्न की है, और तुधु आपे=आपने ही, सिरजि=उत्पन्न की हुई सृष्टि अपने में, गोई=मिलाई (छिपाई) है, अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति पालना संहार को आप ही करने वाले हैं।

जनु नानकु गुण गावै करते के जी जो सभसै का जाणोई ।

जन नानकु=श्री गुरु रामदास जी कहते हैं, करते के जी=हे कर्ता पुरुष आप सर्व को, जाणोई=जानने वाले एवं सर्व को उत्पन्न करने वाले हैं। जनु=मैं आपका सेवक तुम्हारे ही, गुण गावै=गुणों को गायन करता हूं।

भावार्थ— माया मल से रहित परिपूर्ण पुरुषोत्तम भूतकाल में मन वाणी से परे अगोचर था। तथा वह निरञ्जन पुरुष वर्तमान काल में भी अगम्य है, और हरि पुरुष निरञ्जन भविष्यत् काल में भी अगम्य ही रहेगा। हे जगत स्रष्टा परमेश्वर ! सभी जीव आपको पहले पूजते थे, अब वर्तमान काल में भी पूजते हैं, और आगे भविष्य में भी आपकी पूजा करेंगे। हे जगदीश्वर ! सभी चराचरात्मक सृष्टि तुम्हारी है और आप ही सर्व जीवों को भोग्य एवं मोक्ष को देने वाले दाता हैं। हे सन्तो ! सभी दुःखों को नष्ट करने वाले परमेश्वर का स्मरण करो। वह परमेश्वर आप ही स्वामी और आप ही सेवक है। श्री गुरु रामदास जी कहते हैं कि मैं बेचारा जीव क्या शक्ति रखता हूँ जो आपके यश का वर्णन कर सकूं ॥ १ ॥

हे हरि पुरुषोत्तम ! सभी प्राणियों के अन्तःकरण में एक रस आप ही समा रहे हैं। हे परम पिता परमात्मन ! संसार में एक पुरुष दाता और दूसरा भिखारी जो प्रतीत होता है ये सभी आश्चर्यमय आपके ही कौतुक हैं। वास्तव में आपही दाता हैं और आप ही भोक्ता हैं। मैं तो आपके बिना और किसी को नहीं जानता। हे परब्रह्म परमेश्वर ! आप अन्त से रहित हैं, मैं आपके महान् गुणों को मुख से क्या वर्णन करूं ? श्री गुरुदेव जी कहते हैं कि जो आपके सेवक सच्चे मन से आपका पूजन करते हैं मैं उनके ऊपर बलिहार जाता हूं ॥ २ ॥

हे हरे ! आपके जो सेवक मन वाणी से ध्यान पूजन सेवन करते हैं, वे युग युग में सुखपूर्वक निवास करते हैं। जिन्होंने हरि का ध्यान किया है वे संसार से मुक्त हो गये हैं, एवं मुक्ति की इच्छा से भी मुक्त हो गए हैं। जन्म मरणरूप यम की फांसी भी उन्हों की टूट गई है। भयादि से अतीत हे हरे ! जिन लोगों ने निर्भीक होकर सर्वदा निर्भय होने के लिये आपका ध्यान किया है, उन्होंके सभी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रकार के भय को आप दूर कर देते हैं। हे मेरे स्वामिन्! जिन भक्तों ने आपका मन, वाणी से पूजन सेवन किया है, वे लोग त्रिगुणातीत सुखमय तुम्हारे स्वरूपमें समागए हैं। हे हरे! जिन लोगोंने आपका निरन्तर मनन किया है वे पुरुष धन्य हैं। श्री गुरुदेव जी कहते हैं कि मैं ऐसे सेवकों पर पुनः पुनः बलिहार जाता हू ॥ ३ ॥

हे अनन्त परमेश्वर! तेरी भक्ति के भण्डार भक्तों के हृदय अत्यन्त भरे हुए हैं। हे अनन्त परमात्मन्! आपके अनेक भक्त अहोरात्र तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे अनन्त शक्तिशालिन्! आपकी प्राप्ति के लिये पुजारी लोग अनेक प्रकार की पूजा करते हैं, और अनेक तपस्वी, राजस, तामस, विविध प्रकार के कठिन तपों को तपते हैं। अनेक ही पुरुष अनेक प्रकार के मन्त्रों का जप करते हैं। हे जगदीश्वर! तेरे स्वरूप का प्रतिपादन करने वाले अनेक शास्त्र एवं अनेक स्मृतियां हैं, तथा असंख्य भक्त जन शास्त्रों और स्मृतियों को पढ़ने वाले हैं। अनेक ही श्रद्धालु दान व यज्ञादि कर्मों को करते हैं और अनन्त ही जिज्ञासु यजन याजन अध्ययनाध्यापनादि षट् कर्मों को करते हैं। श्री गुरु रामदास जी कहते हैं हे मेरे भगवन्! जो आपको अच्छे लगते हैं वे भक्त सर्वदा श्रेष्ठ हैं ॥४॥

हे पूर्ण पुरुष परमात्मन्! आप सर्व के आदि कारण हैं, और चींटी से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त सभी को उत्पन्न करनेवाले हैं। इसलिये संसार में आप जैसा महान् और कोई नहीं। आप प्रत्येक युग में अखण्ड एक रस अद्वितीय स्वरूप हैं और वही आप कूटस्थ अविकारी कर्ता पुरुष हैं। हे जगदीश्वर! जो आपको अच्छा लगता है वही होता है, जो आप करते हैं वही बात होती है। तुमने स्वयं ही सृष्टि उत्पन्न की है, और आप ने ही उत्पन्न की हुई सृष्टि को अपने में छिपाया है। उत्पत्ति, पालन, संहार आपके अतिरिक्त और कोई करने वाला नहीं। श्री गुरु रामदास जी कहते हैं कि हे कर्ता पुरुष! आप सर्व को जानने वाले एवं सर्व को उत्पन्न करने वाले हैं। मैं आपका सेवक रात्रि दिन तुम्हारे गुणों का गायन करता हूं।

विशेष व्याख्या— **सो पुरखु निरंजनु**=देश कालादि के अन्त से रहित वह निरञ्जन पूर्ण पुरुष दुःख से रहित सुख स्वरूप है। **हरि पुरखु निरंजनु**=वह परमात्मा अज्ञान तत्कार्य को वृत्ति में आरूढ़ होकर हरण करता है, इसलिये दुःख रहित सुख स्वरूप है।

प्रश्न— क्या परमात्मा मन वाणी का विषय है?

समाधान— **हरि अगमा अगम अपारा**। पापों को हरण करने वाला हरि, **अगमा**=शक्ति वृत्ति से वाणी का विषय नहीं तथा **अगम**=मलिन मन का भी विषय नहीं, इसलिये, **अपारा**=पारावार से रहित है। निर्विशेष स्वरूप का प्रतिपादन करके अब सविशेष रूपका गुरु जी प्रतिपादन करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सभिधिआवहि सभिधिआवहि तुधुजी हरि सचे सिरजणहारा ॥

हे जगत् स्रष्टा सच्चे हरि ! सगुण तथा निर्गुण उपासक सभी लोग आपका ही ध्यान करते हैं।

सभि जीअ तुमारे जी तूं जीआ का दातारा ॥

हे ईश्वर ! सभी जीव तुम्हारे हैं और तुम्हीं जीवों के शुभाशुभ कर्मों के फल प्रदाता हो। दुःख निवृत्ति के लिये ईश्वर का ध्यान करना आवश्यक है, इस बात को आगे कहते हैं।

हरि धिआवहु संतहु जी सभि दूख विसारणहारा ॥

हे सत्पुरुषो ! सर्व दुःखों को नाश करने वाले हरि का अपनी कल्याण के लिये ध्यान करो।

हरि आपे ठाकुरु हरि आपे सेवक जी किआ नानक जंत विचारा ॥

हरि आप ही पूजनीय है, और आप ही सेवक है इसलिये गुरु जी कहते हैं कि हरि से भिन्न असमर्थ जीव क्या शक्ति रखता है। अब आगे गुरु जी ईश्वर की व्यापकता को कहते हैं।

तूं घट घट अंतरि सरब निरंतरि जी हरि एको पुरखु समाणा ॥

हे परमेश्वर ! आप चेष्टा के आश्रय स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरों के भीतर, तथा अविद्यारूप कारण शरीरों के अन्तर आठ पुरियों में शयन करने वाले सर्वव्यापक एक पुरुष हैं।

प्रश्न— जब परमेश्वर एक है तब कहीं पर दाता और कहीं पर भिखारी, ऐसी विषमता क्यों दिखाई देती है ? समाधान— इकि दाते इकि भेखारी जी सभ तेरे चोज विडाणा ॥

उत्तम कर्म के प्रभाव से कई एक दान करने वाले श्रेष्ठ पुरुष दाता हैं और न्यून कर्म के प्रभाव से कुछ लोग भिखारी दिखाई देते हैं। ये सब आपके ही आश्चर्यजनक कार्य हैं। उत्तम, मध्यम, उपाधियों के भेद रहने पर भी वास्तव में तेरे बिना और दूसरा कोई नहीं। इसी बात को आगे कहते हैं।

तूं आपे दाता आपे भुगता जी हउ तुधु बिनु अवरु न जाणा ॥

तूं आप ही दाता हैं और आप ही भोक्ता हैं। मैं तेरे बिना दूसरा कोई नहीं देखता, अर्थात् दाता से लेकर भोक्ता पर्यन्त आपके बिना मैं अन्य किसी को नहीं जानता। हे ईश्वर ! आप कहीं याचक और कहीं दाता रूप से दृष्टिगोचर हो रहे हो।

तूं पार ब्रह्मु बेअंतु बेअंतु जी तेरे किआ गुण आखि वखाणा ॥

हे ईश्वर ! आप अविद्या तत्कार्य से परे व्यापक परब्रह्म हैं। इसलिये, बेअंतु=देशकृत अन्त से रहित हैं एवं बेअंतु=कालकृत और वस्तुकृत अन्त से रहित हैं, इसलिये तेरे निर्विशेष निर्गुण स्वरूप का, तथा सविशेष सगुण रूप के सत्यसंकल्पादि गुणों का मैं क्या वर्णन करूं अर्थात् कुछ भी कथन नहीं कर सकता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जो सेवहि जो सेवहि तुधु जी जनु नानकु तिन कुरबाणा ॥

श्री गुरु रामदास जी कहते हैं, जो प्रेमी तेरे निर्गुण वा सगुण स्वरूप की सेवा करते हैं, मैं, तन, मन, धन से उनके ऊपर बलिहार जाता हूं। अब परमात्मा के ध्यान का फल बतलाते हैं।

हरि धिआवहि हरि धिआवहि तुधु जी से जन जुगमहि सुखवासी ॥

हे परमेश्वर ! जो भक्त आपके स्वरूप का ध्यान करते हैं वे प्रेमी युग युग में तेरे स्वरूप में सुखपूर्वक निवास करते हैं।

से मुकतु से मुकतु भए जिन हरि धिआइआ जी तिन तूटी जम की फासी।

से मुकतु=वे सगुण उपासक, सालोक्य, सामीप्य आदि मुक्ति को तथा, से मुकतु भए= वे निर्गुण उपासक कैवल्य मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। जिनउप ासकों ने परमेश्वर का ध्यान किया है उनकी सर्वदा के लिये यम की पाश टूट गई है। भक्तों को ध्येय के अनुसार फल की प्राप्ति बतलाते हैं।

जिन निरभउ जिन हरि निरभउ धिआइआ जी तिन का भउ सभु गवासी।

जिन सगुण उपासकों ने जन्म मरण से रहित परमात्मा का ध्यान किया है, तथा जिन निर्गुण उपासकों ने अज्ञान तत्कार्य को हरण करने वाले कल्याणस्वरूप परमात्मा का ध्यान किया है उन दोनों प्रकार के सेवकों के वह हरि जन्म मरण के भय को दूर करता है।

जिन सेविआ जिन सेविआ मेरा हरि जी ते हरि हरि रूपि समासी ॥

जिन प्रेमियों ने मेरे स्वामी हरि का पूजन सेवन किया है, वे हरि के स्वरूप में समा जायेंगे। ध्यान का फल बतला कर अब ध्यानी पुरुषों की सेवा करने का उपदेश देते हैं।

से धंनु से धंनु जिन हरि धिआइआ जी जनु नानकु तिन बलिजासी ॥

जिन्होंने हरि का ध्यान किया है वे उपासक धन्य हैं। श्री गुरु रामदास जी कहते हैं कि मैं सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार के उपासकों पर बलिहार जाता हूं।

तेरी भगति तेरी भगति भंडार जी भरे बिअंत बेअंता ॥

हे अविनाशी परमेश्वर ! तेरी नवधा भक्ति से अनेक भक्तों के हृदयरूप खजाने तथा वेद शास्त्र पुराणादि भंडार भरे हैं।

तेरे भगत तेरे भगत सलाहनि तुधु जी हरि अनिक अनेक अनन्ता

अनन्ता=हे अनन्त परमेश्वर ! तेरे भगत तेरे भगत=तेरे अनेक सगुण उपासक, तथा असंख्य निर्गुण उपासक अनेक प्रकार के स्तोत्रों से तेरी प्रशंसा करते हैं ॥

तेरी अनिक तेरी अनिक करहि हरि पूजा जी तपु तापहि जपहि बेअंता ॥

हे हरे ! अनेक भक्त आपका षोडश विधि से पूजन सेवन करते हैं, तथा अनेक सेवक तेरी प्राप्ति के लिये पञ्चाग्नि आदि तपों को करते हैं। एवं अनेक प्रेमी जपने योग्य मन्त्रों को जपते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तेरे अनेक तेरे अनेक पड़हि बहु सिम्रिति सासत जी करि किरिआ खटु करम करंता ॥

हे ईश्वर ! अनेक भक्त आपको जानने के लिये स्मृतियों और शास्त्रों को पढ़ते हैं। तथा तेरे अनेक प्रेमी स्नानादि क्रिया से निवृत्त होकर अपने अपने वर्ण के अनुसार पठन, पाठन, यजन याजन आदि षट् कर्मों को करते हैं।

से भगत से भगत भले जन नानक जी जो भावहि मेरे हरि भगवन्ता ॥

सभी भक्तों में वे भक्त अति श्रेष्ठ हैं जो मेरे भगवान् को अच्छे प्रतीत होते है। अथवा भले शब्द का दोनों भगत शब्दों के साथ सम्बन्ध है। वे भगत परम श्रेष्ठ हैं जो अपने आध्यात्मिकादि दुःखों की निवृत्ति के लिये मेरे स्वामी भगवान् का, भावहि=चिन्तन करते हैं। भगवन्ता शब्द का मूल भगवत है। जिसमें निम्न लिखित छः बातें हों उसे भगवान कहते हैं। समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, वैराग्य, मोक्ष। ऐश्वर्यस्य समग्रस्यधर्मस्य यशसः श्रियः। वैराग्यस्याथ मोक्षस्य षण्णां भगा इतीरणाः ॥ अथवा जगत् की उत्पत्ति और प्रलय, जीवों का आना और जाना विद्या और अविद्या इन छः बातों को पूर्ण रीति से जानने वाले का नाम भगवान है। विष्णु पुराण 6/5/74

उत्पत्तिं प्रलयंचैव भूतानामागतिं गतिम्। वेत्तिविद्यामविद्यांच स वाच्योभगवानिति ॥ 6/5/78

तूं आदि पुरखु अपरंपर करता जी तुधु जेवडु अवरु न कोई ॥

हे परमेश्वर ! आप सर्व के आदि मूल पुरुष हैं, ब्रह्मा इन्द्रादि से उत्कृष्ट एवं संसार के निर्माता हैं। इसलिये तुम्हारे सदृश संसार में कोई महत्त्वशाली नहीं।

तूं जुगु जुगु एको सदा सदा तूं एको जी तूं निहचलु करता सोई ॥

हे ईश्वर आप प्रत्येक युग में एक हैं तथा सदा=भूत, भविष्यत्, वर्तमान काल में, सदा= नित्य शाश्वत सर्वदा एक हैं। इसलिये तूं निहचलु करता सोई=तुम ही संसार के स्थायी कर्ता हो तेरे सदृश और कोई नहीं।

तुधु आपे भावै सोई वरतै जी तूं आपे करहि सु होई ॥

हे ईश ! किसी अन्य पुरुष की शिक्षा के बिना जो तेरे को अच्छा प्रतीत होता है, वही संसार में होता है। किसी अन्य व्यक्ति के उपदेश के बिना जो तुम करते हो वही होता है, उससे न्यूनाधिक नहीं होता।

तुधु आपे स्रिसटि सभ उपाई जी तुधु आपे सिरजि सभ गोई ॥

हे जगत्पते ! आपने यह सम्पूर्ण सृष्टि उत्पन्न की है, तथा सृष्टिको बनाकर महाप्रलय में आप अपने में लीन कर लेते हो।

जनु नानकु गुण गावै करते के जी जो सभ सै का जाणोई ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्री गुरु रामदास जी कहते हैं कि जो परमात्मा सर्व का ज्ञाता है उसके सत्यसंकल्पादि गुणों को श्रद्धा भक्तिपूर्वक उक्त रीति से जिज्ञासु गायन करे। यहां पर यह समझना चाहिये कि जब भी बोलने वा कुछ कहने की इच्छा हो, तब मधुर एवं आदर वाचक शब्दों का प्रयोग करे। अशुभ एवं अनादर वाचक शब्दों का प्रयोग कदापि न करे। यह शिक्षा देने के लिये पूर्वोक्त शब्द में तुधु जी, तुमारे जी, संतहुजी इत्यादि अनेक स्थलों में गुरुदेव जी ने, जी शब्द का प्रयोग किया है। इसलिये पुनरुक्ति दोष की शङ्का नहीं करनी चाहिये।

॥ प्रेम प्रबोधिनी व्याख्यायां षष्ठं मन्त्रं समाप्तम् ॥६॥

आसा महला ॥ ४ ॥

तूं करता सचिआरु मैडा सांई। जो तउ भावै सोई थीसी जो तूं देहि सोई हउ पाई ॥१॥रहाउ॥ सभ तेरी तूं सभनी धिआइआ। जिसनो क्रिपा करहि तिनि नामु रतनु पाइआ। गुरमुखि लाधा मन मुखि गवाइआ। तुधु आपि विछोड़िआ आपि मिलाइआ ॥१॥ तूं दरिआउ सभ तुझ ही माहि। तुझ बिनु दूजा कोई नाहि।
जीअ जंत सभि तेरा खेलु। विजोगि मिलि विछुड़िआ संजोगी मेलु ॥२॥
जिसनो तूं जाणाइहि सोई जनु जाणै। हरि गुण सद ही आखि वखाणै।
जिनि हरि सेविआ तिनि सुखु पाइआ। सहजे ही हरि नामि समाइआ ॥३॥
तूं आपे करता तेरा कीआ सभु होइ। तुधु बिनु दूजा अवरु न कोइ।
तूं करि करि वेखहि जाणहि सोइ। जन नानक गुरुमुखि परगटु होइ ॥४॥२॥

शब्दार्थ— तूं करता सचिआरु मैडा सांइ। तूं करता=हे कर्ता पुरुष! तूं ही, मैडा=मेरा, सचिआरु=सच्चा, सांई=स्वामी हैं।

जो तउ भावै सोई थीसी जो तूं देहिं सोई हउ पाई। जो तउ=जो आपको, भावै=अच्छा लगता है, सोई थीसी=वही होता है और होगा, जो तूं देहि=जो आप देते हैं, सोई हउ पाई=वही हम प्राप्त करते हैं। सभ तेरी तूं सभनी धिआइआ। सभ तेरी=सम्पूर्ण सृष्टि तुम्हारी है, तूं सभनी धिआइआ=सभी ने तेरा ही स्मरण किया है।

जिसनो क्रिपा करहि तिनि नाम रतनु पाइआ। जिसनो क्रिपा करहि=जिस पर आप कृपा करते हैं, तिनि नामु रतनु पाइआ=वही तेरे नाम रत्न को प्राप्त करते हैं।

गुरुमुखि लाधा। आपकी कृपा वाले, गुरमुखि=प्रेमियों ने नामरूपी रत्न को, लाधा=

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्राप्त किया। अर्थात् नाम जपकर अपने जीवन को सफल किया है।

मन मुखि गवाइआ। मनमुखि=तुम्हारी कृपा से हीन बहिर्मुख लोगों ने, नाम रत्न को, गवाइआ=खो दिया है, अर्थात् नाम के बिना मानव जीवन को भोग्य पदार्थों की प्राप्तिमें व्यर्थ ही नष्ट करदिया है। अथवा जिज्ञासु पुरुषों ने परमेश्वर को प्राप्त किया है। तथा साधनहीन मनमुख पुरुषों ने ईश्वर को भुला दिया है। तुधु आपि विछोड़िआ आपि मिलाइआ। तुधु आपि=आपने अज्ञानी पुरुषों को, विछोड़िआ=विछोड़ दिया है, और साधन सम्पन्न विचारशीलों को आपने सत्संगति के द्वारा, आपि=अपने में, मिलाइआ=मिला लिया है।

तूं दरिआउ सब तुझ ही माहि। हेपरमेश्वर! तूं दरीआउ=आप समुद्र रूप हैं। सभ तुझ ही माहि=सारी सृष्टि तेरे में तरङ्गों के समान व्याप्त हो रही है। तुझ बिनु दूजा कोई नाहि। आपके बिना दूसरा कोई भी नहीं है, क्योंकि वीचि तरङ्गके फेन बुदबुदे सब जलरूप ही होते हैं।

जीअ जंत सभि तेरा खेलु=छोटे बड़े जितने भी जीव हैं सब तेरी ही अद्भुत लीला है। विजोगि मिलि विछुड़िआ संजोगी मेलु=जिनको सत्संग प्राप्तनहीं हुआ वे विछुड़िआ=विछुड़े हुए अज्ञानी पुरुष, विजोगि=तेरे वियोगी हैं। तथा जिन जिज्ञासु पुरुषों को, मेलु=सत्संग की प्राप्ति हुई है वे पुरुष, संजोगी=तेरे संयोगी हैं। अथवा विजोगि=वियोग के समय मिला हुआ पदार्थ विछुड़िया=वियुक्त हो जाता है। तथा संजोगि=संयोग के समय विछुड़े हुए पदार्थ का, मेलु=मिलाप होता है।

जिसनो तूं जाणाइहि सोई जनु जाणै। हे परमेश्वर! जिसनो=जिसको तूं जाणाइहि=गुरुस्वरूप होकर आप समझाते हैं, सोई जनु जाणै=वही मनुष्य इस विधि को जानता है और वही, हरि गुण सदही=रात्रि दिन हरि के गुणों को, आखि वखाणै=व्याख्यान करता है। जिनिहरि सेविआ=जिसने हरि परमात्मा का सेवन किया है, तिनि सुखु पाइआ=उसी ने सुखस्वरूप आत्मपद को पाया है। सहजे हि हरिनामि समाइआ=हे हरे! वह पुरुष स्वाभाविक ही तुझ नामी हरि में समा गया है।

तूं आपे करता तेरा कीआ सभु होइ। हे परमेश्वर! तूं आपे करता=इस सम्पूर्ण विश्व के आप ही स्वतन्त्र कर्ता हैं। तेरा कीआ सभु होइ=संसार में सभी कुछ तेरा किया हुआ होता है। तुधु बिनु दूजा अवरु न कोइ=तेरे बिना और कोई दूसरा स्वतन्त्र कर्ताधर्ता नहीं है। तूं करि करि=आप ही सम्पूर्ण रचना को रच कर, वेखहि=कौतुक देख रहे हैं, तथा जाणहि सोइ=वही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आप सृष्टिरचना के भेद को जानते हो। **जन नानक**=श्री गुरु रामदास जी कहते हैं कि, **गुरमुखि परगटु होइ**=आप गुरुमुख जिज्ञासु पुरुष को गुरु के द्वारा प्रकट होते हैं।

भावार्थ— हे कर्ता पुरुष ! आप ही मेरे सच्चे स्वामी हैं, जो आपको अच्छा लगता है वह ही होता है। जो आप देते हैं वही हम प्राप्त करते हैं। सम्पूर्ण सृष्टि आपकी है, और सभी लोग आपका ही स्मरण करते हैं। परन्तु आप जिस पर कृपा करते हैं वही तेरे नाम रत्न को प्राप्त करता है। आपकी कृपा वाले प्रेमियों ने नामरूपी रत्न को प्राप्त किया है। अर्थात् नाम जप कर अपने मानव जीवन को सफल किया है। आपकी कृपा से विहीन अज्ञानी लोगों ने नाम रत्न के बिना मनुष्य जीवन को संसार के भोगों में व्यर्थ ही खो दिया है। आपने मनमुख पुरुषों को वियुक्त किया है, और साधनसम्पन्न गुरुमुख पुरुषों को सत्संगति के द्वारा अपने में मिला लिया है।

हे परमेश्वर ! आप समुद्र रूप हैं। सारी सृष्टि तेरे में तरङ्गों के समान है। आपके बिना दूसरी और कोई वस्तु नहीं है। क्योंकि वीचि, तरङ्ग, फेन बुदबुदे सभी जल रूप ही होते हैं। छोटे बड़े जितने भी जीव हैं सब तेरी ही लीला है। जिनको सत्संग प्राप्त नहीं हुआ वे बिछुड़े हुए अज्ञानी पुरुष तेरे वियोगी हैं, तथा जिन जिज्ञासु पुरुषों को सत्संगति प्राप्त हुई है वे पुरुष तेरे संयोगी है। हे परमेश्वर ! जिसको आप ब्रह्मवेत्ता गुरु स्वरूप होकर समझाते हैं वही मनुष्य आपके वास्तविक स्वरूप को जानता है और वही अहोरात्र तेरे पवित्र गुणों का व्याख्यान करता है। जिसने हरि का सेवन पूजन किया है, उसी ने सुख स्वरूप आत्मपद को प्राप्त किया है। हे हरे ! वह पुरुष स्वाभाविक ही तेरे में लीन हो गया है। हे परमेश्वर ! आप ही स्वतन्त्रकर्ता हैं, इसलिये सभी कुछ तेरी इच्छा के अनुसार होता है। तेरे बिना और कोई दूसरा विश्व का कर्ता धर्ता नहीं। आप ही सम्पूर्ण रचना को रचकर फिर कौतुक देख रहे हैं। आप ही सम्पूर्ण रचना के भेद को जानते हैं। श्री गुरुदेवजी कहते हैं कि जिज्ञासु पुरुषों को गुरु के द्वारा आप प्रकट होते हैं।

विशेष व्याख्या— पूर्व शब्द में निर्विशेष सविशेष स्वरूप का ध्यान भक्ति और गुणानुवाद का प्रकार कह कर पुनः उसी को स्पष्ट करते हैं। **तूं करता सचिआरु मैडा सांई।**

हे ईश्वर ! तुम सृष्टि के कर्ता हो, तथा वेद वाणी के, **सचिआरु**=यथार्थ वक्ता हो, इसलिये, **मैडा सांई**=आप मेरे स्वामी हो। आगे ईश्वरीय स्वतन्त्रता और कर्मानुसार फल प्रदातृत्त्व बोधन करते हैं। **जो तउ भावै सोई थीसी जो तूं देहि सोई हउ पाई।**

जो आपको अच्छा लगता है वही होता है एवं होगा। भाव यह है—करने न करने एवं अन्यथा करने वाले को ईश्वर कहते हैं। इसलिये सर्वतन्त्र स्वतन्त्र ईश्वर ! जो आपको सुन्दर एवं लाभप्रद प्रतीत होता है वही संसार में होता है। पुनः हे ईश्वर ! जो तुम जीवों को कर्मानुसार फल देते हो वही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उन्हें प्राप्त होता है। शक्तिशाली ईश्वर के प्रेमी को नाम रत्न प्राप्त होता है इस बात को आगे कहते हैं।

सभ तेरी तूं सभनी धिआइआ। जिसनो क्रिपा करहि तिनि नामु रतनु पाइआ ॥

सम्पूर्ण सृष्टि आपकी है इसलिये सभी जीव अपनी अपनी रुचि के अनुसार अनेक रूपों में आपका ध्यान करते हैं। हे परमात्मन्! जिस पर आप कृपा करते हैं, वही पुरुष तेरी प्राप्ति का हेतु नाम रत्न को प्राप्त करता है।

गुर मुखि लाधा मन मुखि गवाइआ। तुधु आपि विछोड़िआ आपि मिलाइआ ॥

नाम की प्राप्ति द्वारा गुरुमुख जिज्ञासु पुरुष को तेरा लाभ हुआ है, और संसार परायण मनमुख अज्ञानी पुरुष ने तेरे को खोदिया है। भाव यह है कि भैरव शीतला आदि तथा पीपल और बड़ आदि नाना रूपों से ध्यान करने वाले अज्ञानी पुरुषों को आपकी प्राप्ति कठिन है, क्योंकि उनका ध्यान और पूजन अविधिपूर्वक है। नामरत्न से श्रेष्ठ पुरुषों को आपकी प्राप्ति होती है। गुरुमुख एवं मनमुख पुरुषों को लाभ तथा अलाभ भी तेरी इच्छा से होता है इस बात को आगे कहते हैं।

तुधु आपि विछोड़िआ आपि मिलाइआ। परमेश्वर ने स्वयं ही असाधु कर्मों में लगाकर अज्ञानी जीवों को अपने से वियुक्त कर दिया है, तथा गुरुमुख पुरुषों को श्रेष्ठ कर्मों में प्रवृत्त करके अपने साथ मिला लिया है। अब अद्वैत बोधन के लिये नदी तरङ्ग न्याय से सर्व की उपादानता ईश्वर में बोधन करते हैं।

तूं दरिआउ सभ तुझ ही माहि। तुझ बिनु दूजा कोई नाहि ॥

हे परमेश्वर! आप नदी के समान हैं, इसलिये सम्पूर्ण चराचरात्मक सृष्टि तरङ्गों के समान तेरे में स्थित है आपके अतिरिक्त दूसरा कोई पदार्थ नहीं। **जीअ जंत सभि तेरा खेलु**= ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्रादि उत्तम कोटि के तथा चींटी मक्षिकादि अधम कोटि एवं मनुष्यादि मध्यम कोटि के जीव जन्तु सब आपका ही विनोद है।

प्रश्न— यदि वास्तव में कोई भेद नहीं तबजीवों को भेद एवं अभेद की भावना कैसे होती है?

समाधान— **विजोगि मिलि विछुड़िआ संजोगी मेलु।** **विजोगि**=भेदवादी के साथ मिल कर यह जीव अपने आप को ईश्वर से विछुड़ा हुआ मानता है, और, **संजोगी**=अभेदवादी के साथ मिल कर जीव अपने को ईश्वर से अभिन्न समझता है।

प्रश्न— वास्तव में यदि सब एक हैं तब सभी जीव ऐसा क्यों नहीं समझते?

उत्तर—**जिस नो तूं जाणा इहि सोई जनु जाणै। हरि गुण सद ही आखि वखाणै ॥**

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे ईश्वर ! जिस जिज्ञासु पुरुष को गुरु के स्वरूप में स्थित होकर आप उपदेश करते हैं, वही पुरुष आपको अपने से अभिन्न जानता है और अभिन्न समझ कर जीवनमुक्त हुआ सर्वदा तेरे गुणों का ही कथन करता है।

जिन हरि सेविआ तिनि सुखु पाइआ। जिस जिज्ञासु ने ज्ञान उत्पत्ति के बाद भी हरि का चिन्तन किया है, उसे सनकादि के समान जीवन मुक्ति का सुख प्राप्त हुआ है। सहजे ही हरि नामि समाइआ। वह पुरुष स्वाभाविक ही परमेश्वर के नाम स्मरण में मग्न रहता है, जैसे कुलाल का चक्र बर्तन बन जाने के बाद भी घूमता रहता है, वैसे ही ज्ञानवान ज्ञान उत्पत्ति के उत्तर काल में ईश्वर के स्मरण में मग्न रहता है।

तूं आपे करता तेरा कीआ सभु होइ। तुधु बिनु दूजा अवरु न कोइ ॥

किसी दूसरे की प्रेरणा के बिना स्वतन्त्रकर्ता ईश्वर ! यह निखिल प्रपञ्च तेरा ही बनाया हुआ है। आपके बिना दूसरा औरकोई नहीं है।

तूं करि करि वेखहि जाणहि सोइ। जन नानक गुरमुखि परगटु होइ ॥

आप सृष्टि को उत्पन्न करके उसकी विशेषरूप से देखभाल करते हैं, और आप ही सूक्ष्म दृष्टि से सृष्टि के मर्म को जानते हैं। श्री गुरु रामदास जी कहते हैं कि आप श्रद्धालु पुरुष को ही आत्मरूप से प्रकट होते हैं।

❀ प्रेम प्रबोधिनी व्याख्यायां सप्तमं मन्त्रं समाप्तम् ॥ ७ ॥ ❀

—❀✺❀—

आसा महला १॥ तितु सरवरड़ै भईले निवासा पाणी पावकु तिनहि कीआ।
पंकजु मोह पगु नही चालै हम देखा तह डूबीअले ॥१॥
मन एकु न चेतसि मूढ़ मना। हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ ॥१॥रहाउ॥
ना हउ जती सती नही पढ़िआ मूरख मुगधा जनमु भइआ।
प्रणवति नानक तिनकी सरणा जिन तूं नाही वीसरिआ ॥ २ ॥ ३ ॥

शब्दार्थ— हे जीव ! तेरा, तितु सरवरड़ै =उस संसार समुद्र में, भईले निवासा =निवास हुआ है, जिस संसार को, पाणी पावकु तिन हि कीआ =अग्नि, पानी, वायु आदि पाँच तत्त्वों से परमेश्वर ने उत्पन्न किया है। अथवा हे मन ! तेरा उस संसार सरोवर में निवास है, जिस में पदार्थरूप पानी और अग्नि, वायु, जलादि बहुत कुछ तेरे सुखोपभोग के लिये उस परमेश्वर ने बनाया है। अर्थात् इस संसार सरोवर में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पांच विषयरूप पानी है, और तृष्णा रूपी अग्नि है। पंकजु मोह पगु नही चालै =मोहरूप कीचड़ में फँस कर बुद्धिरूप चरण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परमेश्वर की ओर नहीं चलते। हम देखा तह डूबीअले =उस संसार सरोवर में डूबते हुए अज्ञानियों को हमने देखा है, अथवा हे मन! तेरा उस सत्संग सरोवर में निवास है जहां पर श्रेष्ठ पुरुषों ने सत्य संतोषादि दैवी गुणों से आशा तृष्णा की अग्नि को शान्त कर दिया है।

जो श्रेष्ठ पुरुष परमेश्वर के चरण कमलों में मोहित हुए हैं वे एक पैर भी संसार के पदार्थों की ओर चलायमान नहीं होते। हमने ध्यान से देखा है कि वे सत्पुरुष नाम रस में रात्रि दिन डूबे रहते हैं। अर्थात् प्रत्येक क्षण ईश्वर का मनन चिन्तन करते हैं। मन एकु न चेतसि मूढ़मना = हे मूढ़ मन! तू एकाग्र होकर परमेश्वर का स्मरण क्यों नहीं करता? हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ =ईश्वर को भूलने से तेरे सभी श्रेष्ठ गुण नष्ट हो जाएंगे, व्यर्थ हो जायेंगे। अथवा हरि को भूलने से पहले तेरे गले में यम की, गुण =रस्सी (फाँसी) पडेगी। इसलिये विनम्र होकर परम कृपालु ईश्वर के आगे इस प्रकार प्रार्थना कर।

न हउ जती सती नही पढ़िआ मूरख मुगधा जनमु भइआ।

हे अकाल पुरुष परमात्मन्! न हउ =न मैं, जती =जितेन्द्रिय और न ही, सती =सत्यवादी तथा न ही, पढ़िआ =पठित (पण्डित) हूं किन्तु, मूरख =मुझ मूर्ख का, जनमु =जन्म, मुगध भइआ =निष्फल हो गया है, अर्थात् मूर्खता के कारण दुर्लभ मानव जीवन को नाम के बिना विषयों में मैंने व्यर्थ ही खो दिया है। प्रणवति नानक तिन की सरणा।

श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि मैं उन तत्त्वदर्शी सत्पुरुषों की शरण हूं। जिन तूं नाही वीसरिआ =जिन्हें आप कदापि विस्मृत नहीं होते।

भावार्थ— हे जीव! तेरा उस संसार समुद्र में निवास है, जिसे परमेश्वर ने अग्नि, वायु, जलादि पांच तत्त्वों से उत्पन्न किया है। मोहरूप कीचड़ में फंस कर बुद्धिरूप चरण परमेश्वर की ओर अग्रसर नहीं होते। उस सरोवर में अज्ञानियों को हमने बारम्बार डूबते हुए देखा है। हे मूर्ख मन! तूं शान्त होकर ईश्वर का स्मरण क्यों नहीं करता। ईश्वर को भूलने से तेरे सभी श्रेष्ठ गुण व्यर्थ हो रहे हैं। सुख शान्ति के लिये परमात्मा के आगे इस प्रकार सनम्र प्रार्थना कर। हे पतित-पावन परमात्मन्! मैं जितेन्द्रिय और सत्यवादी नहीं हूं, और न ही किसी शास्त्र का मर्मज्ञ हूं। मूर्खता के कारण दुर्लभ मानव जीवन को सांसारिक भोग्य पदार्थों में मैंने व्यर्थ ही खोदिया है। श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं कि मैं उन ब्रह्मदर्शी महापुरुषों की शरणागत हूं, जिन्हें आप कदापि क्षण भर भी नहीं भूलते। विशेष व्याख्या— जिज्ञासुओं को अद्वितीय बोधन के लिये, तूं दरिआउ सभ तुझ ही माहि। इस वचन से प्रतिपादित उपादानता को पुनः गुरुदेव जी कहते हैं।

तितु सरवरड़ै भईले निवासा पाणी पावकु तिनहि कीआ॥ तितु सरवरड़ै =मायोपहित महान् सरोवर में, भईले निवासा =उत्पत्ति से पूर्व सम्पूर्ण प्रपञ्च का निवास था। पुनः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुनः जीवों के अदृष्टवश उत्पत्तिकाल में, पाणी पावकु तिनहि कीआ=जल, तेजादि भूत, भौतिक प्रपञ्च को उस महान् सरोवर में वीचि तरङ्ग न्याय से प्रकट किया। अज्ञानी जीव जिस प्रपञ्च में पड़ कर बन्धनों को प्राप्त होते हैं, वही बात आगे कहते हैं।

पंकजु मोह पगु नही चालै हम देखा तह डूबीअले।

अपने स्वरूप के अज्ञान से, पंकजु=विषय रूप कीचड़ में जो पुरुष, मोह=आसक्त हो रहे हैं, वे मोक्ष मार्ग के उपयोगी अनेक साधनों में से एक साधन को भी, पगु नही चालै=धारण नहीं कर सकते, अर्थात् मोक्ष मार्ग की ओर एक पैर भी नहीं चलते। इसलिये, हम देखा=सम्पूर्ण मनुष्यों को जब हम देखते हैं, तह डूबीअले=तब वे विषयों में डूबे ही रहते हैं, अर्थात् मोक्ष मार्ग में गमन करने से क्या लाभ है, विषयानन्द ही सच्चा सुख है इत्यादि चार्वाक मतानुसारी युक्तियों का आश्रयलेकर विषयसुखमें रात्रिदिन आसक्त रहते हैं। अज्ञानी पुरुषोंकी रीति कहकर अब जिज्ञासुपुरुषों की रीति कहते हैं। मन एकु न चेतसि मूढ़मना। जिज्ञासु लोग गुरुओं से शिक्षा लेकर मनको ऐसी शिक्षा देते हैं। मूढ़मना=हे मूढ़ मन! मन एकु=तूं एकमन होकर, न चेतसि= परमात्मा को स्मरण नहीं करता। प्रश्न— ईश्वर का स्मरण न करने से क्या हानि है?

समाधान— हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ। परमेश्वर के विस्मृत होने से, मोक्षोपयोगी तेरे श्रेष्ठ दैवी गुण नष्टहो रहे हैं। अथवा हरि को भूल जाने से यम की पाश तेरे गले में पड़ेगी। यम की पाश से छूटने के लिये प्रार्थना का प्रकार बतलाते हैं।

ना हउ जती सती नही पढ़िआ मूरख मुगधा जनमु भइआ।

हे परमेश्वर! मैं यति एवं सत्यवादी तथा विद्वान् नहीं अर्थात् ब्रह्मचर्य तथा सत्य सम्भाषण और पाण्डित्य इत्यादि कोई भी श्रेष्ठ गुण मेरे में नहीं है। इसलिये, मुगधा जनमु= मेरा मनोहर मनुष्य जन्म ही, मूरख=मूर्खता में, भइआ= व्यतीत हुआ है, भाव यह है कि मुक्ति के द्वारभूत अति सुन्दर मनुष्य जन्म को पाकर मैं मूर्ख ही रहा। अपने जीवन में किसी अच्छे कार्य को सम्पादन नहीं कर सका। ऐसी ईश्वर के आगे विनम्र होकर प्रार्थना करे।

प्रणवति नानक तिनकी सरणा जिन तूं नाही वीसरिआ॥

श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि जिज्ञासु पुरुष नमस्कार करके ऐसी प्रार्थना करे कि हे परमेश्वर! मुझे उनकी शरण दो जिन सत्पुरुषों को कभी भी आपके स्वरूप की विस्मृति नहीं होती।

❀ प्रेमप्रबोधिनीव्याख्यायां अष्टमं मन्त्रं समाप्तम् ८॥❀

———o———

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आसा महला ५ ॥

भई परापति मानुख देहुरीआ । गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ ॥
अवरि काज तेरै कितै न काम । मिलु साध संगति भजु केवल नाम ॥१॥
सरंजामि लागु भवजल तरन कै । जनमु ब्रिथा जात रंगि माइआ कै ॥१॥रहाउ
जपु तपु संजमु धरमु न कमाइआ । सेवा साध न जानिआ हरि राइआ ।
कहु नानक हम नीच करंमा । सरणि परे की राखहु सरमा ॥ ३ ॥ ४

शब्दार्थ— भईपरापति मानुख देहुरीआ । गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ ॥

हे भाई ! यह मनुष्य शरीर तुम्हें गोविन्द परमात्माको मिलने का एक शुभ अवसर प्राप्त हुआ है । अवरि काज तेरै कितै न काम=संसारके और जितने भी व्यवहार हैं, वे तेरे किसीभी काम नहीं आयेंगे। मिलु साध संगति भजुकेवल नाम =साधु संगति में मिल कर केवल परमेश्वर के नाम को स्मरण कर। सरंजामि लागु भवजल तरन कै=हे भाई ! संसार समुद्र से तरने के सरंजामि लागु =उपाय (प्रयत्न) में लग, जनमु ब्रिथा जात रंगि माइआकै =तेरा यह मनुष्य शरीर अर्थात् मानव जीवन माया के, रंगि=प्रेम में लगा हुआ व्यर्थ जा रहा है। जिज्ञासु को अपने कल्याण के लिये इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये। जपु तपु संजमु धरमु न कमाइआ =हे परमपिता परमात्मन् ! मैंने न कोई जप अनुष्ठान किया है और न कोई शारीरिक तप ही किया है, और न कोई इन्द्रियों का दमनरूप संयम ही किया है, तथा न कोई यज्ञ दानादि धर्म ही किया है।

सेवा साध न जानिआ हरि राइआ =हे हरिराय! न तो मैंने समदर्शीसत्पुरुषोंकी सेवाही की है, और न ही आपके यथार्थ स्वरूप को ही जाना है। कहु नानक हम नीच करंमा =श्री गुरु अर्जुनदेव जी कहते हैं कि अशुभ कर्मों को करने वाले हम लोग, सरणि परे की =तेरी शरण में पड़े अर्थात् आए हैं। राखहु सरमा=शरण में आए हुए की लज्जा को रखो। अर्थात् संसार से भयभीत होकर आपकी शरण में आए हैं, इसलिये आप हमारी लज्जा की रक्षा करें, क्योंकि आप परम कृपालु, पतित पावन, भक्त वत्सल, परम हितैषी दीनरक्षक, जगन्नाथ अकृत्रिम प्रेम सागर हैं।

भावार्थ-- यह मनुष्य शरीर परमेश्वर को मिलने का एक शुभ अवसर है। संसार के और जितने भी व्यवहार हैं, वे तेरे किसी भी काम नहीं आयेंगे। इसलिये श्रेष्ठ पुरुषों की संगति में मिल कर परम पिता परमात्मा के नाम को स्मरण कर। परमप्रिय जिज्ञासु ! संसार समुद्र से तरने के लिये उपयोगी साधनों में लग, तेरा यह जीवन माया के प्रेम में लगा हुआ व्यर्थ जा रहा है।

अपने कल्याण के लिये हमें परमेश्वर के आगे इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये, हे जगतपिता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परमेश्वर ! मैंने न कोई जप अनुष्ठान किया है, और न ही कायिक, वाचिक, मानसिक किसी प्रकार का तप किया है तथा न ही इन्द्रियों का संयम किया है तथा न ही यज्ञ दानादि कोई धर्म किया है, एवं न ही समदर्शी सत्पुरुषों की सेवा ही की है। हे हरिराय ! मैंने आपके यथार्थ स्वरूप को भी नहीं पहिचाना। श्री गुरुदेव जो कहते हैं कि अशुभ कर्मों को करने वाले हम लोग, परमकृपालु आपकी शरण में आए हैं। सर्वहितैषी एवं सुहृद होने के कारण शरण आए की रक्षा करो।

विशेष व्याख्या— उपासक को ईश्वर चिन्तन करने का गुरुदेव जी समय बतलाते हैं।

भई परापति मानुख देहुरीआ। गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ।

हे जिज्ञासु पुरुष ! **गोबिंद मिलण की**=परमेश्वर को प्राप्त होने का, **मानुख देहुरीआ**=यह मनुष्य शरीर ही, **इह तेरी बरीआ**=तुम्हें सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ है। ऐसे उत्तम शरीर को प्राप्त करके स्वर्गादि प्राप्ति के लिये काम्य कर्म और सकामी पुरुषों के साथ मिलकर तुच्छ पदार्थों को देने वाले भैरवादि को सर्वोपरि मान कर अपने को कृतार्थ मत मानो किन्तु श्रेष्ठ पुरुषों के साथ मिलकर ईश्वर के नाम का उच्चारण करो। इस बात को कहते हैं।

अवरि काज तेरै कितै न काम। मिलु साध संगति भजु केवल नाम ॥

स्वर्गादि प्राप्ति के हेतु सकाम कर्मादि तेरे किसी काम नहीं आयेंगे। अर्थात् काम्य कर्मों से चिरस्थायी लाभ नहीं होगा, किन्तु स्वर्गादि लोकों से गिरने का अत्यन्त भय प्राप्त होगा। अथवा भैरवादि देवताओं के मन्त्रों का जाप करनारूपकार्य तेरे किसी काम नहीं आएगा। अर्थात मुक्तिरूपकार्य सिद्ध न हो सकेगा। उक्त रीति से सकाम कर्मों में अनेक दोष देख कर तथा विषयों से विरक्त होकर श्रेष्ठ पुरुषों की संगति में मिल कर केवल एक परमात्मा के नाम का स्मरण कर।

सरंजामि लागु भव जल तरन कै। जनमु ब्रिथा जात रंगि माइआकै ॥

हे जिज्ञासु पुरुष ! **भवजल तरन कै**=संसार समुद्र से तरने के लिये, **सरंजामि**=उपाय में प्रवृत्त हो, क्योंकि विषयों के आनन्द में फूटे घड़े के पानी के समान अत्यन्त दुर्लभ तेरा जन्म निष्फल जा रहा है। साधु संगति में किस उपाय से मिलूं ऐसा पूछने पर गुरु जी कहते हैं कि नम्र होकर प्रार्थना कर। **जपु तपु संजमु धरमु न कमाइआ। जपु**=मन्त्रों का सूक्ष्म उच्चारण, **तपु**= चान्द्रायण व्रतादि तप, यम नियमादि संयम, तथा निष्काम यज्ञादि धर्म मैंने कदापि नहीं किए, इस बात का मुझे महान् कष्ट है। **सेवा साध न जानिआ हरि राइआ।**

मैंने कभी सत्पुर्षों की सेवा भी नहीं की तथा सृष्टि का संरक्षक परमेश्वर है, इस बात का विशेषरूपसे मैंने कभी अनुभव नहीं किया। अथवा सन्तों की सेवा करके उनके उपदेश से परमेश्वर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्वामी को मैंने नहीं जाना। किन्तु शुभ कर्मों को छोड़ कर केवल निषिद्ध कर्मों को ही करता रहा।

कहु नानक हम नीच करंमा सरणि परे की राखहु सरमा ॥

श्री गुरु अर्जुनदेव जी कहते हैं कि अधिकारी को इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये। हे परमेश्वर ! मैं सम्पूर्ण शुभ कर्मों को छोड़ कर केवल निषिद्ध कर्म करने वाला हूं। पतित होने पर भी अजामल आदिके समान आपकी शरणमें पड़ा हुआ हूं। इसलिये शरणागतकी लज्जा रखें, अर्थात् संसारसागर में भ्रमण करते हुए मुझ सेवक की प्रतिष्ठा की रक्षा करें। भाव यह है कि आपका नाम पतित पावन है, इसलिये संसार में घटि यन्त्र के समानभ्रमण करने से मेरा सम्मान नष्ट हो रहा है, उसे बचाने की कृपा करें। इस प्रकार सायंकाल बैठ कर परमेश्वर के सम्मुख प्रतिदिन सादर सप्रेम प्रार्थना करे।

॥ श्रीप्रेम प्रबोधिनी व्याख्यायां नवमं मन्त्रं समाप्तम ॥ ९ ॥

★ कीरतन सोहिला ★

प्रायः सभी धर्मों में मानव जीवन की सफलता के लिये प्रतिदिन दो तीन वार सन्ध्या वन्दन करने का विधान है। गुरुमत में भी प्रातःकाल जपजी, सायंकाल रहिरास, तथा शयनकाल में कीर्तन सोहिला, पढ़ने की मर्यादा है। सोहिला शब्द आनन्दप्रद मङ्गलमय गीत का वाचक है। जैसे सुखमनी साहिब के नामकरण का आधार "सुखमनी सुख अमृत प्रभ नामु" यह गुरु वचन है, वैसे ही इस वाणी के नामकरण का आधार "तितु घरि गावहु सोहिला" यह गुरु वचन है। इस वाणी को पढ़ने की ऐतिहासिक घटना इस प्रकार है--एक समय कर्तारपुर में श्री गुरु नानकदेव जी दिन में शयन कर रहे थे, चरणों की सेवा करते हुए श्री गुरु अङ्गददेव जी ने देखा कि श्री गुरु जी के चरणों से रुधिर निकल रहा है। कारण पूछने पर श्री गुरु नानकदेव जी ने बताया कि एक श्रद्धालु पुरुष बकरियों को चरा रहा था, और उनके पीछे कंडीली झाड़ियों में घूमता हुआ सोहिला वाणी का पाठ कररहा था। समाहित, सरलहृदय, श्रद्धालु सेवक के याद करने पर प्रेम के वशीभूत होकर मैं भी उसके पीछे पीछे घूमने लगा। नग्न पांव होने के कारण कांटे लग गए, रक्त निकने का यही कारणहै। इसलिये सेवकों को रात्रि में सोने के समय बैठ कर प्रेम से सोहिले का पाठ करना चाहिये। गुरु नानकदेव जी के समय प्रेमी लोग रात्रि शयन काल में तीन ही शब्दों का पाठ करते थे।

श्री गुरु अर्जुनदेव जी के सामने एक व्यापारी बणजारे सेवक ने आकर प्रार्थना की, गुरुदेव ! हमें व्यापार के लिये इधर उधर कठिन स्थानों में आना जाना पड़ता है, विघ्न बाधाओं से रक्षा के लिए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आप कृपा करके हमको किसी मन्त्र का पाठ बतायें। शिष्य की प्रार्थना सुनकर श्री गुरु अर्जुनदेव जी ने दो और शब्दों को मिला कर पाँचशब्दों को रात्रि शयन काल में पढ़ने की आज्ञा की। उसी आज्ञा के अनुसार श्रद्धावान् प्रेमी चौर भयादि अनेक विघ्न बाधाओं से रक्षा के लिये आजकल भी कीर्तन सोहिले का रात्रि शयन काल में पाठ करते हैं। कीर्तन सोहिले के प्रथम शब्द में श्री गुरु जी ने विवाह का रूपक बाँधा है। जैसे लड़के और लड़की के विवाह का लग्न किसी वर्ष एवं किसी महीने की तिथि में निश्चित होता है। उसमें सम्मिलित होने के लिये सम्बन्धियों एवं निकटवर्ती सज्जन मित्रों को निमन्त्रण पत्र भेजे जाते हैं। माङ्गलिक वस्तुओं का परस्पर आदान प्रदान होता है। घर के प्रमुख निकटवर्ती लोगों द्वारा मंगलार्थ तैल चढ़ाया जाता है, तथा मङ्गलमय गीत गाए जाते हैं। वैसे ही जीवरूप स्त्री का किसी न किसी वर्ष, और किसी महीने, तिथि और किसी दिन में काल के साथ विवाह होने का लग्न निश्चित है। इस लिए जीव को वैराग्यरूप तैल धारण करना चाहिये। अमुक महीने, अमुक दिन और अमुक तिथि में अमुक त्यागी साधु महात्मा, तथा धनी मानी विद्वान् मर गया है, तथा आज अमुक रानी तथा अमुक धर्मात्मा राजा मर गया है, इस प्रकार के चारों ओर से जो शब्द सुनाई दे रहे हैं, यही विवाह में सम्मिलित होने का सन्देश पत्र है। मरने से पहले ईश्वर का चिन्तन करना चाहिये, और मृत्यु का सर्वदा स्मरण रखना चाहिये। दूसरों के समान मृत्यु के दिन हमारे पर भी आयेंगे। इत्यादि उपयोगी बातें रूपक से इस शब्द में गुरु जी ने निरूपण की हैं।

सोहिला रागु गउड़ी दीपकी महला १।

१ ओं सतिगुर प्रसादि

जै घरि कीरति आखीऐ करते का होइ बीचारो। तितु घरि गावहु सोहिला सिवरिहु सिरजणहारो ॥ १ ॥ तुम गावहु मेरे निरभउ का सोहिला। हउ वारी जितु सोहिलै सदा सुखु होइ ॥ १ ॥ रहाउ॥ नित नित जीअड़े समालीअनि देखैगा देवणहारु॥ तेरे दानै कीमति ना पवै तिसु दाते कवणु सुमारु ॥२॥ संबति साहा लिखिआ मिलि करि पावहु तेलु। देहु सजण असीसड़ीआ जिउ होवै साहिब सिउ मेलु ॥३॥ घरि घरि एहो पाहुचा सदड़े नित पवंनि॥ सदणहारा सिमरीऐ नानक सेदिह आवंनि ॥ ४ ॥ १ ॥

शब्दार्थ-- जै घरि =जिस सत्संगरूप घर में, कीरति आखीऐ परमेश्वर का यश कहा जाता है, करते का होइ बीचारो=सृष्टिकर्ता परमेश्वर के गुणों का विचार होता है। तितु घरि =उस सत्संग रूपघर में, तुम भी जाकर अपनी वाणी को पवित्र करने के लिये, गावहु सोहिला =मङ्गलमय यश का गायन करो और मन से, सिवरिहु सिरजणहारो =सृष्टि निर्माता ईश्वर का स्मरण करो।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुम गावहु मेरे निरभउ का सोहिला =हे जिज्ञासु पुरुषो ! तुम मेरे निर्भय परमात्मा का सोहिला (यश का गायन करो) हउवारी =मैं उस मङ्गलमय गीत पर बलिहार जाता हूँ, जितु सोहिलै =जिस यश को गायन करने से, सदा सुखु होइ =सर्वदा अविनाशी आत्मसुख प्राप्त होता है। नित नित जीअड़े =प्रतिदिन चित्त में, समालीअनि =जब तुम स्मरण करोगे, तब देखैगा देवणहारु =सर्व को देने वाला दाता परमेश्वर तुम्हारी ओर भी देखेगा। अर्थात् तुम्हारे ऊपर भी अवश्य कृपा करेगा। अथवा जब तुम प्रतिदिन चित्त में श्रद्धाभक्तिपूर्वक स्मरण करोगे तब सर्व प्राणियों को देने वाले ईश्वर को अन्तःकरण में देखलोगे, अर्थात् साक्षात्कार कर लोगे।

तेरे दानै कीमति ना पवै =हे जीव ! तेरे से उस परमेश्वर के दिए हुए दान की जब कीमत नहीं पड़ सकती, तिसु दाते कवणु सुमारु =तब उस देनेवाले परमेश्वर का किस प्रकार अन्त पा सकता हैं। अथवा हे परमेश्वर ! आपके, दानै =खजाने (भण्डार) की जब कीमत नहीं पाई जाती तब खजाने के अधिपति दाता आपका कौन अन्त पा सकता हैं।

संबति साहा लिखिआ। संबति =किसी न किसी वर्ष में जीवरूप स्त्री के विवाह का, साहा =मृत्युरूप लग्न, लिखिआ =निश्चित रूप से लिखा हुआ है, इसलिये, मिलि करि =सत्पुरुषों के साथ मिल कर पावहु तेलु =वैराग्यरूप तैल को धारण करो। अथवा संबति =संविद (ज्ञान) के द्वारा जीव का ईश्वर के साथ मेल होता है, ऐसा वेदों में साहा =समय लिखा है।

यथा—ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।

तथा-जिउ जल महि जलु आइ खटाना। तिउ जोती संगि जोति समाना। सुखमनी

देहु सजणु असीसड़ीआ जिउ होवै साहिब सिउमेलु॥

हे सज्जनो ! असीसड़ीआ =बहुतसी आशीर्वादें, देहु =मुझे देवो, जिउ =जिस प्रकार, साहिब सिउ =ईश्वर के साथ मेरा, मेलु =मिलाप, होवै =हो जाए।

घरि घरि एहो पाहुचा सदड़े नित पवंनि। सदड़े नित पवंनि =प्रतिदिन जीवों को मरने के सदड़े=सन्देश चारों ओर से आ रहे हैं, अर्थात् अमुक त्यागीमहात्मा मर गया, अमुक धनी मानी मर गया, इस प्रकार के शब्द चारों ओर से सुनाई पड़ रहे हैं। घरि घरि =प्रत्येक घर में विवाह में पहुंचने के लिये, एहो पाहुचा =यही सन्देश है, अर्थात् सभी जीव अपने २ समय के अनुसार संसार को छोड़ कर जा रहे हैं, तुम भी चलने की तैयारी करो। अथवा घरि घरि =प्रत्येक शास्त्र में जीवों को, सदड़े =सन्देश, नित पवंनि =प्रतिदिन पड़ रहे हैं कि हे जीवो ! तुम लोग अपने स्वस्वरूप में, पाहुचा =प्राप्त होवो।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सदणाहारा सिमरीऐ नानक सेदिह आवंनि । नानक=श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं, सदणाहारा =अपनी ओर बुलानेवाले काल को, सिमरऐ =चित्त में स्मरण रखना चाहिये, क्योंकि, सेदिह =वे मृत्यु वाले दिन तुम्हारे पर भी, आवंनि =आयेंगे, अर्थात् मृत्यु के दिन जैसे अन्य प्राणियों पर आरहे हैं, वैसे हमारे पर भी अवश्य आएंगे। ऐसा स्मरण करते हुए मरने से पहले ईश्वर चिन्तन में तत्पर रहना चाहिये। अथवा, सदणाहारा =सभी प्राणियों को अपनी ओर बुलाने वाले ईश्वर का, सिमरीऐ =निरन्तर स्मरण करना चाहिए, ऐसा करने से, सेदिह =जीवन मुक्त ज्ञान वालों के दिन तुम्हारे पर भी, आवंनि =अवश्य आएंगे।

भावार्थ— जिस सत्संगरूप घर में परमेश्वर की कीर्ति हो रही है, और जहां कर्ता पुरुष के गुणों का विचार होता है, वहां पर तुम भी ईश्वर के यश का गायन करो। और चित्त को एकाग्र करके विश्व निर्माता ईश्वर का स्मरण करो। हे भाई ! मेरे निर्भय स्वामी ईश्वर के यश का गायन करो। मैं ईश्वर के मंगलमय यश पर बलिहार जाता हूं, जिसके गायन करने से नित्य सुख की प्राप्ति होती है। जब तुम चित्त में प्रतिदिन स्मरण करोगे तब सर्व को देने वाला दाता परमेश्वर तुम्हारे ऊपर भी अवश्य कृपा करेगा। हे जीव ! तेरे से उस परमेश्वर के दिये हुए दान की जब कीमत नहीं पड़ सकती तब तुम उस देने वाले परम कृपालु ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का किस प्रकार अन्त पा सकते हो। किसी न किसी वर्ष में जिज्ञासु रूपी स्त्री के विवाह का लग्न निश्चितरूपसे लिखा हुआ है। इसलिये विवेकी सत्पुरुषों के साथ मिलकर वैराग्यरूप तैल धारणकरो। अर्थात् मृत्यु से पहले ईश्वर के साथ स्नेह करो।

हे श्रेष्ठ पुरुषो ! मुझे ऐसी आशीर्वाद दो जिसके द्वारा मेरा परमेश्वर स्वामी के साथ मिलाप हो जाये। घर २ में यही सन्देश पहुंच रहा है कि सभी जीव अपने २ समय के अनुसार शरीर त्याग कर जा रहे हैं। जैसे लड़के वाले विवाह में सम्मिलित होने के लिये निकटवर्ती सम्बन्धियों को निमन्त्रण पत्र भेजते हैं, वैसे ही सभी जीवों को काल भगवान की ओर से संदेश पहुंच रहे हैं। एवं सभी शास्त्र जीवों को यह संदेश दे रहे हैं कि मृत्यु से पहले अपने स्वरूप में स्थित हो जाओ।

श्री गुरु नानकदेव जी कहते है कि मृत्यु को अवश्य स्मरण रखना चाहिये। क्योंकि मृत्यु के दिन जैसे प्राणियों पर आ रहे हैं वैसे वे दिन हमारे पर भी अवश्य आयेंगे। एवं "सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" इत्यादि वचनों के द्वारा सभी को अपनी ओर बुलाने वाले परमपिता परमात्मा का निरन्तर स्मरण करना चाहिये। ऐसा करने से जीवन मुक्त सत्पुरुषों जैसे पवित्र दिन हमारे पर भी अवश्य आयेंगे।

विशेष व्याख्या— परम कृपालु श्री गुरुदेव प्रातःकाल एवं सायंकाल की प्रार्थना कह कर अब शयन काल की प्रार्थना का उद्देश करते हैं इस प्रार्थना का नाम गुरुवाणी में सोहिला है। सोहिला शब्द मंगलमय गीत का वाचक है, इसे अधिकतर लोग कीर्तन सोहिला और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आर्ति सोहिला भी कहते हैं। रात्रि के शयन काल में एकाग्रचित्त होकर इस वाणी को पढ़ने की मर्यादा है। दाह संस्कार के बाद मृतात्मा की शान्ति के लिये स्नान करके पवित्र स्थान में बैठ कर श्रद्धालु लोग इसका पाठ भी करते हैं।

जै घरि कीरति आखिऐ करते का होइ बीचारो।
तितु घरि गावहु सोहिला सिवरिहु सिरजण हारो॥

जै घरि=जिन महात्माओं के सत्संगरूप घर में, कीरति आखीऐ=परब्रह्म परमात्मा की कीर्ति कही जाती हो तथा, करते का=सृष्टिकर्ता परमेश्वर का, होइ बीचारो=तटस्थ एवम् स्वरूप लक्षण के द्वारा जहाँ पर विचार होता हो। तितु घरि गावहु सोहिला=उस सत्संगरूपी घर में बैठ कर अपनी कल्याण के लिये परमेश्वर का गुणानुवाद करो। यदि परमेश्वर का गुणानुवाद करने की शक्ति न हो, तब, सिवरिहु सिरजणहारो=सृष्टिकर्ता ईश्वर का चित्त में चिन्तन करो।

भाव यह है—जब तक जिह्वा से कहने की शक्ति हो, तब पर्यन्त जप करो। जब जप करने में थकावट प्रतीत हो, तब सर्व शक्तिमान् ईश्वर का चित्तमें चिन्तन करो। यदि चिन्तन करने में भी चित्त उकता जाये तब सावधान होकर चित्त को समाहित करने के लिये भगवन्नामों का उच्चारण करो, ऐसा करने से ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त होगी। भगवत प्रसन्नता से दुःखों की निवृत्ति और सुख प्राप्ति के द्वारा परमशान्ति प्राप्त होती है। इसलिये गुरुदेव कहते हैं।

तुम गावहु मेरे निरभउ का सोहिला।

मुक्ति की इच्छा रखने वाले जिज्ञासुओ! तुम लोग जन्म मरण के भय से रहित मेरे स्वामी परमेश्वर का अपनी कल्याण के लिये यश गायन करो तथा चित्त में ईश्वर की प्रसन्नता के लिये सब कुछ अर्पण करने की इच्छा करो। हउ वारी जितु सोहिलै सदा सुखु होइ।

हउ वारी=मैं उस प्रभु के यश पर सभी कुछ न्योछावर करता हूं; जितु सोहिलै=जिस यश के गायन से जिज्ञासुओं को, सदा सुखु होइ=मुक्तिरूप नित्य सुखकी प्राप्ति होती है। वह यश गायन आदर पूर्वक दीर्घ काल तक निरन्तर करने से जिज्ञासु पर ईश्वर की प्रसन्नता होती है, इस बात को गुरु जी आगे कहते हैं। नित नित जीअड़े समालीअनि देखैगा देवण हारु।

नित नित=दीर्घ काल सादर प्रतिदिन, जीअड़े=चित्त में, समालीअनि=स्मरण करो ऐसा करने से, देखैगा देवण हारु=धर्म और ज्ञान के उपदेश की इच्छा रखने वाला वह परम कृपालु ईश्वर तुम्हें कल्याण का अधिकारी जान कर कृपादृष्टि से अवश्य देखेगा। उद्योगशील जिज्ञासुओं को यश गायन करने का प्रकार कहते हैं।

तेरे दानै कीमति ना पवै तिसु दाते कवणु सुमारु।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे परमेश्वर ! तेरे परमैश्वर्य वाले, **दानै**=कोश की, **कीमति ना पवै**=किसी से मूल्य नहीं पड़ता, जो इतने कोटि वा इतने अरब खरब एवं पद्म नील आदि संख्या का तेरा खजाना है। जब कोश की संख्या का कोई ठिकाना नहीं तब ऐसे महान् कोश वाले दाता के उदारता की, **कवणु सुमारु**= क्या गणना हो सकती है कि इतने लोगों को कर्मानुसार आपने अमुक वस्तु दी और इतने लोगों को आगे अमुक वस्तु दोगे इसकी कोई सीमा नहीं हो सकती। जिज्ञासुरूप सखियों के साथ मिलकर प्रार्थना करने का प्रकार कहते हैं।

संबति साहा लिखिआ मिलि करि पावहु तेलु।
देहु सजणु असीसड़ीआ जिउ होवै साहिब सिउ मेलु॥

हे जिज्ञासु रूप सखियों ! अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य देह रूप, **संबति**=वर्ष का, **साहा**=विवाह **लिखिआ**=लिखा है। इसलिये, **मिलि करि**=सत्संग में एकत्रित होकर मेरे अन्तःकरण की शुद्धि के निष्काम कर्मों का उपदेशरूप उबटन मलो और चित्त को अत्यन्त मृदुल करने वाला भक्ति का उपदेशरूप तैल डालो, तथा **देहु साजण असी सड़ीआ**=हे श्रेष्ठ पुरुषो ! पति परमात्मा के साथ मनोहर सम्बन्ध स्थापित करने के लिये मुझे हृदय से आशीर्वाद दो, जिस प्रकार मेरा, पति परमेश्वर से, द्वैत का पर्दा दूर होकर अभेदरूप मिलाप हो सके।

घरि घरि एहो पाहुचा सदड़े नित पवंनि। सदणहारा सिमरीऐ नानक सेदिह आवंनि॥

मेरे गुरुरूप माता पिता ने, **घरि घरि**=न्याय, वैशेषिक, सांख्य पातञ्जलादि प्रत्येक शास्त्र में, **एहो पाहुचा**=विवाह का सन्देश पतिकी ओरसे भेजाहुआ दिखाई देता है। उन शास्त्रोमें जीवों को **सदड़े नित पवंनि**=उपदेश ज्ञान और भक्ति से शीघ्र ही पति परमेश्वर के साथ मिलो, इस प्रकार के रूप सन्देश प्रतिदिन सुनाई देते हैं। भाव यह है कि सभी शास्त्रकार अपने अपने शास्त्र में ईश्वरीय आज्ञा वेद में प्रतिपादित उपासना एवम ज्ञान के प्रतिपादक अनेक वचनों को सुनाते हैं। इसलिये **सदणहारा**=ज्ञान और भक्ति से मेरी शरण में आओ, इस प्रकार कहनेवाले परमात्मा का, **सिमरीऐ**= स्मरण करो जिसके स्मरण करने से मेरे, **सेदिह आवंनि**=विवाह के वे दिन शीघ्र समीप आयें।

॥ प्रेम प्रबोधिनी व्याख्यायां प्रथमं मन्त्रं समाप्तम ॥१॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रागु आसा महला ॥ १ ॥

छिअ घर छिअ गुर छिअ उपदेस । गुरु गुरु एको वेस अनेक ॥१॥
बाबा जै घरि करते कीरति होइ । सो घरु राखु वडाई तोइ ॥१॥ रहाउ ॥
विसुए चसिआ घड़ीआ पहरा थिती वारी माहु होआ ।
सूरजु एको रुति अनेक । नानक करते के केते वेस ॥२॥२॥

शब्दर्थ— **छिअ घर**=छः शास्त्र, अर्थात् सांख्य, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, पातञ्जल, वेदान्त ये छः शास्त्र हैं। **छिअ गुर** =इन छः शास्त्रोंके कर्ता कपिल, गौतम, कणाद, जैमिनि, पतञ्जलि, व्यास, ये छः गुरु हैं। **छिअ उपदेस** =इन छः आचार्यों के भिन्न २ छः ही उपदेश हैं। **गुरुगुरु एको** = गुरुओं का गुरु ईश्वर एक है, **वेस अनेक**= परन्तु उस ईश्वरके सूर्य,शक्ति, गणेशादि, औपाधिक **वेस** =स्वरूप अनेक हैं। अथवा उस एक परमात्माके चराचरात्मक स्थूल, सूक्ष्म एवं अण्डज जरायुजादि तथा देवता किन्नरादि के शरीररूपी अनेक वेस हैं। **बाबा** =हे भाई! **जै घरि करते** =जिस सत्संग रूपी घरमें सृष्टिकर्ता ईश्वर का, **कीरति होइ** =यश हो रहा है, **सो घरु राखु** =उस सत्संगरूप घर में तूं अपने आपको रख, **वडाई तोइ** =इसी में तेरी बड़ाई है। अथवा हे जगत्कर्ता परमेश्वर ! जिस सत्संग रूप घर में तेरी कीर्ति हो रही है, उस स्थानमें मुझे भी रख, मैं भी वहां पर तेरी बड़ाई करूंगा।

प्रश्न— जब ईश्वर एक है तब अनेक मतवाद क्यों? दृष्टान्त देकर आगे गुरुजी कहते हैं।

विसुए चसिआ घड़ीआ पहरा थिती वारी माहु होआ । **विसुए** =पन्द्रह वार नेत्रों को खोलने और बन्द करने के समय का नाम बिसवा है, **चसिआ** =पन्द्रह बिसवों का नाम चसा है। **घड़ीआ**=तीस चसों का नाम पल है, और साठ पल की एक घड़ी है। **पहरा** =साढ़े सात घड़ियों का एक प्रहर होता है और आठ प्रहर का दिन और रात्रि है। **थिती** =एक पक्ष में प्रतिपदादि पन्द्रह तिथियां हैं। **वारी** =सोम मङ्गलादि सात वार हैं, **माहु होआ** =एक वर्ष में बारह महीने होते हैं। और वर्ष में वसन्त ग्रीष्मादि षड् ऋतुएं होती हैं। एवं दक्षिणायन और उत्तरायण ये दो आयन होते हैं।

सूरजु एको =सूर्य एक है, **रुति अनेक** =परन्तु एक ही सूर्य की गति से वसन्तादि अनेक ऋतुओं का जैसे भेद होता है; वैसे ही, **नानक करते के केते वेस**। श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि सृष्टिकर्ता परमेश्वर एक है, परन्तु उसके औपाधिक **वेस** =सूर्य, शक्ति, गणेश एवं देव, दानव, मानव, यक्ष, किन्नर पिशाचादि अनेक भेष हैं।

भावार्थ— सांख्य, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, पातञ्जल, वेदान्त ये छः शास्त्र हैं, और इन शास्त्रों को बनाने वाले कपिल, गौतम, कणाद, जैमिनि, पतञ्जलि, व्यास ये छः आचार्य हैं। इन छः मुनियों के भिन्न भिन्न छः ही उपदेश हैं। जैसे कपिल के मत में प्रकृति पुरुष के विवेकसे मनुष्य की मुक्ति होती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है, पतञ्जलि चित्तवृत्ति के निरोधरूप योग से मुक्ति मानता है। पदार्थ तत्त्वज्ञान से मुक्ति गौतम और कणाद मुनि मानते हैं। विधिपूर्वक यज्ञों से अक्षय स्वर्ग की प्राप्तिरूप मुक्ति जैमिनिमुनि मानता है। जीव ईश्वर के अभेद ज्ञान से मुक्ति व्यास जी मानते हैं। सभी गुरुओं का परम गुरु परमेश्वर एक है, परन्तु उस ईश्वर के औपाधिक स्वरूप अनेक हैं। जिस सत्संगरूप घर में सृष्टिकर्ता परमेश्वर का यश हो रहा है उस स्थान में तूं अपने आपको रख, इसीमें तेरी बड़ाई है। एवं हे जगत्कर्ता परमेश्वर ! जिस स्थान में तेरी कीर्ति हो रही है, उस पावन स्थान में मुझे रख। मैं भी वहां पर तेरा गुणानुवाद करूंगा। जैसे निमेष, पल, घड़ी, तिथि, वार, पक्ष, मास, ऋतु, आयन ये काल के अनेक भेद हैं, परन्तु सूर्य एक है। वैसे ही दुर्गा, सूर्य, गणेश, यक्ष, किन्नर, पिशाचादि अनेक वेश होते हुए भी कर्ता पुरुष परमात्मा एक है।

विशेष व्याख्या— छिअ घर छिअ गुर छिअ उपदेस। छिअ घर =सांख्य, पातञ्जलि, न्यायादि षट् शास्त्ररूप छः घर हैं। छिअ गुर =कपिल, पतञ्जलि, गौतमादि हितोपदेष्टा छः गुरु हैं। छिअ उपदेस =इन मुनियों के मुक्ति के हेतु छः ही उपदेश हैं। प्रकृति पुरुष के विवेक से जीव की मुक्ति होती है ऐसा कपिलका सिद्धान्त है। योगसे मुक्ति होती है ऐसा पतञ्जलि मुनि मानता है। पदार्थ तत्त्वज्ञान से मुक्ति गौतम मुनि मानता है। वेद विधि पूर्वक यज्ञादि कर्मों से मुक्ति जैमिनि मानता है। जीव और ईश्वर के अभेद ज्ञान से मुक्ति वेदव्यास जी मानते हैं। कपिल मुनि के चौबीस तत्त्व निम्न लिखित हैं—प्रकृति: महतत्त्व, त्रिधा अहंकार, पञ्चतन्मात्रा, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय, मन, पाञ्चस्थूल भूत। पातञ्जलि मुनि सांख्य मत की अपेक्षा एक ईश्वर तत्त्व को अधिक मानता है। शेष क्रिया कपिल के समान है। गौतम के मत में द्रव्य; गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव ये सात पदार्थ हैं। कणाद मुनि अभाव पदार्थ को नहीं मानता, क्योंकि अभाव तुच्छ है, इसलिये कणाद षट् पदार्थ वादी है। जैमिनि ऋषि के मत में विहित और निषिद्ध भेद से कर्म दो प्रकार का है। विहित कर्म नित्य नैमित्तिक, प्रायश्चित, काम्य भेद से चार प्रकार का है। महर्षि व्यास ने द्रष्टा और दृश्य भेद से दो प्रकार के पदार्थ माने हैं। द्रष्टा ब्रह्म है और मायिक पदार्थ दृश्य हैं। जीव और ईश्वर ब्रह्म के प्रतिबिम्ब हैं इसलिये ब्रह्मरूप हैं। भूत भौतिक स्थूल प्रपञ्च माया विरचित होने से माया रूप है।

गुरु गुरु एको वेस अनेक। गुरुओं का परमगुरु ईश्वर एक है, उस एक ही शक्ति-शाली परमेश्वर के शिव, विष्णु, सूर्य, शक्ति गणेश आदि अनेक वेश हैं। पूर्वोक्त गुरुवचन तथा-"स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनाऽनवच्छेदात्" इस योग सूत्र के अनुसार एक ही ईश्वर सभी गुरुओं का परम्परा से उपदेष्टा गुरु है। जैसे वेद व्यास जी का नारद और नारद का ब्रह्मा, और ब्रह्मा का साक्षात् ईश्वर गुरु है। ऐसे ही सभी ऋषियों का परम्परा से परमेश्वर गुरु है। इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण जी ने गीता में कहा है।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्। विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्। एवं परम्परा प्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस अविनाशीयोग को मैंने कल्प के आदि में सूर्य को कहा था, और सूर्य ने मनु के प्रति उपदेश किया, और मनु ने राजा इक्ष्वाकु को कहा, इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस योग को राजर्षियों ने जाना।

प्रश्न—सम्पूर्ण शास्त्र रूपी घरों में जिज्ञासु एक जैसा सम्मान करे वा न्यूनाधिक ?

बाबा जै घरि करते कीरति होइ। सो घरु राखु बडाई तोइ॥

बाबा=बाबा शब्द यहां पर श्रेष्ठ का वाचक है,पामर और विषयी पुरुषों से श्रेष्ठ जिज्ञासु ? जै घरि करते=जिस शास्त्ररूप घर में ईश्वर का तटस्थ एवं स्वरूप लक्षणों के द्वारा यश का निरूपण किया है, सो घरु राखु=उस शास्त्ररूप घर को आदर पूर्वक स्वीकार कर, बडाई तोइ=इसी में तेरी बड़ाई है। अर्थात् सांख्य, मीमांसा में ईश्वर के यश का विशेष वर्णन नहीं। न्याय तथा वैशेषिक में किञ्चिद् निरूपण किया है। सारग्राही दृष्टि से इनके उपदेशों को सुनता हुआ भी मुख्य रूप से योग तथा वेदान्त के उपदेश को ग्रहण कर। ईश्वर के अनन्त वेश होने पर भी एकरूपता में दृष्टान्त कहते हैं।

विसुए चसिआ घड़ीआ पहरा थिती वारी माहु होआ।
सूरजु एको रुति अनेक। नानक करते के केते वेस॥

ज्योतिष शास्त्र में काल के दो भेद माने हैं, एक मूर्त और दूसरा अमूर्त। स्वस्थ व्यक्ति के श्वास लेनेमें जितना समय लगता है उसे पल कहते हैं। साठ पलोंकी एक घड़ी, साठ घड़ीका रात्रि और दिन होता है। यह मूर्तकालका स्वरूप है, स्वस्थपुरुषके नेत्रोंकी पलक लगनेके समय को निमेष कहते हैं। अठारह निमेषों का नाम काष्ठा है, तीस काष्ठा का नाम कला है। तीस कला का नाम घड़ी है,दो घड़ियों का नाम मुहूर्त है। तीस मुहूर्तों का रात्रि और दिन होता है। पल और निमेष संज्ञा के समान पन्द्रह निमेषों का नाम विश्वा है और पन्द्रह विश्वों का नाम चसा है, और तीस चसे का नाम एक पल है, साठ पल की एक घड़ी होती है, स्थूल दृष्टिसे आठ घड़ियों का एक प्रहर तथा आठ प्रहरों का रात्रि और दिन होता है। सूक्ष्म दृष्टि से साढे सात घड़ी का एक प्रहर है, और आठ प्रहरों की रात्रि दिनरूप एक तिथि है, और आठ प्रहरों के रवि, सोम मङ्गलादि वार होते है। न्यून वा अधिक तीस तिथियोंका एक चान्द्रमास, एवं सोम मङ्गलादि न्यूनाधिक तीस दिनों का सौर मास होता है। चैत्रादि दो २ महीने की वसन्तादि षड् ऋतुएं होती हैं। तीन ऋतुओं का एक अयन होता है। दक्षिणायन और उत्तरायण इन दो अयनों का एक वर्ष होता है। जैसे, विश्वा, चसा, घड़ी, प्रहर, तिथि, वार महीना इत्यादि अनेक रूप होने पर भी सूर्य एक है और सूर्य के बनाए हुए वार महीना इत्यादि अनेक कालके भेद हैं। वैसे ही श्री गुरु नानकदेवजी कहते हैं सृष्टिकर्ता परमेश्वर के शिव, शक्ति, गणेशादि अनन्त वेश हैं। क्रिया और क्रियावान् का तादात्म्य मानकर सूर्य को जैसे तिथि, वार, मासादि अनेक रूपता है, वैसे जगत्स्रष्टा ईश्वर को भी यम, वरुण, इन्द्र, शक्ति, गणेशादि अनेक रूपता है। मूर्ति भेद होते हुए भी वास्तव में उनका परस्पर भेद नहीं। ❀ प्रेम प्रबोधिनी व्याख्यायां द्वितीयं मन्त्रं समाप्तम् ॥ २ ॥❀

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रागु धनासरी महला १ ॥

गगन मै थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती ।
धूपु मल आनलो पवणु चवरो करे सगल बन राइ फूलंत जोती ॥१॥
कैसी आरती होइ भवखंडना तेरी आरती ॥ अनहता सबद बाजंत भेरी ॥१॥रहाउ॥
सहस तव नैन नन नैन हहि तोहि कउ सहस मूरति नना एक तोही ।
सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिनु सहस तव गंध इव चलत मोही ॥२॥
सभ महि जोति जोति है सोइ । तिसदै चानणि सभ महि चानणु होइ ॥
गुर साखी जोति परगटु होइ । जोति सुभावै सु आरती होइ ॥ ३ ॥
हरि चरण कवल मकरंद लोभित मनो अनदिनो मोहि आही पिआसा ।
क्रिपा जलु देहि नानक सारिंग कउ होइ जाते तेरै नाइ वासा ॥४॥३॥

शब्दार्थ— गगन मै थालु =इस विलक्षण आर्ति में आकाश रूप थाल है, रवि चंदु दीपक बने =उस थाल में सूर्य और चन्द्रमा ये दो दीपक धरे हैं। तारिका मंडल =सम्पूर्ण तारिकामण्डल उस थाल में, जनक =जानो, मोती =हीरे जवाहरात मोती धरे हुए हैं । अथवा सम्पूर्ण तारा मण्डल उस थाल में मोतियों के समान जड़े हुए हैं। धूपु मल आनलो =मलय गिरि का चन्दन ही धूप है। अथवा मलय गिरि के चन्दन में प्रज्वलित अग्नि से उठा हुआ धूम ही धूप है। पवणु चवरो करे = वायु देवता प्रेमपूर्वक चंवर करता है । सगल बनराइ फूलंत जोती =सम्पूर्ण वनस्पति ही ज्योतिर्मय परमात्मा के ऊपर फूल चढ़ रहे हैं। अथवा जोती =हे प्रकाशमय ईश्वर ! आपकी आर्ति में प्रफुल्लित सम्पूर्ण वनस्पति ही फूल हैं।

कैसी आरती होइ । भवखंडना तेरी आरती ॥ भवखंडना =जन्म मरण के भय को खण्डन करने वाले हे परमेश्वर ! तेरी आरती =आपकी ऐसी विलक्षण आर्ति निरन्तर हो रही है। कैसी आरती होइ =और कैसी अलौकिक आपकी आर्ति होवे। अनहता सबद वाजंत भेरी= आपकी इस अद्भुत आर्ति में जीवों का एक रस शब्द ही भेरी के समान बज रहा है। अथवा आपकी आर्ति में सर्व जीवों की मध्यमा वाणी रूप, अनहता सबद=एक रस शब्द ही भेरी मृदङ्ग, दुन्दभि आदि बाजे बज रहे हैं। अथवा भवखंडना=भक्तों के जन्म मरण के भय को खण्डन करने वाले हे परमेश्वर ! इस प्रकार की अलौकिक आर्ति के अतिरिक्त, कैसी आरती होइ =और किस प्रकार की विलक्षण आर्ति होवे। तेरी आरती=लोक प्रसिद्ध तेरी आर्ति में तो केवल, वाजंतभेरी=भेरी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गोमुखादि बाजे किंचित् काल ही बजते हैं, परन्तु इस दिव्य आर्ति में तो, अनाहता सबद=दशम द्वार के भ्रमर गुञ्जार, शङ्ख ध्वनि, मृदङ्ग, ताल, घण्टा, नाद, वीणा, ध्वनि, दुन्दुभि, समुद्र घोष, मेघ गर्जना, ये दश प्रकार के अनाहत शब्द निरन्तर बज रहे हैं। अब आर्ति में पढ़ने योग्य स्तुति पाठ को कहते हैं। सहस तव नैन=हे जगदीश्वर! विराट रूप से आपके हजारों ही नेत्र हैं, परन्तु, नन नैन हहि तोहि कउ=निर्गुण स्वरूप से आपका एक भी नेत्र नहीं। सहस मूरति=विराट रूप से आपकी हजारों मूर्तियाँ (शरीर हैं। परन्तु, नना एक तोही=परमार्थ दृष्टि से आपका एक भी शरीर नहीं। सहस पद बिमल=विराटरूप से आपके हजारों ही निर्मल उज्वल चरण हैं, नन एक पद=निर्गुण रूप से आपका एक भी चरण नहीं। सहस तव गंध=विराटरूप से आप अनन्त नासिकाओं के द्वारा गन्ध को ग्रहण करते हैं, गंध बिनु=परन्तु निर्गुण रूप से आपका घ्राणेन्द्रिय सुगन्धि दुर्गन्धि से रहित है। इव चलत मोही=इस प्रकारके दिव्य चरित्रों को देखकर मेरी बुद्धि मोहित हो रही है, अर्थात् आपके चरित्रों को देख कर मेरी बुद्धि चकित हो रही है।

सभ महि जोति जोति है सोइ। जोति=हे ज्योतिर्मयईश्वर! सभी प्राणियों में तेरी एक ज्योति है। तिसदै चानणि=उसके प्रकाश से ही, सभमहि चानणु होइ=सूर्य, चन्द्र विद्युदादि सभी में प्रकाश हो रहा है, अर्थात् आपके प्रकाश से सूर्य चन्द्रादि प्रकाशित होकर सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करते हैं।

गुर साखी=गुरु के उपदेश द्वारा श्रद्धालु के अन्तःकरण में, जोति परगटु होइ=ज्योति स्वरूप परमात्मा प्रकट होता है। जोतिसु भावै=जो उस प्रभु को अच्छा लगता है, सु आरती होइ=वही श्रेष्ठ आर्ति है।

हरि चरण कवल=हे हरे! आपके चरण कमलों के स्पर्शजन्य आनन्दरूप, मकरंद=रस में मेरा, लोभित मनो=मनरूपी भ्रमर लोभायमान हो रहा है, इसलिये, अनदिनो मोहि आही पिआसा=रात्रिदिन मेरी यही इच्छा है, अथवा हे ईश्वर! आपके चरणकमलोंके, मकरंद=पुष्प रस में मेरा मन प्रतिदिन लोभायमान हो रहा है, मेरे मनरूप, सारिंग कउ=चातक को, तेरे कृपा जल की, आही पिआसा=प्यास है।

क्रिपा जलु देहि नानक सारिंग कउ होइ जाते तेरै नाइ वासा।

श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि रात्रिदिन की प्यास को कृपारूपी जल देकर शान्त करो, जिससे तेरे नाम में ही मेरे मन का निवास हो जाये। अथवा हे परमेश्वर! नानक सारिंग कउ=मुझ नानक चातक को, क्रिपाजलु देहि=कृपा करके नामरूपी जल देवो, जाते=जिससे,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तेरै नाइ वासा=तेरे स्वरूप में मेरा निवास हो जाए, अर्थात् आपके परमार्थस्वरूप में मेरी स्थिति हो जाये। भावार्थ— जगन्नाथपुरी में लोगों के सामने सर्वनायक ईश्वर की स्वाभाविक सर्वदा होने वाली आर्ति की सामग्री का निरूपण करतेहुए श्री गुरुजी कहते हैं। इस अनोखी आर्ति में आकाशरूप थाल है। सूर्य और चन्द्रमा जगमगाते हुए दो दीपक हैं। उस अलौकिक विशाल थाल में सम्पूर्ण तारिका मण्डल मोती, हीरे, जवाहरात धरेहुए हैं; अर्थात छोटी बड़ी सभी तारिकाएं उस दिव्य थाल में मोतियोंके समान जड़ीहुई हैं। मलय गिरि के चन्दन का सुगन्धित वायु ही धूप है। श्रद्धाभक्तिपूर्वक वायु देवता स्वयमेव चंवर कर रहा है। सम्पूर्ण वनस्पति ही ज्योतिर्मय परमात्माके ऊपर फूल चढ़रहे हैं। अथवा हे प्रकाशमय परमेश्वर ! आपकी आर्ति में विकसित सम्पूर्ण वनस्पति ही फूल हैं। जन्म मरण के भय को खण्डन करने वाले हे जगदीश्वर ! आपकी ऐसी अलौकिक आर्ति निरन्तर हो रही है। इसके अतिरिक्त और विलक्षण आपकी कैसी आर्ति होवे। इस विचित्र आर्ति में सर्व जीवों का एक रस शब्द ही भेरी के समान निरन्तर बज रहा है।

हे भव खण्डन ! लोक प्रसिद्ध आपकी आर्ति में तो भेरी गोमुखादि बाजे किञ्चित काल ही बजते हैं, परन्तु इस दिव्य आर्ति में तो मृदङ्ग, ताल, शंखध्वनि, दुन्दुभि, समुद्रघोष, मेघगर्जना आदि अनन्त शब्द निरन्तर हो रहे हैं। हे परमपिता परमात्मन् ! विराटरूप से आपके हजारों ही नेत्र हैं, परन्तु निर्गुण स्वरूप से आपका एक भी नेत्र नहीं। विराटरूप से आपकी हजारों ही मूर्तियां हैं परन्तु, निर्गुण स्वरूप से आपकी एक भी मूर्ति नहीं। विश्वरूप से आपके हजारों ही उज्वल चरण हैं, परमार्थ स्वरूप से आपका एक भी चरण नहीं। विराट स्वरूप से हजारों नासिकाओं के द्वारा गन्ध को ग्रहण करते हैं, परन्तु निर्गुण रूप से आपका घ्राणेन्द्रिय सुगन्धि दुर्गन्धि से रहित है। इस प्रकार के दिव्य चरित्रों को देखकर मेरी बुद्धि मोहित हो रही है।

हे ज्योतिर्मय परमेश्वर ! चराचरात्मक सम्पूर्ण विश्व में तेरी ही ज्योति है। आपके दिव्य प्रकाश से ही सूर्य, चन्द्र, विद्युदादि प्रकाशित होकर समस्त विश्व को प्रकाशित करते हैं। तत्त्वदर्शी गुरु के उपदेश से श्रद्धालु जिज्ञासु के अन्तःकरण में तेरी ज्योति प्रकट होती है। जो आपको अच्छा लगता है वही श्रेष्ठ आर्ति है। हे हरे ! आपके चरणकमलों के स्पर्शजन्यरसमें मेरा मनरूपभ्रमर लोभायमान हो रहा है। इसलिये प्रतिदिन मुझे तेरे मिलने की मन में प्यास लगी रहती है।

श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि रात्रिदिन की प्यास को कृपारूप जल देकर शान्त करो, जिससे तेरे नाम में ही मेरे मन का निवास हो जाये। हे परमेश्वर ! मुझ चातक को कृपा करके नामरूप जल दो जिससे आपके परमार्थ स्वरूप में मेरी स्थिति हो जाये।

विशेषव्याख्या— एक ईश्वर को अनेकरूप जानकर भक्ति करनेवाले जिज्ञासु को विलक्षण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सामग्री से मानसिक पूजनरूप आर्ति का प्रकार कहते हैं।

गगन मै थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती ॥

आकाशरूपथाल है, सूर्य और चंद्रमा ये दो दीपक हैं। तारिका मण्डल ही उस आकाशरूप थाल में मोती स्थापित किये हैं।

धूपु मलआनलो पवणु चवरो करो सगल बन राइ फूलंत जोती ॥

मलय गिरि के चंदन में प्रज्वलित हुआ अग्नि अपनी सुगन्धि द्वारा धूप दे रहा है। अथवा मलय गिरि के चन्दन की सुगन्धित वायु ही धूप हो रही है। आर्ति के समय वायु देवता ही चंवर कर रहा है। हे ज्योति ! आपके विश्वरूप की आर्ति में सम्पूर्ण वनस्पति के विकसित फूल आर्ति की शोभा को बढ़ा रहे हैं।

कैसी आरती होइ। भव खंडना तेरी आरती ॥ अनहता सबद वाजंत भेरी ॥

भवखंडना=भक्तों के भय को नष्ट करने वाले परमेश्वर ! ऐसी विलक्षण सामग्री के बिना और किस प्रकार तेरी आर्ति हो सकती है। अर्थात् आपके विराटरूप की आर्ति किसी छोटी मोटी सामग्री से नहीं हो सकती। आपकी आर्ति में अनहता सबद=दशमद्वारका अनाहत शब्द ही दुन्दुभि बज रही है। आर्ति में दुन्दुभि के समान स्तुति पाठ कौन है ? इसके उत्तर में गुरु जी कहते हैं, सगुण एवं निर्गुण ब्रह्म के प्रतिपादक वेद वाक्य स्तुति पाठ है।

सहस तव नैन नन नैन हहि तोहि कउ सहस मूरति नना एक तोही ॥

नन पद यहाँ पर अभाव का वाचक है, 'सहस तव नैन' इत्यादि वचन विराटस्वरूप के बोधक हैं। जैसे वृक्षों के समुदाय को वन कहते हैं वैसे ही जीवों के देह इन्द्रियादि की समष्टि विराट का शरीर है। इसलिए विराट के हजारों शिर, नेत्र, भुजा पादादि का वर्णन पुरुष सूक्त में किया है।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।

सहस तव नैन इत्यादि मूल का अर्थ यह है—हे परमेश्वर ! विराटरूप से आपके हजारों नेत्र हैं, परन्तु आपके निर्गुण स्वरूप का एक भी नेत्र नहीं। एवं आपके सगुणस्वरूप की ब्रह्मा से लेकर चींटी पर्यन्त हजारों मूर्तियां हैं, परन्तु निर्गुण स्वरूप की एक भी मूर्ति नहीं।

यथा—दिव्योह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।

वह दिव्य पुरुष आकार रहित समस्त जगत् के बाह्य और भीतर जन्मादि विकारों से रहित होकर व्याप्त है।

सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिनु सहस तव गंध इव चलत मोही ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे भवखण्डन ! तेरे सगुण स्वरूप के हजारों निर्मल चरण हैं, वास्तव में तेरे निर्गुण स्वरूप का एक भी चरण नहीं। तेरा निर्गुणस्वरूप गन्धादि गुणों से रहित है, और सगुण स्वरूप हजारों प्रकार के पुष्पों के गन्ध को ग्रहण करने वाला है। अर्थात् विराटरूप से आप सभी प्रकार के मनोहर गन्धों को ग्रहण करते हैं, परन्तु निर्गुण स्वरूप से किसी प्रकार के गन्ध को स्वीकार नहीं करते। इस वास्तविक स्वरूप का कठोपनिषद् में वर्णन किया है।

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथा रसं नित्यमगन्धवच्चयत्॥

जो अविनाशी परमात्मा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि से अतीत है उस सर्वश्रेष्ठ महान् परमेश्वर को जानकर अधिकारी सर्वदा के लिये मृत्यु के मुख से छूट जाता है। पूर्वोक्त प्रकरण का यह भाव है—सहस तव नैन, तथा 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' इत्यादि वचनों से सगुण स्वरूप में शरीर इन्द्रिय विषयों का ग्रहण करना और निर्गुणस्वरूपमें शरीरादि सर्वका अभाव बोधन किया है। वास्तवमें सगुण तथा निर्गुण दोनों एक रूप हैं। एक परमेश्वर में शरीरादि के होने और न होनेरूप आश्चर्य जनक चरित्र को देखकर अज्ञानी पुरुष मोहित हो रहे हैं। इस बात को आगे गुरु जी कहते हैं।

इव चलत मोही=आपके अलौकिक दिव्य चरित्रों को देखकर विचारहीन साधारण लोग मोहित हो रहे हैं। अथवा आपके शुद्ध सच्चिदानन्द त्रिगुणातीत स्वरूप को तथा ऐश्वर्यवान् नानारूप-धारी अलौकिक शक्तिशाली व्यक्तित्व को देखकर मेरी बुद्धि मोहितसी हो रही है। भाव यह है कि जैसे अज्ञान से रज्जुमें सर्प दिखाई देता है परन्तु रज्जु के ज्ञानवाले पुरुष को वहां पर भय मोहादि प्राप्त नहीं होता वैसे माया के सम्बन्ध से परमात्मामें कर्तापन एवं सत्य संकल्पादि नाना गुण प्रतीत होते हैं। वास्तवमें वह निर्गुण है ऐसा जानने वाले पुरुष को मोहादि प्राप्त नहीं होता। जैसे शीतल एवं उष्ण परस्पर विरोधी स्वभाव वाले अग्नि को सुनकर साधारण लोग मोह को प्राप्त होते हैं, वैसे निर्गुणब्रह्म का सगुण होना और सगुण का निर्गुण होना सुनकर विचारहीन लोग मोह को प्राप्त हो रहे हैं। अब गुरुदेव जी आर्ति के समय जगाने योग्य ज्योति को कहते हैं।

सभमहि जोति जोति है सोइ। तिसदै चानणि सभमहि चानणु होइ।

जो परमात्मा सर्व के अन्तःकरण में, जोति=प्रकाश रूप है, वह स्वयं ही विश्वरूप की आर्ति में ज्योति है। मुण्डकोपनिषद् में भी यही बात बतलाई है।

तच्छुभ्रं ज्योतिषांज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः। वह परमात्मा सर्वथा विशुद्ध एवं समस्त ज्यतियों का भी ज्योति है।

तिसदैचानणि सभमहि चनणु होइ=उस ज्योति के प्रकाश से सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि सभी पदार्थों में प्रकाश होता है। मुण्डकोपनिषद् में भी इसी अर्थ का प्रतिपादन किया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तमेवभान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

ईश्वर के प्रकाश से यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है। अब घृत, कर्पूर, बत्ती आदि के समान उस ज्योति के प्रकट होने की सामग्री को कहते हैं।

गुर साखी जोति परगटु होइ=गुरु के उपदेश से वह परब्रह्म ज्योति प्रकट होती है। जैसे घृत कर्पूरादि सामग्री से आर्ति की ज्योति प्रकट होती है, वैसे ही गुरु के उपदेश से यह परब्रह्म ज्योति प्रकट होती है।

प्रश्न— गगनरूप थालादि दिव्य सामग्री से परमात्मा की आर्ति का पूर्व निरूपण किया, क्या अलौकिक सामग्री से ही ईश्वर की आर्ति होती है लौकिक सामग्री से नहीं हो सकती ?

जो तिसु भावै सु आरती होइ=श्रद्धाभक्ति पूर्वक दिए हुए पत्र पुष्पादि से प्रसन्न होने वाले उस परमेश्वर को भक्त का प्रेम देख कर जो अच्छा लगता है वही उसकी आर्ति होती है। परमेश्वर से नाम की प्रार्थना गुरुदेव जी करते हैं।

हरि चरण कवल मकरंद लोभित मनो अन दिनो मोहि आहि पिआसा।

हे हरे ! आपके चरणकमलों के रस का मेरा मनरूपी भ्रमर लोभी हो रहा है, इसलिये मुझे प्रतिदिन आपके कृपारूपी जल को पीने की इच्छा हो रही है।

कृपा जलु देहि नानक सारिंग कउ होइ जाते तेरे नाइ वासा=श्री गुरु नानकदेव देव जी कहते हैं कि हे परमेश्वर ! मेरे मनरूप चातक को आप कृपारूपी जल अवश्य प्रदान करें। जिस कृपाजल के द्वारा मेरा मन सभी पदार्थों की इच्छा को त्याग कर संसार सागर से तरने का मुख्य साधन हरि नाम में निरन्तर निवास करे। अर्थात् अन्य सभी साधनों को त्यागकर केवल तेरे ही नाम का चिन्तन करे।

॥ प्रेम प्रबोधिनी व्याख्यायां तृतीयं मन्त्रं समाप्तम् ॥३॥

रागु गउड़ी पूरबी महला ४।

कामि किरोधि नगरु बहु भरिआ मिलि साधू खंडल खंडा हे।
पूरबि लिखत लिखे गुरु पाइआ मनि हरि लिव मंडल मंडा हे ॥१॥
करि साधु अंजुली पुनु वडा हे। करि डंडौत पुनु वडा हे ॥१॥ रहाउ ॥
साकत हरि रस सादु न जाणिआ तिन अंतरि हउमै कंडा हे।
जिउ जिउ चलहि चुभै दुखु पावहि जम कालु सहहि सिरि डंडा हे ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हरिजन हरि हरि नामि समाणे दुखु जनम मरण भवखंडा हे ।
अबिनासी पुरुखु पाइआ परमेसरु बहु सोभ खंड ब्रहमंडा हे ।
हम गरीब मसकीन प्रभ तेरे हरि राखु राखु वड वडा हे ।
जन नानक नामु अधारु टेक है हरि नामे ही सुखुमंडा हे ॥ ४ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ— कामि किरोधि नगरु बहु भरिआ मिलि साधू खंडल खंडा हे । हे=हे भाई ! काम, क्रोध, लोभादि विकारों से यह शरीररूप नगर अत्यन्त भरा हुआ था, मिलि साधू=शान्तस्वरूप साधुओं के साथ मिल कर, खंडल=समस्त विकारों को, खंडा=खण्डित कर दिया है। अथवा मिलि साधू=सत्पुरुषों से मिल कर समस्त विकारों को मैंने, खंडलखंडा=खण्ड खण्ड (टुकड़े २) कर दिया है।

पूरबि लिखत लिखे गुरु पाइआ=पूर्व लिखे हुए कर्मों के अनुसार पूर्ण गुरु को प्राप्त किया है। मनि हरि लिव मंडल मंडा हे । इसलिये मन हरिकी, लिव=प्रीति के, मंडल=स्थानमें, मंडा हे=मण्डित हो रहा है अर्थात् स्थित हो रहा है। करि साधू अंजुली=साधु पुरुषों को हाथ जोड़ कर नमस्कार कर, ऐसा करनेसे पुनु वडा हे=महान् पुण्य होता है। करि डंडौत पुनु वडा हे=श्रेष्ठ पुरुषोंको साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करने से और भी अधिक पुण्य होता है।

साकत हरि रस सादु न जाणिआ=अज्ञानी पुरुषों ने हरि रस के स्वाद को नहीं जाना, क्योंकि, तिन अंतरि=उन मूढ़ पुरुषों के अन्तःकरण में, हउ मै कंडा हे=अहंता ममतारूप कांटा है। जिउ जिउ चलहि=जैसे २ अज्ञानी पुरुष अहंता ममता से कर्मों में प्रवृत्त होते हैं, चुभै दुखु=उनके अन्तःकरण में अहंकार ममकाररूप कांटा प्रतिक्षण चुभता है । अथवा ज्यों ज्यों पावहि=साधु सन्त निजानन्द में विचरते हैं उन्हें देखकर अहंकारी पुरुष दुःखी होते हैं। जमकालु सहहि सिरि डंडा हे=मूढ़ पुरुष निन्दक और अहङ्कारी होने के कारण अन्तकाल में अपने सिर पर यम-राज के दण्ड को सहन करते हैं ।

हरि जन हरि हरि नामि समाणे । हरिजन =हरि के सेवक, हरि=परमात्मा में, तथा हरि नामि=हरिनाम में, समाणे=लीन रहते है, अर्थात् हरि के भक्तजन निरन्तर नाम और नामी के ध्यान परायण रहते हैं। इसलिये, दुखु जनम मरण भवखंडा हे । हरि के भक्तों ने, भव=संसार में, दुखु जनम मरण=जन्म मरण के दुःख को, खंडा हे=खण्डित कर दिया है, अर्थात् हरि के सेवक भक्ति के द्वारा जन्म मरण के दुःख से मुक्त हो गये हैं। अथवा अज्ञान के कारण जन्म मरण का दुःख, भव=संसार में जो उत्पन्न हुआ था उस दुःख का ज्ञान के द्वारा हरि उपासकों ने अभाव कर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दिया है। अबिनासी पुरखु पाइआ परमेसरु=नाश से रहित परिपूर्ण परमेश्वर को जिन्होंने प्राप्त किया है,बहुसोभखंड ब्रहमंडा हे=उन पुरुषों की बहुतसी शोभा भारतादि अनेक खण्डों में और अनेक ब्रह्माण्डों में हो रही है, इसलिये जगदीश्वर से हमें सनम्र इसप्रकार प्रार्थना करनी चाहिये।

हम गरीब मसकीन प्रभ तेरे हरि राखु राखु वड वडा हे ॥

वडवडा हे=बड़ों से बड़े अर्थात् महान से महान हे हरे! हम गरीब मसकीन=हम निर्धन, असमर्थ आपके सेवक हैं, राखु राखु=संसार सागर से हमारी रक्षा करो, अपनी शरण में रखो। अथवा हे प्रभो! हम निर्धन और अशक्त हैं, परन्तु सेवक आपके हैं, इसलिये संसार सागर से हमारी रक्षा करो, रक्षा करो। क्योंकि आप प्रजापति हिरण्यगर्भादि बड़ों से भी बड़े हैं। संसार सागर में डूबते हुए मुझ सेवक की आप अवश्य रक्षा करें।

जन नानक नामु अधारु टेक है। श्री गुरु रामदास जी कहते हैं कि हे स्वामिन्! हम सेवकों को आपके नाम का ही आधार है, तथा आपके नाम का ही शरीर को, टेक है=आश्रय है; हरि नामे ही सुखु मंडा हे। हे हरे! हरिनामे ही=आपके नाम से ही हमारे मन ने, सुखु मंडा हे=सुख को धारण किया है, अर्थात आपके नाम से ही मेरा मन सुख में स्थित हुआ है।

भावार्थ— पहले शरीर रूप नगर काम क्रोधादि से भरा हुआ था, श्रेष्ठ पुरुषों के साथ मिलकर समस्त विकारों को मैंने खण्डित कर दिया है। पूर्व लिखे हुए कर्मों के अनुसार पूर्ण गुरु को मैंने प्राप्त किया है। इसलिये मेरा मन हरि की प्रीति में स्थित हो रहा है। श्रेष्ठ पुरुषों को सप्रेम हाथ जोड़ कर नमस्कार करने से महान् पुण्य होता है। साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करने से तो अत्यन्त पुण्य की उत्पत्ति होती है। अज्ञानी पुरुष हरि रस के स्वाद को नहीं जानते, क्योंकि उन मूढ़ पुरुषों के अन्तःकरण में अहंता ममतारूप काँटा है। अज्ञानी लोग जैसे२ अहङ्कार से कर्मों में प्रवृत्त होते हैं उनके अन्तःकरण में अहङ्काररूप काँटा प्रतिक्षण चुभता है। अज्ञानी पुरुष अहङ्कारी और निन्दक होने के कारण अन्तकाल में अनेक प्रकार की यातना को सहन करते हैं।

हरि के सेवक निरन्तर हरि नाम में मग्न रहते हैं। प्रभु के भक्तों ने संसार में जन्म मरण के दुःख को खण्डित कर दिया है। अविनाशी परिपूर्ण परमेश्वर को जिन्होंने प्राप्त किया है उन पुरुषों की शोभा भारतादि अनेक खंडों में हो रही है। इसलिये परमपिता परमात्मा से सादर सप्रेम हमें इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये। हे महान् से महान् परमेश्वर! हम निर्धन और अशक्त हैं, परन्तु आपके सेवक हैं। इसलिये संसार सागर से हमारी रक्षा करो, क्योंकि आप अत्यन्त शक्तिशाली हैं। श्री गुरु रामदास जी कहते हैं कि हे स्वामिन्! हमारे मन को आपके नाम का ही आधार है, तथा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आपके नाम का ही हमारे शरीर को आश्रय है। आपके नाम से ही मेरा मन सुख में स्थित हुआ है।

विशेषव्याख्या —आर्ति के पश्चात् प्रार्थना करके ईश्वर के आगे भक्त लोग बद्धाञ्जलि दण्डवत प्रणाम करते हैं। दण्डवत् प्रणाम की शिक्षा देने के लिये पहले नाम के उपदेष्टा सत्पुरुषों के मिलाप का फल कहते हैं।

कामि करोधि नगरु बहु भरिआ मिलि साधू खंडल खंडा हे॥

यहां पर साधु शब्द ब्रह्मवेत्ता का बोधक है। 'खंडल' शब्द काम क्रोधादि दोषरूप टुकड़ों को ग्रहण करने वाले अन्तःकरण का नाम है। मूल का अर्थ इस प्रकार है—ब्रह्मवेत्ता के मिलाप से पहले काम क्रोधादि आसुरी सम्पत्ति से अन्तःकरणरूप नगर पूर्ण हो रहा था। वह अब, मिलि साधू=ईश्वर स्वरूप ब्रह्मवेत्ता को मिलकर उनके उपदेश से, खंडल=अन्तःकरण, खंडा हे=खंडित कर दिया है। जैसे शाखा काटने से वृक्षकी छाया दूर हो जाती है, वैसे आसुरी सम्पत्ति के छेदन करने मात्र से अन्तःकरण की छाया काम क्रोधादि निवृत्त हो गए हैं। अथवा, मिलि साधू=ब्रह्मवेत्ता साधु को मिल कर उनके उपदेश से, खंडल=ज्ञानरूप खड्ग को, ला=लेकर, काम क्रोधादि दोषों से पूर्ण अन्तःकरणरूप नगर को, खंडा हे=तोड़ फोड़ दिया है।

पूरबि लिखत लिखे गुरु पाइआ मनि हरि लिव मंडल मंडा हे॥

पूरबि=अनन्त जन्मों के शुभ कर्मों के अनुसार विधाता ने ब्रह्मदर्शी गुरु प्राप्त होने का, लिखत=लेख (भाग्य) लिखे=मस्तक में लिखे थे, उनके अनुसार, गुरु पाइआ=ब्रह्मनिष्ठ गुरु प्राप्त हुआ, उनके उपदेश से मेरा मन, हरि लिव मंडल=हरि के ध्यान मण्डल में, मंडा हे=मण्डित (मग्न) हुआ है।

करि साधू अंजुली पुनु वडा हे। करि डंडौत पुनु वडा हे॥

साधू=हे जिज्ञासु! परमेश्वर के आगे, अंजुलि करि=सप्रेम दोनों हाथों को जोड़, ऐसा करने से, पुनु वडा हे=महान् पुण्य उत्पन्न होता है। हाथ जोड़ने के बाद आठ अङ्गों से दण्डवत् प्रणाम कर यह अत्यन्त पुण्योत्पादक कार्य है। अथवा तत्त्वदर्शी साधु महात्माओं को हाथ जोड़ और दण्डवत् प्रणाम कर, ऐसा करने से विशेष पुण्य की उत्पत्ति होती है। साष्टाङ्ग प्रणाम में निम्नलिखित आठ अङ्ग हैं—उरु, वक्षस्थल, भुजा, जानु, शिर, मन, वाणी, दृष्टि। अङ्ग शब्द साधन का वाचक है। प्रणाम में मन वाणी दृष्टि भी साधन हैं। इसलिये इन तीनों की अङ्गों में गणना की है। इस प्रकार दैवी सम्पत्ति वाले पुरुषों को लाभार्थ साञ्जलि दण्डवत् प्रणाम का उपदेश करके आगे आसुरी सम्पत्ति वाले पुरुषों की हानि बतलाते हैं।

साकत हरि रस सादु न जाणिआ तिन अंतरि हउ मै कंडा हे॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आसुरी सम्पत्तिवाले साकत पुरुषों ने आनन्द स्वरूप हरि के रस का स्वाद प्राप्त नहीं किया। इसलिये उनके अन्तःकरण में जन्म मरणादि महान् दुःख देनेवाला अहंता ममता रूप एक कांटा है।

जिउ जिउ चलहि चुभै दुखु पावहि जम कालु सहहि सिरि डंडा हे ॥

जिउ जिउ=जिस जिस, सुर, नर तिर्यग्योनिरूप मार्ग में अज्ञानी चलते हैं, अर्थात् जहां २ जन्म धारण करते हैं, वहाँ वहाँ उन्हें अहङ्काररूप कण्टक अन्तःकरण में महान् दुःख देता है। भाव यह है जिस जिस योनि में यह अज्ञानी जीव जाता है वहां वहां मैं मनुष्य हूँ, मैं ब्राह्मण हूं, मैं क्षत्रिय हूं, इस प्रकार का अहङ्कार इसके अन्तःकरण में उत्पन्न होता है, जिससे यह जीव अत्यन्त दुःख उठाता है। अन्त काल में अपराधी के समान यमदूतों से दण्ड को सहन करता है। यमदूतों से प्राप्त होने वाला दुःख हरिभक्तों को नहीं होता। इसके विपरीत सम्पूर्ण लोकों में उनकी कीर्ति होती है। इस बात को गुरु जी आगे कहते हैं।

हरिजन हरि हरि नामि समाणे दुखु जनम मरणभवखंडा हे ॥

हरि के प्रेमी, परमेश्वर नामी में और उसके नाम में ध्यान से लीन हुए हैं, अर्थात् नाम और नामी इन दोनों के ध्यान परायण हुए हैं। उपासना के प्रभाव से ज्ञान प्राप्त करके आध्यात्मिकादि तीन प्रकार के दुःखों को तथा जन्म मरण के भय को भक्तों ने निवृत्त कर दिया है। आत्मगत दुःखों का नाम आध्यात्मिक है। आत्म शब्द शरीर एवं मन और प्राण का वाचक है। इसलिये शरीरमें ज्वर शूलादि और मन में शोक विषादादि तथा प्राणों में क्षुधा प्यासादि से होनेवाले दुःखों का नाम आध्यात्मिक है। सिंह, सर्प, व्याघ्र से प्राप्त होने वाले दुःखों को आधिभौतिक कहते हैं। यक्ष, भूत, प्रेत, पिशाच आदि से प्राप्त होने वाले दुःखों को आधिदैविक कहते हैं।

पूर्वोक्त सभी दुःखों का नाश तभी हो सकता है, जब उनके मूल कारण का नाश किया जाए। कारण के नाश किये बिना कार्य का नाश असम्भव है। अन्वेषण करने पर दुःखो का मूल कारण अज्ञान ही सिद्ध होता है। दुःख तभी तक है जबतक जीवों को उत्तम, मध्यम, अधम शरीर प्राप्त होते हैं। शरीर प्राप्ति के बिना जीवों को दुःख नहीं होता, इसलिये दुःखों का कारण शरीर है। शरीर तबतक है जबतक उसके कारण पुण्य पापादि कर्म हैं। देवों के शरीर पुण्य कर्म से तथा मनुष्योंके शरीर पुण्य पाप मिश्रित कर्मों से, और पशु, पक्षी, कीट पतङ्गादि के शरीर पाप कर्मों से उत्पन्न होते हैं। यहां इतनी विशेषता है देवताओं में पुण्य अधिक है और पाप न्यून है। पुण्य की अधिकता से उन्हें विशेष सुख प्राप्त होता है। मनुष्यों को सुख दुःख मिश्रित रहता है। मनुष्यों में भी अधिक शुभ कर्म करने वालों की देवताओं जैसी सम्पत्ति है। अधिक अशुभ कर्म करने वाले मनुष्यों की पक्षियों जैसी गति है। पशु पक्षियों में भी जो सुख की प्रतीति होती है वह शुभ कर्मों का ही फल है, इसलिये सर्वके शरीर त्रिविध कर्मों से जन्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हैं। जबतक कर्म रहेंगे तबतक शरीर समाप्त नहीं होंगे, क्योंकि शरीरों के कारण कर्म हैं। और कर्म तबतक हैं जब पर्यन्त विहित निषिद्ध क्रिया है। यज्ञादि विहित क्रिया से पुण्य की उत्पत्ति एवं हिंसादि निषिद्ध क्रिया से पाप की उत्पत्ति होती है।

मिश्रित क्रिया से मिश्रित पुण्य पाप की उत्पत्ति होती है। जबतक शुभाशुभ क्रिया है तबतक कर्म दूर नहीं हो सकते। विहित निषिद्ध क्रिया तबतक है जबतक राग और द्वेष है। राग द्वेष के रहते हुए विहित क्रिया के दूर होने पर भी मिश्रित राग द्वेष से स्वाभाविक क्रिया के समान नूतन विहित निषिद्ध क्रिया उत्पन्न होती है। उत्तम वस्तु में राग होने से उसकी प्राप्ति के लिये विहित क्रिया होती है। जैसे स्वर्ग प्राप्ति के लिये यज्ञादि। मन्द वस्तु में राग होने से उसे प्राप्त करने के लिये निषिद्ध क्रिया होती है। जैसे वेश्यागमन, सुरापान के लिए द्यूत चौर्यादि। उत्तम वस्तु में द्वेष होने से निषिद्ध क्रिया होती है। जैसे श्रेष्ठ पुरुषों का प्रभाव दूर करने के लिये उनकी निन्दा में प्रवृत्त होना। मन्द वस्तु में द्वेष होने से विहित क्रिया होती है। जैसे आसुरी सम्पत्ति की निवृत्ति के लिये दैवी गुणों को धारण किया जाता है। विहित निषिद्ध क्रिया के मूलकारण राग द्वेष तबतक हैं जबतक पदार्थों में इष्ट और अनिष्ट साधनता का ज्ञान हैं। इष्ट साधनता और अनिष्ट साधनता का ज्ञान तबतक है जबतक पुरुष को भेद ज्ञान है। भेदज्ञान तबतक है जबतक पुरुष को अपने स्वरूप का अज्ञान है क्योंकि अज्ञान काल में ही ब्रह्म से भिन्न जगत् की और उसके ज्ञान की स्थिति होती है। अज्ञान के दूर होने पर सभी कुछ निवृत्त हो जाता है।

इस प्रकार परम्परा से सर्व दुःखों का मूल कारण अज्ञान ही सिद्ध होता है। दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति तब हो सकती है जब अज्ञान का नाश हो जाये। अज्ञान का नाश ज्ञान से होता है, जैसे रज्जु का अज्ञान रज्जु के ज्ञान से दूर होता है वैसे स्वस्वरूप का ज्ञान ही अज्ञान की निवृत्ति द्वारा दुःखों की निवृत्ति और भय की निवृत्ति का हेतु है। उस स्वरूप ज्ञान को जिज्ञासु लोग ईश्वर के नाम में तल्लीन होकर प्राप्त करते हैं। ज्ञान को प्राप्त करने के बाद त्रिविध दुःखों तथा जन्म मरण के भय को सर्वदा के लिये, खंडा हे=खण्डित कर देते हैं, अर्थात् अज्ञान के सहित सर्व दुःखों को सर्वथा नष्ट कर देते हैं।

अबिनासी पुरुखु पाइआ परमेसरु बहु सोभ खण्ड ब्रहमंडा हे॥

हरि के भक्तों ने ज्ञान को प्राप्त करके, अबिनासी पुरुखु पाइआ परमेसरु=विनाश रहित परम सुख स्वरूप पूर्ण परमेश्वर को प्राप्त किया है अर्थात् दुःख निवृत्ति पूर्वक परमानन्द की प्राप्ति रूप मुक्ति को भक्तों ने प्राप्त किया है। फल की प्राप्ति के लिए लगाए वृक्ष की स्वाभाविक प्राप्त छाया के समान मुक्ति लाभ के पश्चात् सनकादि मुनियों के समान भक्तों की निखिल ब्रह्माण्ड में अत्यन्त शोभा होती है। ऐसा लाभ हरिभक्तों को परमेश्वर की कृपा से प्राप्त होता है। अब जिज्ञासु को शिक्षा देने के लिये ईश्वर के आगे प्रार्थना करने का गुरु जी उपदेश करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हम गरीब मसकीन प्रभ तेरे हरि राखु राखु वडवडा हे ॥

हम =आपके प्रेमी जिज्ञासु जन, गरीब =खान पानादि व्यवहारों से पीड़ित, निर्धन, दुःखी, मसकीन =जन्म मरणादि भय से व्याकुल, अतिदीन, प्रभ =हे शक्तिशाली परमेश्वर ! तेरे = आपके हैं, वडवडा हे =इन्द्र, उपेन्द्र, ब्रह्मा, बृहस्पति, आदि बड़ों से भी बड़े हे हरे ! आप कृपाकरके, राखु राखु =हमारी रक्षा करो रक्षा करो ।

जन नानक नामु अधारु टेक है हरि नामे ही सुखु मंडा हे ॥

श्री गुरु रामदास जी कहते हैं, हे सर्व के आधार परमेश्वर ! जिज्ञासुओं को तेरा नाम ही संसाररूप दुर्गम स्थान में अन्धे को लाठी के समान, टेक =आलम्बन (सहारा) है हरिनाम के आलम्बन से प्राचीन भक्तों ने, सुखु मंडा हे =मुक्ति रूप सुख की शोभा के लिये हरि नाम भूषण को धारण किया है ।

❀ श्री प्रेम प्रबोधिनीव्याख्यायां चतुर्थ मन्त्रं समाप्तम् ॥४॥ ❀

रागु गउड़ी पूरबी महला ५ ॥

करउ बेनंती सुणहु मेरे मीता संत टहल की बेला ।
ईहा खाटि चलहु हरि लाहा आगै बसनु सुहेला ॥१॥
अउध घटै दिनसु रैणारे । मन गुर मिलि काज सवारे ॥१॥ रहाउ
इहु संसारु बिकार संसेमहि तरिओ ब्रह्म गिआनी ।
जिसहि जगाइ पीआवै इहु रसु अकथ कथा तिनि जानी ॥२॥
जाकउ आए सोई बिहाझहु हरि गुर ते मनहि बसेरा ।
निज घरि महलु पावहु सुख सहजे बहुरि न होइगो फेरा ॥३॥
अंतर जामी पुरख बिधाते सरधा मन की पूरे ।
नानकदास इहै सुखु मागै मोकउ करि संतन की धूरे ॥४॥५॥

शब्दार्थ— करउ बेनंती सुणहु मेरे मीता =हे मेरे मित्रो ! ध्यान पूर्वक सुनो, मैं आप लोगों से प्रार्थना करता हूं, संत टहल की बेला =यह मनुष्य शरीर सन्तों की सेवा करने का शुभ अवसर है । अथवा हे मित्रो ! इस मनुष्य शरीर में वाणी से ईश्वर के आगे प्रार्थना करो और कानों से हरि यश का श्रवण करो, तथा शरीर से सत्पुरुषों की सेवा करने का तुम्हें शुभ अवसर प्राप्त हुआ है ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ईहा खाटि चलहु हरिलाहा=इस मनुष्य शरीर में ईश्वर के नाम जप का लाभ लेकर यदि चलोगे तब, आगै बसनु सुहेला=परलोक में तुम्हारा निवास सुखप्रद होगा, अर्थात् नाम के प्रभाव से परलोक में तुम सुख पूर्वक निवास कर सकोगे। अउध घटै दिनसु रैणारे=हे मेरे मन! रात्रि दिन के आने जाने से तुम्हारी अवस्था घट रही है, अर्थात् क्षीण हो रही है। इसलिये

मन गुर मिलि काज सवारे। मन गुर मिलि=ब्रह्मवेत्ता गुरु से मिल करके, हे मेरे मन! काज सवारे=संसार में आने के कार्य को सुधार ले, अर्थात् मानव जीवन के उद्देश्य को सफल कर ले। इहु संसारु=यह संसार समुद्र, बिकारु संसेमहि=विषय विकार और संशयों से भरा हुआ है। तरिओ ब्रह्म गिआनी=ब्रह्मज्ञानी पुरुष ही इस संसार सागर से तर सकता है, अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ ही ज्ञान के प्रभाव से संशय ग्रन्थि, और कर्म ग्रन्थि को तोड़ कर संसार सागर से मुक्त हो जाता है। अथवा इह संसारु विकारु संसेमहि।

यहाँ पर विकार और संशय ये दोनों संसार के विशेषण हैं। भाव पदार्थ की उत्पत्ति, वृद्धि, परिणाम क्षीणता विनाशादि षड् अवस्थाओं का नाम विकार है। संसार नाम चलने का है। सम्पूर्ण पदार्थ षड् अवस्थाओं के प्रवाह में चलते हैं। इसलिये यह संसार विकार रूप है। संसा इहु संसार है इस गुरु वचन के अनुसार यह संसार संशयरूप है। यद्यपि संसार संशय का कार्य है और संशय कारण है तथापि कार्य और कारण का अभेद मानकर संसार को संशयरूप कहा है। मूल का अर्थ इस प्रकार है।

इहु=यह, संसारु बिकारु=उत्पत्ति, वृद्धि विनाशादि षड् अवस्थाओं के प्रवाहरूप संसार से तथा संसेमहि=संशय, विपर्ययरूप संसार से, तरिओ ब्रह्म गिआनी=ज्ञान के प्रभाव से ज्ञानी पुरुष तर जाता है। अथवा विकार मात्र संसार का विशेषण है, संशय विशेषण नहीं। मूल का अर्थ यह है यह प्रत्यक्ष प्रतीत होने वाला, संसारु बिकारु=अज्ञान के कार्य जन्मादि संसार में, संसेमहि=मुक्ति मार्ग के विरोधी प्रमाण, प्रमेय आदि में होने वाले अनेक प्रकार के संशयों से, तरिओ ब्रह्म गिआनी=मनन निदिध्यासन के द्वारा ज्ञानवान पुरुष तर जाता है। केवल स्वयं ही मुक्त नहीं होता किन्तु अपने उपदेश से लाखों को मुक्त करता है। इस बात को गुरु जी आगे कहते हैं।

जिसहि जगाइ पीआवै इहु रसु अकथ कथा तिनि जानी॥

जिसहि जगाइ=जिस सोए हुए पुरुष को मोह निद्रा से जगाकर ब्रह्मज्ञानी गुरु, पीआवै इहु रसु=इस हरि नाम रस को पिला देता है, अकथ कथा=अकथनीय परमेश्वर की कथा को, तिनि जानी=उस पुरुष ने जाना है, अर्थात् वही प्रेमी उस अगम अगोचर परमेश्वर के परमार्थ स्वरूप का अनुभव करता है। हे मेरे प्रिय मित्रो!

जा कउ आए=संसार में जिस लिये तुम आए हो, सोई=वही हरि नाम धन, ब्रह्मज्ञानी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुरु से, **बिहाझहु** =खरीदो, अर्थात् श्रद्धाभक्ति पूर्वक हरि नाम धन को गुरुओं से प्राप्त करके निरन्तर अभ्यस करो। **हरि गुरु ते** =गुरु के उपदेश द्वारा हरि का, **मनहि वसेरा** =मन में निवास होता है, अर्थात् गुरु की बताई हुई युक्ति से ही परमेश्वर की मन में स्थिति होती है। **निजघर** =अपने अन्तःकरण में, **महलु** =निजानन्द स्वरूप के, **पावहु सुख सहजे** =अलौकि सुखको तुम स्वाभाविकही प्राप्त करलोगे, अर्थात् नाम के अभ्यासस्से आत्मस्वरूप में स्थिति सुगमता से कर सकोगे। **बहुर न होइ गो फेरा। बहुर** =जन्म मरण के, **फेरा** =चक्र को, **न होइ गो** =प्राप्त नहीं होगे।

बद्धाञ्जलि होकर ईश्वर से इस प्रकार प्रार्थना करो। **अंतरजामी** =हे अन्तर्यामिन्! **पुरख विधाते** =संसार को धारण पोषण करने वाले परिपूर्ण परमेश्वर! **सरधा मन की पूरे** =मेरे मन की श्रद्धा को पूर्ण करो। अर्थात् मेरी हार्दिक इच्छा को सफल करो।

नानक =श्री गुरु अर्जुनदेव जी कहते हैं **दास** =मैं आपका सेवक, **इहै सुख मागै** =पूर्ण काम तुझ ईश्वर से यही सुख मांगता हूं, **मोकउ** =मुझे, **करि संतन की धूरे** =समदर्शी ब्रह्मवेत्ता, सन्तों के चरणों की धूली बनादो अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ, तत्त्वदर्शी सन्तों की संगति और सेवा करने का सौभाग्य प्रदान करो, मैं आपसे यही अपूर्व वर माँगता हूं।

अथवा श्री गुरु अर्जुनदेव जी जिज्ञासुओं को शिक्षा देते हैं कि साँसारिक पदार्थों की कामनाओं को त्याग कर आत्मोन्नति के लिये सत्पुरुषों की संगति तथा सरलता, नम्रता, निष्कपटता आदि सद्गुणों को प्राप्त करने के लिये परिपूर्ण परमेश्वर से प्रतिदिन इस प्रकार प्रर्थना करो। हे अन्तर्यामिन्! समस्त प्राणियों को शुभाशुभ कर्मों के अनुसार सुख दुःख फल के विधायक हे परिपूर्ण पुरुषोत्तम! मेरी मानसिक इच्छा को पूर्ण करो। यह दास आपसे यही सुख मांगता है कि मुझको श्रेष्ठ पुरुषों के चरणों की धूलि प्रदान करो।

भावार्थ—हे मेरे प्रिय मित्रो! ध्यान पूर्वक सुनो। मैं आप लोगों से प्रार्थना करता हूं, यह मनुष्य शरीर सन्तों की सेवा करने का शुभ अवसर है। इस मनुष्य शरीर में ईश्वरके नामको जपकर जब तुम परलोक में जाओगे, तब वहां पर सुख पूर्वक रह सकोगे। हे मेरे मन! रात्रि दिन के आने जाने से तुम्हारी आयु क्षीण हो रही है। इसलिये ब्रह्मवेत्ता गुरु से मिल कर मानव जीवन के उद्देश्य को सफल कर ले। यह संसार समुद्र विषय विकारों और संशयों से भरा हुआ है, इस अपार सागर से ब्रह्मज्ञानी ही तर सकता है। जिस सोए हुए पुरुष को मोह निद्रा से जगा कर ब्रह्मवेत्ता गुरु हरिनाम रस को पिलाता है, अगम, अगोचर, अकथनीय ईश्वर की कथा को वही पुरुष जानता है। तुम लोग संसार में जिस लिये आए हो वही हरिनाम धन गुरुओंसे प्राप्त करना चाहिये क्योंकि गुरुके उपदेश द्वारा मनमें हरिका निवास होता है। अपने अन्तःकरण में स्वस्वरूप के अलौकिक सुख को तुम स्वाभाविक ही प्राप्त कर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लोगे, ऐसा करने से जन्म मरण के चक्र में प्राप्त नहीं होंगे। हाथ जोड़ कर ईश्वर से इस प्रकार सादर सप्रेम प्रार्थना करो। हे अन्तर्यामिन् परिपूर्ण परमेश्वर! मेरे मन की श्रद्धा को पूर्ण करो। श्री गुरु अर्जुनदेव जी कहते हैं कि मैं तुम्हारा सेवक आप्त काम तुझ ईश्वर से यही वर मांगता हूं, कि मुझे ब्रह्मनिष्ठ तत्त्वदर्शी सन्तों के चरणों की धूलि बनादो।

विशेष व्याख्या— परमेश्वर की प्रसन्नता के लिये प्रार्थना करनी आवश्यक है, वह प्रार्थना साधुसेवा से प्राप्त होती है, इसलिये साधुसेवा का मित्र भाव से गुरु जी उपदेश करते हैं।

करउ बेनंती सुणहु मेरे मीता संत टहल की बेला॥

यह जीव अनन्त काल से संसार चक्र में घटियन्त्र के समान घूम रहा है। भ्रमण करते हुए आध्यात्मिकादि दुःखों की निवृत्ति के लिये औषधि मन्त्र जपादि अनेक प्रकार के उपाय करता है। अनेक उपाय करते हुए भी समूल दुःखों का नाश एवं नित्य सुख की प्राप्ति के उपाय का आलम्बन नहीं करता। जीव की शोचनीय दशा को देखकर जिस प्रकार परम कृपालु कोई पुरुष कुमार्गगामी मनुष्य को मित्र भाव से समझा कर उसे सन्मार्ग में प्रवृत्त करता है, उसी प्रकार ज्ञान मार्ग को छोड़कर अन्य साधनों में लगे हुए जीवों को देखकर परम दयालु श्री गुरु अर्जुनदेव जी कल्याणकारी उपदेश देते हैं।

करउ बेनंती इति। हे मित्रो! मैं आपकी भलाई का शुभ अवसर देखकर प्रार्थना करता हूं, तुम लोग मेरी प्रार्थना को ध्यान पूर्वक सुनो। प्रेमियों की जिज्ञासा को देखकर गुरु जी सर्व प्रथम कर्त्तव्य का उपदेश करते हैं। **सन्त टहल की बेला**=ब्रह्मवेत्ता महात्माओं की सेवा का यह शुभ अवसर है।

ईहा खाटि चलहु हरि लाहा आगै बसनु सुहेला।

सेवा द्वारा प्रसन्न हुए गुरु से, **ईहा**=मनुष्य जन्म में परमात्म लाभ को, **खाटि**= आत्मरूप से प्राप्त कर और जीवन मुक्त होकर **चलहु**=स्वतन्त्रता पूर्वक भ्रमण कर। **आगै**=शरीरपात के अनन्तर **बसनु सुहेला**=जन्म मरण से रहित सुखपूर्वक तुम्हारा निवास होगा।

औध घटै दिनसु रैणा रे। मन गुर मिलि काज सवारे॥

मोक्ष के पात्र मनुष्य शरीर की, **औध**= बाल्य यौवनादिरूप अवस्था, **दिनसु रैणा रे**= रात्रि दिन में टूटे फूटे घड़े के समान, **घटै**=तीव्रता से क्षीण हो रही है। इसलिये हे मेरे मन! शुभ अवसर जानकर गुरु के उपदेश से ज्ञान का प्राप्त करना रूप कार्य, **सवारे**=ठीक करले, अर्थात् इसी जीवन में ज्ञान के द्वारा संसार सागर से तर जायेगा।

प्रश्न— संसार सागर से कौन व्यक्ति तरता है?

समाधान— **इहु संसारु बिकार संसेमहि तरिओ ब्रह्म गिआनी॥**

यहां पर विकार और संशय यह दोनों संसार के विशेषण हैं। उत्पत्ति, वृद्धि और ह्रास परिणाम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विनाशादि भाव पदार्थ की षड् अवस्थाओं का नाम विकार है। अपने कारण में तिरोहित वस्तु का आविर्भाव होना ही उत्पत्ति है। एवं प्रकट हुई वस्तु का अपने कारण में छिप जाने का नाम नाश है। इसलिये नाश भी भाव पदार्थ की एक अवस्था है, षड् अवस्थाओं के प्रवाह का नाम संसार है। सभी पदार्थ षड् अवस्थाओं में चलते हुए दिखाई देते हैं। यह संसार विकार एवं संशय रूप है। जबतक इस जीव को यह संशय है कि परमेश्वर मेरे से भिन्न है वा अभिन्न है तथा मैं परमेश्वर स्वरूप नहीं ऐसा विपर्यय ज्ञान है तभी तक संसार है। जब संशय विपर्यय दूर हो जाते हैं तब उसकी दृष्टि में ससार का कोई महत्त्व नहीं रहता। इस रीति से संशय विपर्यय संसार के कारण हैं और संसार इनका कार्य है। कार्य कारण को एक मान कर गुरुदेव जी ने संसार को संशयरूप कहा है।

मूल का यह अर्थ है कि यह सम्मुख प्रतीत होने वाले षड् अवस्थाओं के प्रवाहरूप संसार से तथा संशय विपर्यय संसार से ब्रह्मज्ञानी पुरुष ज्ञानरूप नौका पर बैठ कर तर जाता है। अर्थात् प्रमाण प्रमेयगत अनेक प्रकार के विघ्न रूप संशयों को ज्ञान खड्ग के द्वारा छेदन करके ज्ञानी संसार से मुक्त हो जाता है, और सकामी पुरुष वासना के वशीभूत होकर जन्म मरण के चक्र में घूमता रहता है। ब्रह्म-ज्ञानी शरण में आए जिज्ञासुओं का भी उद्धार करता है। इस बात को गुरु जी आगे कहते हैं।

जिसहि जगाइ पीआवै इहु रसु अकथ कथा तिनि जानी ॥

ब्रह्मज्ञानी जिस जिज्ञासु पुरुष को अज्ञान निद्रा से जगा कर आनन्दरूप हरि का अनुभव कराता है, वही पुरुष परमेश्वर की अकथनीय कथा को जानता है। साधनहीन अशुद्ध मन वाला ईश्वर की अलौकिक कथा को नहीं जानता।

जाकउ आए सोई बिहाझहु हरि गुरते मनहि बसेरा ॥

जाकउ आए=जिस आत्मलाभ के लिये इस मनुष्य शरीर में तुम आए हो वही हरिधन गुरुरूप सेठ से प्राप्त करो। पुष्प में सुगन्धि और दर्पण में प्रतिबिम्ब के समान वह परमात्मा प्रत्येक के अन्तःकरण में निवास करता है। इसलिये उसे अपने हृदय में अनुभव करने का यत्न करो।

प्रश्न— हृदय में हरि के अनुभव करने का क्या फल है?

समाधान— **निज घरि महलु पावहु सुखु सहजे बहुरि न होइगो फेरा।**

महल शब्द यहाँ पर परिस्थिति का वाचक है। **निज घरि**=स्वस्वरूपभूत धाम में सुखपूर्वक स्वाभाविक ही, **महलु पावहु**=स्थिति प्राप्त करोगे, जिस स्थिति में तुम्हारा पुनरागमन नहीं होगा। अर्थात् जीवन मुक्ति का आनन्द प्राप्त करके देहपात के अनन्तर कैवल्य मुक्ति को प्राप्त करना है, संसार चक्र से छूट जाना ही हृदय में हरि को अनुभव करना परम फल है। पूर्वोक्त परम लाभ सन्तों के मिलाप से होता है। इसलिये सत्पुरुषों के चरणों की धूलि प्राप्त करने की ईश्वर से प्रार्थना करो।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अंतरजामी पुरख बिधाते सरधा मन की पूरे।

नानकदास इहै सुखु मागै मोकउ करि संतन की धूरे॥

अंतरजामी=सर्व के अन्तर बैठकर प्रेरणा करने वाले, तथा पुरख बिधाते=सर्व को धारण करने वाले पूर्ण पुरुष !, सरधा मन की पूरे=मेरे चित्त की श्रद्धा को पूर्ण करो। श्री गुरु अर्जुनदेव जी कहते हैं कि यह सेवक आपसे यही सुख माँगता है, मुझे सत्पुरुषों के चरणों की धूलि प्रदान करो। जिस धूलि से यज्ञादि साधनों के द्वारा न प्राप्त होने वाले लाभ की भी प्राप्ति होती है। इसी भाव से गुरुवाणी तथा भागवत में महात्माओं के चरणों की धूलि की गुरुदेव जी ने प्रशंसा की है।

संत की धूरि मिटे अघकोट। गु० ग्रं० पृ० १८८।

कसा का करि चवरु ढुलावा चरण धूड़ि मुखि लाई। गु० ग्रं० पृ० ७४९।

तथा

रहू गणै तत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा।

नच्छन्दसा नैव जलाग्नि सूर्यैर्विना महत्पाद रजोऽभिषेकम्॥

भरत मुनि कहते हैं हे रहूगण ! महापुरुषों की चरणधूलि का सेवन किये विना इस परम पद पर तप, यज्ञ, दान, और वेद पाठ से तथा जल, अग्नि और सूर्य की सेवा से नहीं पहुँचा जा सकता।

॥ श्री प्रेम प्रबोधिनी व्याख्यायां पञ्चमं मन्त्रं समाप्तम्॥५॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः।

टीकाकार—ब्रह्मश्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, प्रातः स्मरणीय, अनन्त श्री विभूषित, स्वामी पं० प्रेमसिंह जी महाराज जी के शिष्य, स्वामी अर्जुनसिंह 'मुनि' व्याकरणाचार्य, न्याय शास्त्री।

निर्मल कुटिया (प्रेम भवन) कनखल।

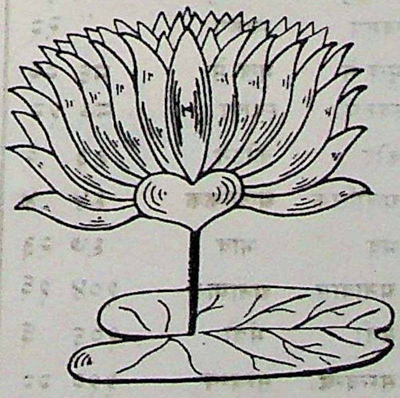

Sri Pertap Singh Library Srinagar

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"शुद्धि पत्र"

पाठकों की सुविधा के लिए मुख्य २ अशुद्धियों को लिख दिया है। साधारण त्रुटियों को स्वयं सुधार कर पढ़ें।

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
गुरुप्रसादि	गुरप्रसादि	१	१
मूधव	मूर्धंव	७	१२
स्वीाम	स्वामी	"	३२
त्रिनिध	त्रिविध	९	११
संभलि	संमलि	११	१७
पिप्लाद	पिप्पलाद	१२	२७
तत्तदर्थां का	तत्तदर्थों का	१३	१४
केष्टा	चेष्टा	१७	३०
इसलिवे	इसलिए	"	३०
परमेव्रवर	परमेश्वर को	१९	२६
काव्यना	कल्पना	२०	७
गुरुॐ	गुरुओं	२२	६
गोत्र	अगोत्र	२४	१६
विवधा	विविधा	२५	१४
अनन्त्य	अनन्तर	२६	७
पराङ्ग	पराङ्	२८	२
विषमादु	विसमादु	"	२१
भो	को	२९	१०
निमित्ता पादान	निमित्तोपादान	"	१४
मनि ने	मुनि ने	"	२९
महामनि	महामुनि	३०	२
रस	इस	"	१२
विशेषणाओं	विशेषताओं	३१	१४
कर्थ	कार्य	३२	६
कर्च	कर्ता	"	२१
कुलाहल	कुलाल	"	२६
त्रैलाक्य	त्रैलोक्य	३३	४
सख्याने	संख्या ने	३७	२६
तरयओ	तराइओ	४०	८
वखाणिओउ	वखाणिओ	"	६
अमोद्य	अमोघ	४०	२५
बाधिपा	नचाधिपः	"	२७
तञ्चदात्म विदो	तद्ददात्मविदो	४१	१२
श्रात्रियं	श्रोत्रियं	४३	२

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
आमा	आत्मा	४४	१
अपते	अपने	४६	२१
त्थूल	स्थूल	"	२५
लोकात्	लोकान्	४८	१०
ने	के	"	२२
विखु	विसु	५१	११
शारीदिक	शारीरिक	५२	२
बहुह्वाशिनं	बह्वाशिनं	५५	८
आवहु	आवहो	५६	६
हैं	हउ	५६	६
शुध्यति	शुद्धयति	"	२७
विच	विचार	५७	३
विष	विषय	५९	१८
तृष्प्ति	तृप्ति	६०	८
नहउमैं	तहउमैं	६३	१८
निवर्यन्ते	निवर्तन्ते	६४	२७
कौषतीकी	कौषीतकी	६६	१०
भूल	मूल	६७	१०
आचार	चोर	६८	५
एयं	एवं	६९	२०
पुरुष को	पुरुषकी	७०	५
शुचित	शुद्धचित्त	७३	४
शमी	सभी	७८	४
तरे	तेरा	८०	६
विधानु	निधानु	८५	१७
त्वरूप	स्वरूप	"	२२
मुख से	मुख में	८६	२२
स्वरुष	स्वरूप	८७	१२
कोइ	कोइन	९३	६
अलौलिक	अलौकिक	९४	४
भव	भाव	९७	२३
अनावास	अनायास	१०४	१६
मत्री	मैत्री	१०६	६
सम्न्वन्ध	सम्बन्ध	११२	२२

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
शशि	शक्ति	११३	१
मत्र	मन्त्र	११४	२०
दवारर	दर्वार	११७	२३
कवराउ	कवाउ	१२०	६
परव्राण	परवाण	१२२	११
वाङ्मयं	वाङ् मयं	१३४	२
तलधारावत्-	तैलधारावत	१३५	१६
वारिश्रा	बारिश्रा	१३६	६
शक्त	शक्ति	१३७	९
भाय को	भाव को	७३	७
पाता	आता	७४	२२
त्रिधुरी	त्रिपुटी	७६	२६
उत्तन	उत्तम	१८३	६
अखिया	आखिआ	१८६	५
ऋणादि	ऋगादि	१९७	२४
मिमर	सिमर	१९८	२५
ग्रन्थों	पन्थों	२१५	२५
जोगुसं	संजोगु	२२१	३
प्रायों का	प्राणियों का	२२४	१४
असय	असत्य	२३२	२३
कया	कृपा	"	२५
ब्रह्मम्व रूप	ब्रह्मस्वरूप	२७०	३
महनि	मोहनि	२८३	२०
घटि	घाटि	२९६	१७
दिथा	दिया	३०७	२२
सिमरऐ	सिमरीऐ	३३३	२
आखऐ	आखीऐ	३३४	२
खड़ी	घड़ी	३३७	७
सुभ्र	मुभ्र	३४०	१७
आति	भ्राति	३४३	२३

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

A good book for all.

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

Hamu

[illegible]

SPS
294.6 A 37 G
22740

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust